મરાઠોં
ના
નવીન ઇતિહાસ
ગોવિંદ સખારામ સરદેસાઈ

मराठों का नवीन इतिहास

Hindi Edition of **New History of the Marathas**

by G. S. Sardesai

प्रथम खण्ड

शिवाजी और उनके वंशज

[१६००-१७०७]

मूल लेखक
गोविन्द सखाराम सरदेसाई
['मराठी रियासत' के रचयिता]

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० प्रा० लिमिटेड
पुस्तक-प्रकाशक एवं विक्रेता
आगरा

प्रथम हिन्दी संस्करण १९५९

मूल्य : १२·५० रु०

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, अस्पताल रोड, आगरा के हेतु राधेमोहन अग्रवाल, मैनेजिंग डाइरेक्टर, के प्रबन्ध से प्रकाशित एवम् नरसिंहनाथ भार्गव द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, दरेसी नं० २, आगरा में मुद्रित ।

समर्पण

सेना खासखेल शमशेर बहादुर, स्टार ऑफ इंडिया के ग्रांड कमांडर

बड़ौदा-नरेश सयाजी राव गायकवाड़

[१८७५-१९३९]

जिनके राज्य में मेरा समस्त सेवा-काल व्यतीत हुआ
और जिन्होंने मुझे तरुणावस्था में ही इतिहास
के सुखद मार्ग पर प्रेरित किया।

गो० स० सरदेसाई

प्रकाशकीय

महाराष्ट्र में मराठा-इतिहास के महान् शोधकर्ता श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई से हमने उनके महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ "**New History of the Marathas**" (तीन खण्डों में) का हिन्दी अनुवाद करने की आज्ञा माँगी और उन्होंने कृपा कर हमारी प्रार्थना बड़े उत्साह और प्रेम से स्वीकार की, इसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ वैसे तो अँग्रेजी में उनकी मूल पुस्तक के प्रथम खण्ड के प्रथम संस्करण का अनुवाद है किन्तु मुद्रण-काल के बीच में ही अँग्रेजी के द्वितीय संस्करण के प्रकाशित हो जाने के कारण इसमें यथास्थान संशोधन कर दिये गये हैं और पुस्तक को नवीनतम बना दिया गया है।

हम उनके अन्य दो खण्डों का अनुवाद भी शीघ्र ही पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे। आशा है इन उत्कृष्ट ग्रन्थों के द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी में एक बड़े अभाव की पूर्ति होगी और साथ ही सुयोग्य विद्वान् तथा अधिक कार्य करने के इच्छुक सामग्री के विशाल भण्डार का उपयोग कर चिर-अपेक्षित अधिकारपूर्ण मराठों के इतिहास की रचना कर सकेंगे, और हमारा यह प्रयास हिन्दी-जगत् के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा।

बुद्ध पूर्णिमा
२२ मई, १९५९

राधेमोहन अग्रवाल
मैनेजिंग डाइरेक्टर

प्राक्कथन

'डच प्रजातन्त्र का उत्थान' के महान् इतिहास-लेखक ने ठीक ही कहा है, "एक महापुरुष की आत्मा से प्रेरित तथा दुर्दान्त निरंकुशता के विरुद्ध संग्राम करते हुए एक वीर राष्ट्र का दृश्य मनुष्य-हृदय को पीढ़ी दर पीढ़ी स्फूर्ति प्रदान करता रहेगा।" इसी आशा से मुझे यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा हुई है। भारत की वर्तमान अवस्था में इस इतिहास का ज्ञान और उस पर चिन्तन करने की आवश्यकता भी है। मराठा इतिहास अब किसी एक जाति या प्रान्त की निधि नहीं है; अब तो यह समस्त भारत के लिये प्रेरणा, विवेक और चेतावनी का स्रोत सिद्ध होगा।

शिवाजी और पेशवाओं के चरित्र एवं सफलताओं ने भारत के इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ी है। वे हमारी राष्ट्र-निर्माणकारी विलक्षण बुद्धि के सब से बाद के उदाहरण हैं, जिस पर हम आज भी गर्व कर सकते हैं। भारतीय महाद्वीप में बसी विभिन्न जातियों में प्रत्येक का अपना विशेष गुण है, किन्तु केवल मराठे ही यह दावा कर सकते हैं कि इस देश के राजनीतिक निर्माण में उनका विशेष हाथ रहा है क्योंकि उन्होंने समस्त देश में भारतीय स्वराज्य की स्थापना का प्रयास किया, यद्यपि अवधि के विचार से उनका यह कार्य अल्पकालीन ही सिद्ध हुआ। अर्द्ध-शताब्दी से अधिक समय तक भारत की राजनीति का नियन्त्रण पूना व सतारा से होता था। अपनी समस्त त्रुटियों के बावजूद मराठा शासन ने अपने अधीन जनता को एकता और सहयोग की भावना से अनुप्राणित कर दिया, जिसके बिना स्वराज्य असम्भव है। इस प्रकार इसने प्रत्येक वर्ग के लोगों को उनके नैसर्गिक रुझान के अनुरूप उन्मुक्त अवसर प्रदान किया। यह एक राजनीतिक शिक्षा है जिसकी भारत को इस समय अत्यन्त आवश्यकता है। यदि इतिहास का सही अर्थों में यह कार्य है कि वह भूतकाल में अर्जित ज्ञान को वर्तमान के लाभ के लिए अर्पित करे, राष्ट्र के समृद्धि-काल में भावी ह्रास के छिपे हुए खतरों से आगाह करे, तथा उसके साहस को जगाकर विपत्ति के समय उसकी स्वास्थ्य-प्रदायिनी शक्ति को जाग्रत कर दे,—तो भारत उन शिक्षाओं की उपेक्षा नहीं कर

सकता, जो मराठा इतिहास ने अपने अल्पकालीन किन्तु घटनापूर्ण काल में प्रस्तुत की हैं। शिवाजी और बाजीराव प्रथम के प्रेरणादायक जीवन-वृत्त, माधवराव प्रथम और महादाजी सिन्धिया के साहसपूर्ण, विचारशील और निःशंक संयोजन तथा इनके विपरीत रघुनाथराव दादा और बाजीराव द्वितीय की कुचेष्टाएँ एवं मूर्खताएँ—इनमें वे शिक्षाएँ निहित हैं जिन्हें आधुनिक भारत बुद्धिमत्तापूर्वक अपने हृदय-पटल पर अंकित करेगा।

आधुनिक विद्वानों के धैर्यपूर्ण परिश्रम एवं गुण-दोष-निरूपक तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा हमारे लिए उपलब्ध समस्त आकर्षक और विविध सामग्री को सँजोते हुए, मराठों की सफलताओं और असफलताओं का दुर्भाग्यवश कोई यथोचित वृत्तान्त नहीं लिखा गया है। इस विषय में अब भी वैज्ञानिक अनुसन्धान की आवश्यकता है और वह भी सुशिक्षित विद्वान् द्वारा जिसमें जन्मजात यथार्थ इतिहासज्ञ की निर्माणशील दृष्टि हो। अधिकांश मूल सामग्री केवल मराठी में ही उपलब्ध है और इस भाषा से अपरिचित लेखकों की पहुँच के बाहर है। दूसरी ओर महाराष्ट्रीय लेखकों के मार्ग में यह बाधा है कि उन्हें फारसी, फ्रेंच और कुछ अवस्थाओं में अँग्रेजी का भी ज्ञान नहीं है और इन विदेशी भाषाओं के आवश्यक ग्रन्थों और हस्तलिखित पुस्तकों तक उनकी पहुँच भी नहीं है। हमें यह न भूलना चाहिए कि अठारहवीं शताब्दी के भारत का इतिहास योरोपीय और भारतीय सत्ताओं के विविध तानों-बानों से पूरित है, जो परस्पर राजसत्ता की प्राप्ति के लिए संघर्षशील थीं। इन्होंने अपनी मातृभाषाओं में अपनी कार्य-कथाएँ लिखी हैं, जिनके विवरण की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

मराठों के पूर्व-पुरुषों—मौर्य, गुप्त, यादव, परमार आदि ने इस देश में भिन्न-भिन्न समयों पर राजसत्ता का उपभोग किया, उन्होंने अपने शासन का बहुत ही कम विवरण छोड़ा है। उस समय का स्मरण दिलाने के लिए कुछ गूढ़ शिलालेख, दरबारी कवियों की कल्पनात्मक प्रशस्तियाँ और थोड़ी-सी मुद्राएँ तथा विदेशी यात्रियों के कुछ अस्त-व्यस्त विवरण ही प्राप्य हैं। इस अल्प सामग्री के आधार पर पूर्ण और प्रामाणिक इतिहास की रचना नहीं हो सकती। किन्तु मराठा शासन के विषय में हम बहुत अच्छी तरह जानते हैं, क्योंकि ये तो बहुत बाद की बात है और मराठी भाषा में अति मूल्यवान् सामग्री मिल जाती है, जैसे राजपत्र, समाचार-पत्र, कूटनीतिक सन्देश, वैधानिक निर्णय, दैनन्दिनी, तिथि-विवरण, भूमि-अनुदान, राजकीय और निजी पत्र-व्यवहार, सैनिक नियमोपनियम, आय-व्यय पत्र और लेखापत्र। इन समस्त विवरणों और पत्रों

की विशालता का इसी से अनुमान हो सकता है कि ये एक लाख से भी अधिक मुद्रित पृष्ठों में हैं। यह अकेले महाराष्ट्र की गौरवशील विरासत है।

मराठों का सर्वप्रथम उल्लेखनीय इतिहास सन् १८२६ में कैप्टिन जेम्स ग्राण्ट डफ ने तीन खण्डों में प्रकाशित किया था। उसके बाद बहुत-सी मौलिक सामग्री प्रकाश में आ चुकी है, जिसकी जानकारी उसको न थी। वर्तमान शताब्दी में हमारे देश ने ऐतिहासिक अनुसन्धान में असाधारण उन्नति की है, जिसका प्रभाव यह हुआ है कि ऐतिहासिक निरूपण में ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया है। इसके अतिरिक्त प्रभावशाली परिवर्तनों द्वारा नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो नये मानसिक मापदण्ड प्रस्तुत करते हैं। दूसरे क्षेत्रों के समान इस क्षेत्र में भी अनुसन्धान और समालोचना सम्बन्धी पर्याप्त कार्य हुआ है, इससे भी नवीन दृष्टिकोण बनने में सहायता मिली है। गेटे ने उचित ही लिखा है, "समय-समय पर इतिहास का पुनर्लेखन आवश्यक है, इसीलिए नहीं कि अनेक नवीन घटनाओं का पता चला है, किन्तु इसलिए कि नये पक्ष सामने आ गये हैं; क्योंकि एक विशिष्ट युग की प्रगति में भागीदार व्यक्ति ऐसे स्थल पर पहुँच गया है, जहाँ से भूतकाल का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन नवीन ढंग से हो सकता है।"

इस कार्य को अपने हाथ में लेने का दूसरा सबल औचित्य प्रोफेसर गोल्डविन स्मिथ के शब्दों में सबसे अच्छा प्रकट किया जा सकता है, "प्रत्येक राष्ट्र अपना इतिहास स्वयं ही उत्तम रूप से लिख सकता है। वह अपनी भूमि, अपनी संस्थाओं, अपनी घटनाओं के पारस्परिक महत्व और अपनी महान् विभूतियों के सम्बन्ध में सबसे अधिक ज्ञान रखता है। प्रत्येक राष्ट्र का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण होता है, अपनी पूर्व-धारणाएँ, अपना आत्म-प्रेम होता है—इन्हें दूसरों के निष्पक्ष तथा विरोधी विचारों द्वारा भी सही करने की आवश्यकता होती है।"

अति उग्र राष्ट्रीय अभिमान के कारण अब तक हमारे आधुनिक मराठा इतिहासकारों ने अँग्रेजी भाषा का उपयोग नहीं किया। यही ऐसा माध्यम है जो भारत के सभी भागों में प्रचलित है और इसी के द्वारा उनके शोध-कार्यों की जानकारी साधारणतया सभ्य संसार को हो सकती है। इस मनोवृत्ति के ज्वलन्त उदाहरण महाराष्ट्र में इतिहास विद्या के आजीवन उपासक महान् शोधकर्ता स्वर्गीय विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े थे। यदि उन्होंने तथा उनके अनुगामी अन्य कार्यकर्ताओं ने अपनी शोध और अनुसन्धान का प्रकाशन एकमात्र मराठी में न कर अँग्रेजी में किया होता तो वे समस्त भारत में इतिहास के

विद्यार्थियों के हितार्थ उपलब्ध हो सकतीं और उस अवस्था में हमारे भारतीय विश्वविद्यालयों में मराठा इतिहास उच्च अध्ययन और समीक्षा के लिए लाभकारी विषय बन गया होता और इस प्रकार इस विषय के हमारे ज्ञान में वृद्धि के कार्य को इससे बड़ा बल मिलता। विविध ऐतिहासिक विषयों पर राजवाड़े के विद्वत्तापूर्ण निबन्ध, धर्म, व्याकरण और भाषा-विज्ञान सम्बन्धी समस्याओं पर उनके ज्ञानवर्धक लेख तथा पूना इतिहास संशोधक मण्डल के अनुसन्धान भारत के समस्त राज्यों के लिए और वस्तुतः शेष मराठीतर जगत् के लिए दुर्लभ बने हुए हैं।

चालीस वर्ष पूर्व मैंने मराठा इतिहास का अपना अध्ययन प्रारम्भ किया था। अपने उस कार्य के प्रतिफल-स्वरूप मैंने मराठी भाषा में "मराठी रियासत" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया, जिसके ९ खण्ड हैं। उस ग्रन्थ में मैंने प्रयास किया कि मैं इस भाषा में इधर-उधर बिखरी हुई, बेतरतीब और बिना तारीखों की (जो सूचीबद्ध भी न थी) वृहद् ऐतिहासिक सामग्री और मतों को एकत्रित कर दूँ और दूसरी भाषाओं में उपलब्ध सामग्री के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके आधुनिक मराठा राज्य के उत्थान और पतन का एक सुसम्बद्ध आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करूँ। राजवाड़े के ग्रन्थ के समान मेरा ग्रन्थ भी मराठी से अपरिचित जगत् के लिए अज्ञात ही रहा। प्रस्तुत "मराठों का नवीन इतिहास" (तीन खण्डों में) के द्वारा अँग्रेजी भाषा में मराठा इतिहास का नवीनतम और पूर्ण निरूपण करने का प्रथम प्रयास किया गया है। इसमें नवीन खोजों का भी समावेश है। यह मेरे 'मराठी रियासत' ग्रन्थ का अनुवाद नहीं है और न मैं यही दावा करता हूँ कि यह आदर्श ग्रन्थ है। गिबन के समान किसी का ज्ञानोदधि मस्तिष्क हो तब तो दूसरी बात है, अन्यथा किसी एक व्यक्ति के तो बस के बाहर की बात है कि वह अकेला ही इस विषय का कार्य पूरा कर ले। इसके लिए एक विद्वन्मण्डली के सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता है। इस प्रकार के आदर्श संयोग की आशा कठिन ही है, अतः पुस्तक की त्रुटियों को अच्छी तरह जानते हुए भी जनता की सेवा में इसे प्रस्तुत कर रहा हूँ। यदि इस पुस्तक के द्वारा विद्वानों के महान् लोकतन्त्र के किसी कोने में आगे अध्ययन और विचार का भाव उत्पन्न हुआ तो मुझे प्रसन्नता होगी। मुझे इस बात से और अधिक प्रसन्नता होगी यदि मेरी पुस्तक पर दृष्टि डालकर कोई सुयोग्य विद्वान् इस विषय में और अधिक कार्य करने के इच्छुक हों तथा सामग्री के विशाल भण्डार का उपयोग कर चिर-अपेक्षित अधिकारपूर्ण मराठों के इतिहास की रचना कर सकें।

क्षमा-याचना के रूप में मैं एक शब्द ग्रौर कहूँगा। मराठों के शत्रुग्रों ग्रौर प्रतिद्वन्द्वियों ने उन्हें सदैव गलत ग्राँका है। मराठों के पतन के दौरान में ग्रौर उसके बाद भी, उन्हें बुरे से बुरा सिद्ध किया गया है, जैसे कि उनमें एक भी ग्रच्छाई थी ही नहीं। विदेशी विजय की पहली चकाचौंध के कारण सर्वसाधारण के मस्तिष्क में यह बात ग्रौर जम कर बैठ गई। मराठा राज्य का ग्रन्त हुए एक शताब्दी से भी ग्रधिक समय व्यतीत हो गया है। यह पर्याप्त दीर्घ समय है जिस ग्रवधि में राग-द्वेष की भावनाएँ शान्त हो जाएँ ग्रौर हम एक निष्पक्ष एवं युक्तिसंगत निर्णय में समर्थ हो सकें तथा उस जाति के गुण-दोषों का वास्तविक निरूपण कर सकें। एक मराठा लेखक के लिए ग्रब भी यह असाध्य कार्य है कि वह ग्रपनी जाति के इतिहास को उन्हीं रंगों में चित्रित कर सके जिनसे वास्तविक तथ्य प्रकट हो जाएँ और पक्षपात की झलक न ग्राए। इस वृत्तान्त में मेरी यही कोशिश है कि मराठा जाति की "कैफियत" बयान कर दूँ और उसे निष्पक्ष जनता के सम्मुख रख दूँ। इस वर्णन की सामग्री उन्हीं महान् विभूतियों के शब्दों से निर्मित है जो हमारे उत्थान ग्रौर पतन की दो शताब्दियों के दौरान में ऐतिहासिक रंगमंच पर छाये रहे।

इस बात का सजग प्रयास रहा है कि वृत्तान्त के साथ-साथ मूल ग्रन्थों के पर्याप्त उद्धरण प्रस्तुत किये जाएँ। मराठी भाषा के लेखों के सार से पाठकों को परिचित कराने का एक यही मार्ग उपयुक्त लगा। यथासम्भव स्रोतों का हवाला पाद-टिप्पणियों में दे दिया गया है। यद्यपि इसे सभी मानेंगे कि सामग्री इतनी विविध ग्रौर विस्तृत है कि हर जगह ग्रावश्यक ग्रध्याय और पद्य को प्रस्तुत करना सम्भव नहीं था। परिपूरक प्रयास के रूप में पाठक मेरी "Main Currents of Maratha History" (मराठा इतिहास की मुख्य धाराएँ) पढ़ें, इसका प्रकाशन हो चुका है। इसमें कुछ प्रमुख ग्रौर विवादास्पद प्रश्नों का निरूपण किया गया है जो मराठा जाति के भूतकालीन जीवन से सम्बन्धित हैं।

मैं उन ग्रनेक विद्वानों ग्रौर प्रकाशकों का ग्राभारी हूँ जिनकी मौलिक सामग्री के ग्राधार पर इस ग्रन्थ की रचना हुई है। मेरे विद्वान् मित्र सर यदुनाथ सरकार ने पुस्तक की पाण्डुलिपि का सधैर्य पुनरीक्षण किया, उनका आभार मैं कहाँ तक मानूँ। उनके लिए यह प्रेम का श्रम था, किन्तु उसका मूल्य वही लोग ग्राँक सकते हैं जो उनके असाधारण पाण्डित्य एवं उनके दुर्लभ नीर-क्षीर विवेक से परिचित हैं। समान रूप से मैं डा० वी० जी० दिघे का

आभारी हूँ जो गत १७ वर्षों से ऐतिहासिक कार्य में मेरे सतत साथी और सहयोगी रहे हैं। मैं इस कठिन कार्य को उनकी निःस्वार्थ सहायता के बिना कदापि पूरा नहीं कर सकता था। स्व० बड़ौदा-नरेश सयाजी राव गायकवाड़ से मुझे सब से पहले इस कार्य की प्रेरणा मिली, उनकी पुण्य स्मृति में मैं इस ग्रन्थ को अर्पित कर रहा हूँ। उनके प्रपौत्र महाराजा प्रतापसिंहराव मेरे ऐतिहासिक श्रम में उतनी ही दिलचस्पी रखते हैं।

इस समय देश में परिस्थिति बड़ी विकट है, जिसके कारण इस ग्रन्थ के प्रकाशन में विलम्ब ही नहीं हुआ, अपितु हम अच्छी तरह नक्शों, चित्रों और अध्ययन के लिए आवश्यक चीजों का पूरी तरह समावेश करने की अपनी इच्छा को पूरी न कर सके—इनके लिये मुझे और प्रकाशक दोनों को अत्यन्त खेद है। इस कमी को आगामी खण्डों में पूरा करने की कोशिश करेंगे।

कामशेट
जि० पूना, ३१ अक्टूबर, १९४६

गो० स० सरदेसाई

———

संशोधित संस्करण के प्रति

प्रथम संस्करण की प्रतियाँ समाप्त हो जाने के कारण विज्ञ-पाठकों के सम्मुख पुस्तक का संशोधित रूप प्रस्तुत है। इस वार प्रथम संस्करण की त्रुटियों एवं अशुद्धियों को ठीक कर पुस्तक को आद्योपान्त विशिष्ट अध्ययन के योग्य बना दिया गया है।

कामशेट
२८ अक्टूबर, १९५६

गो० स० सरदेसाई

विषय-सूची

अध्याय — पृष्ठ-संख्या

अध्याय　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ-संख्या

तिथिक्रम

अध्याय १

[अधिकांश तिथियाँ निकटतम ही दी गई हैं]

७३ ई० पू०–२१८ ई०	सातवाहनों का महाराष्ट्र पर राज्य। भाजा, कार्ला तथा अन्य गुफाओं की खुदाई।
५५०–७५३	प्रारम्भिक चालुक्य वंश।
६०८–६४२	चालुक्य शासक सत्याश्रय पुलकेशी।
६३४	महाराष्ट्र देश का अधिकृत रूप से स्वरूप निश्चित।
७५०–९७५	राष्ट्रकूट शासन।
८००–१०००	प्राचीन मराठी लेखक।
८८४–९५९	महाराष्ट्री का महान् कवि राजशेखर।
९७५–११८९	उत्तर-चालुक्य।
११८७–१२९४	यादवों का राजवंश।
११५३–१२७६	मानभाव सम्प्रदाय का संस्थापक चक्रधर।
१२७४	चक्रधर और हेमाद्रि की मृत्यु।
१२९०	सन्त ज्ञानेश्वर के महान् ग्रन्थ की रचना।
१३१०	मुसलमानों द्वारा भारतीय प्रायद्वीप की विजय पूर्ण।
१३२३	मुहम्मद तुग़लक द्वारा वारंगल के प्रतापरुद्र को बन्दी किया जाना।
१३२५	मुहम्मद तुग़लक द्वारा देवगिरि को अपनी राजधानी बनाना।
१८ अप्रैल, १३३६	हरिहर का विजयनगर राज्य-सिंहासन पर अभिषेक।
१३४७	अलाउद्दीन हसनशाह द्वारा बहमनी राज्य की स्थापना।
लगभग १३५०	सन्त नामदेव की प्रसिद्धि।
२२ जनवरी, १५६५	तालीकोट का युद्ध—विजयनगर का विनाश।
१५४८–१५९९	सन्त एकनाथ।
लगभग १६००	भोसलों की प्रख्याति।
१६०७–१६५०	सन्त तुकाराम।
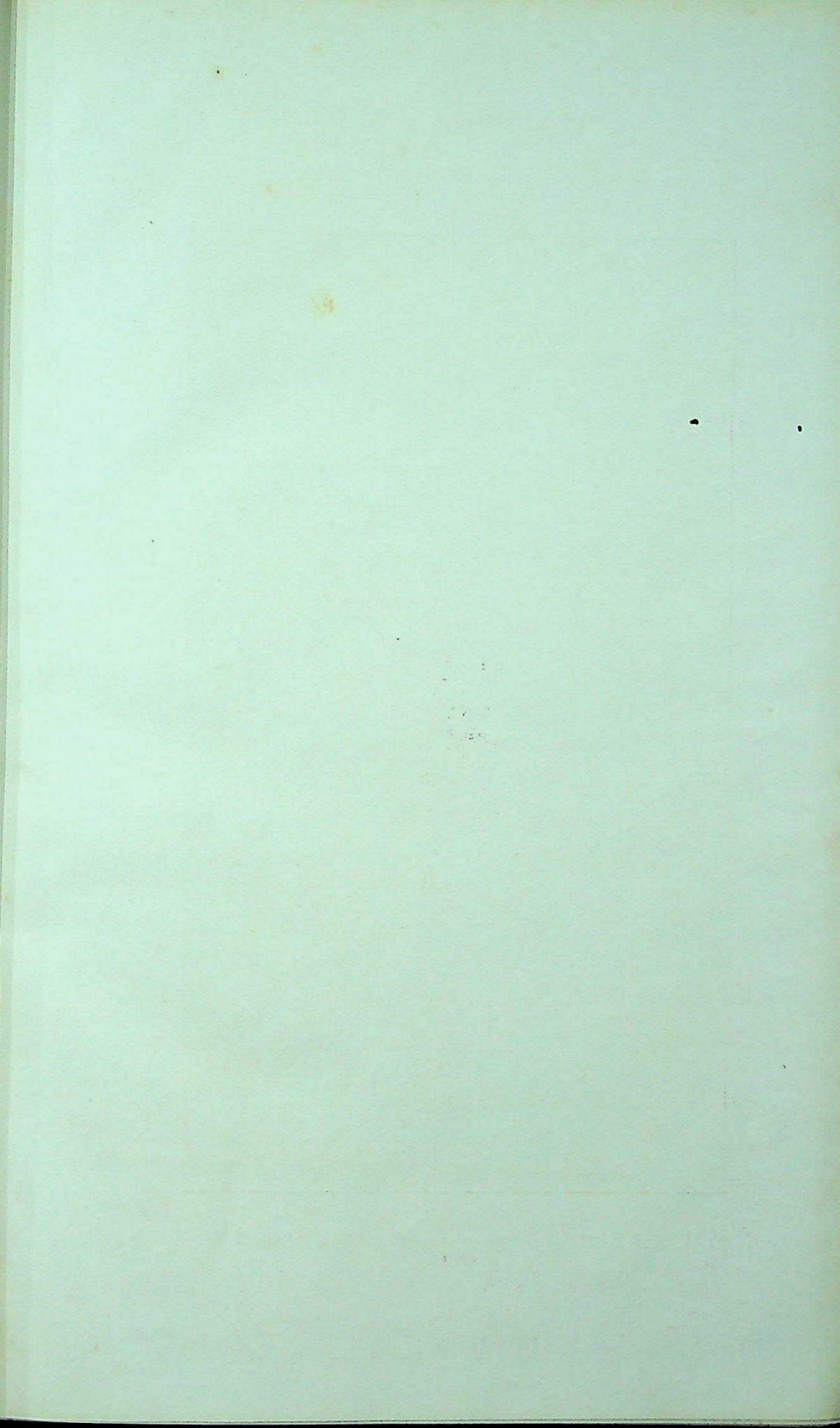
अध्याय १

आरम्भ काल

[१६०० ईसवी तक]

१. मराठों की उत्पत्ति ।
२. मराठी भाषा ।
३. महाराष्ट्र की राजनीतिक पृष्ठभूमि ।
४. मानभाव सम्प्रदाय का उदय ।
५. मानभाव साहित्य ।
६. चक्रधर और हेमाद्रि की मृत्यु ।
७. मुसलमानों के विरुद्ध सफल विद्रोह ।
८. महाराष्ट्र के सन्त और ग्रन्थकार ।
९. मराठा जाति की विशेषताएँ ।
१०. वर्तमान मराठे ।
११. महाराष्ट्र में नवजीवन ।

१. मराठों की उत्पत्ति—पिछली जनगणना के अनुसार मराठी-भाषी क्षेत्र की जनसंख्या ढाई करोड़ है और उसमें से अधिकांश देश के उस भाग में रहती है जो महाराष्ट्र के प्राचीन नाम से प्रसिद्ध है, अर्थात् अपनी वीरता और शक्ति के लिये प्राचीन काल से विख्यात राठों, राठिकों अथवा राष्ट्रिकों का महान् राष्ट्र । ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के साहित्य में महाराष्ट्र, महाराष्ट्रिक और महाराष्ट्री (अन्तिम एक प्राकृत भाषा का भी नाम है) शब्द अनेक स्थान पर मिलते हैं । कार्ला की गुफा में और सातवाहन काल के अन्य शिलालेखों में महारठी (पुल्लिंग) और महारठिनी (स्त्रीलिंग) शब्द मिलते हैं । छठी शताब्दी का प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर महाराष्ट्र शब्द का प्रयोग करता है, जिसका अपभ्रंश समयान्तर में महराठा या मराठा हो गया । नवीं शताब्दी के संस्कृत-लेखक राजशेखर ने मरहट्टी शब्द का स्त्रीलिंग में प्रयोग किया है । भारत के बाद के समस्त साहित्य में यह शब्द भिन्न-भिन्न रूपों में मिलता है ।[1]

१ मराठा शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग मत स्थापित किये हैं ।

जैसा कि इसके सरल अर्थ से प्रकट है महाराष्ट्र उस मानव वंश से बना राष्ट्र या जाति है जो प्राचीन समय में सम्भवतया रट्ठा के नाम से प्रसिद्ध था। उनमें से कुछ महारट्ठा महान् रट्ठा कहे जाने लगे। जिस देश में वे निवास करते थे, उसका नाम भी उनके नाम पर महाराष्ट्र अर्थात् "महापुरुषों का देश" पड़ गया। उनकी भाषा भी पहले-पहल महाराष्ट्री कहलाई, जो प्राकृत की एक उपभाषा है और जिसका क्षेत्र आरम्भ में उससे उत्पन्न वर्तमान मराठी के क्षेत्र से अधिक व्यापक था। पश्चिम भारत का यह विस्तृत भू-भाग जिसको आजकल भी महाराष्ट्र कहते हैं, पश्चिम में अरब सागर से उत्तर में सतपुड़ा की पर्वतमाला तक फैला हुआ था और इसमें कोंकरण, खानदेश और बरार के आधुनिक प्रदेश, मध्य प्रान्त का कुछ भाग, ब्रिटिश दक्खिन और निजाम के राज्य का लगभग एक-तिहाई भाग सम्मिलित था। यह समस्त प्रदेश मराठवाड़ा के नाम से प्रसिद्ध था।

नर्मदा नदी से दक्षिरण के प्रदेश को आर्य अधिवासियों ने दक्षिरणापथ नाम दिया। इसमें दरण्डकाररण्य सम्मिलित था। इसका यह नाम उस विस्तृत वन के काररण पड़ा, जो ताप्ती से गोदावरी तक दक्षिरण की ओर फैला हुआ था। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में महाराष्ट्र के तीन अलग-अलग भाग थे—प्रथम विदर्भ या बरार; द्वितीय, अश्मक या गोदावरी की तलेहटी (बाद में यह स्यून देश के नाम से प्रसिद्ध हुई) और तृतीय, कुन्तल अर्थात् कृष्णा नदी की घाटी। इसमें पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश भी सम्मिलित था, जिसको अपरान्त या कोंकरण कहते थे, जो उत्तर में दमन से दक्षिरण में गोआ व कार-वार तक फैला हुआ था। इस प्रकार नर्मदा और ऊपरी कृष्णा के बीच के प्रदेश विशेष रूप से मुख्य महाराष्ट्र हैं, जिसमें पहले प्राकृत महाराष्ट्री बोली जाती थी और बाद में उससे उत्पन्न मराठी बोली जाने लगी। यह भाषा और भूगोल

की दृष्टि से एक गठित समाङ्ग देश है, यद्यपि आजकल अलग-अलग क्षेत्रों में बँटा हुआ है ।[२]

इस प्रकार मुख्य महाराष्ट्र जहाँ मराठी भाषा बोली जाती है, पूरी तरह से एक समकोण त्रिभुज के रूप में है, जिसकी एक भुजा दमन से कारबार तक के पश्चिमी समुद्र-तट से बनती है और दूसरी भुजा ताप्ती नदी के साथ-साथ दमन से सीधी पूर्व की ओर नागपुर और गोंदिया तक जाती है । इस समकोण त्रिभुज की सबसे बड़ी रेखा एक अनियत रेखा होगी जो गोंदिया को कारबार से मिलाती है और अपने मार्ग में बेलगाम, शोलापुर और बीदर के नगरों को स्पर्श करती है । उत्तर खानदेश का प्रदेश जो ताप्ती और नर्मदा नदियों के बीच में है, वास्तव में महाराष्ट्रीय प्रकृति विशेष का सीमा-प्रदेश है । मराठा लोगों के दैनिक धार्मिक कृत्यों में महाराष्ट्र का यह सीमा-स्थान आज भी स्मरण किया जाता है ।[३]

इस भूमि के लोग प्राचीन समय में रट्ठा, महारट्ठा व राष्ट्रकूट कहे जाते थे, जिन्होंने बहुत पहले ही धन, वीरता और राजनीतिक शक्ति के कारण उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त करली थी । जुन्नार के समीप नानेघाट की गुफाओं में आज तक एक महारट्ठा सैनिक की मूर्ति विद्यमान है । ये मूर्तियाँ ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के लगभग आन्ध्र शासकों द्वारा उत्कीर्ण कराई गई थीं । वर्तमान मराठी बोली

---

२ सुप्रसिद्ध चालुक्य सम्राट् सत्याश्रय पुलकेशी के ६३४ ई० (५५६ शाके) के ऐहोल लेख में महाराष्ट्र का विस्तार सही-सही बताया गया है । इसमें कहा गया है कि महाराष्ट्र के तीन भाग हैं, जिनमें कुल मिलाकर ९९००० गाँव हैं । तीन भाग सम्भवतः ये हैं—विदर्भ (इसमें अश्मक सम्मिलित है), कुन्तल और अपरान्त । "अगमदधिपतित्वं यो महाराष्ट्रकाणां नवनवतिसहस्रग्रामभाजां त्रयाणाम् ।"

इस लेख के बाद के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे महाराष्ट्र के इस विवरण की पुष्टि होती है । किन्तु ग्रामों की निश्चित संख्या का इसमें उल्लेख और इसकी निश्चित सीमाएँ अब भी विवादास्पद हैं ।

३ "गोदावर्याः उत्तरे" या "दक्षिणे तीरे" या "कृष्णावेण्योः उत्तरे तीरे"..... .... ।

महाराष्ट्र की साहित्यिक प्राकृत महाराष्ट्री भाषा से सीधी उत्पन्न हुई है।

ये प्राचीन रट्ठे कई उपजातियों या परिवारों में विभक्त हो गये और उन्हीं के नाम से विख्यात हुए, जैसे सातवाहन, भोज, मौर्य, कदम्ब, शिलाहर, यादव, चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि। इनमें से कुछ ने इस प्रदेश में अपने शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिये। इन्होंने साहित्य और ललित-कलाओं को आश्रय दिया और इनमें विशेष योग्यता वाले अनेक महान् शासक उत्पन्न हुए। भाजा, कार्ला, एलौरा, अजन्ता और एलिफैण्टा की गुफाओं और मन्दिरों एवं प्रतिमाओं की अद्‌भुत कारीगरी और वैभव से महाराष्ट्र देश भरा-पूरा है, उनकी सांस्कृतिक निष्पत्ति इस दिन तक चिरस्थायी है। ये रट्‌ठे या महारट्‌ठे अवश्य-मेव परिश्रमशील रहे होंगे, जिनके चरित्र में उत्तर के आर्य अधि-वासियों के उत्तमोत्तम विशेष गुण और पश्चिम भारत के मूल निवासियों के उत्कृष्ट लक्षणों का सम्मिलन हो गया था।

२. **मराठी भाषा**—आर्य अधिवासी इस वृहत् भारतीय महा-द्वीप में अपने प्रवेश के साथ अपनी प्राचीन वैदिक संस्कृति और अपनी परिमार्जित संस्कृत भाषा लाये, जिसने इस देश के विभिन्न अरण्य भागों में बोली जाने वाली विभाषाओं को परिष्कृत कर दिया। यह स्थानीय बोलियाँ एक समान 'प्राकृत' नाम से कही जाने लगीं, जिसका अर्थ वे स्वाभाविक और अकृत्रिम बोलियाँ हैं जिनका जनसाधारण प्रयोग करते थे, और जो विद्वान्, पुरोहितों, कवियों और लेखकों के ग्रन्थों के उत्कृष्ट माध्यम संस्कृत से भिन्न थीं। इन प्राकृत बोलियों का, अपने प्रादेशिक गुण या धार्मिक महत्व के अनुसार, पाँच या छः मुख्य विभागों में वर्गीकरण किया गया। प्रत्येक का अपना साहित्य और व्याकरण था। ये विभाग थे—महाराष्ट्री, पाली या मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी और पैशाची। दक्षिणी प्रायद्वीप में बोली जाने वाली तामिल तथा अन्य मूल द्रविड़ भाषाएँ इनसे भिन्न थीं। इन समस्त मध्यकालीन भाषाओं में महाराष्ट्री सर्वाधिक उत्कृष्ट थी और एक समय में उत्तर

की ओर मालवा और राजस्थान की सीमाओं से दक्षिण में कृष्णा और तुंगभद्रा के तटों तक जन-साधारण की बोली और साहित्य में प्रायः इसी का विस्तृत रूप में व्यवहार होता था। बौद्ध साहित्य अधिकांश पाली में है और जैन साहित्य अर्धमागधी में। मथुरा के इर्द-गिर्द शौरसेनों के देश में शौरसेनी का प्रचार था और पैशाची का अधिकतर उत्तर-पश्चिम में अर्थात् पश्चिम पंजाब में और उसके आगे था। कालिदास के समान अन्य प्राचीन लेखकों ने अपने नाटकों में इन सब प्राकृत भाषाओं का उपयोग किया है। इन नाटकों में उच्च श्रेणी के पात्र संस्कृत बोलते हैं और महिलाएँ, नौकर और नीची श्रेणी के लोग प्राकृत बोलते हैं। यह स्पष्ट है कि ५०० ई० पू० के लगभग संस्कृत बोलचाल की भाषा के रूप में व्यवहृत नहीं होती थी और प्राकृत ने जन-साधारण की बोलचाल में अपना स्थान जमा लिया था। इन प्राकृतों में निस्सन्देह सर्वाधिक महत्वपूर्ण महाराष्ट्री थी, जिसमें विस्तृत साहित्य विद्यमान है। इसमें अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं, जैसे "सप्तशती", "सेतुबन्ध", "गौडवहो" और "कर्पूरमंजरी" आदि। इनमें से प्रथम अर्थात् सप्तशती ७०० श्लोकों का प्रसिद्ध संग्रह-ग्रन्थ है, जिसका सम्पादन विभिन्न लेखकों के ग्रन्थों से सातवाहन राजवंश के राजा हाल के द्वारा किया गया। यह राजा ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी में राज्य करता था। महाराष्ट्र के पर्वतों, नदियों और नगरों के नाम इस सप्तशती में हैं, जिनमें से बहुत से इस समय भी वर्तमान हैं। विभिन्न प्राकृतों के लिये नियमों का निर्देश करते हुए वैयाकरण अपने उदाहरणों के लिये मुख्यतया महाराष्ट्री का आश्रय लेते हैं। महाराष्ट्री का अपभ्रंश मरहटी हुआ और पीछे से इसका नाम मराठी पड़ा। महाराष्ट्र के विद्वान् कवि राजशेखर ने, जिसका जीवन-काल ८८४ ई० से ९५९ ई० तक माना जाता है, कई संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थ लिखे हैं--"रामायण", "बाल भारत", "विद्ध-शाल-भञ्जिका", "कर्पूरमंजरी" आदि। उसके प्राकृत ग्रन्थ, शैली की दृष्टि से, लुप्त होती हुई महाराष्ट्री तथा उदीयमान मराठी की सीमा के द्योतक हैं।

यदि प्राचीन समय से भारत के भाषा-विकास का अनुसरण किया जाये तो मोटे रूप से कहा जा सकता है कि ५०० ई० पू० तक आदिम आर्यों की बोलचाल की भाषा वैदिक संस्कृत थी; महाराष्ट्री और अन्य प्राकृतें ५०० ई० पू० से ५०० ई० तक, लगभग एक हजार वर्ष तक, प्रचलित रहीं। इसके बाद मराठी और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं ने अपना रूप अपनाना प्रारम्भ किया और करीब ८००–१००० ई० के बाद मराठी राजदरबार और विद्वान् लेखकों की भाषा हो गई। भगवद्गीता पर मराठी के प्रथम महान् लेखक ज्ञानेश्वर की "भावार्थ दीपिका" नामक टीका मराठी भाषा में सबसे पहला ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ १२९० ई० में देवगिरि के राजा रामचन्द्र यादव के राज्यकाल में पूर्ण हुआ—मुस्लिम-विजेता अलाउद्दीन खिलजी के देवगिरि पर आक्रमण और राज्य के सर्वनाश के केवल चार वर्ष पूर्व ज्ञानेश्वर ने अपने ग्रन्थ को इन शब्दों के साथ समाप्त किया—"गीता देवी को मैंने इस प्रकार ग्रामीण वेश-भूषा से सुसज्जित किया है।"[४] प्राकृतों और मराठी के उपयोग के साथ-साथ उत्कृष्टतम साहित्यिक भाषा के रूप में प्राचीन संस्कृत के व्यवहार का त्याग नहीं किया गया। विद्वान् लेखकों ने संस्कृत में लिखना सदैव श्रेष्ठ समझा।

पाठकों को यह जानने की उत्सुकता हो सकती है कि मराठी में प्राचीनतम प्राप्त रचनाएँ क्या हैं। यह आश्चर्य की बात है कि मराठी में प्राचीनतम लेख[५] मैसूर राज्य से प्राप्त हुआ है, जो सन् ९८३ ई० का है। प्राचीन मराठी में कुछ शिलालेख भिन्न-भिन्न स्थानों से मिले हैं—जैसे पलसदेव (११५७ ई०), तेर (११८४ ई०), परेल (११८० ई०), एक खानदेश में पाटन से (१२०६ ई०) और

---

४ शके बाराशें बारोत्तरें। तैं टीका केली ज्ञानेश्वरें।
केलें ज्ञानदेवें गीते। देशीकार लेणें।

५ "श्री चामुण्डराएं करवियले"—"चामुण्डराय ने बनवाया" इस आशय का लेखांकन मैसूर के उत्तर-पश्चिम में करीब ६० मील पर श्रवण-बेल-गोला में गोमतेश्वर की मूर्ति के बायें पैर के पास है।

एक पण्ढरपुर में (१२७३ ई०)। संस्कृत से पुरानी मराठी में अनूदित "पञ्चतन्त्र" के कुछ फुटकर पृष्ठ तथा "रत्नमाला" नामक श्रीपति का एक ज्योतिष-ग्रन्थ मराठी की प्राचीनतम रचनाएँ हैं। ज्ञानेश्वर से लगभग १०० वर्ष पूर्व, मुकुन्दराज नामक लेखक ने अपना ग्रन्थ "विवेक सिन्धु" मराठी में लिखा, यद्यपि इस ग्रन्थ की वर्तमान हस्त-लिखित प्रतियों में इसका आधुनिक रूपान्तर मिलता है। पुरानी मराठी के अध्ययन के लिए तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण का महानुभाव साहित्य भी प्राप्य है। यद्यपि हम यह मानते हैं कि आधुनिक मराठी ने १२०० ई० के लगभग अपना निश्चित रूप अपनाना आरम्भ किया, किन्तु इस समय उपलब्ध लेखन-शैली और स्वरूप बहुत पीछे के समय के हैं।

ज्ञानदेव को यह गर्व था कि उन्होंने संस्कृत भाषा के सर्वोत्तम विचारों को जनप्रिय मराठी में अभिव्यक्त किया है। मराठी पर उन्हें बड़ा अभिमान है और उनका कथन है कि मराठी मँजी हुई संस्कृत भाषा से किसी प्रकार कम नहीं है। उस समय मराठी भाषा और मराठी लोगों ने किस उच्च स्तर को प्राप्त कर लिया था, इसका अनुमान ज्ञानदेव के निम्न शब्दों से किया जा सकता है। वे कहते हैं—"वहाँ पर यदुवंश विलास सकल कला निवास न्यायपूर्वक शासनकर्त्ता राजा श्री रामचन्द्र का राज्य है।"[६]

ज्ञानेश्वर के समय से सन्तों और कवियों की अविच्छिन्न परम्परा

---

६ तेथ यदुवंश विलास। जो सकल कला निवास।
न्यायातें पोषी क्षितीश। श्रीरामचन्द्र ॥

महान् लेखक ने राजा रामदेव के प्रति जो सद्भाव व्यक्त किये हैं उन्हें सही रूप में ऐतिहासिक वक्तव्य मानना ठीक नहीं। तत्कालीन शासक के प्रति ये कवि के औपचारिक उद्गार थे।

ज्ञानेश्वर ने मराठी के सम्बन्ध में कहा है—

मूल ग्रन्थीचिया संस्कृता—। वरी मराठी नीट पाहतां।
अभिप्राय मातिलिया चिता। कवण भूमि ते न चोजवे ॥
माझा मर्‌हाठाचि बोल कौतुके। परी अमृतातें ही पैंजा जिंके।
ऐसीं अक्षरेंचि रसिकें। मेलवीन ॥

शीघ्रता से प्रकट होने लगी। इन्होंने महान् मराठा वीर शिवाजी के आगमन तक मराठी भाषा की साहित्यिक राशि और वैभव को समृद्ध कर दिया। जाति का इस प्रकार उसके देश और उसकी भाषा से अभेद्य सम्बन्ध होता है।

३. **महाराष्ट्र की राजनीतिक पृष्ठभूमि**—इस महाराष्ट्र भूमि की प्राचीन समय में शासन-व्यवस्था कैसी थी ? इस सम्बन्ध में जो सर्वप्रथम झलक मिलती है उसमें चन्द्रगुप्त मौर्य का उल्लेख है। यह सिकन्दर महान् का समकालीन वीर भारतीय योद्धा था। इसने अपने पराक्रम और शौर्य से महाराष्ट्र पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया था। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने अपने पितामह का अनुसरण किया और अपने साम्राज्य का विस्तार पूर्व और दक्षिण की दिशाओं में किया। समस्त भारतीय महाद्वीप में उसके अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं। ये शिलालेख इस महान् शासक की अपनी प्रजा के आध्यात्मिक अभ्युदय के प्रति लगाव और भगवान् बुद्ध की शिक्षा के प्रसार निमित्त उसके उत्साह को सिद्ध करते हैं। इसके बाद ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में लगभग ३०० वर्ष तक (ई० पू० ७३ से ई० २१८ तक) महाराष्ट्र एक राजवंश के शासन में रहा, जिसको आन्ध्र या सातवाहन कहते हैं। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान या पैठन थी, जो गोदावरी के तट पर स्थित थी। उस समय यह विद्या, संस्कृति और वाणिज्य-व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र थी। इन सातवाहन शासकों की विजयों और पराक्रम का वर्णन कुछ पुराण उत्साहपूर्वक करते हैं। वर्तमान शक सम्वत् उन्हीं के नाम पर है। सातवाहनों ने उच्चकोटि की सभ्यता की स्थापना की। नासिक, कार्ला, भाजा और कन्हेरी की चमत्कारिक गुफाओं और इन शासकों के अनेक सिक्कों और शिलालेखों से यह सिद्ध है।

प्राचीन रट्ठों के कई उपवंशों ने जिनमें राष्ट्रकूट, बाण आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं, सातवाहनों के अधीन भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रभाव जमा कर लिया था, यद्यपि उस समय वे इतने निर्बल थे

कि कोई संगठित राजनीतिक शक्ति संचित न कर सके। चौथी और पाँचवीं शताब्दियों में उत्तर भारत के गुप्त सम्राट् दक्षिण के शासकों पर यदाकदा अपना प्रभाव स्थापित कर लेते थे, जैसे वाकाटकों, कलचुरियों और कदम्बों पर, परन्तु इसमें सन्देह है कि गुप्त राजाओं ने वास्तव में दक्षिण प्रदेशों के किसी भाग पर शासन किया। हाँ, छठी शताब्दी के आरम्भ में चालुक्यों के एक नये राजवंश का यहाँ आविर्भाव हुआ। डेढ़ शताब्दी से अधिक काल में इस वंश में लगातार अनेक बुद्धिमान् और शक्तिशाली शासक हुए। बदामी इनकी राजधानी थी, जो इस समय बीजापुर जिले में एक नगर है। इस चालुक्य राजवंश के सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक सत्याश्रय पुलकेशी[७] ने, जिसका शासन-काल ६०८-६४२ ई० है, सम्राट् हर्ष के आक्रमण को सफलतापूर्वक विफल कर दिया और नर्मदा-तट पर महाराष्ट्र की उत्तरी सीमा की दृढ़तापूर्वक रक्षा की। चीनी-यात्री युवानच्वांग पुलकेशी के दरबार में उपस्थित हुआ था और उसने उस शासक की नीति और सफलताओं तथा मराठी जनता का भी विशद वर्णन किया है। चालुक्यों का इष्टदेव शिव था। उन्होंने भव्य उपाधियाँ धारण कीं जो उनकी शक्ति और प्रसिद्धि की परिचायक हैं।

चालुक्यों के उत्तराधिकारी राष्ट्रकूट हुए। यह दूसरा शक्तिशाली राजवंश था। इसने महाराष्ट्र पर २२५ वर्ष, ७५० से ९७५ ई० तक, राज्य किया। किसी दक्षिणी हिन्दू राजवंश का शासन-काल इससे लम्बा नहीं हुआ। दक्षिण के इतिहास में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण समय है, जब कर्नाटक और महाराष्ट्र दोनों राजनीतिक रूप में सम्बद्ध हो गये। अधिकांश शासक सुयोग्य थे। १४ राजाओं के वंश में केवल तीन शासक ही अयोग्य सिद्ध हुए। इस भू-भाग में इन राष्ट्रकूट शासकों के अधीन जैन, हिन्दू और बौद्ध धर्म पूर्ण मैत्री भाव से एक साथ विद्यमान थे।

इस राजवंश का कृष्ण प्रथम महान् निर्माणकर्ता था जिसने

---

७ इसी अध्याय का दूसरा फुटनोट पृष्ठ ५ पर देखिए।

ठोस चट्टान में एलौरा का प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर खुदवाया। यह हिन्दू कला का शानदार नमूना है और वास्तव में संसार की एक आश्चर्यजनक वस्तु है। जन-साधारण की बोली में राष्ट्रकूट नाम राठौड़ हो गया। इस जातिगत नाम को बाद में जोधपुर राज्य के स्वाभिमानी शासकों ने अपना लिया। इस राजवंश की मुख्य राजधानी मान्यखेत (मालखेड़) थी और उपराजधानियाँ भिन्न-भिन्न समयों पर चन्द्रपुर (चन्दवड़), लट्टाट्टर (लातुर) आदि रहीं। राष्ट्रकूट शासकों ने बहुत चतुर और वीर होते हुए भी देश की नाविक प्रतिरक्षा की उपेक्षा की। इसमें पश्चिम के अरब इस काल में बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं।

एक बार फिर चालुक्यों ने राष्ट्रकूट-शक्ति को समाप्त कर दिया और इन्होंने महाराष्ट्र पर करीब २०० वर्ष तक, ९७५ से ११८९ ई० तक, शासन किया। इनकी राजधानियाँ बीदर के समीप कल्याणी और मान्यखेत रहीं। उत्तर-चालुक्यों में लगभग दस विशिष्ट योग्यता वाले तेजस्वी शासक हुए। इस राजवंश का महानतम शासक त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य षष्ठ है। उसने अपने नाम पर एक संवत् चलाया। उसका प्रधानमन्त्री "मिताक्षरा" का लेखक विज्ञानेश्वर हिन्दू धर्मशास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ शास्त्रज्ञ के रूप में आज भी स्मरणीय है।

उत्तरकालीन चालुक्यों के बाद महाराष्ट्र पर एक अन्य शक्तिशाली राजवंश—यादवों—का राज्य स्थापित हुआ। ये उत्तर भारत से आये थे और बहुत समय से विभिन्न स्थानों पर अपनी सत्ता और प्रभाव को स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। चालुक्यों से उन्होंने राज्यसत्ता छीन ली और १०० वर्षों से अधिक समय तक, ११८७ से १२९४ ई० तक, उन्होंने अपनी राजधानी प्रसिद्ध देवगिरि से शासन किया। बाद में मुसलमानों ने देवगिरि का नाम दौलताबाद कर दिया। चार उत्कृष्ट यादव शासकों—सिंघन, कृष्णदेव, महादेव और रामदेव—ने दक्षिण के इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त की। इन्होंने साहित्य और कला को आश्रय दिया, जिसके चिह्न आज भी भली-भाँति

दृष्टिगोचर होते हैं। महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य, सुयोग्य ग्रन्थकार और अनेक व्यावहारिक कलाओं का आविष्कर्ता यादव मन्त्री हेमाद्रि और हेमाद्रि का परम सहायक विद्वान् बोपदेव उन प्रसिद्ध व्यक्तियों में हैं, जिन्हें आज भी मराठे बड़े सम्मान के साथ याद करते हैं।

महाराष्ट्र के इतिहास में हेमाद्रि का महत्वपूर्ण स्थान है। वह अपने समय से कई बातों में बहुत आगे था। वह परम विद्वान् ही नहीं अपितु यादव शासकों का मन्त्री (श्री करणाधिप) भी था, जिसमें संगठन की महान् शक्ति और दीर्घदृष्टि थी, जिसका उपयोग यादव साम्राज्य की जनता की बहुमुखी उन्नति के हितार्थ हुआ। बहुत से विद्वानों की सहायता लेकर उसने धार्मिक रीतियों का संग्रह "चतुर्वर्ग चिन्तामणि" नाम से प्रकाशित कर प्रचलित करवा दिया। उसने चिकित्सा विषयक ग्रन्थ लिखे और निजी तथा राजकीय कार्य में शिष्टाचार के नियम एवं निजी और सरकारी पत्र-व्यवहार में सिरनामे के रूप निर्धारित किये। उसने अक्षरों को मिलाकर देवनागरी लिपि का रूप बदल दिया ताकि वह शीघ्र लेखन के अनुकूल बन जाये। यह शैली मोड़ी नाम से प्रसिद्ध है और महाराष्ट्र में इसका बहुत दिनों से प्रचार है।[८] बिना सीमेण्ट और चूने के उपयोग के तराशे हुए पत्थरों को एक दूसरे के ऊपर जोड़कर घरों और मन्दिरों के निर्माण की विशेष कला का आविष्कार हेमाद्रि द्वारा ही हुआ। समस्त महाराष्ट्र में बड़े पैमाने पर यह पद्धति अपनाई गई। कहा जाता है कि हेमाद्रि ने ही सर्वप्रथम अधिक पैदावार वाले सस्ते खाद्यान्न के रूप में बाजरी का परिचय कराया था। अपने महान ग्रन्थ "चतुर्वर्ग चिन्तामणि" का विशद परिपूरक "यादव प्रशस्ति" नामक ग्रन्थ भी प्रकाशित किया, जिसमें उसने महादेव यादव तक के यादव शासकों के इतिहास को अमर कर दिया।

४. मानभाव सम्प्रदाय का उदय—उत्तर के समकालीन

---

८ इस लिपि में सबसे पुराना लेख-पत्र हेमाद्रि से अर्ध-शताब्दी बाद का प्राप्त हो गया है।

राज्यों की अपेक्षा २०० वर्ष अधिक तक महाराष्ट्र ने अपनी राजनीतिक स्वाधीनता को कायम रखा, यद्यपि राजवंश बदलते रहे। विदेशियों की विजय का स्वप्न में भी विचार न था, अतः इनके विरुद्ध कोई पूर्वोपाय करने की आवश्यकता न समझी गई। १००० ई० के लगभग मुसलमानों ने भारत के द्वार खटखटाने प्रारम्भ किये और बारहवीं शताब्दी के अन्त तक उन्होंने दिल्ली हस्तगत कर ली। इस प्रकार इस वृहत् देश के युद्धशील राजकुमारों के लिए एक नवीन राजनीतिक अनुभव का अवसर प्रस्तुत हुआ। दिल्ली से इस आघात को महाराष्ट्र तक पहुँचने में सौ वर्ष की आवश्यकता थी। तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में (लगभग १२७० और १२९५ ई० के बीच) जब ज्ञानेश्वर रामचन्द्र यादव का गुणानुवाद लेख-बद्ध कर रहे थे, अकस्मात् पतन का आरम्भ हुआ। इसकी व्याख्या आधुनिक ऐतिहासिक अनुसन्धान के आधार पर करना आवश्यक है। घोर अन्धकार में प्रकाश की छोटी सी रेखा शायद मानभाव सम्प्रदाय के उदय में और इसके द्वारा प्रस्तुत धर्मक्षेत्र के संघर्ष में मिल सकती है। इस मानभाव सम्प्रदाय ने उस समय के धर्म, समाज और राजनीति के क्षेत्र में क्या क्रान्ति उपस्थित करदी, इसे हमें देखना है।

संस्कृत के मूल शब्द "महानुभाव" का अर्थ है उच्च आदरणीयता। यह शब्द उसी का अपभ्रंश है। मानभाव सम्प्रदाय जो जयकृष्ण या अच्युत के नाम से भी प्रसिद्ध है, स्वतन्त्र विचारकों की एक महत्वपूर्ण संस्था है जो शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित परम्परागत वेदान्त-विचारधारावलम्बी धर्म से स्पष्ट भिन्न मत का प्रतिपादन करती है। वास्तव में, ग्यारहवीं शताब्दी से भारतीय धर्म और समाज में भारी उथल-पुथल पैदा हुई, जैसे कि पहले भी हो चुकी है। इसके कारण समयान्तर में परस्पर विरोधी सम्प्रदायों का उदय हुआ, जैसे वैष्णव, शैव, लिंगायत, नाथपन्थ और पण्ढरपुर का वर्करी सम्प्रदाय। तेरहवीं शताब्दी में गुजरात के भड़ौंच जिले से हरिपाल देव नामक विद्वान् नागर ब्राह्मण बरार में अमरावती के समीप रिद्धपुर में आकर बस गया। उसने एक विद्वान् सन्त गोविन्द प्रभु की प्रेरणा से प्रचलित

रूढ़िवादी मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह के सिद्धान्तों की दीक्षा आरम्भ करदी।

हरिपाल देव को उसके गुरू ने नया नाम चक्रधर दिया। उसने महाराष्ट्र कां भ्रमण किया और अपनी सत्यनिष्ठ वक्तृत्व कला और तर्क द्वारा अनेक शिष्य इर्द-गिर्द एकत्रित कर लिये। इनमें अधिकांश विभिन्न स्थानों के विद्वान् ब्राह्मण थे। उसने उपनिषदों और अन्य प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थों के उत्तम विचारों की व्याख्या की तथा अपने समय के हिन्दुओं के वास्तविक व्यवहार और यथार्थ आदर्शों के बीच असंगतियों का स्पष्टीकरण किया। जहाँ पर भी उसका पदार्पण हुआ, लोगों ने ईश्वर के अवतार के रूप में उसकी पूजा की। इस प्रकार एक नवीन सम्प्रदाय अस्तित्व में आया यद्यपि चक्रधर ने कभी यह घोषणा नहीं की कि वह एक नवीन धर्म का प्रचार कर रहा है। विश्वास किया जाता है कि वह एक शताब्दी से भी अधिक (११५३ से १२७६ ई० तक) जीवित रहा। यह लम्बा समय उसने उत्कट धर्म-प्रचार और अपने अनुगामियों पर आचरण और उपासना सम्बन्धी सूक्षातिसूक्ष्म बातों में कठोर अनुशासन लागू करने में व्यतीत किया। उसने अपने कार्य को महाराष्ट्र में ही सीमित न रखा बल्कि बाहर के प्रदेशों में भी भ्रमण किया, जिसका क्षेत्र मोटे रूप में दक्षिण में कृष्णा तट से उत्तर में सिन्धु तट तक है। धार्मिक आन्दोलनों के इतिहास में यह अद्‌भुत था। सिन्धु के आगे पेशावर और काबुल तक चक्रधर की सफलता का विस्तार हुआ, जहाँ उसके अनुयायी उसी भाषा में पवित्र ग्रन्थों का पठन-पाठन करते थे।

चक्रधर ने अपनी शिक्षाओं को कृष्ण कीं उपासना पर केन्द्रित किया। उसने शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित तत्कालीन अद्वैतवाद के विरोध में, जिसे यादव वंश के शासक और जन-साधारण सदियों से अपनाये हुए थे—द्वैतवाद पर बल दिया। जिन मुख्य विषयों में यह नवीन सिद्धान्त प्राचीन से भिन्न था, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—(१) वेद की पवित्रता को अन्तिम प्रमाण के रूप में चक्रधर स्वीकृत न करता था। (२) उसने जाति-पाँति के कृत्रिम

विभा न की निन्दा की । (३) अनेक देवी-देवताओं की पूजा और उनके रूपों और अवतारों की भी उसने निन्दा की। (४) उसने सभी रूपों और प्रकारों में अस्पृश्यता का तिरस्कार किया और प्रतिपादन किया कि सभी मनुष्य पवित्रता में एक समान हैं । उसने विशुद्ध शाकाहार प्रचलित कराया और शाक्तों व तान्त्रिकों के समान इन्द्रियों की आत्यन्तिक तृप्ति की अनुमति नहीं दी । मानभावों में दो अलग वर्ग हैं—गृहस्थ और संन्यासी । दूसरा वर्ग स्त्रियों को भी धार्मिक ब्रह्मचारियों का पद प्रदान करता है । प्रथम वर्ग का सामाजिक रहन-सहन साधारण हिन्दुओं के समान है और आज दिन तक उनका ऐसा कोई विशेष आचरण नहीं है जिससे वे अलग मालूम पड़ें ।

५. **मानभाव साहित्य**—धार्मिक क्षेत्र की अपेक्षा साहित्यिक क्षेत्र को मानभावों की अधिक देन है यद्यपि इसे अभी तक पर्याप्त मान्यता प्राप्त नहीं हुई है। साधारण प्रार्थना में और अपने साहित्यिक ग्रन्थों में संस्कृत के उपयोग का उन्होंने पूर्ण और कठोर निषेध कर दिया । उन्होंने शुद्ध मराठी को अभिव्यक्ति के एकमात्र साधन के रूप में अपनाया । उनका विश्वास था कि संस्कृत के समान ही यह भाषा पवित्र है । उन्होंने हमारे जनप्रिय महाराष्ट्री सन्तों की भाँति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के उच्चतम दार्शनिक विचार जन-साधारण के लिए उपलब्ध कराये । उन्होंने प्राचीन लेखकों की कला-कृतियों, उनके शब्द-विन्यास, शैली, उनकी संहिता, सूत्र, भाष्य और संस्कृत पद्य के छन्दों (अक्षरगण और मात्रागण दोनों) के अनुरूप मराठी भाषा में सबसे पहले नमूने स्थापित किये । संस्कृत लेखक पद्य में रचनाएँ करते थे किन्तु उनके विपरीत मानभाव विद्वानों ने सबसे पहले सुगठित मराठी गद्य लिखा । यह मानभाव गद्य अतुकान्त पद्य शैली में है ।

चक्रधर ने स्वयं अपना कोई ग्रन्थ नहीं लिखा । उसके बहुत से गुणवान शिष्य थे, जो उसके प्रगाढ़ भक्त थे और रूढ़िवादिता पर आक्रमण करने में उसको हार्दिक सहयोग देते थे। उसके जीवन की प्रत्येक कृति और घटना तथा उसकी प्रत्येक उक्ति समुचित रूप से लेखबद्ध

कर ली गई। बाद में उनका विन्यास दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों में किया गया है। प्रथम में, उसके उपदेश और उसकी उक्तियाँ संग्रहीत हैं, इसे "सिद्धान्त-सूत्र-पाठ" कहा जाता है। यह सम्प्रदाय की धर्म पुस्तक बन गई है, जिसका मतावलम्बी पठन-पाठन करते हैं। दूसरे ग्रन्थ में उसके जीवन की कृतियाँ और घटनाएँ हैं, इसे "लीलाचरित्र" कहा जाता है। इन ग्रन्थों के मूलपाठ की शुद्धता को सुरक्षित रखने के लिये इन्हें १३ उप-विभागों के अनुसार १३ भिन्न गुप्त लिपियों में जान-बूझकर लिखा गया, जिससे ये अज्ञानी पाठकों द्वारा विकृत होने से बचे रहें। मानभाव सम्प्रदाय के ये दो धर्मग्रन्थ हो गये। इनकी रचना महीन्द्र भट्ट व्यास ने की जो बड़ा विद्वान् और मनीषी था। उसे इस कार्य में उसी के समान ६ अन्य योग्य विद्वानों से सहायता मिली थी। इन धर्मग्रन्थों की एक उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें जिन घटनाओं का वर्णन है, उनमें से अधिकांश की यथार्थ तिथियाँ और स्थान दिये हुए हैं, जिससे इतिहास के विद्यार्थी को वास्तविक सहायता मिलती है। गुप्त लिपियों के उपयोग के कारण मूल भाषा बाद के नकल करने वालों की फेर-बदल और क्षेपकों से बची रही है। फलतः मानभाव ग्रन्थों में आज भी वही के वही शब्द, वाक्यांश और शब्दरूप विद्यमान हैं, जो रचना-काल में प्रचलित थे। उनका कोई आधुनिकीकरण नहीं हुआ है। इस आधुनिकीकरण के कारण ज्ञानेश्वर और एकनाथ सदृश हमारे अन्य महाराष्ट्री सन्तों के लेखों के विषय और रूप को दूषित कर दिया गया है।

संस्कृत काव्यों की पुरानी काव्यमय रचनाओं के आदर्श पर मानभाव लेखकों द्वारा एक के बाद एक कई उच्च साहित्यिक गुणों से युक्त ग्रन्थ लिखे गये। इनमें से निम्नलिखित सात ग्रन्थों का बहुत ही आदर है :—

(१) नरेन्द्र बोरीकर का "रुक्मिणी-स्वयंवर"।

(२) व (३) भास्कर भट्ट लिखित "शिशुपालवध" और "उद्धव-गीत"।

(४) दामोदर पण्डित का "वत्सलाहरण"।

(५), (६) व (७) "ऋद्धिपुर-वर्णन", "ज्ञानबोध" और "सह्याद्रि-वर्णन" ये तीन वर्णनात्मक कथानक हैं।

इनमें से प्रथम "रुक्मिणी-स्वयंवर" ज्ञानेश्वरी का समकालीन ग्रन्थ है। अन्य कुछ उत्तर-काल के हैं। सभी प्रचलित ओवी छन्द में हैं और अपने साहित्यिक गुणों के कारण उच्च स्थान के अधिकारी हैं। इनके रचनाकारों में कुछ महिलाएँ भी हैं। इन मानभाव रचनाओं की ओर विद्वानों ने बहुत समय तक ध्यान नहीं दिया, सम्भवतया इसलिए कि हिन्दू रूढ़िवादियों के हृदय में इस सम्प्रदाय के प्रति विचित्र घृणा थी। आखिर क्यों और कैसे इस प्रकार की घृणा उत्पन्न हुई, यह एक पहेली है, जिसका सन्तोषजनक हल निकालना आवश्यक है।

६. **चक्रधर और हेमाद्रि की मृत्यु**—मानभाव सिद्धान्तों के प्रसार का देवगिरि के यादवों के यकायक पतन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध प्रतीत होता है, निस्सन्देह यह उनके पतन का सहायक कारण तो है ही। देवगिरि ही उस प्रदेश का केन्द्र था, जहाँ पर चक्रधर ने रूढ़िवादी विश्वासों और रीतियों के विरुद्ध खुले प्रचार के साथ अपनी उग्र कार्यवाहियों का श्रीगणेश किया। इसमें सन्देह नहीं कि चक्रधर शक्तिशाली राजा महादेव यादव (१२६०-१२७१ ई०) के मन्त्री (श्रीकर्णाधिप) महान् हेमाद्रि का समकालीन था। अतः हेमाद्रि और चक्रधर मध्यकालीन इतिहास के रंगमंच पर अवतरित होते हैं; दोनों विद्वान् हैं, असाधारण संगठनात्मक योग्यता-सम्पन्न हैं और अपनी पूरी शक्तियों का उपयोग करते हैं; पहला शास्त्र सम्मत धर्म का समर्थन करने में और दूसरा उसके विरुद्ध क्रान्ति का प्रचार करने में। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत ही विचारपूर्वक हेमाद्रि ने धार्मिक कृत्यों की अपनी व्यापक संहिता—"चतुर्वर्ग-चिन्तामणि"—का प्रकाशन किया था। इसमें चार पुस्तकें या भाग हैं—(१) व्रतखण्ड, (२) दानखण्ड, (३) तीर्थखण्ड, (४) मोक्षखण्ड। अनेक परिशेष खण्ड हैं जो

विभिन्न इष्ट देवताओं की, दिवंगत आत्माओं की और पूर्वजों की पूजा पर, दैनिक और ऋतुगत कर्तव्यों पर और उनके पालन न करने की दशा में प्रायश्चित्तों पर बल देते हैं। हेमाद्रि ने इस ग्रन्थ को महादेव यादव के शासन-काल में पूर्ण कर लिया। १२७१ ई० में उसका भतीजा रामचन्द्र उत्तराधिकारी हुआ। रामचन्द्र ने महादेव के पुत्र अमन का निर्दयतापूर्वक वध करके राजमुकुट प्राप्त किया। उसने हेमाद्रि को उसके पद पर कायम रखा। यह सर्वमान्य है कि यादव अपनी उत्पत्ति श्रीकृष्ण से मानते थे और उनके परम भक्त थे; जैसे चक्रधर और उनके अनुयायी। अतः एक ही देवता के उपासक होने के नाते इनका देवगिरि के राजभवन और अन्तःपुर में निर्बाध प्रवेश हो गया। इस परिणाम से मन्त्री हेमाद्रि बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने अपनी समस्त शक्ति से इसका विरोध किया।

मानभाव लेखों के आधार पर जो नवीनतम अनुसन्धान हुए हैं उनसे इस बात पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है कि चक्रधर और हेमाद्रि की मृत्यु कैसे हुई ?[९] 'लीलाचरित्र' की एक हस्तलिखित प्रति १२७६ ई० के कुछ पश्चात् की लिखी हुई मिलती है (यह अब भी अप्रकाशित है), इसमें वर्णन है कि हेमाद्रि ने अपने और यादव शासकों के पुजारियों की सहायता से चक्रधर के निवास-स्थान का पता लगा लिया; उसके पीछे अपनी सेना लगा दी और १२७६ ई० में खोकर गाँव में (अहमदनगर जिले में पाथरड़ी[१०] के पास) उसका वध करवा दिया। जब इस घटना की सूचना रामदेव को मिली तो वह हेमाद्रि पर अति क्रुद्ध हुआ और चक्रधर की मृत्यु के प्रतिशोध-स्वरूप उसने हेमाद्रि का तुरन्त निर्दयतापूर्वक वध करवा दिया। राजवाड़े द्वारा प्रकाशित

---

९ हेमाद्रि के जीवन और कार्य से सम्बन्धित काफी साहित्य खुदे हुए लेखों और प्रशस्तियों के रूप में प्राप्त है, किन्तु उसमें इस बात का उल्लेख नहीं है कि उसकी मृत्यु कैसे हुई। के० ऐ० पाधे लिखित "हेमाद्रि की जीवनी" देखिए, उसमें लेख और प्रशस्तियाँ पूरी-पूरी दी हुई हैं।

१० अहमदनगर के ३० मील पूर्व में तीसगाँव के समीप।

'महिकावती बखर' के कुछ पद्यों से इस बात का परोक्ष रूप से समर्थन होता है।[११]

यह कहानी सत्य हो या असत्य, परन्तु राजा रामचन्द्र यादव के आकस्मिक पतन का कारण उसके निर्बल और भ्रष्ट शासन में मिलेगा (यद्यपि ज्ञानेश्वर ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है)। इसके शासन में धार्मिक विवाद बढ़ गया था, जिसके फलस्वरूप राजा का ध्यान बाह्य आक्रमणों के विरुद्ध तैयारियों की ओर से हट गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अव्यवस्था और उपेक्षा के कारण १२९४ ई० में अलाउद्दीन को देवगिरि पर आकस्मिक और सफल आक्रमण करने के लिए निस्सन्देह सुविधा प्राप्त हुई; सम्भवतया मानभाव कार्यकर्ताओं ने मुस्लिम विजेता को यादव-शासन की दुर्बलता की गुप्त सूचना दे दी जिससे उसे प्रोत्साहन मिला।

परन्तु यहाँ हमें पहले इस महाद्वीप के दक्षिण भू-भाग में होने वाली उस प्रबल हिन्दू प्रतिक्रिया पर दृष्टिपात करना चाहिये जिसे शीघ्रता से होने वाली मुसलमानों की विजय ने उत्पन्न किया।

७. मुसलमानों के विरुद्ध सफल विद्रोह—ईसा की दसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में हिमालय पार से एक नवीन विजेता-वंश ने भारत के द्वार खटखटाना आरम्भ किया। यह कार्य तुर्क सेनापति महमूद गजनवी ने प्रारम्भ किया और उसके समान ही दृढ़ विजेता मुहम्मद गौरी ने इसे पूरा किया। २०० वर्षों की अवधि में समस्त उत्तरी भारत विजित हो गया। १०० वर्ष और बीते कि मुसलमानों ने सर्वप्रथम नर्मदा को पार करके दक्षिण को जीतना प्रारम्भ किया।

उस समय दक्षिण में चार या पाँच महत्त्वपूर्ण राज्य थे, जिनको मुसलमानों ने २५ वर्ष से भी कम समय में अपने अधीन कर लिया। अलाउद्दीन ने १२९४ ई० में देवगिरि पर आक्रमण किया और उसके शासक रामदेव राव को अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर

---

११ पृ० ८१ पद्य ५४ व ५५; देखिये प्रो० वी० बी० कोल्टे का नागपुर यूनीवर्सिटी जरनल के दिसम्बर १९४१ के अंक में लेख।

दिया। अलाउद्दीन के प्रतिनिधि मलिक काफूर ने १३०९ ई० में वारंगल[12] के काकतीय राज्य को और १३१० ई० में द्वारसमुद्र के होयसल राज्य को पददलित कर विनष्ट कर दिया। इन सफलताओं के तुरन्त बाद उसने सुदूर दक्षिण के चोल और पाण्ड्य राज्यों को पदाक्रान्त किया और भारत के दक्षिणतम स्थान पर इस्लाम का हरा झण्डा फहरा दिया। इस प्रकार अपनी मृत्यु के पहले अलाउद्दीन यह कहने में पूर्ण समर्थ था कि उसने समस्त भारतीय महाद्वीप को अधीन कर लिया है। उसके पुत्र मुबारक खिलजी ने और उसके बाद कठोर तुगलक सुल्तान मुहम्मद ने दक्षिण में अन्तिम हिन्दू सत्ता के अवशेषों को भी समाप्त कर दिया। यह तुगलक शासक नवविजित प्रदेश को पूर्ण अधिकार में रखने के लिए १३२५ ई० में अपनी राजधानी देवगिरि ले गया, जिसका नाम उसने दौलताबाद रखा। वह वहाँ कुछ वर्ष रहा भी। इस प्रकार १३२६ ई० तक भारत पर मुस्लिम विजय का कार्य पूर्ण हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर देवगिरि के रामदेव राव तथा वारंगल के प्रतापरुद्र तक महान् निर्माताओं का समस्त कार्य, जिसके निर्माण में साढ़े सोलह शताब्दियाँ व्यतीत हुई थीं, इस २५ वर्ष से कम ही काल में नष्ट हो गया। यह ऐसी विचित्र बात है जिसकी तुलना संसार के इतिहास में किसी अन्य घटना से नहीं की जा सकती।

पहले भी भारत में विदेशी विजेता आये, परन्तु वे बड़ी तेजी से हिन्दू समाज में लीन हो गये और उनका उसमें एकीकरण हो गया। परन्तु ये नवीन धर्मान्ध तुर्क सर्वथा भिन्न प्रकार के थे। केवल राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति से वे सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने केवल विजेता और लुटेरों के रूप में हिन्दुस्तान के मैदानों में प्रवेश नहीं किया अपितु वे दीन के लिए जूझने वालों के रूप में आये। उनकी धारणा 'काफिरों' के देश में अपने पवित्र मजहब का प्रचार करने की थी। जब उन्होंने

---

१२ इसका पुराना नाम एकशिलानगरी या वर्नकुल है, जिससे यह नया नाम हो गया।

उत्तर के हिन्दू राज्यों को पराजित कर देश में अपने पैर जमा लिये तब वे लोगों पर अपने धर्म को थोपने, हिन्दू मन्दिरों और उनके भव्य भवनों को अपवित्र करने, उनके देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़ने, उनकी मूर्तियों और कला-कृतियों को खण्डित करने और उनके शिलालेखों की लिखावट को नष्ट करने के कार्य में व्यवस्थित रूप से प्रवृत्त हुए। इस निरंकुश तोड़-फोड़ से प्राप्त सामग्री द्वारा उन्होंने मुसलमानों के लिए मसजिदें बनवाईं। हिन्दुत्व को सर्वथा विनष्ट करने और हिन्दू जनता को इस्लाम के दायरे में लाने के लिए इन निर्मम लुटेरों ने हिन्दू धर्म के सार्वजनिक धार्मिक कृत्यों को निषिद्ध कर दिया और उसके अनुयायियों पर अनेक पाबन्दियाँ और दण्ड-विधान लागू किये। हिन्दुओं को अनुमति न थी कि वे अच्छे वस्त्र धारण कर सकें, अच्छा भोजन कर सकें अथवा समृद्ध दिखाई दें। उन पर असह्य कर लगा दिये गये और उनके विद्या-मन्दिरों—यथा नालन्द—को नष्ट कर दिया गया।

उत्तर भारत एक वृहत् मैदान है, जिसमें कोई प्राकृतिक अवरोध या रक्षा का स्थान नहीं है, जहाँ पर सबल और दृढ़-प्रतिज्ञ सैनिकों को अटक से बंगाल की खाड़ी तक छा जाने से रोका जा सके। इस विस्तृत प्रदेश के हिन्दुओं ने परस्पर विभाजित और असंगठित होने के कारण इन तुर्की आततायियों के प्रति कोई प्रतिरोध उपस्थित न किया। अपने साथ किये गये समस्त दुर्व्यवहारों को उन्होंने विनीत भाव से सहन किया और अपने देश और धर्म की रक्षा में संयुक्त विरोध उपस्थित करने में वे अयोग्य सिद्ध हुए। परन्तु दक्षिण के हिन्दुओं ने, विशेषकर दृढ़ कापालिक और शैव सम्प्रदायों ने, मानभावों ने, और अनगोंदी और वारंगल के समीप काम्पली प्रदेश के निवासी लिंगायतों ने मुस्लिम आक्रमण का मुकाबला करने में तत्परता दिखाई। यह विद्रोह किस प्रकार सफलतापूर्वक संगठित किया गया, यह अध्ययन के लिये जानकारी का विषय है।

गोदावरी और कृष्णा के बीच में समुद्र-तटवर्ती प्रदेश तेलंगाना की राजधानी वारंगल थी और शताब्दियों से इस पर काकतीयों के

राजवंश का शासन था। इस पर सर्वप्रथम १३०३ ई० में अलाउद्दीन के सेनापति मलिक फखरुद्दीन जूना ने आक्रमण किया, यही बाद में दिल्ली का कुख्यात सुल्तान मुहम्मद तुगलक हुआ। वीर शासक प्रतापरुद्र काकतीय ने उसे पराजित किया और उसे भारी हानि उठानी पड़ी। यह वीर इस प्रकार मुसलमान विजेताओं की आँखों का काँटा बन गया। अनेक वर्ष व्यतीत होते गये। खिलजियों के उत्तराधिकारी तुगलक हुए, जिन्होंने १३२१ ई० में वारंगल के विरुद्ध एक प्रबल हमलावर सेना भेजी। दो वर्ष तक अविराम युद्ध चलता रहा। प्रतापरुद्र पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया। युद्ध के विजय-चिन्ह के रूप में उसे दिल्ली ले जाया जा रहा था। इस अपमान से क्षुब्ध होकर १३२३ ई० में उसने आत्म-हत्या कर ली। अपने वीर नेता के इस दुःखद अन्त ने जनता को इतना उत्तेजित कर दिया कि जितनी और कोई वस्तु न कर सकती थी।[13]

इसके एक वर्ष पश्चात् मुहम्मद तुगलक दिल्ली का सुल्तान हुआ और वह तुरन्त अपनी राजधानी को देवगिरि (१३२५ ई०) ले आया। उस सुदृढ़ गढ़ के अपने केन्द्र-स्थान से उसने हिन्दुओं के उठते हुए विरोध का दमन करने का कार्य प्रारम्भ किया। वारंगल के पतन का प्रभाव तुंगभद्रा पर स्थित काम्पली के समीपवर्ती प्रदेश तक फैल गया था, जहाँ एक अन्य वीर हिन्दू योद्धा कामनाथ देवगिरि के सुल्तान द्वारा भेजी गई सेनाओं पर अनेक बार विजय प्राप्त कर चुका था। इस शर्मनाक पराजय से क्रुद्ध होकर सुल्तान ने १३२७ ई० में दूसरी और अधिक शक्तिशाली आक्रामक सेना काम्पली

---

१३ इसके एवं आगे के वर्णन के लिए एन० वेंकटरमणय्या लिखित "द अर्ली मुस्लिम एक्सपानशन इन साउथ इण्डिया" (मद्रास यूनीवर्सिटी प्रकाशन, १९४२) प्रमुख प्रमाणिक ग्रन्थ है। पृ० १९४ पर विजयनगर की स्थापना के विषय में यह प्रमाण मिलता है—

स एव खलु माधवो वसुमतीं चतुःसागरी—
समाकलितमेखलां नयति बुक्कराजं युधः।

तमन्वजनि सायणस्तमनु भोजनाथश्चता—
बुभावुदयमाश्रितावचलमत्र विश्वेश्वरं॥

के विजयार्थ भेजी। कम्पिलदेव ने प्रतिरोध असम्भव जानकर विशाल अग्नि प्रज्वलित कराई और समस्त महिलाओं सहित जीवित भस्म हो गया, ताकि शत्रु के हाथों में पड़ने के अपमान से बच जाय। फिर भी बहुत से लोग बन्दी बना लिये गये जिन्हें बेड़ियों में जकड़ कर सुल्तान के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। इस विजय से सुल्तान के हर्ष की सीमा न रही। वह अपनी लूट और बन्दियों को लेकर दिल्ली वापस आया। इन बन्दियों में हरिहर और बुक्क नामक दो भाई भी थे जो पहिले काम्पली में मन्त्री रह चुके थे और जिन्होंने वारंगल के प्रतापरुद्र की सहायता की थी। सुल्तान उनकी योग्यता से अवगत था। उसने उनको मुसलमान बनाकर उनके साथ अच्छा व्यवहार किया ताकि दक्षिण में हिन्दुओं के विद्रोह की स्थिति में वह उनसे आवश्यक काम ले सके। इन तेजस्वी भाइयों ने यादवों के पतन के समय से ही हिन्दुओं के बदलते हुए भाग्य को देखा था। इनके हृदय में प्रतिशोध की आग दबी हुई थी। वे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने कुछ समय बाद ही अपने को उत्तर और दक्षिण दोनों में समान रूप से आपत्तियों में ग्रस्त पाया, परन्तु हिन्दू काफिरों को दबाने के अपने निश्चय में वह टस से मस न हुआ। १३३० ई० और १३३१ ई० में वारंगल के कपय्या नायक ने और काम्पली के सोमदेवराज ने सुल्तान के प्रति विद्रोह किया, मुस्लिम राज्यपालों को भगा दिया और अपने-अपने क्षेत्रों में स्वाधीनता स्थापित कर ली। दिल्ली में सुल्तान के पास समाचार पहुँचा। अपने मन्त्रियों से उसने परामर्श किया और उनके सुझाव पर निश्चय किया कि दोनों भाइयों हरिहर और बुक्क की सेवाओं का उपयोग किया जाये। ये अब मुसलमान थे और इस नाते उनसे आशा की जा सकती थी कि वे अपने स्वीकृत धर्म का मान रखने में उसी प्रकार भरसक प्रयत्न करेंगे, जैसा उनसे पूर्व मलिक काफूर ने किया था। दोनों भाइयों ने इस नियुक्ति को सहर्ष स्वीकार कर

लिया और सैनिकों तथा सामग्री से सुसज्जित होकर शीघ्र ही काम्पली के सामने आ डटे।

इस समय हिन्दू-विद्रोह की भावना कितनी विकट थी, इसका अनुमान इस बात से हो जाता है कि श्रृंगेरी मठ के विद्वान और प्रभावशाली अध्यक्ष शंकराचार्य माधव विद्यारण्य ने मुस्लिम आक्रान्ताओं का दमन करने के लिए राजनीति में नेता का स्थान ग्रहण कर लिया। माधवाचार्य और उनके दो समान सुयोग्य भ्राता सायण और भोजनाथ ने दोनों वीरों हरिहर और बुक्क से वार्त्तालाप किया तथा अपने नव-स्वीकृत धर्म को त्याग देने पर रजामन्द कर लिया। कुछ प्रायश्चित सम्पन्न कराने के बाद हिन्दू समाज में पुनः सम्मिलित कर उन्हें समस्त आन्दोलन को सफल बनाने के लिये बागडोर सौंप दी। इस प्रकार राष्ट्र के हित में राजनीति और धर्म की अग्नि-परीक्षा हो गई। यह उदाहरण अत्यन्त उत्साहवर्धक सिद्ध हुआ। सुल्तान की समस्त योजनाएँ विफल हो गईं। पूज्य गुरू माधवाचार्य ने अनगोंदी पर अपना निवास-स्थान बनाया, जहाँ दोनों भाइयों हरिहर और बुक्क ने उनका उचित सम्मान किया। पारस्परिक विचार-विनिमय के बाद ठीक अनगोंदी के सामने तुङ्गभद्रा नदी के मोड़ पर नवीन हिन्दू-साम्राज्य की राजधानी स्थापित करने की नई योजना तैयार की गई। इस प्रकार विजयनगर का जन्म हुआ जो थोड़े ही समय में सुरक्षित, समृद्ध और शक्ति-सम्पन्न नगर बन गया। इस नई राजधानी में १८ अप्रेल, १३३६ ई० को दोनों भाइयों का राज्याभिषेक हुआ। मुहम्मद तुगलक को अपने दक्षिण प्रान्तों के सदा के लिए हाथ से निकल जाने का बड़ा दुःख हुआ।

विजयनगर का यह नवनिर्मित साम्राज्य शनैः-शनैः शक्ति और विस्तार में बढ़ता गया और दो सौ वर्ष से अधिक समय तक दक्षिण में मुस्लिम विजय के प्रवाह को रोकने में समर्थ रहा। यद्यपि उसके बाद स्वतः विजयनगर तो तालीकोट के प्रसिद्ध रण में (२२ जनवरी, १५६५ ई०) मुस्लिम शासकों के संयुक्त बल से नष्ट हो गया, तथापि अनेक स्थानीय शक्तियाँ विनाश से बच गईं जो कभी पूर्णतया पद-

दलित न हो सकीं। उन्होंने विभिन्न स्थानों में अपने अस्तित्व को भारत पर अँग्रेजों के अधिकार करने तक किसी न किसी रूप में अवश्य कायम रखा। ऐतिहासिक दृष्टि से शिवाजी की विलक्षण बुद्धि को विजयनगर के इस प्रयोग से ही शक्ति और प्रेरणा मिली, क्योंकि उनके पिता शाहजी की प्रगति इसी बंगलौर, काम्पली और कनकगिरि के प्रदेश में केन्द्रित थी। यह सही है कि हरिहर और बुक्क के उदाहरण से शिवाजी ने वैयक्तिक वीरता का गुण लिया। इसमें शंकराचार्य की आध्यात्मिक शक्ति का पुट था। यह सर्वविदित है कि शिवाजी ने इस आदर्श का अनुकरण किया और अपने गुरुओं तुकाराम और रामदास का सम्मान करते रहे। यह ध्यान में रखने की बात है कि मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध हिन्दू-विद्रोह के कारण, औरंगजेब के विरुद्ध शिवाजी के विद्रोह के कारणों की भाँति ही राजनीतिक होने की अपेक्षा सांस्कृतिक अधिक थे। राजनीतिक स्वाधीनता की अपेक्षा अपने धर्म की सुरक्षा को हिन्दुओं ने प्रायः बहुत महत्त्व दिया है। इसी में, मराठा इतिहास के लिए, उस हिन्दू-विद्रोह का महत्त्व निहित है जिसके फलस्वरूप विजयनगर की स्थापना हुई।

८. महाराष्ट्र के सन्त और लेखक—भारत पर मुस्लिम आक्रमण की प्रतिक्रिया के रूप में विद्रोह की भावना तीव्रगति से सारे देश में व्याप्त हो गई और उसने मुहम्मद तुगलक की सारी शक्ति को निस्तेज कर दिया। विजयनगर के पद-चिह्नों का अनुसरण करने में महाराष्ट्र ने विलम्ब न किया। परन्तु यहाँ पर विद्रोह का दूसरा स्वरूप रहा। तुगलक सुल्तान ने उच्चकोटि के विश्वस्त सैनिक अधिकारी हुसैन जफरखाँ को दक्षिण में विद्रोह का दमन करने के लिए भेजा, उसने स्वयं विद्रोहियों का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया और गुलबर्गा में अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। उसने अलाउद्दीन बहमनशाह की राजसी उपाधि धारण की और १३४७ ई० में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की, जो इतिहास में 'बहमनी राज्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह मुस्लिम शासक इतना चतुर था कि उसने जान लिया कि हिन्दुओं के धर्म में हस्तक्षेप करके उन्हें क्रुद्ध करना व्यर्थ

है। फलतः हिन्दुओं ने उसके नवीन सहिष्णु शासन को विदेशी होते हुए भी स्वीकार कर लिया। अगले दो सौ वर्षों तक बहमनी राज्य अपने पड़ोसी विजयनगर के समान उसके साथ ही फलता-फूलता रहा यद्यपि सम्पूर्ण काल में दोनों में प्रतिद्वन्द्विता और पारस्परिक आक्रमण की भावना बनी रही। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त के लगभग बहमनी राज्य पाँच अलग-अलग भागों में बँट गया। उनमें से तीन बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डा के राज्य बीदर और बरार को आत्मसात् कर कुछ शक्तिशाली हो गये। ये राज्य अपने संस्थापकों के नामों पर क्रमशः आदिलशाही, निजामशाही और कुतुबशाही के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हैं। मूल बहमनी राज्य अथवा उसकी बाद की शाखाओं के आन्तरिक प्रशासन से हमारा सम्बन्ध केवल उसी सीमा तक है जहाँ तक वे मराठा अभ्युदय में सहायक हुए।

चूँकि मराठा राज्य के संस्थापक का अपना निवास-स्थान पश्चिमी घाटों के समीप था, उसका भाग्य मुख्यतया अहमदनगर के निजामशाह और बीजापुर के आदिलशाह से सम्बन्धित रहा। यद्यपि विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य पर पाँचों मुसलमान शासकों ने मिल कर घातक प्रहार किया किन्तु वे उस हिन्दू सत्ता के सुदूर दक्षिणवर्ती प्रदेशों को अधीन करने में सफल न हो सके। इन दक्षिणी शासकों की साधारण नीति हिन्दुओं के प्रति सहिष्णु थी क्योंकि वे असहिष्णु खिल्जियों और तुगलकों के पतन से सतर्क हो गये थे। वे जानते थे कि शासित जनता के मुख्य भाग के प्रति अतिशय घृणा के कारण ही उनका ह्रास हुआ। बहमनी शासकों और इस राज्य के शाखा-राज्यों के सुल्तानों को अपने अस्तित्व के लिए हिन्दुओं पर पूरी तरह निर्भर रहना पड़ता था, फलतः वे हिन्दू भावनाओं को ठेस पहुँचाने से बचे रहे। पश्चिम के पहाड़ी प्रदेश व्यवहारतः अविजित ही रहे। शासकों का मुस्लिम रूप उनके व्यक्तिगत धर्म तक सीमित था और उनकी प्रजा पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। रानाडे ने लिखा है—"नागरिक और सैनिक विभागों में इन नाममात्र के

मुसलमान शासकों का नियन्त्रण वास्तव में मराठा नीतिज्ञ और मराठा सैनिक करते थे। घाटों और उनके समीपवर्ती देश के पर्वत दुर्ग मराठा सरदारों के हाथों में थे, जो नाममात्र को इन मुसलमान शासकों के अधीन थे।" यथार्थ में यदि बीजापुर के मुहम्मद आदिल-शाह ने, जो १६२७ ई० में गद्दी पर बैठा था और जिसने अपने पिता इब्राहीम आदिलशाह की सहिष्णु नीति को सर्वथा परिवर्तित कर दिया था, हिन्दू मन्दिरों को अपवित्र करने और उनके धन का अप-हरण करने के पुराने तरीकों को न अपनाया होता तो यह सम्भव था कि शिवाजी स्वतन्त्र मराठा राज्य के संस्थापन कार्य को अपने हाथ में ही न लेते। इब्राहीम आदिलशाह अत्यन्त निष्पक्ष शासक था जिसका सम्मान स्वयं हिन्दू जगद्गुरू की भाँति करते थे। अपने मन्त्री मुस्तफाखाँ के मन्त्रणानुसार मुहम्मद आदिलशाह ने हिन्दू धर्म के दमन के लिये नए नियमनों[14] की घोषणा कर दी और इस प्रकार वह तत्कालीन प्रमुख मराठों का कोपभाजन हुआ। फल्टन के बाबाजी निम्बालकर को मुसलमान बनाया जाना बीजापुर की इस परिवर्तित नीति का एक प्रमाण है जिसने शिवाजी को एक नया सख़्त कदम उठाने के लिए उत्तेजित किया।

ऐतिहासिक काल में हिन्दुओं ने—मराठा लोग इसके अपवाद नहीं हैं—साधारणतया राजनैतिक सत्ता की अपेक्षा अपने धर्म की अधिक चिन्ता की है। जब गजनवियों, गोरियों, खिल्जियों और तुगलकों ने धार्मिक विषयों में घोर अत्याचार का व्यवहार किया, उन्होंने विरोध और विद्रोह को अपना लिया। महान् सम्राट अकबर ने बुद्धिमता-पूर्वक यह नीति बदल दी और इस प्रकार उसने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ कर लिया। औरंगजेब ने अकबर की नीति को उलट दिया और इससे स्वाधीनता के लिए मराठा आन्दोलन को शुरू करने की आवश्यकता हो गई। यह आन्दोलन उस प्रयोग की आवृत्ति-मात्र है जिससे विजयनगर का संस्थापन हुआ था। देवगिरि के यादवों के

---

१४ पारसनिस के "इतिहास-संग्रह, ऐतिहासिक स्फुट लेख" २–७ में देखिए मुहम्मद आदिलशाह के नियमन संख्या २१, ४४, ४८, ५१ व ५३।

उच्छेद से लेकर तीन-चार शताब्दियों के विशाल मराठी साहित्य में विद्रोही भावना की यह धारा व्याप्त है। मुकन्दराज और ज्ञानेश्वर के समय से लेकर तुकाराम और रामदास के समय तक के समस्त मराठी साहित्य का क्षेत्र जन-साधारण की मानसिक प्रक्रिया को यथार्थ रूप में प्रतिबिम्बित करता है। इस प्रकाश में अवलोकन से इन सन्तों की शिक्षाएँ तीन क्रमानुगत विचारधाराओं में मिलती हैं। प्रथम ज्ञानेश्वर और नामदेव की हैं (तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी), द्वितीय एकनाथ और तुकाराम की (पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी) और तृतीय रामदास की (सत्रहवीं शताब्दी), जो स्वयं शिवाजी के समकालीन थे। ये सन्त और लेखक अधिकतर विद्वान और अनुभवी पुरुष थे, जिन्होंने समस्त भारत की पैदल यात्रा की और स्थानीय घटनाओं की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त की। इन्हें बहुधा उन्होंने अपनी आँखों से देखा था। उनकी तुलना आधुनिक पत्रों के संवाद-दाताओं से की जा सकती है। वे भाषण देते थे और हरि-कीर्तन करते थे जिनका श्रवण जनता दत्तचित्त होकर करती थी। वे शिवाजी के सदृश कार्यकर्ताओं के राजनैतिक उद्देश्यों के निमित्त आध्यात्मिक पृष्ठभूमि तैयार करते थे।

इन लेखकों ने समाज की दो विशेष सेवाएँ कीं। प्राचीन बहुमूल्य विद्या और दर्शन का भण्डार जो उस समय तक केवल संस्कृत में था और परिणामतः जन-साधारण के लिए बोधगम्य नहीं था, इनके द्वारा मराठी पद्य के विभिन्न जनप्रिय और आकर्षक रूपों में प्रस्तुत कर दिया गया। यह अनुवाद प्रायः संगीतात्मक हुआ। द्वितीय, अपने इष्टदेवता के द्वारा उन्होंने सर्वशक्तिमान् प्रभु से पीड़ित जनता की ओर से आग्रहपूर्ण करुण विनती की कि वे अपना कृपा-हस्त बढ़ायें और मुस्लिम-अत्याचार से उनकी रक्षा करें। बीदर जिले के एक कर-संग्राहक दामाजी पन्त के सम्बन्ध में प्रसिद्ध कहानी इसका विशिष्ट उदाहरण है। सरकारी अन्न-भण्डार को निःशुल्क वितरित करने के बाद भी कहा जाता है कि पण्ढरपुर के विठोबा की कृपा से वह अपने स्वामी के क्रोध से आश्चर्यपूर्ण ढंग से बच

गया[१५]। कुछ सन्तों ने विठोबा और अल्लाह, राम और रहीम की आवश्यक एकता द्वारा पारस्परिक विरोधी धर्मों में सामंजस्य स्थापित करने का भी सजग प्रयत्न किया। स्वयं हिन्दुओं के परस्पर विरोधी सम्प्रदाय शैव और वैष्णव में एकता के प्रतीक-स्वरूप पण्ढरपुर में विठोबा की स्थापना की गई।[१६] सानुराग प्रार्थना, पूर्ण अहिंसा और ईश्वर की इच्छा के प्रति धैर्यपूर्वक आत्मसमर्पण के पण्ढरपुरी आन्दोलन के प्रतिनिधि तुकाराम थे। "समस्त देश में एक नवीन राष्ट्रीय जीवन की धारा प्रवाहित होने लगी। इसका साथ, जैसा कि जन-साधारण विश्वास करते थे, मुसलमानों के अत्याचारी देवता के विरुद्ध हिन्दू देवताओं के विद्रोह ने दिया।"[१७]

मराठी भाषा के ढाँचे में भारी परिवर्तन का होना इसका असंदिग्ध प्रमाण है कि मुस्लिम विजेताओं द्वारा राजनैतिक प्रभुता प्राप्त कर ली गई थी। जब कि ज्ञानेश्वर के महान् ग्रन्थ में एक भी अरबी या फारसी का शब्द नहीं है, एकनाथ के ग्रन्थों में ये विदेशी शब्द बड़ी संख्या में पाये जाते हैं और ये मराठी में प्रचलित हो गये थे। मुस्लिम आक्रमण का वीरतापूर्वक सामना करने और हिन्दू धर्म और संस्कृति को पुनः जीवित करने के लिए जब शिवाजी का आगमन हुआ तो उसने सरकारी शब्दों का अपना ही संस्कृत कोष प्रचलित कर दिया। उसमें से विदेशियों की राज्यभाषा फारसी के शब्द हटा दिये गये थे। संस्कृत को पुनः अपनाने का कार्य मराठा-शासन में बड़ी तेजी से होने लगा।

एक अन्य प्रकार की पुस्तकें हैं जिनमें महाराष्ट्रीय जीवन के इस नवीन आन्दोलन का विवरण देने का प्रयास किया गया। यह

---

१५ यह कहानी उस भयानक अकाल से सम्बन्धित है, जो महाराष्ट्र में १३९६ ई० में पड़ा और ७ वर्ष तक रहा—वह आज भी दुर्गादी के नाम से याद किया जाता है।

१६ एस० एम० एडवार्डिस ने लिखा है, "इस बात में कोई शंका नहीं है कि प्रभु विठोबा और पण्ढरपुर को अत्यधिक मान्यता देने वाले महत्वपूर्ण आन्दोलन ने विभिन्न जातियों के लोगों को अंगीकार किया और महाराष्ट्र की निम्नतम जातियों के व्यक्तियों को सन्त पद प्रदान करा दिया।" (ग्राण्ट डफ के "इतिहास" की भूमिका, पृ० lxxiii)

१७ एकवर्थ लिखित "मराठा बैलडस" की भूमिका।

हैं प्राचीन बखर और प्रशस्तियाँ, जो संस्कृत ग्रन्थों में संलग्न हैं। शिवाजी के अधिकांश बखर, हनुमन्ते लिखित 'राज-व्यवहार कोष' की भूमिका, गागाभट्ट का स्वलिखित 'कायस्थ-धर्म-प्रदीप'[१८] का प्राक्कथन तथा 'भट्टवंशकाव्य', परमानन्द के 'शिवभारत' की विस्तृत टीका (दो लम्बे अध्यायों में), अभी हाल ही में प्रकाशित हुए परमानन्द काव्य, परनल-पर्वताग्रहन आख्यान, राधामाधव विलास चम्पू, वेंकट भट्ट रचित भोसला वंशावली, शम्भाजी दानपत्र, हिन्दी कवियों भूषण और लाल के कुछ ग्रन्थ, एक अज्ञात लेखक का काव्य जो जयसिंह को शिवाजी का पत्र कहा जाता है—इन सभी में शिवाजी के उत्थान का वर्णन है, परन्तु उसका ढंग अलग है। वे पृथ्वी का वर्णन प्राणी के रूप में करते हैं, जो देवताओं, ब्राह्मणों और गायों के प्रति म्लेच्छों के दुर्व्यवहार को सहन करने में असमर्थ है और ब्रह्मा से संकट-निवारण की प्रार्थना करती है। इसके बाद शंकर, विष्णु व देवी भवानी से ब्रह्मा विनती करते हैं। अन्त में देवता पृथ्वी की हार्दिक प्रार्थना पर ध्यान देते हैं और अन्याय एवं अत्याचार का नाश करने के लिए नवीन अवतार धारण करने की सहमति प्रकट करते हैं। इस प्रकार शिवाजी की जन्म-कथा दी जाती है। ऐतिहासिक अनुसन्धान के वर्तमान युग से पूर्व शिवाजी के उत्थान का यही रूढ़िवादी विवरण प्राप्त है।[१९]

---

१८ च. सं. वृ. और शि. च. प्र.

१९ उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ देखिए—
देवदेव रिपवो वसुन्धरां। पीडयन्ति यवना भृशातुरं। तत्कुरुष्व जगतीसमीहितं। म्लेच्छवर्गमधुना शृणीहि तं॥ त्वं शाहपृथ्वीपतिवीरपत्न्यां। अस्यां समासाद्य मनुष्यजन्म। म्लेच्छापहत्या सुखमारचय्य। भूमेः पुनः स्थापय वर्णधर्मान्॥ औरंगजेबयवनाधिपभीतविप्रत्राणाय यः परिगृहीतनवावतारः॥

अर्थात् हे देव, देवताओं के शत्रु ये मुसलमान पृथ्वी पर अत्याचार कर रहे हैं, अतः आप उनका संहार कर उसकी पीड़ा को हरिए। आप वीर शाहजी की पत्नी इस देवी (जीजाबाई) के गर्भ से मनुष्य के रूप में जन्म लीजिए और म्लेच्छों का संहार कर और जनता को परमानन्द प्रदान कर पृथ्वी को सुख दीजिए।

अतः भगवान् विष्णु ने यवन सम्राट औरंगजेब द्वारा आतंकित ब्राह्मणों की रक्षा के लिये नया अवतार ग्रहण किया।

६. मराठा जाति की विशेषताएँ—"मराठा शक्ति का उदय" ग्रन्थ के लेखक महादेव गोविन्द रानाडे ने दो महत्त्वशाली प्रश्न उठाए हैं जिन्हें मराठा इतिहास के विद्यार्थी को हल करना है। वे ये हैं—१. मुसलमानी शासन को उखाड़ फेंकने का प्रथम सफल प्रयास पश्चिम भारत में क्यों हुआ? २. देश की प्रकृति, देशवासियों के स्वभाव और उनकी संस्थाओं के रूप में कौन सी परिस्थितियाँ हैं जिन्होंने इस प्रयत्न का साथ दिया और उसको सफलता प्रदान कराई? इन प्रश्नों का एक उत्तर वयोवृद्ध अनुभवी प्रशासक प्रकाण्ड विद्वान् सर रिचर्ड टेम्पल ने दिया है।[२०] उनका कहना है—"मराठों का सदैव एक अलग ही राष्ट्र रहा है और वे अभी तक यही मानते हैं। उनका रूप-रंग सादा है, डील छोटा है, शरीर भी हलका परन्तु फुर्तीला है। उनकी आँखें चमकीली और दूर तक पहुँचने वाली होती हैं, वे उत्तेजना की अवस्था में क्रोध से भभक उठती हैं। यद्यपि वे शरीर से बलवान नहीं हैं किन्तु पंजाब और अवध की उत्तरी जातियों की अपेक्षा वे बहुत फुर्तीले होते हैं और उनमें अत्यन्त धैर्य होता है। पश्चिमी घाट के पर्वतों और उनकी असंख्य पर्वतमालाओं में तथा उनके समीप उनका जन्म और पालन-पोषण हुआ है, उनमें पर्वतीय जातियों के सभी गुण विद्यमान हैं। अपनी पहाड़ियों में उन्होंने सदा अति साहस का परिचय दिया है। पहाड़ियों से दूर वे किसी विशेष वीरता का परिचय नहीं देते, सिवाय इसके कि जब वे किसी अन्य जाति के सुयोग्य नेताओं के अनुशासन में हों। उनमें अपने आप संगठन की कोई क्षमता नहीं है, परन्तु जब वे संगठित कर दिये जाते हैं तो उनकी गिनती उत्तम सैनिकों में होती है। मराठा-साम्राज्य के पतन के बाद उन्होंने अपना मुख्य धन्धा कृषि और कृषि से सम्बन्धित व्यापार बना लिया है।"

सर रिचर्ड टेम्पल ने आगे लिखा है, "दुःख और दुर्भाग्य में मराठा कृषक मानवोचित धैर्य रखता है। यद्यपि वे मुख्यतया धैर्यवान्

---

२० ओरिएन्टल एक्सपीरिएन्स, पृ० ३३६।

और अच्छे स्वभाव के होते हैं, तथापि उनके स्वभाव में गर्मी छिपी रहती है। यदि हद से ज्यादा दबाया गया, तो वे क्रोध से पलट पड़ेंगे और अपने आततताइयों को नष्ट कर देंगे। उनके चरित्र में क्रूरता का भी पुट है। लूट की परम्परा उनमें प्राचीन समय से प्रचलित है और उनमें बहुत से लोग अपने पूर्वजों के लुटेरे स्वभाव को सुरक्षित बनाये हुए हैं। घने जंगलों, ढालू पहाड़ियों और दुर्गम गढ़ों की समीपता से अपनी वीरता को प्रकट करने की और अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रखने की उनको असाधारण सुविधाएँ प्राप्त होती रही हैं। वे खेतों में कठिन परिश्रम करते हैं और उनमें अनेक पारिवारिक सद्गुण होते हैं। मराठे जन्मजात घुड़सवार और साहसी होते हैं। साधारणतया वे अपने जीवन में संयत स्वभाव के नहीं होते और प्रायः मादक वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। महान् बनने के बाद भी अपनी हीन उत्पत्ति पर उन्हें गर्व रहता है। शिन्दे लोगों को गर्व था कि वे पेशवा की चप्पल उठाते थे।"

सातवीं शताब्दी के मध्य में युवानच्वांग ने लिखा है—"अपने आचरण और व्यवहार में मराठे सरल और ईमानदार हैं। वे गर्वशील और अल्पभाषी हैं। यदि उन पर कृपा की जाती है तो वे अवश्य कृतज्ञ होते हैं, परन्तु यदि कोई उनको हानि पहुँचावे तो वे अवश्य बदला लेंगे और अपमान का निराकरण करने के लिए अपने जीवन तक को संकट में डाल देंगे। यदि संकट में उनसे प्रार्थना की जाय, तो सहायता देने के विचार में वे स्वार्थ की भावना भूल जायेंगे। यदि उन्हें अपमान का भी बदला लेना हो तो भी वे अपने शत्रु को सावधान अवश्य कर देंगे। रण में जब वे भागते हुओं का पीछा करते हैं तो आत्मसमर्पण करने वालों को सदैव क्षमादान दे देते हैं। ये लोग स्वाध्याय-प्रेमी हैं और उनमें बहुत से साधु-सन्त हैं।" मराठा-चरित्र के ये गुण आज भी विद्यमान हैं।

१०. वर्तमान मराठे—इस प्रकार मौर्यों से यादवों तक पन्द्रह शताब्दियों में अनेक प्रसिद्ध वंश और परिवार आकर महाराष्ट्र में बस गये और उन्होंने वहाँ पर शासन किया। उनमें से यहाँ कुछ एक

का ही मुख्यतया वर्णन किया गया है। निस्सन्देह और भी बहुत से हैं जैसे बनवासी के कदम्ब; कोल्हापुर, कर्हाड़ और थाना के सिलाहार; बरार के वाकाटक; वारंगल के काकतीय और सागर के बल्लाल। उन सब को यहाँ पूरी तरह से नहीं गिनाया जा सकता, यद्यपि हमारे पूर्व-इतिहास के किसी न किसी काल में आधुनिक मराठा जाति की रचना में उनका अवश्यमेव योग रहा है। इन वंशों और परिवारों का एकमात्र पेशा था विजय और शासन। पराजित वंशों की कन्याओं से विजेता प्राय: विवाह कर लेते थे। इस प्रकार रक्त का स्वतन्त्र सम्मिश्रण होता गया। आधुनिक मराठा वंश को गर्व है कि इनमें कम से कम ९६ अलग-अलग परिवार सम्मिलित हैं जिनमें कई तो बहुत पहिले से उच्चकुलीन माने जाते थे, जैसे मौर्य, सेन्द्रक, राठौड़, सिलाहार, यादव आदि। इनमें से प्रत्येक की भूतकालीन वीरता और वैभव की श्रेष्ठ परम्पराएँ हैं। आधुनिक मराठों की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ वंशानुक्रम के नियमों की प्रमाण हैं।

शिवाजी के नेतृत्व में मराठों का अभ्युदय ऐसी समस्या है जिसका आधुनिक समय में भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा पूर्ण विश्लेषण और परीक्षण हो चुका है। जाति की हैसियत से मराठों की नसों में निस्सन्देह कुलीन रक्त और महान् परम्पराएँ प्रवाहित हैं जो उन्हें मौर्य, राष्ट्रकूट, चालुक्य और यादव सदृश राजसी पूर्वजों से कालक्रम में प्राप्त हुई हैं। बाद के काल में उत्तर भारत से समय-समय पर राजपूत जातियों में से उदाहरणार्थ परमार (आधुनिक पवार), सोलंकी, भोसले, घोरपड़े; मोहिते, महादिक, गूजर, शिर्के, सावन्त, घाटगे, माने, डफले और अनेक मवाल देशमुख आये। इनके आगमन से मूलवंश में और अभिवृद्धि हुई। इनमें से कुछ ने अपने कुलों के नये नाम रख लिए। कुछ ने ये नाम उन स्थानों के आधार पर रखे जहाँ दक्षिण में वे बसे, और कुछ ने अन्य कारणों से। उदाहरणार्थ फल्टन के निम्बालकर वस्तुत: में धार के परमार हैं जो मालवा में अपनें निवास-स्थानों से मुस्लिम विजेताओं द्वारा निर्वासित किये जाने पर दक्षिण

में निम्बालक स्थान पर आकर बस गये। इस गाँव के नाम पर उनका आधुनिक नाम पड़ गया। इसी तरह विश्वास है कि राजपूताना से भोसले लोग आए और दौलताबाद के समीप वेरूल के पास बस गये। शिवाजी की माता जाधव परिवार की थीं, जो निस्सन्देह देवगिरि के शासक यादवों के वंशज थे। वे अपने राजसी पूर्वजों द्वारा शासित प्रदेश में अपना दबा हुआ अस्तित्व किसी प्रकार बनाये हुए थे। घोरपड़े वास्तव में भोसलों की एक शाखा है। इनके वंश का यह नाम इनके एक पूर्वज के कारण पड़ गया, जिसने एक घोरपड़ (गोह) के रस्सा बाँधकर, किले पर चढ़कर, उसे जीता था। मवाल घाटी के बहुत से देशमुखों जैसे जेधे, बण्डल, खोपड़े, पसलकर, सिलिमकर आदि के वर्त्तमान नाम उस समय पड़े जब वे पूना के पश्चिम में आकर बस गये और उन्होंने शिवाजी के आरम्भिक सहचरों के रूप में यश अर्जित किया।

११. महाराष्ट्र में नवजीवन—टेम्पल ने लिखा है,[२०] "मराठा-प्रदेश युद्ध-कौशल की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और सुन्दर भी बहुत है। इसका बहुत सा अंग तो घाट-पर्वतों के बीच में है या उनकी पर्वतमालाओं के समीप। दक्षिण-पश्चिम की मानसून अरब सागर के बादलों को सह्याद्रि पर्वतमाला की चोटियों से टकरा देती है, जिससे नियमित रूप में पर्याप्त वृष्टि होती है। इससे अन्न और शाकभाजी बहुलता से उत्पन्न होते हैं तथा पर्वतों के लम्बाकार पक्षों से असंख्य झरने बह निकलते हैं।"

टेम्पल ने आगे लिखा है, "ये पर्वत उर्वर और जनसंकुल प्रदेश के बीच में हैं। उनके दोनों ओर सुन्दर घाटियाँ, खेती के मैदान, असंख्य ग्राम और बड़े-बड़े कस्बे हैं। इस प्रकार विद्रोहियों और सैनिकों को यहाँ पर एक पूर्ण सैनिक अड्डा सुप्राप्य है, जहाँ रण-सामग्री प्राप्त करने के साधन उपस्थित हैं और जहाँ पर अनेक गढ़ हैं जिनमें शक्ति-संचय हो सकता है और शरण ली जा सकती है। लगभग

२० 'ओरियण्टल एक्सपीरियेन्स', पृ० ३४५।

५०० मील उत्तर से दक्षिण की ओर इस देश का विस्तार है और इसमें अनेक सुदृढ़ गढ़ हैं, जो वास्तव में अजेय हैं। इनमें से कई की ऐतिहासिक परम्परा है। पुराने समय में इन पर्वतों के आर-पार कोई अच्छी सड़क भी न थी। पैदलों और लद्दू जानवरों के लिए ढालू और ऊँची-नीची पगडण्डियों को छोड़कर गाड़ियों के आवागमन के लिए कोई साधन न थे। पश्चिमी घाटों की इस पर्वतमाला ने मराठों को इस योग्य बनाया कि वे अपने मुसलमान विजेताओं के विरुद्ध विद्रोह कर सकें, मुगलों की सम्पूर्ण शक्ति के सामने अपनी राष्ट्रीयता को पुन: प्रदर्शित कर सकें और अपना साम्राज्य स्थापित कर सकें। इसका ध्यान रखना चाहिए कि अँग्रेजों ने जिस प्रमुख शक्ति और विस्तीर्णतम राजसत्ता को परास्त किया वह मराठों की ही थी। अँग्रेजों को उन्हीं के विरुद्ध कठोरतम और रक्तरंजित युद्ध करने पड़े।"

टेम्पल आगे लिखता है, "इन पश्चिमी पर्वतों का राजनीतिक महत्त्व वास्तव में आश्चर्यकारी है। प्रथम, ये अपने निवासियों में दृढ़, सहनशील, साहसिक और निर्द्वन्द भावना भर देते हैं। द्वितीय, उनमें अनेक गढ़ और कोट ऐसे हैं जिनमें ये लोग शत्रु से अधिक परेशान होने पर शरण ले सकते हैं। बीजापुर और अहमदनगर के मुस्लिम शासकों द्वारा इन्हें विजित करने के प्रयास का सामना दीर्घकाल तक और सफलतापूर्वक किया गया। तृतीय, ये उर्वर प्रदेशों के बीच में स्थित हैं। अत: इनके निवासी लूटमार के लिए या उपद्रव के लिए ज़बर्दस्त धावे कर सकते हैं, जैसे कि चील अपने घोंसले से अपने शिकार पर झपटती है। इन अकस्मात् धावों के बाद वे शीघ्रता से लूट, खजाना और अन्य वैसी ही वस्तुएँ पहाड़ियों पर ले जा सकते हैं। यदि वे एक बार ठिकाने पर पहुँच गये तो उनके निकट जाना दु:साध्य हो जाता है।" मराठा इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जब कि सरकारी अधिकारियों ने अपनी बहुमूल्य चीजों और महिलाओं को इन पहाड़ी कोटों में पहुँचा दिया और इस प्रकार उनको शत्रु के हाथ में पड़ जाने से बचा लिया। इन गढ़ों पर

अधिकार प्राप्त करने के लिए विभिन्न मराठा जातियों के बीच भी कठिन युद्ध हुए हैं। मराठों के लिए इस प्रकार ये प्रदेश महत्ता, शक्ति और साम्राज्य के निर्माण-स्थल बन गये।

महाराष्ट्र और उसके निवासियों की स्थिति के उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जायगा कि मुस्लिम विजेता कभी भी इस देश को पूर्णरूपेण अपने अधीन न कर सके। स्वायत्त शासन की प्रचलित पद्धति के कारण जनता की स्वतन्त्रता न्याय और सुरक्षा के मामले में सुरक्षित रही। युगों तक विभिन्न जमीदारों ने व्यवहार में स्वाधीनता का उपभोग किया। इस प्रदेश की प्राकृतिक दशा और इसके निवासियों की मानसिक बनावट भारत के अन्य भागों से सर्वथा भिन्न है। महाराष्ट्र के निवासियों में विद्रोह और स्वाधीनता की भावना सदैव बनी रही है। उनको संगठित करने के लिए केवल एक सुयोग्य नेता की आवश्यकता रही है। ऐतिहासिक विवेचना में यह एक कठिन प्रश्न रहा है कि सुयोग्य नेता का आकस्मिक आगमन जनता के चरित्र को प्रभावित करता है और उनसे राष्ट्र की सेवा कराता है अथवा लोगों की परिस्थिति एवं उनकी आवश्यकता नेता को जन्म देती है। हम निश्चय रूप से किसी बात का समर्थन नहीं कर सकते। प्रायः दोनों में आंशिक सत्य है। कार्लाइल का कथन है—"नेता अपने समय का निर्माता और समय द्वारा निर्मित दोनों ही होता है।" क्रान्तियाँ सदैव सफल नहीं होतीं क्योंकि प्रत्येक स्थिति में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियाँ अनिवार्य होती हैं।

अगले अध्याय में हम भोसलों की शक्ति के उदय पर प्रकाश डालेंगे। जिन कई कारणों से इस उदय को सुविधाएँ मिलीं और गति में शीघ्रता आई, उनके अतिरिक्त शिवाजी के पूर्वजों में राजत्व और स्वाधीनता की दो परम्पराएँ और हैं—पहली उन्हें अपनी माता से प्राप्त हुई थी जिसके साथ उसके पूर्वजों—यादवों—के राजकीय शासन के वैभव की स्पष्ट स्मृति सम्बद्ध थी; और दूसरी अपने पिता शाहजी से प्राप्त हुई थी जिन्होंने अपने जीवन के वीरतापूर्ण कार्यों के

लिए प्राचीन विजयनगर साम्राज्य की रंगभूमि से संकेत प्राप्त किया था, जिसकी परम्पराएँ उस समय तक पूर्णतः विस्मृत नहीं हुई थीं। बहमनी राज्य यद्यपि प्रकृति से मुस्लिम था, किन्तु इन अवशिष्ट परम्पराओं को नष्ट करने में असमर्थ रहा। विजयनगर साम्राज्य का यथार्थ प्रभाव जो महाराष्ट्र पर उदाहरणार्थ कर्हाड़, संगमेश्वर, प्रभावली और अन्य स्थानों पर पड़ा, इस समय तक दादो नरसिंह की कहानियों में तथा काले और गोरे खोजों द्वारा किये गये उपनिवेशीकरण में सुरक्षित है।[२१] आगे आप देखेंगे कि शिवाजी के पिता ने अपने जीवन के कार्य प्राचीन विजयनगर के प्रदेशों में ही सम्पन्न किये।

---

२१ इन लघु-कथाओं में विजयनगर के हिन्दू और मुस्लिम शासकों, बीदर और कर्हाड़ व कोल्हापुर के सिलाहार राजाओं द्वारा पश्चिमी प्रदेशों के उपनिवेशीकरण और शासन का विवरण है। इन कार्यों का व्यौरा बहुत से स्रोतों से मिलता है, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—'शिवचरित्र साहित्य', खण्ड १, संख्या २; 'सरदेसाई बखर' (उस परिवार के इतिहास में), खण्ड १, पृ० ४९–५३; 'राज', खण्ड ८, पत्र १ व २; राजवाड़े प्राक्कथन, पृ० ४१८; 'राइज आफ द मराठा पावर', पृ० ३३ आदि।

तिथिक्रम

अध्याय २

१५५२	मालोजी भोसले का जन्म।
१५९२	शाहजहाँ का जन्म।
१५ मार्च, १५९४	शाहजी भोसले का जन्म।
१५९४	बुरहान निजामशाह की मृत्यु। मुगलों का दक्षिण पर आक्रमण।
१५९७	बाबाजी भोसले की मृत्यु।
१५९९	अकबर का दक्षिण में प्रयाण।
१५९९–१६३१	मुर्तजा निजामशाह का देवगिरि में शासन।
१६००	चाँदबीबी द्वारा अहमदनगर की रक्षा।
१९ अगस्त, १६००	अहमदनगर का पतन : बादशाह बहादुरशाह बन्दी।
१६०५	अकबर की मृत्यु; जहाँगीर का राज्यारोहण।
५ नवम्बर, १६०५	शाहजी और जीजाबाई का विवाह।
१६०८	जहाँगीर द्वारा दक्षिण विजय का प्रारम्भ।
१६०९	मलिक अम्बर के पुत्र फतेहखाँ का बीजापुर में विवाह।
४ फरवरी, १६१६	रोशनगाँव का युद्ध, अम्बर की हार।
१६ अक्टूबर, १६१६	मलिक अम्बर के विरुद्ध अजमेर से खुर्रम का प्रयाण।
१२ अक्टूबर, १६१७	जहाँगीर का माण्डू में निवास।
१० नवम्बर, १६१६	विजयी खुर्रम की माण्डू में अपने पिता के पास वापिसी।
१६१९	शम्भाजी का जन्म।
१६२०	मालोजी भोसले की मृत्यु।
४ अप्रैल, १६२१	मलिक अम्बर को दण्ड देने के लिए शाहजहाँ का बुरहानपुर पहुँचना।
२४ मार्च, १६२२	मलिक अम्बर के आत्म-समर्पण के बाद शाहजहाँ की उत्तर को वापिसी।
नवम्बर १६२४	भटवाड़ी का युद्ध। अम्बर द्वारा मुगलों की पराजय।
१६२५	शाहजी का अम्बर को छोड़कर बीजापुर के साथ हो जाना।
१४ मई, १६२६	मलिक अम्बर की मृत्यु। फतेहखाँ का मन्त्री बनना।
अक्टूबर १६२६	शाहजादा परवेज का देहान्त।

६ अप्रैल, १६२७	शिवाजी का जन्म।
१२ सितम्बर, १६२७	इब्राहीम आदिलशाह की मृत्यु; मुहम्मदशाह उत्तराधिकारी।
२६ अक्टूबर, १६२७	सम्राट् जहाँगीर की मृत्यु।
१६२८	निजामशाह द्वारा फतेहखाँ बन्दी।
१६२८	निजामशाही सेवा में शाहजी का पुनरागमन।
४ फरवरी, १६२८	शाहजहाँ का सम्राट् होना।
२५ जुलाई, १६२६	निजामशाह द्वारा लकजी जाधवराव की पुत्रों व पौत्र सहित हत्या।
३ दिसम्बर, १६२६	आगरा से शाहजहाँ का दक्षिण को प्रस्थान।
१६३०–१६३१	दक्षिण में भीषण अकाल।
नवम्बर १६३०–मार्च १६३२	शाहजी द्वारा मुगल-सेवा स्वीकार करना।
१६३०	आदिलशाही सेनानायक मुरार जगदेव द्वारा पूना का जलाना।
१८ जनवरी, १६३१	निजामशाह द्वारा फतेहखाँ को स्वतंत्र करके पद पर बहाल करना।
मार्च १६३१	फतेहखाँ द्वारा निजाम की हत्या और मुगलों की अधीनता स्वीकार करना।
७ जून, १६३१	शाहजहाँ की पत्नी मुमताजमहल की बुरहानपुर में मृत्यु।
१० जून, १६३१	खाँजहाँ लोदी का लड़ते हुए मरना।
मार्च १६३२	शाहजहाँ का आगरा को प्रस्थान।
७ जून, १६३३	महाबतखाँ द्वारा दौलताबाद पर अधिकार।
सितम्बर १६३३	शाहजी द्वारा पेमगिरि में नये निजामशाही राजकुमार को गद्दी पर बिठाना।
२३ सितम्बर, १६३३	मुगलों के विरुद्ध शाहजी और मुरार जगदेव का ऐक्य।
२६ अक्टूबर, १६३४	महाबतखाँ की मृत्यु।
२६ सितम्बर, १६३५	शाहजहाँ का आगरा से दक्षिण के लिए प्रस्थान।
जनवरी १६३६	शाहजहाँ का दौलताबाद पहुँचना और निजामशाही सल्तनत के अन्त की घोषणा।
६ मई, १६३६	शाहजहाँ का बीजापुर से सन्धि करना और आगरा के लिए प्रस्थान।
१७ अगस्त, १६३६	महुलीगढ़ में शाहजी का घिरना।
अक्टूबर १६३६	शाहजी द्वारा मुगलों को आत्म-समर्पण और बीजापुर के लिए प्रस्थान।

अध्याय २

उदीयमान सूर्य शाहजी

[रोशनगाँव से माहुली तक--१६१४-१६३६]

१. परिस्थिति का पर्यवेक्षण । २. भोसले परिवार । ३. रोशनगाँव का युद्ध । ४. शाहजी का विवाह; शिवाजी का जन्म । ५. भटवाड़ी का युद्ध । ६. खाँजहाँ लोदी का विद्रोह । ७. निजामशाह के विरुद्ध शाहजहाँ का प्रयाण । ८. शाहजी द्वारा प्रबल प्रतिरोध । ९. दो महापुरुषों से शिक्षा ।

१. परिस्थिति का पर्यवेक्षण, १६०५—यदि हमें भोसलों की राजकीय सत्ता का उदय समझना है तो हमें सोलहवीं शताब्दी के अन्त के समीप महाराष्ट्र की राजनीतिक स्थिति का ध्यान रखना पड़ेगा। उत्तर भारत में अपने साम्राज्य को सुसंगठित करने के बाद महान् सम्राट् अकबर ने निश्चय किया कि नर्मदा के दक्षिण के प्रदेशों को अधीन किया जाय, किन्तु उसको मालूम हो गया कि यह कार्य उतना सरल नहीं है जितना कि पहली विजयें थीं। लगातार तीन सम्राटों को अपनी शक्ति व्यय करनी पड़ी, तब कहीं दक्षिण में थोड़ी सी प्रगति हो सकी।

१५९४ ई० में अहमदनगर के बुरहान निजामशाह की मृत्यु के परिणामस्वरूप जल्दी-जल्दी होने वाली हत्याओं और षड्यन्त्रों का ताँता लग गया। राज्य में होने वाली उथल-पुथल का लाभ अकबर ने उठाया और विजयार्थ तुरन्त ही एक सेना रवाना कर दी। इस संकट के समय सुप्रसिद्ध चाँदबीबी ने डट कर सामना किया। उसने प्रबल विरोध का संगठन किया और कुछ वर्षों तक वीरतापूर्वक अहमदनगर की रक्षा की। आखिरकार १५९९ ई० के लगभग मध्य में

अपने विश्वस्त सेनापति अबुलफजल के निमन्त्रण पर अकबर ने स्वयं दक्षिण की ओर प्रयाण किया और बिना प्रतिरोध के बुरहानपुर पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र दानियाल और खानखाना को यह जिम्मेदारी दी गई कि वे आन्तरिक कलह के काल में जब रक्षा का कार्य ढीला हो जाय तो अहमदनगर पर कब्जा कर लें। एकमात्र सुयोग्य नेत्री चाँदबीबी या तो कत्ल कर दी गई या उसे अपने ही सेवकों के हाथों विष पीना पड़ा। अगस्त १६०० ई० में बड़ी सुविधा से नगर पर फौजें छा गई और उसी मास की १६ तारीख को नगर ने नियमित रूप से आत्मसमर्पण कर दिया। नवयुवक बादशाह बहादुरशाह और उसके परिवार ने स्वाधीनता के अपराध का दण्ड ग्वालियर के गढ़ में आजीवन बन्दी रह कर भोगा। सफलता के इस क्षण में अकबर को सन्देश मिला कि उसके पुत्र सलीम ने विद्रोह कर दिया है, फलतः वह शीघ्रता से उत्तर को लौटने के लिए बाध्य हुआ।[१] इसके पश्चात् उसके भाग्य का सितारा डूबने लगा और १६०५ ई० में बिना योग्य उत्तराधिकारी छोड़े ही उसका देहान्त हो गया।

सम्भव है कि मराठों के इतिहास की गति कुछ और ही होती यदि आलसी, लापरवाह, विलासप्रिय जहाँगीर की जगह कोई अधिक सुयोग्य शासक अकबर का उत्तराधिकारी हो जाता। उसके चरित्र के इन लक्षणों से मराठा-महत्त्वाकांक्षा का मार्ग खुल गया। अपनी ही स्वार्थ-सिद्धि के लिए नीति-निपुण मलिक अम्बर ने मराठों को प्रोत्साहन दिया। मलिक अम्बर अबीसीनिया का मुसलमान था। किशोरावस्था में इसे गुलाम बनाया गया था। बगदाद का एक व्यापारी इसे भारत लाया और अहमदनगर के सुल्तानों के एक मन्त्री चंगेज़खाँ के हाथ बेचा गया। इसने अम्बर की योग्यता परख ली और उसे निजामशाही राज्य की सेवा के लिए दक्ष बना दिया। उसने थोड़े ही समय में दक्षिण में शक्ति संचित कर ली और पन्द्रह

---

१ विन्सेण्ट स्मिथ लिखित 'अकबर', पृ० २७७।

वर्षों से अधिक समय तक सम्राट जहाँगीर के सब प्रयासों को विफल करता रहा। वास्तव में उसने मराठा सरदारों की सहायता से तत्कालीन दक्षिण के इतिहास का पुनः निर्माण किया। अबीसीनिया से आने वालों को यहाँ नागरिक प्रशासन, फौजों के नियन्त्रण एवं समुद्री और स्थल-युद्ध में निपुणता प्रदर्शित करने के ऐसे अवसर प्राप्त हुए जैसे और कहीं न मिले थे। उत्तर भारत के समान वे यहाँ घरेलू गुलाम और महलों के हिजड़े न थे। यहाँ वे राज्यों के अभिभावक, सेनाओं के उच्चतम अधिकारी, जहाजी बेड़ों के नौ-सेनापति और प्रान्तों के राज्यपाल थे।

अहमदनगर के पतन से मलिक अम्बर निरुत्साहित न हुआ, उसने एक के बाद एक परेण्डा, जुन्नार और दौलताबाद को नये सुल्तान मुर्तजा निजामशाह (१५९९-१६३१ ई० तक) के अस्थायी सुरक्षित निवास-स्थानों के रूप में चुना। वह स्वयं प्रजा के कल्याण साधन के साथ-साथ निपुणता से युद्ध और कूटनीति के संचालन में संलग्न रहा। अन्त में उसने दौलताबाद के दुर्जेय गढ़ में शाह को सुरक्षित कर दिया। उस गढ़ के समीप ही खड़की में उसने प्रशासन के लिए एक अन्य नगर की स्थापना की। जब १६३६ ई० में अपने पिता की ओर से औरंगजेब दक्षिण का राज्यपाल नियुक्त होकर आया तो इस नगर का नाम औरंगाबाद पड़ा।

मराठों के विभिन्न वंश दक्षिण के तीन मुसलमान शासकों में से किसी न किसी की सेवा में अपना ख्याति-रहित जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस समय अपनी स्वाधीनता की स्थापना का विचार शायद ही उनके ध्यान में आया होगा। उनमें से दौलताबाद के समीप सिन्द-खेड़ के निवासी जाधव निजामशाह की सेवा में उच्च स्थानों पर थे। आरम्भ में भोसले अपेक्षाकृत तुच्छ थे। शिवाजी के पितामह मालोजी भोसले जाधवों की सेवा में साधारण घुड़सवार थे। भोसलों के खानदानी भाई घोरपड़े बीजापुर के आदिलशाह की सेवा में थे और मुधोल में उनके पास एक छोटी जागीर भी थी। सतारा के पश्चिम के पहाड़ी प्रदेश में मोरे परिवार बीजापुर की नाममात्र की

सेवा करता हुआ लगभग राजसी सत्ता और प्रभाव का उपभोग करता था।

जहाँगीर ने दक्षिण को अधीन करने की अपने पिता की नीति का अवलम्बन १६०८ ई० में किया। यह युद्ध लगभग १६३६ ई० तक चालू रहा और अन्त में निज़ामशाही राज्य के अस्तिव को मिटा देने में शाहजहाँ सफल हो गया। मालोजी और शाहजी भोसले इस लम्बे युद्ध-काल में ही मलिक अम्बर के सहायकों के रूप में प्रसिद्ध हो गये। दोनों पक्षों के सरदारों के नामों से और विविध रोमांचक घटनाओं से इस समय का इतिहास भरा पड़ा है। सौभाग्य से दो स्वतन्त्र ग्रन्थों, फ़ुज़ुनी अस्तरावादी लिखित फारसी में मलिक अम्बर के वृत्तान्त और परमानन्द लिखित 'शिवभारत' नामक संस्कृत ग्रन्थ से हमको पर्याप्त सहायता मिलती है, जिनकी सहायता से हम इस संघर्ष की मुख्य कथा को लगभग यथार्थ रूप में ज्ञात कर सकते हैं।

मलिक अम्बर ने अपने अल्प साधनों से १५ वर्ष तक किस प्रकार मुगल सम्राट् की शक्ति का सामना किया, युद्ध-कला के इतिहास में यह एक समस्या है, जबकि मुगल सम्राट् के पास अतुल धन और साधन थे और परवेज़ और खुर्रम जैसे सुयोग्य राजकुमार और सेनापति इनका संचालन करते थे। दक्षिणी प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति के अनुकूल गतिविधि को अपनाकर और शत्रु से युद्ध करने की एक विशेष शैली का विकास करके मलिक अम्बर ने मुगलों का प्रतिरोध किया। यह गुरिल्ला युद्ध-कला के नाम से प्रसिद्ध है और आगे चलकर शिवाजी ने अपने विरोधियों के विरुद्ध इस शैली का अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया।

२. भोसले परिवार—शिवाजी का परिवार उदयपुर के सिसोदिया राणाओं से अपनी उत्पत्ति मानता था। किन्तु भोसले शब्द की उत्पत्ति का सन्तोषजनक विवरण नहीं मिलता। इसमें सन्देह नहीं कि कई वर्तमान मराठा परिवारों के पूर्वज, जैसा कि प्रथम अध्याय में बताया गया है, उत्तर से आकर महाराष्ट्र में बस गये

थे। ये आज भी राजपूत या क्षत्रिय रक्त के ही प्रतिनिधि हैं। एक दन्तकथा प्रचलित है कि जब अलाउद्दीन खिलजी ने चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ (१३०३ ई०) में चित्तौड़गढ़ पर अधिकार कर लिया तो राजाओं के शासक परिवार का एक व्यक्ति सज्जनसिंह या सुजानसिंह विदेशियों की विजय के कष्टों से बचकर भाग निकला। वह मुहम्मद तुगलक के क्षुब्ध शासन-काल में आजीविका की खोज में दक्षिण प्रदेशों में भ्रमण करता रहा। सज्जनसिंह का देहान्त लगभग १३५० ई० में हुआ और उसके पाँचवें वंशज उग्रसेन के दो पुत्र हुए—कर्णसिंह और शुभकृष्ण। कर्णसिंह के पुत्र भीमसिंह को बहमनी सुल्तान से "राजा घोरपड़े बहादुर" की उपाधि और मुधौल में ८४ गाँवों की जागीर मिली। इस स्थान पर आज भी इस वंश का शासन है। इस प्रकार भीमसिंह के वंशज घोरपड़े कहलाने लगे। इस समय महाराष्ट्र के विभिन्न स्थानों में इनकी अनेक शाखाएँ व्याप्त हैं। शुभकृष्ण के वंशज भोसले कहलाते हैं और मूल परिवार के छुटभइयों में से हैं।[२]

शुभकृष्ण का एक पौत्र बाबाजी भोसले था, जिसका देहान्त १५९७ ई० में हुआ। बाबाजी के दो पुत्र थे—मालोजी (जन्म सन् १५५२ ई०) और बिठोजी। जो घटनाएँ हमारे प्रस्तुत अध्ययन का

२ भोसले परिवार के उदयपुर के राणाओं से निकास को पूरी तरह सिद्ध नहीं किया जा सका है। मुधौल के राजा के पास फारसी में कुछ फरमान की नकलें (असल नहीं) हैं; उन्हीं से इसकी पुष्टि की गई है। कुछ विद्वान् उन्हें नहीं मानते। भोसलों की उत्पत्ति का प्रश्न शिवाजी के राज्याभिषेक के समय उठ खड़ा हुआ था, जब क्षत्रिय रीति को अपनाने से शिवाजी को वंचित किया गया। इस सम्बन्ध में शिवाजी का २८ जनवरी, १६७७ का परिपत्र पढ़ा जाय, जिसे बालकृष्ण सखाराम कुलकर्णी ने 'ओल्ड हिस्टोरीकल डौक्यूमेण्ट' (सतारा चिटनिस परिवार) नं० ३ के पृ० ४१ पर छापा है। इसमें उन्होंने परिवार के सभी सदस्यों को एकत्रित किया और उन्हें जातिगत व्यवहारों में विक्षेपों को त्यागकर शास्त्र-विहित कार्य करने हेतु प्रेरति किया। कुछ लोग भोसलों को होयसल का बिगड़ा रूप मानते हैं। यह परिवार द्वारसमुद्र पर शासन करता था। लेकिन होयसलों को यादवों की शाखा बताया जाता है। जीजाबाई स्वयं यादव परिवार की थीं, अतः उनका दूसरे यादव परिवार से विवाह-सम्बन्ध होना सम्भव नहीं है।

विषय हैं उनसे ये तीन व्यक्ति घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं—मालोजी, उनके पुत्र शाहजी और शाहजी के पुत्र शिवाजी। इन भोसलों ने गोदावरी और भीमा नदियों के प्रदेश में दौलताबाद के समीप वेरूल और कुछ अन्य ग्रामों की मुखियागीरी या पाटिलकी मोल ले ली और अपनी खेतीबारी के प्रबन्ध और निजामशाही के अधीन सैनिक सेवा करके अपना जीवन-निर्वाह करने लगे। साधारणतया भोसले परिवार के लोग उद्योगी, सूझबूझ रखने वाले और आत्म-विश्वासी थे। वे प्रबल इच्छा-शक्ति वाले अभिमानी पुरुष थे जो तिरस्कार सहन नहीं कर सकते थे। उनका परिवार बड़ा था और वे एक दूसरे के सहायक थे।[3]

मालोजी और बिठोजी विशालकाय और पुष्ट शरीर के थे। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि दक्षिणी घोड़े उन्हें उठा भी नहीं सकते थे। वे वेरूल (एल्लोरा), दौलताबाद के समीप एक ग्राम, के पाटिल थे और दौलताबाद के समीप सिन्दखेड़ के सरदार लुकजी जाधवराव की सेवा में अंगरक्षक थे। अहमदनगर के पतन के बाद दौलताबाद निजामशाही राज्य की राजधानी हो गया। देवगिरि के पदच्युत राजवंश का वंशज लुकजी उस समय निजामशाही की सेवा में प्रथम श्रेणी का सामन्त था और दक्षिण की राजनीति में उसका प्रभाव था। लुकजी जाधव के अधीन भोसले भ्राताओं को नौकरी मिली और साथ ही वे वेरूल और अन्य गाँवों में अपनी पुरानी जमीन का प्रबन्ध भी करने लगे।

भारतीय महाद्वीप के उत्तरी और दक्षिणी अर्धभागों की मुख्य सीमा-रेखा नर्मदा नदी से बनी हुई है। इस नदी को पार कर उत्तर की ओर से आने वाली विजयी सेनाओं को अपना आधिपत्य जमाने के लिए जिस महत्वशाली स्थान को अपने अधिकार में करना आवश्यक है, वह स्थान है ताप्ती नदी पर बुरहानपुर और उसका

---

३ समकालीन लेखों में उनके नाम के साथ आदरसूचक शब्द "राजे" जुड़ा हुआ है, जैसे मालोजी राजे, खेलोजी राजे, बिठोजी राजे आदि। इस राजे शब्द का तात्पर्य राजत्व से नहीं है। अनेक मराठा जातियों में नाम के साथ राजे शब्द लगा देने का आम चलन था। यह चलन अब भी प्रचलित है।

रक्षक गढ़ असीरगढ़। दूसरा अग्रिम स्थान दौलताबाद, एल्लोरा और औरंगाबाद का क्षेत्र है जो बुरहानपुर के दक्षिण में करीब १०० मील पर है। और भी आगे बढ़कर करीब ७५ मील दक्षिण में अहमदनगर है जो उत्तरी विजेता के लिए दक्षिण को अधीन रखने की मुख्य कुञ्जी है। इस प्रकार बुरहानपुर, औरंगाबाद और अहमद-नगर मोर्चों की मुख्य शृङ्खला का निर्माण करते हैं। यही विकट संघर्ष का प्रदेश है, जिसके चतुर्दिक मुगल अभियान और मराठा प्रतिरोध की प्रस्तुत कहानी घूमती है।

३. रोशनगाँव का युद्ध—मलिक अम्बर में संगठन कार्य के लिए सूक्ष्म अनुभव, शक्ति और अद्भुत योग्यता थी। बीजापुर के बुद्धिमान शासक इब्राहीम आदिलशाह से उसने मित्रता करली। १६०९ ई० में आदिलशाह ने अपनी राजधानी में अपनी देख-रेख में और अपने व्यय पर मलिक अम्बर के पुत्र फतेहखाँ के विवाह का प्रबन्ध किया—अर्थात् ठीक उस समय जब जहाँगीर की सेनाएँ आगरा से अहमदनगर के विरुद्ध प्रयाण कर चुकी थीं। मलिक अम्बर ने निजामशाही राज्य की अनेक प्रकार से उन्नति की। उसकी प्रतिभा निजामशाही राज्य के इस प्रकार शासन करने में, जिसके द्वारा उसने कृषक-वर्ग को अपना उत्तम समर्थक बना लिया, सबसे अधिक प्रकट होती है। अपनी भूमिकर-निर्धारण-योजना से मलिक अम्बर को अपूर्व ख्याति प्राप्त हुई और वह बाद के शासकों के लिए आदर्श बन गई। कृषि और उद्योग को उसने इतना प्रोत्साहन दिया कि देश समृद्ध हो गया और उससे नियमित आय होने लगी। यद्यपि वह मुसलमान था, फिर भी हिन्दू लोग उसके शासन की सराहना और आदर करते थे। उसका शासन धार्मिक अत्याचार से रहित था फ़लतः हिन्दू उसके श्रेष्ठ मित्र हो गये।

यहाँ इन बातों पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि जहाँगीर ने कौन-कौन से अभियान दक्षिण पर किये और उन्हें निरस्त करने के लिए मलिक अम्बर ने कौन-कौन से उपाय किये। १६०८ ई० में जहाँगीर ने दक्षिण के शासन के लिए अब्दुर्रहीम

खानखाना को नियुक्त किया, जो दरबार का महान् और वीर सामन्त था और अकबर के समय के ख्याति-प्राप्त बैरमखाँ का पुत्र था। यह सेनापति पहले दक्षिण में कार्य कर चुका था। जब यह निश्चित स्थान पर भारी सेना लेकर पहुँचा तो मलिक अम्बर ने बड़ा विनीत भाव धारण किया और लागू की गई शर्तों को स्वीकार कर खुले युद्ध को टाल गया। इस प्रकार उसने तैयारी करने का समय निकाल लिया। इधर सम्राट् अधीर हो रहा था। उसने अपने पुत्र परवेज़ के अधीन कई अनुभवी सेनापतियों के साथ बहुत बड़ी सहायक सेना भेज दी। तत्पश्चात् उसने खानखाना को वापस बुला लिया और उसके स्थान पर उसी के पुत्र शाहनवाजखाँ को नियुक्त कर दिया। परवेज़ और शाहनवाज दोनों ने युवकोचित पौरुष से काम लिया और चौमुखी युद्ध आरम्भ कर दिया जो निर्णय होने तक ३-४ वर्ष तक चलता रहा।

मलिक अम्बर ने निजामशाह के पक्ष में, जालना के समीप, अपनी सेनाओं को मुगलों का सामना करने के लिए संगठित किया। मुसलमान सेनापतियों के साथ-साथ उसके अधीन "जदुराव, बाबाजी कान्ते, भोसले, माहुर का उदाराम ब्राह्मण और मराठा वंश के अन्य सामन्त" भी थे। दोनों पक्षों से भारी प्रलोभन दिये गये। राजकुमार परवेज़ और शाहनवाजखाँ ने कुछ निजामशाही सेनानायकों को प्रलोभित किया जिससे "आदमखाँ हबशी, याकूत खाँ, जदुराव, बाबाज़ी कान्ते और उदाराम ब्राह्मण ने अपने स्वामी को त्याग दिया और मुगल-सेवा स्वीकार कर ली।" अन्त में जालना से करीब १० मील पश्चिम में दुधना नदी के मोड़ पर रोशनगाँव में ४ फरवरी, १६१६ को लड़ाई हुई, जिसमें मलिक अम्बर की सेनाओं की भारी पराजय हुई।"[४]

---

४ देखिये सर यदुनाथ द्वारा लिखित "मलिक अम्बर", इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, १९३३-३४। यह स्पष्ट है कि रोशनगाँव के युद्ध के पूर्व लखजी जाधवराव पहली बार मुगलों से मिल गया था, यद्यपि अब फिर वह अपने मित्रों से आ मिला। फिर भी उसका अस्थिर आचरण बना रहा और अन्त में १६२९ ई० में उसकी हत्या कर दी गई।। रोशनगाँव में मलिक अम्बर के साथ लड़ने वाला भोसले मालोजी ही रहा होगा।

मलिक अम्बर भाग निकला और दौलताबाद के अजेय दुर्ग में शरण लेकर उसने अपनी प्राण-रक्षा की। शाहनवाजखाँ ने मलिक अम्बर की नई राजधानी खड़की को भूमिसात् कर दिया और अपरिमित लूट का माल बुरहानपुर उठा ले गया।

राजकुमार परवेज़ पहले ही वापस बुला लिया गया था और शाहनवाज खाँ द्वारा प्राप्त सफलता से भी मुगलों को बहुत अधिक लाभ न हुआ। जैसे ही मुगल सेना वापिस हुई मलिक अम्बर ने अपना पुराना खेल पुनः प्रारम्भ कर दिया और शीघ्र ही अपना छिना हुआ सम्पूर्ण प्रदेश हस्तगत कर लिया। जब मलिक अम्बर की इस नवीन प्रगति की सूचना जहाँगीर को प्राप्त हुई तो उसने खानखानाँ को पुनः दक्षिण का राज्यपाल नियुक्त किया और स्वयं तुरन्त आगरे से अजमेर को प्रयाण किया और वहाँ से अपने तृतीय पुत्र खुर्रम को एक बड़ी सेना देकर मलिक अम्बर के विरुद्ध भेज दिया। खुर्रम १६ अक्टूबर, १६१६ को अजमेर से चल दिया। नर्मदा के पुल पर खानखानाँ, महावतखाँ, खानजहाँ और अन्य प्रसिद्ध मुगल सेनापति उसमें आकर मिल गये, जो पहले से ही दक्षिण में कार्य कर रहे थे। इस बड़े कार्य को बल देने के लिए स्वयं सम्राट् १० नवम्बर, १६१६ को अजमेर से चल पड़ा और घटनास्थल के समीप रहने के लिये माण्डू में अपना निवास-स्थान बना लिया।

खुर्रम ने अविलम्ब प्रबल कार्यवाही प्रारम्भ करदी। आदिलशाह से सहायता और सहयोग की माँग करने के लिए उसने अपने प्रतिनिधि बीजापुर भेजे। मलिक अम्बर और आदिलशाह को अब साहस न हुआ कि वे मुगलों की इस जबर्दस्त प्रगति का मुकाबला करें। उन दोनों ने राजकुमार को मूल्यवान् उपहार भेजे और बिना किसी हिचकिचाहट के बुरहानपुर, औरंगाबाद और अहमदनगर देने को सहमत हो गये। मलिक अम्बर स्वयं राजकुमार की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने विभिन्न गढ़ों की कुंजियाँ और बालाघाट का प्रदेश (अर्थात् बरार) राजकुमार को अर्पित कर दिया। इस विजय पर खुर्रम बहुत प्रसन्न हुआ, जिसमें न तो उसे एक भी गोली चलानी

पड़ी और न एक भी तलवार म्यान से निकली। यह कार्य पूर्ण हो चुका है, यह विश्वास करके इस नवविजित प्रदेश को अपने दो विश्वासपात्र सेनापतियों—खानखानाँ और उसके पुत्र शाहनवाजखाँ—के सुपुर्द कर दिया और स्वयं विजयोल्लास सहित अपने पिता की सेवा में माण्डू पहुँच गया (१२ अक्टूबर, १६१७)। खुर्रम की शीघ्रकारिता और बहुमूल्य उपहारों से जहाँगीर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसे विशेष सम्मान प्रदान कर शाहजहाँ की वैभवशाली उपाधि से विभूषित किया। इसके बाद वह इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। खाँजहाँ लोदी, उदाराम, सम्भवतया लुकजी जाधव भी तथा दक्षिण के अन्य अधिकारी माण्डू आये और सम्राट् का अभिवादन किया। यह विश्वास करके कि दक्षिण पूर्णतया अधीन हो गया है, सम्राट् ने अहमदाबाद को प्रस्थान किया।[५]

परन्तु यह सम्पूर्ण दिखावटी विजय मलिक अम्बर द्वारा रचित एक थोथा दिखावा मात्र थी। उसने अब की बार अपूर्व जोश के साथ प्रत्याक्रमण प्रारम्भ कर दिया। इस कार्य में उसने सर्वप्रथम आदिलशाह और कुतुबशाह दोनों का समर्थन प्राप्त कर लिया। उसने उन्हें समझाया कि समान संकट के विरुद्ध सम्मिलित मोर्चा बनाना उन सब के हित में अति आवश्यक है। तत्पश्चात् उन्होंने मुगल सेना को नर्मदा के पार भगाने के लिये एक विशाल सम्मिलित योजना की तैयारी की। थोड़े ही समय में मुगल राज्यपाल खानखानाँ को उन्होंने इतना परेशान कर दिया कि उसे अधिक सामान और सहायता के लिए सम्राट् की सेवा में दयनीय प्रार्थना भेजनी पड़ी। मलिक अम्बर के अग्रिम जत्थों ने नर्मदा को भी पार कर लिया और वे मालवा में प्रविष्ट हो गये। शाहजहाँ की सफलता के पश्चात् ३ वर्ष की अवधि में जहाँगीर के जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये। अति-भोग से

५ अँग्रेज राजदूत सर टामस रो जनवरी १६१६ में आगरा आया, उसने बादशाह के साथ अजमेर, माण्डू और अहमदाबाद की यात्रा की। अगस्त १६१८ में उसने इंगलैण्ड के लिए प्रस्थान किया। इस काल में मुगल दरबार का उसने विस्तृत वर्णन किया है और सम्राट् द्वारा दक्षिण-विजय के लिए किये गये प्रयासों का परिचय दिया है।

उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। राजसत्ता को हस्तगत करने के लिये दरबार में भयानक षड़यन्त्र रचे जा रहे थे। इनके फलस्वरूप नूरजहाँ और शाहजहाँ में स्पष्ट ईर्ष्या थी। सम्राट् अपनी पुरानी शक्ति और अपना पुराना बल खो बैठा था और अब वह कार्य-भार वहन करने योग्य न रहा था। खानखानाँ की दयनीय प्रार्थनाओं का एकमात्र उत्तर यही हो सकता था कि वह शाहजहाँ से एक बार फिर दक्षिण में जाकर मलिक अम्बर के विद्रोह का दमन करने को कहता।

४ अप्रेल, १६२१ को शाहजहाँ बुरहानपुर पहुँचा। उसने तुरन्त मलिक अम्बर का सबल और सवेग पीछा किया और उसको गोदावरी के उस पार भगा दिया। पूरे वर्ष यह अभियान जारी रहा। स्थिति का सामना करने में अपने को असमर्थ पाकर मलिक अम्बर ने फिर आधीनता स्वीकार कर ली और अपने हस्तगत प्रान्त को छोड़ने के लिए तैयार हो गया। इस बार शाहजहाँ का ध्यान दक्षिण की विजय की अपेक्षा अपने पिता के दरबार की राजनीतिक गति-विधियों पर अधिक केन्द्रित था। उसने मलिक अम्बर के सम्मुख आसान शर्तें रख दीं और चटपट बुरहानपुर को लौट आया तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी भाई खुसरो का खातमा कर २४ मार्च, १६२२ को उत्तर के लिए रवाना हो गया। जहाँगीर के जीवन के अगले ५ वर्ष सत्ता की प्राप्ति के लिए विक्षोभों, गुटबाजियों और षड़यन्त्रों से परिपूर्ण रहे, जिनका सम्बन्ध मुख्यतया नूरजहाँ और शाहजहाँ से था। इन पाँच वर्षों में मुगल साम्राज्य की स्थिति में क्या पेचीदगियाँ रहीं, उनके रूप को पूरी तरह समझना एक विद्यार्थी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इनकी समाप्ति पर जहाँगीर की मृत्यु हो गई और शाहजहाँ उत्तराधिकारी हुआ। इन विषमताओं के कारण मराठों को उनका अभिलषित अवसर प्राप्त हुआ।

---

६ इस समय राजदरबार में चलने वाले षड़यन्त्रों पर दृष्टि रखते हुए पाठक शाहजहाँ के हृदय में अपने भाई खुसरो के प्रति आशंका का ध्यान रखें।

४. शाहजी का विवाह, शिवाजी का जन्म—यह पाँच वर्ष का समय (१६२२–२७) सम्पूर्ण भारत में विप्लवकारी घटनाओं और अत्यन्त विक्षोभ से भरा हुआ है, जिसमें दो महापुरुष—उत्तर में शाहजहाँ और दक्षिण में शाहजी—शनैः-शनैः इतिहास के रंगमंच पर अवतीर्ण होते हैं। शाहजहाँ का जन्म १५९२ ई० में हुआ और शाहजी का उसके दो वर्ष बाद १५ मार्च, १५९४ को। उनकी मृत्यु भी इसी प्रकार क्रमशः १६६६ और १६६४ में एक दूसरे के थोड़े ही अन्तर से हुई। प्रथम की आयु ७४ वर्ष और द्वितीय की ७० वर्ष रही। दोनों ने दक्षिण में एक दूसरे का विरोध निरन्तर लगभग ८ वर्ष (१६२८-१६३६) किया। शाहजहाँ खाँजहाँ लोदी का पीछा करता हुआ दक्षिण में आया। उसका अभिप्राय अहमदनगर के राज्य को समाप्त कर देना था और शाहजी ने अपने समस्त चातुर्य से उसकी रक्षा का भरसक प्रयत्न किया। शाहजहाँ के जीवन से इतिहास सुपरिचित है, परन्तु शाहजी अप्रसिद्ध हैं अतः यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम उनके पूर्वजों और उनके पारिवारिक इतिहास के कुछ तथ्य प्रस्तुत किये जायें, जिनका सम्बन्ध शिवाजी के जीवन से भी है।

इसका वर्णन पहले हो चुका है कि लुकजी जाधवराव, जो देवगिरि के यादव राजाओं का वंशज था, निजामशाही शासकों के अधीन एक शक्तिशाली सामन्त था। उसे भूमि पर अधिकार और उच्च सैनिक पद प्राप्त थे। भोसलों का परिवार भी बड़ा था, जो अपेक्षाकृत गरीब थे और जिनकी पाटिलदारी में दौलताबाद और पूना के बीच में केवल थोड़े से गाँव थे। किंवदन्ति है कि मालोजी भोसले ने लुकजी जाधव के अधीन सेवा स्वीकार की थी और वह उसके महल का द्वारपाल था। एक बार होली के अवसर पर जाधवराव ने मालोजी और अन्य अधीनस्थ कर्मचारियों को रंग और गुलाल खेलने के लिए आमन्त्रित किया। मालोजी अपने साथ सभा में अपने अल्पवयस्क पुत्र शाहजी को ले गया। लुकजी जाधव के जीजाबाई नाम की एक पुत्री थी जो आयु में शाहजी के बराबर थी। उसने दोनों को साथ-साथ बिठा दिया। जब अतिथियों ने रंग की पिचकारियाँ

छोड़नी आरम्भ कीं तो दोनों बच्चों ने भी इस खेल का आनन्द लिया। इस सुखद दृश्य को देखकर जाधवराव के मुख से अकस्मात् यह शब्द निकल गये—"इन दोनों की जोड़ी कैसी भली लगती है?"—मालोजी ने ये शब्द सुन लिये और उसने उच्च स्वर में कहा कि सभा इसकी साक्षी है कि जाधवराव ने अपनी पुत्री की सगाई शाहजी से सब के सामने कर दी है। हँसी-हँसी में कहे हुए शब्दों के लगाये गये इस अर्थ का उसने जोरदार खण्डन किया। वह अपनी तुलना में मालोजी की स्थिति को इतना हीन समझता था कि स्वामी और सेवक के बीच में पारिवारिक सम्बन्ध हो ही नहीं सकता था। इस प्रकार इन दोनों परिवारों में कलह का सूत्रपात हुआ। मालोजी ने किसी अन्य स्थान पर अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए जाधवराव की सेवा छोड़ दी ताकि उतनी उच्च स्थिति बनाले जिससे वह जाधवराव की पुत्री को अपने पुत्र से विवाह करने के लिए माँग सके। उसने शीघ्र ही कुछ धन एकत्रित कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा ली और उच्च वर्ग में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। उसने वेरूल स्थित घृष्णेश्वर (घृष्वीश्वर ?) के प्राचीन जीर्ण मन्दिर की मरम्मत कराई और सतारा के समीप शम्भू महादेव के मन्दिर में एक बड़ा तालाब बनवाया। इस प्रकार उसने वहाँ पानी की कमी को दूर कर दिया, जिससे यात्रियों को बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। मालोजी निस्सन्देह सूझबूझ और स्वतन्त्र प्रवृत्ति का व्यक्ति था।[७] सम्भवतः मलिक अम्बर के द्वारा वह निजामशाह को इस बात पर राजी करने में सफल हो गया कि वह उस विवाह-सम्बन्ध की स्वीकृति दे दे, जिसको जाधवराव ने ठुकरा दिया था। मुगल सम्राट् के विरुद्ध संघर्ष में मालोजी की सेवाओं को अहमदनगर का सुल्तान मानता था, फलतः उसने उसे एक छोटी जागीर प्रदान की जिसमें पूना और सूपा के

---

७ शिवाजी की कीर्ति स्थापित हो जाने के बाद मालोजी और शाहजी के वीरतापूर्ण कार्यों के बड़े प्रशंसात्मक विवरण संस्कृत में लिखे जाने लगे। देखिए "सनद और पत्र", पृष्ठ २११–२१५ और अद्भुत संस्कृत रचना जो शम्भाजी के "दान-पत्र" के नाम से प्रसिद्ध है। परमानन्द ने अपनी कृति "शिवभारत" में भी इसी प्रकार प्रशस्ति लिखी है।

जिले सम्मिलित थे। अब वह जाधवराव की अपेक्षा बड़ा सामन्त हो गया और उसने खुल्लमखुल्ला अपने पुत्र से विवाह के लिये उसकी कन्या माँगी। यह विवाह-संस्कार सिन्दखेड़ में ५ नवम्बर, १६०५ (मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी) को सम्पन्न हुआ। कई वर्ष पश्चात् इस विवाह से शिवाजी का जन्म हुआ।

जीजाबाई से शाहजी के विवाह का समय संयोगवश वही है जो अकबर की मृत्यु और मुगल गद्दी पर जहाँगीर के बैठने का है। दक्षिण को अधीन करने के जहाँगीर के प्रयासों से सम्बन्धित बाद की घटनाओं का वर्णन पहले किया जा चुका है। जब लुकजी जाधवराव ने अपने स्वामी निजामशाह का पक्ष त्याग दिया और वह मुगल सम्राट् के साथ हो गया, तब मालोजी ने पूर्ण स्वामि-भक्ति और अनुराग से मलिक अम्बर का साथ दिया। इससे उस हानि की पूर्ति आवश्यकता से अधिक हो गई। मलिक अम्बर की कूटनीति और युद्ध-शैली भोसला के लिए परम सहायक सिद्ध हुई। उदीयमान शाहजी ने इसका पूर्ण लाभ उठाया। १६२० ई० में मालोजी का देहान्त हो गया और कार्य-भार उसके पुत्र को सँभालना पड़ा जो अब २६ साल का था और हर प्रकार से योग्य था। वह शीघ्र ही मलिक अम्बर का दाहिना हाथ बन गया।

जीजाबाई से शाहजी का विवाह दाम्पत्य-सुख प्रदान न कर सका। जीजाबाई के पिता ने अपने स्वामी का त्याग कर मुगलों का पक्ष अपना लिया। इससे दोनों परिवारों के बीच की खाई और भी गहरी हो गई। बाद को सूपा के मोहिते परिवार में शाहजी ने अपना दूसरा विवाह किया और जीजाबाई अपने पति द्वारा उपेक्षित हो गईं। "शिव-भारत" के लेखक परमानन्द ने लिखा है कि जीजाबाई से शाहजी के छः पुत्र हुए। इनमें से दो सम्भाजी और शिवाजी चिरायु हुए और शेष शिशु अवस्था में ही मर गये।[८] कहा जाता

---

८ तस्य तस्यामजायन्त पुत्राः षट् शुभदर्शनाः।
तेषां मध्ये शंभुशिवौ द्वावेवान्वयवर्धनौ। शि० भा० ८-२३॥

है कि सम्भाजी का जन्म १६१६ ई० में हुआ। इस समय शाहजी की आयु २५ वर्ष की थी।

मालोजी भोसले के देहान्त के पश्चात उसके पुत्र शाहजी को पैतृक सम्पत्ति में पिता का पद और जागीर दोनों प्राप्त हुईं। उनका एक छोटा भाई शरीफजी भी था जो उनके व्यक्तित्व और कार्यों से पूर्णतः सम्बद्ध था। अनेक वर्षों तक दोनों भाइयों ने सुख-दुःख में हाथ बँटाया।[६] मालोजी के भाई बिठोजी के आठ पुत्र थे जो प्रत्येक प्रकार सबल और योग्य थे। उन्होंने शाहजी का ही साथ दिया। इस प्रकार शक्ति-सम्पन्न उत्साही नवयुवकों का बड़ा भोसले परिवार मुगल आक्रमण के विरुद्ध निजामशाह की रक्षार्थ शाहजी के प्रयासों में, विशेषकर मलिक अम्बर के देहान्त के बाद, महान् राष्ट्रीय निधि सिद्ध हुआ। यह परिवार वीरता और साहस की भावना से ओत-प्रोत था और अपने भाग्य को उन्नत बनाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था।

५. भटवाड़ी का युद्ध—जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, मार्च १६२२ ई० में शाहजहाँ बुरहानपुर से उत्तर की ओर चला और शीघ्र ही उत्तराधिकार-युद्ध में व्यस्त हो गया। यह युद्ध अगले ५ वर्षों तक सम्पूर्ण भारत में होता रहा और इसने साम्राज्य के मामलों को पूर्णतः गड़बड़ी में डाल दिया जिससे मलिक अम्बर और शाहजी को दक्षिण में अपनी स्थिति दृढ़ करने का शुभ अवसर प्राप्त हो गया। शाहजहाँ ने विद्रोह कर दिया और परवेज तथा महावतखाँ ने उसका जमकर पीछा किया। ऐसा न हो कि शाहजहाँ मलिक अम्बर से मिल जाये और प्रबल प्रतिरोध प्रस्तुत कर दे इसलिये जहाँगीर ने राजकुमार परवेज़ को आज्ञा दी कि वह इस सम्मिलन को दबा दे। मलिक अम्बर ने चुनौती स्वीकार करली और अपनी गुरिल्ला युद्ध-कला का उपयोग करके साम्राज्य-पोषकों और आदिलशाह की संयुक्त सेना को भटवाड़ी के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में बुरी तरह परास्त

---

६ जाधवों के प्रति उनका विद्वेष दिन प्रति दिन बढ़ता गया, जिसके फलस्वरूप अनेक उसी प्रकार के अशोभन झगड़े हुए जिनका वर्णन शेक्सपियर ने मोंटेग्यू और कैप्यूलेट्स के बीच किया है।

कर तहस-नहस कर दिया। यह स्थान अहमदनगर के पूर्व में करीब १० मील पर है। परमानन्द और फारसी लेखकों ने इस युद्ध के (नवम्बर १६२४) विशद और स्पष्ट वर्णन किये हैं। सफलता का मुख्य कारण मलिक अम्बर का श्रेष्ठ रण-कौशल, उसका दीर्घकालीन और धैर्ययुक्त सैन्य संचालन था, जिसके द्वारा उसने एक कठिन जाल बिछा दिया, जिसमें मुगल और बीजापुरी सेनाएँ फँस गईं। इस प्रकार मराठा अभ्युदय के इतिहास में भटवाड़ी का युद्ध सुप्रसिद्ध घटना है क्योंकि इस अवसर पर मलिक अम्बर के पक्ष में शाहजी की विलक्षण बुद्धि प्रगट हो गई। सैनिक दाँव-पेचों के द्वारा अपने से प्रबल शत्रु को पराजित करने की कला में उन्होंने अपने जीवन की सर्वोत्तम शिक्षा प्राप्त करली थी। "शिवभारत" के लेखक द्वारा भटवाड़ी के युद्ध का सविस्तार वर्णन गम्भीर अध्ययन के योग्य है। इस रण में शाहजी के भाई शरीफजी और विठोजी के पुत्रों ने शाहजी को हार्दिक सहायता दी थी।[१०]

मलिक अम्बर की अद्भुत सफलता से शाहजी का महत्व बढ़ गया, जिसके कारण मलिक अम्बर को ईर्ष्या होने लगी। उनके पारस्परिक सम्बन्ध असह्य हो गये। अपनी ख्याति को सुरक्षित रखने के लिए शाहजी ने निजामशाह की सेवा त्याग दी और आदिलशाह के अधीन अपना भाग्य अजमाना चाहा। ऐसा ज्ञान होता है कि भटवाड़ी के युद्ध के शीघ्र पश्चात् १६२५ ई० में यह स्थान-परिवर्तन हुआ। शाहजी ने पूना में अपनी जागीर पर अधिकार जमाये रखा, जो दोनों राज्यों की सीमा-भूमि पर थी और परस्पर कलह का कारण सिद्ध हुई। बीजापुर की सेवा में शाहजी के प्रवेश के पश्चात ही उनकी द्वितीय पत्नी तुकाबाई ने १६३० ई० में एक पुत्र को जन्म दिया,

---

१० "शिवभारत" के चौथे अध्याय में परमानन्द ने लगभग २० मुस्लिम सेनानायकों और एक दर्जन से अधिक मराठा सरदारों के नाम दिये हैं। मुस्लिम सेनानायकों के अधिकांश नाम फजूनी अस्तरावादी ने भी दिये हैं। फारसी और संस्कृत के इन दोनों स्वतन्त्र ग्रन्थों में एक दूसरे का समर्थन किया गया है, इससे "शिवभारत" कामूल्य इस दृष्टि से बढ़ जाता है कि वह विश्वस्त सूत्रों पर आधारित ग्रन्थ है।

जिसका नाम एकोजी या प्रचलित भाषा में व्यंकोजी रखा गया। इसने बाद में तंजौर के मराठा राज्य की स्थापना की।

जब शाहजी सुदूर बीजापुर में थे कि १४ मई, १६२६ को मलिक अम्बर का देहान्त हो गया। परिणाम यह हुआ कि उसके बाद अहमदनगर का भाग्य तीव्र गति से मन्द होने लगा। दो अन्य महत्व-पूर्ण राजनीतिक घटनाओं से इसका अन्त और शीघ्र हुआ—ये हैं २९ अक्टूबर, १६२७ को सम्राट् जहाँगीर का देहावसान और ४ फरवरी, १६२८ को उसके योग्यतम पुत्र शाहजहाँ का राज्यारोहण। बीजापुर के इब्राहीम आदिलशाह की भी मृत्यु १२ सितम्बर, १६२७ को हो गई, जिसने शाहजी को अपने दरबार में आश्रय दिया था। मराठा इतिहास में एक और महत्वपूर्ण घटना जीजाबाई और शाहजी के (६ अप्रेल, १६२७ को)[११] एक पुत्र का जन्म है, जिसका नाम शिवाजी रखा गया। यह बाद में मराठा स्वाधीनता का संस्थापक हुआ। इस प्रकार दक्षिण के इतिहास में १६२७ ई० का वर्ष एक नवयुग का प्रवर्तक है। उस वर्ष, अपने पिता का विद्रोही, राजकुमार शाहजहाँ जुन्नार के समीप छिपा पड़ा था और उसका परिवार पश्चिम तट पर महिम के बन्दर के समीप अशेरी के गढ़ में छिपा दिया गया था। जब शाहजहाँ को ज्ञात हुआ कि पंजाब में उसके पिता का देहान्त हो गया है तो वह जुन्नार छोड़कर उत्तर की ओर रवाना हुआ और अपने प्रतिद्वन्द्वी शहरयार को अन्धा करके स्वयं मुग़ल सिंहासन पर बैठ गया।

६. **खाँजहाँ लोदी का विद्रोह**—दक्षिण की राजनीति में तात्कालिक परिवर्तन का कारण यह प्रथम श्रेणी का शक्तिशाली सामन्त था। खाँजहाँ योग्य अफगान सेनापति और कूटनीतिज्ञ था जिसको जहाँगीर ने दक्षिण का भार सौंप दिया था। शाहजहाँ के विद्रोह के समय लोदी की स्थिति दरबार के दो शक्तिशाली दलों के बीच में पड़कर नाजुक हो गई। दक्षिण के राज्यपाल की स्थिति में

---

११ जेधे ने शिवाजी की जन्म-तिथि १९ फरवरी, १६३० लिखी है।

उसको परस्पर विरोधी आज्ञाएँ प्राप्त हुईं, उसने जिसे सर्वोत्तम समझा उसका पालन किया। उसे आज्ञा मिली कि दक्षिण से शाहजहाँ का पीछा करके भगा दे, किन्तु उसको इसका विश्वास न था कि सम्राट् से उसको सामयिक सहायता प्राप्त हो सकेगी, जिसकी इस कार्य के लिए अत्यन्त आवश्यकता थी। इस प्रकार उसको शाहजहाँ की कटुतम अप्रसन्नता का भागी होना पड़ा, और निजामशाही सरकार के उच्च अधिकारियों को खुश करके उसने उस दुर्दिन के लिए तैयारी करली। अतः दक्षिण-विजय में शाहजहाँ की अधिकांश सफलता को खाँजहाँ लोदी ने व्यर्थ कर दिया। शाहजहाँ ने खाँजहाँ लोदी को क्षमा प्रदान न की क्योंकि उसने उसके हित का समर्थन नहीं किया था। सिंहासनारूढ़ होने के बाद उसका पहला लक्ष्य यही हुआ कि खाँजहाँ को उसके कृत व अकृत अपराधों के लिए कठोर दण्ड दिया जाय।

अपने राजत्व काल के प्रारम्भ में शाहजहाँ शक्ति और स्फूर्ति से परिपूर्ण था, वह विलासप्रिय शान्त सम्राट् न था जो वह बाद में बन गया। अपने पिता के शासन-काल में दक्षिण के अभियानों में बार-बार उसने विशिष्ट स्थान प्राप्त किया था। दक्षिण की स्थिति और दशा से वह पूर्णतया अवगत था। वह मलिक अम्बर की नीति, शाहजी और अन्य भोसलों की शक्ति और प्रभाव को अच्छी तरह जानता था। नासिक, जुन्नार और उत्तर कोंकण के जिलों की भौगोलिक बनावट को और अहमदनगर राज्य की पतनोन्मुखी दशा के सम्बन्ध में उसकी व्यक्तिगत जानकारी थी। राज्यारोहण के बाद प्रथम विषय जिसने उसके ध्यान को आकर्षित किया, वह था दक्षिण को अधीन करना, विशेषकर निजामशाही राज्य को जो अपने अनिश्चित अस्तित्व को किसी न किसी प्रकार बनाये हुए था और जिसने २५ वर्षों तक अकबर और जहाँगीर दोनों की शक्ति का सफलतापूर्वक मुकाबला किया था। शाहजहाँ ने ठीक निर्णय किया कि दक्षिण की समस्याएँ खाँजहाँ लोदी की धूर्त नीति के कारण उठ खड़ी हुई हैं और वह उनको हल करने के लिये तत्पर हो गया। दक्षिण में यही

मुगलों का प्रसार था जिसका प्रतिरोध करना सर्वप्रथम शाहजी ने और उसके बाद उनके पुत्र शिवाजी ने अंगीकार किया। एक अल्पकालीन अभियान की अपनी आशा के विपरीत शाहजहाँ को अहमदनगर की विजय को पूर्ण करने में ९ वर्ष लग गये।

जब मुगल-दक्षिण के वाइसराय राजकुमार परवेज़ की मृत्यु अक्टूबर १६२६ में हुई तो खाँजहाँ लोदी उस पद पर नियुक्त किया गया। उसके अधीन एक निःशंक वीर अफगान साथी दरियाखाँ था। खाँजहाँ कुछ समय से दक्षिण में अपने पद पर जमा रहना असाध्य समझता था क्योंकि जहाँगीर के अन्तिम दिनों में उसको राजधानी से कोई सहायता प्राप्त न हुई थी और उसने समयानुकूल यह आवश्यक समझा कि निजामशाही अधिकारियों को विजित प्रदेश का कुछ भाग वापस दे दे ताकि कोई खुला संघर्ष न हो, जिसके लिए वह तैयार न था। बरार का वह भाग जिसको बालाघाट कहते हैं, उसने निजामशाह को वापस कर दिया और उसके बदले में ३ लाख नकद रुपए प्राप्त कर लिये। यह वह प्रदेश था जिसको कुछ वर्ष पूर्व मलिक अम्बर से स्वयं शाहजहाँ ने जीता था।

जब शाहजहाँ राजगद्दी पर बैठा, उसने खाँजहाँ लोदी को उसके पद पर स्थायी कर दिया और उसको आज्ञा दी कि बालाघाट के प्रदेश को पुनः वापस ले ले। यह कार्य सिद्ध करने के लिए खान ने भरसक प्रयत्न न किया, अतः शाहजहाँ ने जवाब तलब करने के लिए उसे अपने पास बुलाया। अपनी भेंट में खाँजहाँ का आचरण कुछ धृष्ट रहा, फलतः वह कठोर दण्ड के भय से अपने प्राण बचाने के लिए भाग निकला। उसका जोरों से पीछा किया गया और चूँकि चम्बल नदी पर एक लड़ाई में उसके दो पुत्र और एक जामाता मारे जा चुके थे, उसने खुला विद्रोह आरम्भ कर दिया और दक्षिण में पुर्तजा निजामशाह से रक्षा की प्रार्थना की। अपने आपको मुगल सम्राट से सुरक्षित रखने के लिए निजामशाह ने शक्तिशाली मुगल सामन्त का स्वागत किया, जो कुछ सहायता बन सकती थी वह भी दी और उसके व्यय के लिए बीड का जिला भी दे दिया। लगभग इसी समय

निजामशाह ने अपने मन्त्री फतेहखाँ को बन्दीगृह में डाल दिया, बीजापुर से शाहजी को अपनी सेवा में पुनः बुला लिया और सम्राट् के विरुद्ध घोर संघर्ष के लिए तैयार हो गया। उसने इस बात का अनुभव न किया कि सम्राट् के दरबार में अस्तव्यस्तता और अनिश्चितता का जहाँगीर के साथ अन्त हो गया है और अब एक बलवान और दृढ़ विरोधी दिल्ली की गद्दी पर विराजमान है।

७. निजामशाह के विरुद्ध शाहजहाँ का प्रयाण––शाहजहाँ ने संकट को तुरन्त समझकर अहमदनगर के शासक के विरुद्ध स्वतः प्रबल आक्रमण कर दिया। ३ दिसम्बर, १६२९ को वह आगरा से चला और १२ फरवरी को नर्मदा पार कर योग्य सेनापतियों के अधीन उसने अपनी सेना को अलग-अलग दलों में बाँटकर जोरदार हमला शुरू कर दिया। इस हमले के दो उद्देश्य थे—एक तो खाँजहाँ लोदी का दमन और दूसरा अहमदनगर राज्य को अपने अधीन करना। इसी प्रकार उसने आदिलशाह को भी धमकी दी और बदले में उसके राज्य से उसे प्रबल सैनिक सहायता प्राप्त हो गई। बीजापुर के फौजी दस्ते रनदुल्लाखाँ और करी के मराठा देशमुख कान्होजी जेधे के नेतृत्व में थे। इन जबर्दस्त विरोधियों के सामने, जो प्रत्येक दिशा में उन्हें घेरे हुए थे, खाँजहाँ लोदी और शाहजी भोसले अधिक समय तक न ठहर सके। हमें खाँजहाँ के भविष्य से विशेष सरोकार नहीं है। १६३० ई० के अन्तिम मासों में कई बार उसकी पराजय हुई। उसका बीड का गढ़ हस्तगत कर लिया गया और वह अपने सहायक दरियाखाँ के साथ फरार हो गया। ये फिर उत्तर की ओर चल पड़े। ११ जनवरी, १६३१ को सिरोंज के समीप एक लड़ाई हुई जिसमें दरियाखाँ मारा गया। पाँच मास बाद १० जून को प्राणरक्षार्थ वीरता से लड़ता हुआ खाँजहाँ लोदी भी कालिंजर के समीप मारा गया।

जाधवों और भोसलों का इतिहास उन कार्यकलापों से सम्बद्ध है जो दक्षिण के आक्रमण में शाहजहाँ ने किये और जिनसे उसे सरलता या शीघ्रता से सफलता प्राप्त न हो सकी। १६३०-३१ ई० के

दो वर्षों में दुर्भिक्ष ने दक्षिण के प्रदेशों का विध्वंस कर दिया। लगातार दो वर्षों तक यथासमय वृष्टि न हुई और कोई फसल पैदा न की जा सकी। इस अकाल का वर्णन एक हृदय-विदारक कहानी है।[१२] कोई सड़क सुरक्षित न थी और क्षुधा-पीड़ित भिखारियों के दल के दल उन अन्न के ढेरों पर टूट पड़ते थे जिन्हें मुगल सेना के लिए इकट्ठा किया गया था। फलतः शाहजहाँ को अपना कार्य अत्यन्त दुःसाध्य प्रतीत हुआ। फिर भी युद्ध को चालू रखने का उसने भरसक प्रयत्न किया। निजामशाह की परिषद् में उसने गुप्त षड़यन्त्र विशेष रूप से शुरू करा दिये। लुकजी जाधव बहुत पहले ही अपने परिवार और सैनिकों सहित मुगलों से आ मिला था। वह शक्तिशाली और प्रशिक्षण प्राप्त सेनानायक था। सम्राट् के समर्थन का बल पाकर वह अपने स्थान सिंदखेड़ से कार्यशील होकर निजामशाह को बगल के काँटे के समान चुभने लगा। किसी महत्वपूर्ण राजनीतिक चाल पर वार्त्तालाप करने के बहाने से निजामशाह ने सारे जाधव सरदारों को २५ जुलाई, १६२६ को दौलताबाद के गढ़ में भेंट करने के लिए बुलाया और उनमें से अधिकांश को बड़ी निर्दयता से मार डाला। इस अनाशङ्कित विश्वासघात में शाहजी के ससुर लुकजी, उसके पुत्र अचलोजी और रघुजी तथा उसके पौत्र यशवन्तराव के प्राण गये। केवल लुकजी का भाई जगदेवराव और उसका पुत्र बहादुरजी ही सिन्दखेड़ को भाग निकले। इन निरंकुश हत्याओं से निजामशाह के विरुद्ध, विशेषकर उसके मराठा अनुयायियों में, विरक्ति और घृणा की भावना उत्पन्न हो गई। शाहजी को भी अपने प्राणों की चिन्ता हो गई। पहले ही सम्राट् की ओर से उनको प्रलोभन प्राप्त हो चुके थे कि निजामशाह को त्यागकर वे मुगलों से आ मिलें, अतः परिस्थिति के वश उन्होंने यही ठीक समझा कि निजामशाह के पतनोन्मुख पक्ष को छोड़कर शाहजहाँ के अधीन मनसब स्वीकार कर

---

१२ इलियट और डाउसन, खण्ड ७, पृष्ठ २४; "शिवभारत" ८,–५३,–५५; मोरलेण्ड लिखित "फ्रौम अकबर टु औरंगजेब". पृ० २१२; थौम्पसन और गैरेट लिखित "राइज़ एण्ड फुलफिलमैण्ट", पृ० १८।

लिया जाय। नवम्बर १६३० से मार्च १६३२ ई० तक करीब डेढ़ वर्ष शाहजी ने मुगलों की सेवा की। इस स्वामि-द्रोह से क्रुद्ध होकर बीजापुर के सेनापति मुरार जगदेव ने शाहजी के पूना-स्थित निवास-स्थान में आग लगा दी।

इस समय जाधवों की हत्या निजामशाही पक्ष के लिए घातक सिद्ध हुई। अपने पुराने मन्त्री फतेहखाँ को उसने पुनः बहाल कर दिया। परन्तु जब फतेहखाँ को निराशामय स्थिति से छुटकारा पाने का कोई अवसर न मिला और साम्राज्यवादियों का दबाव बढ़ता गया तो उसने निश्चय कर लिया कि अपने मालिक का बलिदान कर वह अपनी स्वार्थ-सिद्धि करे। सबसे पहले उसने मुर्तजाशाह को बन्दी बना लिया और उसके शिशु पुत्र हुसैनशाह को गद्दी पर बैठाकर मुगल सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने के लिए बातचीत शुरू कर दी। इसके तुरन्त पश्चात् मार्च १६३१ ई० में मुर्तजा निजाम शाह की हत्या कर दी गई—बहुत दिनों से इसका भाग्य झोंटे ले रहा था। सम्राट् का सामना करने में असमर्थ होकर फतेहखाँ ने अधीनता स्वीकार कर ली।

इस समय जब शाहजहाँ अपने मुख्य स्थान बुरहानपुर से युद्ध के विभिन्न मोर्चों का संचालन कर रहा था, उसे पारिवारिक वियोग सहन करना पड़ा। ७ जून, १६३१ को बुरहानपुर में प्रसव के समय उसकी प्रिय बेगम मुमताजमहल का देहान्त हो गया। कुछ मास बाद उसके शव को आगरा ले जाया गया, जहाँ अन्त में उसे प्रसिद्ध ताजमहल में दफना दिया गया। इस व्यक्तिगत क्षति और दुर्भिक्ष के कारण सम्राट् अत्यन्त निरुत्साहित हो गया। वह अभियान का संचालन अपने योग्य सेनापति महाबतखाँ के हाथ में छोड़कर नवम्बर १६३२ ई० में आगरा आ गया।

८. शाहजी द्वारा प्रबल प्रतिरोध—जैसे ही शाहजहाँ ने उत्तर के लिए प्रस्थान किया शाहजी को मुगलों के साथ रहना अनावश्यक प्रतीत होने लगा। फलतः मुगल पक्ष को उन्होंने त्याग दिया और निजामशाह के पास वापस आ गये। इस पतनोन्मुख राज्य में फिर

से जान डालने के लिए दृढ़ प्रयत्न करने का उनका इरादा था, जिस राज्य के अधीन वे और उनका परिवार बहुत दिनों तक समृद्ध और सुखी रह चुके थे। परन्तु महावतखाँ ने फतेहखाँ को तोड़ लिया और ७ जून, १६३३ को दौलताबाद के गढ़ को हस्तगत कर लिया। फतेहखाँ और उसका स्वामी हुसैन निजामशाह गिरफ्तार कर मुगल कारागार में भेज दिये गये।

परन्तु दौलताबाद के पतन से निजामशाही राज्य का अन्त न हो सका। इस संकटमय अवसर पर इसके अस्तित्व की रक्षा के लिए शाहजी ने वीरतापूर्वक कदम बढ़ाया। उनके लिए यह एक संकटपूर्ण प्रयास था कि उस अस्तप्राय राज्य का पुनः निर्माण करें और सम्राट् की शक्ति के विरुद्ध बिना और किसी सहायता के युद्ध जारी रखें। दौलताबाद के पतन के केवल ३ मास के भीतर अहमदनगर राज्य के एक दृढ़ अगम्य गढ़ पेमगिरि या भीमगढ़ को शाहजी ने निजामशाही राज्य की राजधानी बना दिया और एक नवयुवक निजामशाही राजकुमार को गद्दी पर बैठा कर (सितम्बर १६३३) उसके नाम से पूर्ववत् प्रशासन जारी कर दिया। इस प्रयास में आदिलशाह और उसके मन्त्री मुरार जगदेव की सहानुभूति शाहजी को प्राप्त हो गई, जो स्वयं उसकी सहायता के लिए नवीन और सुसज्जित सेनाएँ लेकर आ गया। शाहजी जैसे एक छोटे जागीरदार का यह साहस कि वे शाहज़हाँ को खुली चुनौती दें और उसका कोप-भाजन बनें, सिद्ध करता है कि शाहजी कितने आत्मविश्वासी और सूझ वाले थे। उन्होंने शीघ्र ही सैनिक और धन एकत्रित किये और कठिन संघर्ष की तैयारी प्रारम्भ कर दी। बीजापुर से मुरार जगदेव ने उनका साथ दिया जैसा कि निम्न घटना से सिद्ध होता है। शाहजी की इच्छा थी कि शान्ति-क्रिया के लिए एक हाथी का तुलादान करायें। २३ सितम्बर, १६३३ को सूर्य ग्रहण के अवसर पर भीमा और इन्द्रयानी के संगम पर मुरार जगदेव ने इसे सम्पन्न कराया। बीजापुर के इस ब्राह्मण मन्त्री ने इस हाथी के तौल के बराबर वस्तुएँ दान में दीं। इस घटना की स्मृति में नागर गाँव

का नाम बदलकर तुलापुर रख दिया गया, जो आज तक प्रचलित है।

गुरिल्ला युद्ध-कला में जो शिक्षा शाहजी ने मलिक अम्बर से प्राप्त की थी, वह शाहजी के इस संकट समय में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई।

शाहजी की इस नई हरकत से महावतखाँ अत्यन्त व्यग्र हुआ। उसने निर्बुद्धिवश यह विश्वास कर लिया था कि उसका कार्य समाप्त हो गया है तथा दक्षिण को अधीन करने का श्रेय अन्ततः उसी को है। शाहजी के दृढ़ प्रतिरोध से वह इतना चिन्तित हुआ कि नवीन सेना और धन के लिए उसने बारम्बार सम्राट् के पास प्रार्थनाएँ भेजीं। साथ ही उसने अपने प्रतिनिधि बीजापुर भी भेजे ताकि शाहजी को आदिलशाह सहायता न दे। परन्तु महावतखाँ सफल न हो सका। सम्राट् ने उसकी असफलता पर उसकी इतनी निर्दयता से भर्त्सना की कि अनुभवी सेनापति ने हताश होकर २६ अक्टूबर, १६३४ को आत्महत्या कर ली। रानाडे ने लिखा है :—

"३०० वर्ष बाद १३१६ ई० के अलाउद्दीन के आक्रमण के समय की परिस्थिति की पुनरावृत्ति इतनी तीव्र गति से हो रही थी कि प्रतिरोध असम्भव हो गया। उस समय हिन्दू उस विप्लव के प्रति नतमस्तक हो गये थे जो देश पर टूट पड़ा था। परन्तु विदेशियों की अधीनता के कठोर शासन से उनको बुद्धि प्राप्त हो गई थी। विदेशी विजय को उलटने में वे समर्थ हो गये थे और विदेशियों की शक्ति को भी वे विनम्र करने में सफल हो गये थे।"[१३]

परन्तु शाहजी का कार्य किसी प्रकार सरल न था। उनको शीघ्र मालूम हो गया कि प्रत्येक दिशा से उन पर भारी दबाव पड़ रहा है। कहा जाता है कि कुछ समय पहले मुगल शाहजी की धर्मपत्नी जीजाबाई को पकड़ने में सफल हो गये, परन्तु जीजाबाई ने बड़ी बुद्धिमत्ता से बालक शिवाजी को पकड़े जाने से बचा लिया। जब

---

१३ "राइज ऑफ द मराठा पावर", पृ० ४३-४४।

उसको गुप्त सूचना मिली कि त्र्यम्बक गढ़ का मुगल-रक्षक महलदारखाँ उसके पीछे लगा हुआ है, तो जीजाबाई ने शिवाजी को एक अज्ञात स्थान में छिपा दिया। महलदारखाँ पहले शाहजी और उनके परिवार का घनिष्ठ मित्र था, परन्तु अब मुगलों का नौकर था। कहा जाता है कि जीजाबाई महलदारखाँ के हाथ में पड़ गईं और कुछ समय तक कौंढाना (सिंहगढ़) के गढ़ में कैद भी रहीं। बाद में उनके चाचा ने बदले में धन दिया और छोड़ दी गईं। इस घटना का कहीं पर सविस्तार उल्लेख नहीं है। एक प्रामाणिक पत्र के आधार पर ग्रांट डफ ने इस घटना का वर्णन किया है। यह पत्र अब खो गया है। अनुमानतः यह घटना १६३६ ई० के पहले ही घटित हुई होगी।

यह भी लिखा हुआ मिलता है कि जब शाहजी पर दबाव अधिक बढ़ा तो उन्होंने चौल (रेवदाण्डा) के पुर्तगाली राज्यपाल को पत्र लिख कर स्त्रियों और बच्चों के लिए वहाँ आश्रय माँगा ताकि मुगलों के हाथ में पड़ने से उनको बचा सकें। परन्तु कुछ समय पूर्व ही शाहजहाँ ने पुर्तगालियों के साथ इतना कठोर बर्ताव किया था कि उन्होंने शाहजी की प्रार्थना स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी, किन्तु यह सुझाव दे दिया कि जंजीरा के सिद्दियों के अधिकार क्षेत्र में उनके परिवार के लिये सुरक्षित आश्रय प्राप्त हो सकता है। कुछ भी हो इन छुटपुट वर्णनों से यह अवश्य पता चलता है कि अपने जीवन-मृत्यु के संघर्ष में शाहजी की क्या स्थिति थी।

इस नवीन संकट से शाहजहाँ पूर्ण अवगत हो गया और उसने १६३५ ई० में स्वयं दक्षिण को प्रस्थान किया। इस प्रकार उसने एक बार फिर अपनी चमत्कारिक स्फूर्ति का परिचय दिया। वह २९ सितम्बर को आगरा से चला और ४ जनवरी, १६३६ को नर्मदा पार करके चटपट दौलताबाद पहुँच गया। इस समय उसके साथ औरंगजेब, जो १७ वर्ष का था, मिर्जा राजा जयसिंह, शाइस्ताखाँ और अन्य नवयुवक और ओजस्वी सेनापति थे, जिन्होंने आगे चलकर शिवाजी समय में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। शाहजहाँ ने आते ही युद्ध की

एक विशाल योजना तैयार करली, जिसके द्वारा सब दिशाओं से एक साथ शाहजी को घेरा जा सके। इस उद्देश्य से उसने अपने अलग-अलग सेनानायकों को निश्चित कार्य सुपुर्द कर दिये। औरंगजेब को केन्द्र स्थान से निश्चित योजना को कार्यान्वित करने का भार सौंपा गया। बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तान सर्वनाश की धमकी के द्वारा मुगलों से सहयोग करने के लिए विवश कर दिये गये।

शाहजी ने अपने अधीन करीब १२ हजार सैनिक इकट्ठे कर लिए थे। इनमें अधिकांश वे सैनिक अधिकारी थे जिन्हें दौलताबाद के पतन के बाद सेनाओं से पृथक कर दिया गया था। शाहजी ने अब दक्षिण में बीदर तक मुगल प्रदेश को लूटना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपनी मुख्य हलचलों को उत्तर कोंकण के कठिन प्रदेश में केन्द्रित किया। वे स्वयं जुन्नार और संगमनेर के बीच बढ़ते रहे और माहुली के गढ़ को उन्होंने अपनी कठपुतली निजामशाह का मुख्य निवास-स्थान बना दिया। शाइस्ताखाँ ने त्र्यम्बक के गढ़ को शाहजी से छीन लिया और जुन्नार और संगमनेर में भी उनका पीछा किया। अत्यन्त संकट में पड़ जाने पर शाहजी ने निजामशाह को कल्याण से कुछ मील उत्तर में माहुली के गढ़ में रख दिया और तब उन्होंने अपना अन्तिम प्रयास आरम्भ कर दिया। यह देखकर कि भविष्य में प्रतिरोध से कोई आशा नहीं है, बीजापुरियों ने उन शर्तों को स्वीकार कर लिया जो मुगलों ने प्रस्तुत की थीं और शाहजी का पक्ष त्याग दिया। इसी प्रकार गोलकुण्डा का कुतुबशाही दरबार भी अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर दिया गया। परिणामतः कुछ महीनों के अन्दर ही शाहजी पर अकेले ही इस विकट युद्ध का सारा भार आ पड़ा। अपने जीवन की महत्तम विजय शाहजहाँ ने प्राप्त कर ली। ४० वर्षों के संघर्ष के बाद दक्षिण के मामले कुछ हल हुए। अब पूरे देश में सम्राट् की मर्यादा निर्विवाद स्थापित हो गई। ६ मार्च, १६३६ को शाहजहाँ ने आदिलशाह को एक गम्भीर पत्र भेजा जिस पर उसकी हथेली का लाल चिन्ह अंकित था। इसमें अल्ला और रसूल को साक्षी करके स्वीकृत शर्तों को मानने

की प्रतिज्ञा की गई थी। सन्धि-पत्र का सारांश सोने की चद्दर पर अंकित कराया गया और आदिलशाह को भेज दिया गया।

इस सन्धि-पत्र ने शाहजी के भाग्य का निर्णय कर दिया। उनको बुरी तरह अलग कर दिया गया, बाह्य जगत से उनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया और वे माहुली के गढ़ में घिर गये। सम्राट् की पूर्ण शक्ति के सामने अब वे ठहर नहीं सकते थे। मुहम्मद आदिलशाह शाहजी की योग्यता को खूब जानता था और उनको सर्वनाश से बचाने का उसने भरसक प्रयत्न किया। उसने सम्राट् को एक संकेत भी किया कि अब दक्षिण में उसकी उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है। विशाल फौजों के निरन्तर गमनागमन से जनता के शान्तिमय कार्यों को हानि पहुँचती है और शाहजी का अब इतना महत्व नहीं है कि सम्राट् को आगे युद्ध की देखभाल के लिए दक्षिण में ठहरना पड़े। शाहजी के अधिकार में जो पाँच गढ़ हैं उन्हें हस्तगत करने की जिम्मेदारी भी आदिलशाह ने ही ले ली। अहमदनगर को विजय करने के बाद शाहजहाँ ने बुद्धिमत्ता से इस युक्तियुक्त सलाह को स्वीकार कर लिया और शेष अभियान को अपने सेनापति खानजमाँ, अपने पुत्र औरंगजेब और आदिलशाह की सुपुर्दगी में देकर स्वयं ११ जुलाई, १६३६ को दौलताबाद से आगरा के लिए रवाना हो गया। अब केवल दो अधीन राज्य बीजापुर और गोलकुण्डा रह गये थे, जो अपना अनिश्चित अस्तित्व करीब ५० वर्ष तक और बनाये रहे।

शाहजहाँ के प्रस्थान के तीन मास के अन्दर ही शाहजी का अन्तिम दौर आ गया। औसा और उदगीर जो उनके अधिकार में थे, शीघ्र ही हाथ से निकल गये। रनदुल्लाखाँ और उसके मुख्य सहायक कान्होजी जेधे के अधीन बीजापुरी सेनाओं के साथ खानजमाँ ने जुन्नार पर धावा किया और शाहजी के घर पर अधिकार करने के लिए एक दल पूना के निकट आ पहुँचा। शाहजी कौंढाना और तोरना के पहाड़ों में भाग गये। भारी वर्षा के कारण मुगलों का वहाँ पहुँचना असम्भव था। जैसे ही वर्षा ऋतु समाप्त हुई, उनका पीछा

किया गया और अन्त में उनको माहुली के गढ़ की शरण लेनी पड़ी। इस पर बाहर से आक्रमण कठिन था। मुगल शीघ्र ही यहाँ आ पहुँचे और अगस्त १६३६ ई० में उन्होंने गढ़ के फाटकों के सामने अपने डेरे डाल दिये तथा अन्दर और बाहर का आना-जाना सब बन्द कर दिया। जेधे करिना का कथन है--"पेमगिरि का गढ़ बहुत छोटा था, अतः शाहजी सुल्तान को माहुली ले गये, जिसको जल्दी से खानज़माँ और रनदुल्लाखाँ ने घेर लिया।" इस समय रनदुल्लाखाँ के सलाहकार कान्होजी जेधे का गुप्त पत्र-व्यवहार शाहजी से जारी था। जब गढ़ की खाद्य-सामग्री समाप्त हो गई तो शाहजी के सैनिक भूख से मरने लगे। फलतः वे शर्तें मानने के लिए विवश हो गये। अक्टूबर में रनदुल्लाखाँ के द्वारा उन्होंने प्रस्ताव किया कि वे गढ़ को और कठपुतली निजामशाही राजकुमार को सुपुर्द करने के लिए इस वायदे पर तैयार हैं कि शाहजी बीजापुर की सेवा करेंगे और शाहजी को उनकी सेवाओं के बदले वेतन रूप में गोदावरी नदी के दक्षिण में जो निजामशाही प्रदेश बीजापुर के हिस्से में आ गया था, उसमें एक जागीर दे दी जाय। इस वार्ता का विवरण बीजापुर को भेजा गया और इस आशय का एक लिखित आश्वासन आ गया। जब दोनों ओर से शर्तें स्वीकृत हो गईं तो शाहजी ने माहुली का गढ़ मुगलों के सुपुर्द कर दिया और एक व्यक्तिगत भेंट में रनदुल्लाखाँ ने उनका सम्मानपूर्वक स्वागत किया। इस अवसर पर कान्होजी जेधे और उसके मुख्य प्रतिनिधि दादाजी कृष्ण लोहकरे से शाहजी का हार्दिक वार्तालाप हुआ। शाहजी ने कान्होजी से कहा, "आप मावल के शक्तिशाली देशमुख हैं और यह प्रदेश मुझे जागीर में मिला है। अतः वहाँ नियन्त्रण स्थापित करने में आप अवश्य मेरी सहायता करें।" कान्होजी ने उत्तर दिया—"मैं हृदय से आपकी सेवा करूँगा, यदि आप इस सेवा के स्थानान्तरण की अनुमति रनदुल्लाखाँ से प्राप्त कर लें।" इस पर दोनों सहमत हो गये। शाहजी बीजापुर के लिए रवाना हुए और उस राज्य की सेवा में सम्मिलित हो गये। कान्होजी जेधे उसके बाद शाहजी का सहायक बना रहा। शाहजी ने स्वयं

लिखा है, "जब मैंने माहुली छोड़ी और रनदुल्लाखाँ के साथ २० दिन के अन्दर बीजापुर आ पहुँचा, तो बीजापुर के शाह ने मुझे चार लाख की जागीर दी और कर्नाटक-विजय का कार्य सौंप दिया।"

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि बिगड़ी हुई स्थिति को शाहजी ने कैसे सँभाला। मुगल सम्राट् के विरोध में वीरतापूर्वक डटकर दक्षिण की सल्तनतों का उन्होंने हित-साधन किया और उनकी स्वाधीनता के रक्षक होकर उन्होंने सम्मान और सद्भावना प्राप्त कर ली। रनदुल्लाखाँ आदिलशाह का प्रिय सेनापति था, जिसका जबर्दस्त प्रभाव था, वह शाहजी का समर्थक और परम मित्र बन गया। करी का देशमुख कान्होजी जेधे पश्चिमी प्रदेशों में व्यवस्था बनाये रखने के लिए बीजापुर के लिए अत्यावश्यक था। इसने रनदुल्लाखाँ के द्वारा मुगल क्रोध से शाहजी की रक्षा करने का भरसक प्रयत्न किया। आदिलशाह ने अपने जिम्मे यह उत्तरदायित्व ले लिया कि शाहजी मावल प्रान्त में कोई उपद्रव न करेंगे, जहाँ से शाहजहाँ ने उन्हें निकाल बाहर किया था। इससे यह सिद्ध होता है कि शाहजहाँ और आदिलशाह दोनों शाहजी को किस सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इस प्रकार वह युद्ध जिसने करीब ९ वर्ष तक देश का विनाश किया था, अक्टूबर १६३६ में समाप्त हो गया। शाहजहाँ को शाहजी के प्रति कोई व्यक्तिगत वैमनस्य न था और उसने बुद्धिमत्तापूर्वक आदिलशाह की इस जमानत को तुरन्त स्वीकार कर लिया कि शाहजी उपद्रव न करेंगे। किन्तु शाहजी ने होशियारी से अपनी पूना की जागीर पर अधिकार को सुरक्षित रखा। उन्होंने अपनी पत्नी जीजाबाई को और उनके संरक्षक दादाजी कोंडदेव को अपनी ओर से उसका प्रबन्ध करने के लिए छोड़ दिया, वह स्वयं वहाँ रह नहीं सकते थे। इस प्रकार शिशु शिवाजी इन महत्त्वशाली घटनाओं को स्वतः देख सके।

---

१४ शिवाजी सॉवेनिर, पृ० ११५-११६, जेधे करिना लिखित "शिव-चरित्र-प्रदीप", पृ० ३९।

९. दो महापुरुषों से शिक्षा—जिस साहस और दूरदर्शिता से कम से कम तीन वर्षों तक शाहजी मुगल शक्ति का प्रतिरोध करते रहे, प्रसिद्ध मुगल सेनापतियों को नचाते और चक्कर देते रहे, वे उनके पुत्र शिवाजी के लिए जीवित उदाहरण बन गये। इन बातों ने उन्हें यह शिक्षा दी कि किस प्रकार निर्बल भी सबल को परेशान कर सकते हैं। हम अनुमान कर सकते हैं कि इस दीर्घकाल में किस प्रकार रोमांचक घटनाओं का वर्णन एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास पहुँचता होगा, किस चिन्ता और अधीरता से जीजाबाई और उनका सारा परिवार अपने बहुसंख्यक अनुचरों के साथ प्रति क्षण प्रत्येक घटना के समाचार की प्रतीक्षा करता रहा होगा और कितनी गम्भीरता से उन्होंने अपने भाग्य पर विचार किया होगा। शाहजी के दरबारी कवि जयराम पण्डित ने इस बड़े युद्ध के आन्तरिक अर्थ को अवश्य ठीक-ठीक समझ लिया था, तभी तो उसने शाहजी और शाहजहाँ की तुलना एक साथ इस हिन्दी पद्य में की है :—

जगदीश विरंचिकु पूछत है कहो शिष्ट रची रखे कोन कहाँ।
कर जोरि कही जयराम विरंच्ये तिरलोक जहाँ के तहाँ।
ससि वो रवि पूरब पश्चिम लों तुम सोय रहो सिरसिन्धु महा।
अरु उत्तर दछन रछन को इत साहजु है उत साहिजहाँ ॥

(रा० मा० वि० चंपू—पृष्ठ २८०)

अर्थात्–विष्णु ब्रह्मा से पूछते हैं, मुझे हर्ष है कि तुमने मेरी आज्ञा को कार्यान्वित कर दिया है और सृष्टि की रचना कर दी है। परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि तुमने इसकी रक्षा का क्या प्रबन्ध किया है ?

ब्रह्मा उत्तर देते हैं—"हाँ, मैंने इसका भी प्रबंन्ध कर दिया है। पूर्वी और पश्चिमी दिशाओं को सँभालने के लिए मैंने सूर्य और चन्द्रमा को नियुक्त कर दिया है। कृपया चिन्ता न करें और क्षीर-सागर में जाकर आराम से सो जायें।"

विष्णु ने कहा—"यह तो ठीक है, परन्तु उत्तर और दक्षिण का क्या हाल है ?"

ब्रह्मा उत्तर देते हैं--"उसका भी प्रबन्ध कर दिया गया है। राजा शाहजी दक्षिण की देखभाल कर रहे हैं और सम्राट् शाहजहाँ उत्तर की।"

जैसे शिवाजी और औरंगजेब एक दूसरे के इतिहास के पूरक हैं, ठीक उसी प्रकार उनके पिता भी एक दूसरे के समकालीन **थे** और उन्होंने अपने-अपने ढंग से अपने राष्ट्रों का हित किया। यदि इतिहास कोई आकस्मिक घटना नहीं है और कारण तथा कार्य पर वह आधारित है तो रोशनगाँव से माहुली तक का २० वर्ष का काल (१६१६-१६३६) इन दो महान् व्यक्तियों में अविस्मरणीय सम्पर्क स्थापित करता है। उनमें से एक तो सम्राट् है और दूसरा राज-निर्माता, यह एक ऐसा सम्पर्क है जिस पर उनकी सांसारिक स्थिति का भेद कोई प्रभाव नहीं डाल सकता।

तिथिक्रम

अध्याय ३

१६३५	आदिलशाह से शाहजी का सैनिक पद प्राप्त करना।
१६३५–१६४२	वेंकटपति द्वितीय का पेनुकोण्डा में शासन।
१६४२–१६७३	श्रीरंगराय तृतीय, विजयनगर का अन्तिम सम्राट्।
अक्टूबर १६३६	शाहजी का बीजापुर की नौकरी में जाना।
३ दिसम्बर, १६३७	रनदुल्लाखाँ और शाहजी द्वारा इक्केरी ध्वस्त।
१६३८–१६४०	शिरा और पश्चिमी कर्नाटक विजित। शाहजी का बंगलौर जाना।
१६४०	शिवाजी का सईबाई से विवाह।
१६४०–१६४२	शिवाजी की अपने पिता से बंगलौर में भेट।
१६४३	रनदुल्लाखाँ की मृत्यु। शाहजी और शिवाजी का बीजापुर जाना।
१ अगस्त, १६४४	शाहजी का अपमान।
१६४५	वेल्लोर मुस्तफाखाँ द्वारा विजित।
५ जून, १६४६	मुस्तफाखाँ का श्रीरंगराय के विरुद्ध प्रयाण।
२५ जुलाई, १६४८	शाहजी जिंजी में बन्दी।
९ नवम्बर, १६४८	मुस्तफाखाँ की मृत्यु।
२८ दिसम्बर, १६४८	जिंजी पर बीजापुर की सेना का अधिकार।
१६४९	शाहजी बीजापुर में बन्दी।
१६ मई, १६४९	शाहजी की मुक्ति।
१६५१	शाहजी कनकगिरि में।
१६५४	शाहजी के पुत्र सम्भाजी का कनकगिरि में मारा जाना।
४ नवम्बर, १६५६	मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु।
२६ मई, १६५८	शाहजी अपने पुत्र के प्रति पक्षपात के आरोप से मुक्त।
१६६२	शाहजी का महाराष्ट्र में आना। शिवाजी को रायगढ़ को राजधानी बनाने का परामर्श।
अप्रेल १६६३	आदिलशाह का बाँकपुर को प्रयाण।
२३ जनवरी, १६६४	बसवपट्टन के समीप शाहजी की मृत्यु।

अध्याय ३

शाहजी का उत्तरकालीन जीवन-वृत्त

[१६३६–१६६४]

१. कर्नाटक में शाहजी का कार्य। २. बंगलौर पर शाहजी का अधिकार। ३. शाहजी पर राजकोप। ४. शाहजी के दो पुत्र कार्य-क्षेत्र में। ५. शाहजी की मृत्यु।

१. कर्नाटक में शाहजी का कार्य—शाहजी के बीजापुर की नौकरी करने के सम्बन्ध में ६ धाराओं वाली कालक्रमानुसारिणी में लिखा है: "शाके १५५७ (१६३५ ई०) में शाहजी राजे को आदिल-शाह से १२ हजार सवारों का अधिकार पद मिला और व्यय के लिए जागीर प्राप्त हुई। इस भूमि में पूना का प्रदेश शामिल था, जिसका प्रबन्ध उन्होंने मालथन के दादाजी कोंडदेव के सुपुर्द कर दिया। उसने पूना को अपने शासन का केन्द्र बनाया और अपना कार्य भूमि में सोने का हल चलाकर प्रारम्भ किया ताकि कुछ वर्ष पूर्व मुरार जगदेव की आज्ञा से गधों के हल चलाने का कुप्रभाव मिट जाय। यहाँ बसाने के लिए दादाजी कृषकों को बाहर से लाया, और प्रथम पाँच वर्षों के लिए लगान माफ कर दिया। शाहजी बीजापुर चले गये।"[1] इस प्रकार शाहजी का उत्तरकालीन जीवन-वृत्त कर्नाटक के मामलों से सम्बन्धित है।

उत्तर से मुगलों के बढ़ते हुए दबाव ने बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों की आँखें भावी संकटों के प्रति खोल दीं। फलतः अपनी प्रादेशिक क्षति की पूर्ति के लिये वे दक्षिण में नये क्षेत्र जीतने के लिए

---

१ "शिवचरित्र-प्रदीप", पृष्ठ ७०।

अग्रसर हुए। इस उद्देश्य से दोनों राज्यों ने परस्पर सन्धि कर आपसी सहयोग से कर्नाटक जीतने की तैयारी की ताकि पश्चिम का भाग बीजापुर को और पूर्व का भाग गोलकुण्डा को मिल जाय। ये दक्षिणी क्षेत्र पहले विजयनगर के प्रसिद्ध साम्राज्य के अंग थे, जिसे तालीकोट या राक्षस तागडी के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में मुसलमान शासकों ने बुरी तरह नीचा दिखाया था। उस निर्णायक युद्ध के बाद विजेताओं ने महान् हिन्दू राजधानी को लूट-पाट कर जला दिया। इस घटना के दो वर्ष के अन्दर ही यह स्थान उजाड़ सा हो गया। परन्तु विजेता इसके आगे न बढ़े और न उन्होंने पश्चिम से पूर्वी समुद्र-तट तक फैली हुई उस विस्तृत प्रायद्वीपी भूमि को ही अपने अधिकार में किया। हिन्दू राजधानी को लूटने और नष्ट करने के बाद वे अपनी राजधानियों को वापस चले गये। अतः पुरानी विजयनगर सरकार की प्रान्तीय शाखाएँ उन प्रदेशों पर शासन करती रहीं। इनमें से अधिकांश राज-परिवारों और मन्त्रियों के परिवारों के सम्बन्धी थे, जिन्होंने अपना स्वतन्त्र शासन विभिन्न स्थानों पर स्थापित कर लिया था और एक दूसरे के विरुद्ध हानिकर युद्ध में सतत व्यस्त रहते थे। इन राजनीतिक परिवर्तनों का सविस्तार वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

तालीकोट के बाद इन विभिन्न परिवारों ने महान् विजयनगर साम्राज्य की शक्ति और संस्कृति की रक्षा की। इन्होंने पेनुकोण्डा, वेल्लोर, चन्द्रगिरि, शीरा, इक्केरी, जिंजी तथा अन्य अनेक स्थानों पर अपने छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये थे। उनकी सम्पत्ति और समृद्धि तथा उनके आन्तरिक वैमनस्य से गोलकुण्डा और बीजापुर के मुसलमान राज्यों का लोभ जाग्रत हो उठा। अपने पूर्वज इब्राहीम के विपरीत मोहम्मद आदिलशाह धर्मान्ध था। हिन्दू मन्दिरों को गिराने और इस्लाम के गौरव के नाम पर उनकी सम्पत्ति को लूटने की इच्छा से उसने कर्नाटक जीतने के लिए रनदुल्लाखाँ और उसके अधीन शाहजी के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सेना भेजी। इस नीति में मोहम्मदशाह का पथ-प्रदर्शन उसके समान ही धर्मान्ध

उसके मन्त्री मुस्तफाखाँ ने किया। उसी के बहकाने से कुछ समय पूर्व प्रसिद्ध मुरार जगदेव की हत्या कराई जा चुकी थी।

अपनी राजधानी के पतन के बाद विजयनगर के शासक-परिवार के अवशिष्ट सदस्य पेनुकोण्डा चले गये, जहाँ उन्होंने इस क्रम से शासन किया—

१. तिरुमल प्रथम (१५६५–१५८३)
२. श्रीरंगराय द्वितीय (१५८५–१५९५)
३. वेंकटपति प्रथम (१५९५–१६१४)
४. रामराय (१६१४–१६३५)
५. वेंकटपति द्वितीय (१६३५–१६४२)
६. श्रीरंगराय तृतीय (१६४२–१६७३)

जिस समय शाहजी और रनदुल्लाखाँ ने चढ़ाई की, उस समय यहाँ अन्तिम वेंकटपति और उसका पुत्र श्रीरंगराय तृतीय शासक थे। वेंकटपति और उसके पुत्र ने इस बात का असफल प्रयत्न किया कि विभिन्न प्रान्तीय राज्यपालों को, जो अब नायक कहे जाते थे, संगठित कर एक सूत्र में बाँधा जाय ताकि मुस्लिम शक्ति का डटकर मुकाबिला हो। परन्तु किसी को इसमें अक्लमन्दी दिखाई न दी। इसके विपरीत उनमें से कुछ ने तो अपने आन्तरिक झगड़े निपटाने के लिए बीजापुर से मुस्लिम सहायता माँगी। शाहजी के आक्रमण के समय इक्केरी पर वीरभद्र नायक का राज्य था। अब यह उजड़ा हुआ नगर सगर कहलाता है (मैसूर राज्य का शिमोगा जिला)। केंग नायक कोयम्बटूर के समीप कोंगु पर राज्य करता था, जगदेव राय कावेरी पट्टन पर, कण्ठीराव नरस वोडियार श्रीरंगपट्टन पर, विजय राघव तंजौर पर और तिरुमल नायक जिंजी पर राज्य करता था। कर्नाटक पर मुस्लिम अभियान के कारण जो विपत्ति आई उसमें इन मुख्य शासकों को भागीदार होना पड़ा। एक वीर साहसी हिन्दू नेता के लिए रंगमंच पर उपस्थित होकर संयुक्त विरोध को संगठित करने हेतु यह समय बिल्कुल उपयुक्त था किन्तु यह यश महाराष्ट्र को प्राप्त होने वाला था, कर्नाटक को नहीं। यहाँ तो

मुसलमान एक-एक सरदार से अलग-अलग निपटते रहे और अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहे ।

शाहजी ने पश्चिमी कर्नाटक पर किये गये लगातार अभियानों में रनदुल्लाखाँ के नेतृत्व में १६३७ और १६४० ई० के मध्य भाग लिया। प्राय: वे वर्षा के बाद बीजापुर से चलते थे और दूसरी वर्षा के पहले ही वापस आ जाते थे। हिन्दुओं का दमन कर, उनके मन्दिरों को अपवित्र कर और उनके संचित धन को बीजापुर लाकर इस्लाम के गौरव की वृद्धि करना उनका अभीष्ट उद्देश्य था। प्रथम अभियान में १६३७ ई० में वे धारवार और लक्ष्मेश्वर होकर गये और सीधे इक्केरी पर टूट पड़े। इस समृद्ध राजधानी का शासक उस समय भद्रप्पा नायक का पुत्र वीरभद्र नायक था। बीजापुर की विशाल सुसज्जित सेनाओं के सामने इक्केरी की पत्थर की चहार-दीवारी बहुत दिनों न टिक सकी। दो मास के घेरे में ही वीरभद्र की पराजय हुई और वह अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश हो गया। इक्केरी पर अधिकार कर लिया गया और उसे ३ दिसम्बर, १६३७ को भूमिसात् कर दिया गया। वीरप्पा ने अपना आधा प्रदेश समर्पण कर दिया, १८ लाख होनों का दण्ड चुकाया और नगर नामक स्थान में जा बसा, जिसे अब बेदनूर कहते हैं। एक समृद्ध राज्य के निरीह शान्तिप्रिय नागरिकों को या तो अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा या अपने घरों को त्यागना पड़ा। अपने सतीत्व को सुरक्षित रखने के लिए हिन्दू महिलाओं ने बाल-बच्चों सहित कुँओं में कूद कर जान दे दी। इस प्रकार सारा प्रदेश लूट-पाट कर आधीन कर लिया गया। पहली बार दक्षिण की शान्तिप्रिय जनता को अनुभव हुआ कि तोपें और बन्दूकें कितनी बरबादी कर सकती हैं।

१६३८ ई० का द्वितीय अभियान पूर्व और दक्षिण में और भी आगे तक हुआ। इस समय शाहजी के अतिरिक्त एक अन्य क्रूर सेनापति अफजलखाँ रनदुल्लाखाँ के साथ था। वह शीरा के विरुद्ध भेजा गया था, जिसके शासक कस्तूरीरंग नायक ने प्राण-रक्षा का विश्वास दिये जाने पर अल्प-प्रतिरोध के बाद अधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु जब

नायक भेंट करने के लिए उपस्थित हुआ तो अफजलखाँ ने उसे बेदर्दी से मरवा डाला तथा नगर और उसकी समस्त सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार विश्वासघात और गम्भीर शपथ को भंग कर उसने अपने नाम पर बट्टा लगाया। यह घटना शिवाजी की स्मृति पर उस समय अंकित थी जब उन्होंने अफजलखाँ द्वारा दिये गये वचन पर विश्वास करने से इंकार कर दिया और १६५९ ई० में प्रतापगढ़ के नीचे अपने प्रसिद्ध सम्मिलन में विश्वासघात का बदला लिया।

जब अफजलखाँ शीरा में व्यस्त था तो शाहजी ने बंगलौर पर चढ़ाई कर दी और गढ़ को उसके रक्षक केम्प गौड़ से छीन लिया। उन्होंने इस स्थान को दक्षिणी प्रदेशों पर शासन करने के लिए अनुकूल पाया और आदिलशाह की स्वीकृति से रनदुल्लाखाँ ने उनको वहीं पर नियुक्त कर दिया। इसके बाद शाहजी ने बंगलौर को अपना प्रमुख स्थान बनाया। उन्होंने स्वतन्त्र शासक के समान ही प्रान्तीय शासक का कार्यालय और चिन्ह भी अपना लिये। उन्होंने शीघ्र ही श्रीरंगपट्टन के काण्ठीराव नरस वोडियार को अपने अधीन कर लिया।

रनदुल्लाखाँ का तीसरा अभियान (१६३९-४० ई०) भी इसी प्रकार सफल रहा। बसवपट्टन के शासक केंग नायक का दमन करके उसने वहाँ अधिकार कर लिया। टुमकुर, बालापुर, वेल्लोर और कुछ अन्य स्थान शीघ्र ही जीत लिये गये और रनदुल्लाखाँ बड़ी धूमधाम से बीजापुर वापस आया। खान की सफलता से सुल्तान इतना प्रसन्न हुआ कि वह स्वयं राजधानी से बाहर बहुत दूर कृष्णा नदी पर स्वागत करने के लिए आया। तीन वर्षों के सतत प्रयत्न द्वारा प्राप्त अपूर्व विजय की स्मृति में बीजापुर में उसने विशाल समारोह किया। इस काल में दक्षिण के समस्त हिन्दू राजा पराजित हो गये थे, बड़े-बड़े नगर हस्तगत कर लिये गये थे और ४ करोड़ होन या १६ करोड़ रुपये से अधिक मूल्य की धन-राशि बीजापुर लाई गई थी। इस धन-राशि

से बीजापुर में कई भव्य भवनों का निर्माण किया गया, जैसे दाद-महल, गोल गुम्बद आदि।

२. **बंगलौर पर शाहजी का अधिकार**—केन्द्र और बाह्य प्रान्तों के बीच उन दिनों यातायात की बड़ी कठिनाइयाँ थीं। अतः इसमें आश्चर्य नहीं कि स्थानीय शासक लगभग राजसी ठाठ और अपने कार्य में पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। इस प्रकार शाहजी ने बंगलौर में एक बड़े सरदार के अनुरूप अपने ठाठ-बाट जमा लिए, इसके लिए वे अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुके थे। अब वे अपना अधिकांश समय बंगलौर ही में व्यतीत करने लगे, कभी-कभी कोलार और बालापुर में भी दरबार लगा लेते थे। इस अपरिचित स्थान में सैनिक और प्रशासकीय कार्य के लिए उन्होंने महाराष्ट्र से बहुत से ब्राह्मण और मराठे परिवार बुला लिये और उनको अपने हित के लिये स्वामिभक्त अधिकारियों के रूप में शिक्षित कर लिया। कर्नाटक के प्रदेशों में उन्होंने मराठी को राजभाषा बना दिया और साथ ही माल और हिसाब की मराठी शैली भी प्रचलित हो गई। उनका खुला दरबार लगता था जिसमें वे गायकों, कवियों, लेखकों और सन्तों का आदर-सत्कार करते थे। इस प्रकार अल्पकाल में कन्नड़ और तामिल प्रदेशों के बीच में लघु महाराष्ट्र का जन्म हुआ, जिसका प्रभाव तीन शताब्दियों के परिवर्तनों के बाद आज भी बाकी है। यद्यपि तंजौर की वास्तविक विजय १६७५ ई० में शाहजी के योग्य पुत्र एकोजी द्वारा हुई, किन्तु उसकी आवश्यक तैयारियाँ शाहजी के शासन-काल के २५ वर्षों में ही हो गई थीं। इस पर भी शाहजी स्वयं बीजापुर के प्रति राजभक्त रहे। वे आदिलशाह को नियमित धन-राशि भेजते रहे और अपने पदानुकूल आचरण में इतने सतर्क रहे कि कभी सन्देह अथवा शिकायत का कोई अवसर उपस्थित

---

२ देखिए, सरकार की 'हाउस ऑफ शिवाजी", पृष्ठ २७; डा० सैलेतोर का "इक्केरी का पतन" लेख, एच० आर० सी० १९३९; गोविन्द वैद्य का "काण्ठीराव नरस चरित्र" मैसूर यूनीवर्सिटी की अर्धवार्षिक पत्रिका १९३० आदि।

न होने दिया। इन दक्षिणी प्रदेशों की जनता शाहजी के शासन को विधाता की दी हुई प्राचीन विजयनगर की परम्परा समझती थी, जिसकी मुख्य भावना को एक हिन्दू नेता ने जीवित रखा था। कुछ गौण कारणों से उसकी राजभक्ति पर कुछ काल तक शंका भी होती रही थी। इस पर हम बाद में प्रकाश डालेंगे।

इस बीच में शाहजी के दो पुत्र उनके पास परवरिश पा रहे थे और इस वातवारण का उन पर प्रभाव पड़ रहा था। बड़ा पुत्र सम्भाजी, जो अब लगभग २० वर्ष का था, अपने पिता की देख-रेख में कार्य कर रहा था। उनकी दूसरी स्त्री का पुत्र एकोजी इस समय करीब १० वर्ष का था और अपने ढंग से उन्नति कर रहा था। उनका तृतीय पुत्र शिवाजी महाराष्ट्र में अपनी माता के साथ था और पश्चिमी घाटों के स्वतन्त्र वातावरण में शनैः-शनैः अपना चरित्र-निर्माण कर रहा था। उस पर किसी की नौकरी या उच्च आज्ञा की पाबन्दी न थी, नाममात्र के लिए वह अपने पिता और बीजापुर के सुल्तान के प्रति उत्तरदायी था। एक प्रेममयी माता और बुद्धिमान संरक्षक की देखभाल में उसने उस समय उपलब्ध उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त की और वीर तथा आत्मविश्वासी बन गया। १६४० ई० में फाल्टन के निम्बालकर परिवार की सईबाई नामक कन्या से उसकी माता ने उसका विवाह कर दिया। एक ओर मावल की अशान्ति-प्रिय पड़ोसी जनता से उसका निकट सम्पर्क था और दूसरी ओर निपुण दादाजी कोंडदेव से सम्बन्धित उसका घनिष्ठ शिष्यत्व। इन दोनों से शासन की कला में क्रान्तिकारी अनुभव प्राप्त हुए। इस प्रकार उसने सैनिक, नागरिक और माल-विभाग के संगठन स्थापित किये जिन्हें बहुत काल तक लोगों की दृष्टि से छिपाकर रखना सम्भव न था। उसकी छोटी उम्र में ही बड़े-बड़े कामों और अनियन्त्रित साहसी कार्यों की वार्ता बीजापुर के अपने प्रतिनिधि द्वारा शाहजी के कानों तक पहुँची। शाहजी ने उस पर नियन्त्रण स्थापित कर उसे नौकरी के परम्परागत कार्य में लगाना और मुस्लिम शासक के प्रति पूर्ण वफादार रखना आवश्यक समझा। अतः स्वयं सोचकर या

बीजापुर से संकेत पाकर शाहजी ने शिवाजी को जीजाबाई, दादाजी और उनके अनुचर वर्ग के साथ अपने पास बुला लिया। प्रकट कारण यह बताया गया कि वे अपनी नव-पुत्र-वधू को देखना चाहते हैं। यद्यपि इस सम्मिलन की वास्तविक तिथि का उल्लेख कहीं भी नहीं है, किन्तु यह माना जा सकता है कि लगभग दो वर्षों तक (१६४०–४३ के बीच में) यह टोली पूना से बाहर अधिकतर बंगलौर में और वापसी पर कुछ समय बीजापुर में रही। इस लम्बी भेंट में क्या हुआ, उनके पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार सँभले, नीति की क्या विशेष धाराएँ निर्धारित की गईं, इनका हम केवल अनुमान कर सकते हैं और वह भी इधर-उधर बिखरे हुए संक्षिप्त वर्णनों को पढ़कर जो बखरों में अथवा जयराम और परमानन्द सदृश कवियों की रचनाओं में मिलते हैं। इनका मिलान मुसलमान लेखकों के फारसी वर्णनों से करना भी आवश्यक है। इन अस्पष्ट परन्तु महत्वपूर्ण प्रश्नों को हम केवल अनुमान और कल्पना द्वारा ही हल कर सकते हैं, फलतः मतभेद की पर्याप्त गुंजाइश है।[3]

जीजाबाई को इस बंगलौर यात्रा में अपने पति के निवास-स्थान की परिस्थिति से सम्भवतया शान्ति और सन्तोष प्राप्त न हुआ। फलतः उन्होंने दक्षिण के अगणित प्रसिद्ध हिन्दू-मन्दिरों के दर्शनों में अधिकतम समय व्यतीत करने की युक्ति निकाल ली। आदिलशाह यह जानने के लिए अत्यन्त व्यग्र था कि घटनाएँ क्या रूप ले रही हैं। इस उद्देश्य से उसने शाहजी को सपरिवार १६४३ ई० के लगभग बीजापुर बुलाया। इस वर्ष ग्रीष्म ऋतु में शाहजी के मित्र और संरक्षक रनदुल्लाखाँ का देहान्त हो गया और अब दरबार में शाहजी का कोई समर्थक न रहा।

---

३ पेशवा की "बखर" का यह वर्णन उल्लेखनीय है—"मुसलमान हिन्दुओं के सारे देश को खतम कर इसे मुसलमानों से भरना चाहते थे, शाहजी ने इस दुष्ट नीति पर पूरी तरह अमल किया। शाहजी के इस आचरण से देवता क्रुद्ध हुए और उन्होंने एक नये रक्षक को जन्म दिया।" राजवाड़े, खण्ड ४।

फलतः १६४३ ई० में शाहजी समस्त परिवार सहित बीजापुर गये। बंगलौर में उनके न रहने के कारण कर्नाटक में मुस्लिम शासन के विरुद्ध घोर घृणा फैलने लगी। १६४२ ई० में वेंकटपति द्वितीय का देहान्त हो गया और उसका पुत्र श्रीरंगराय जो विजयनगर के पतनोन्मुख गौरव का अन्तिम चिन्ह-स्वरूप था, गद्दी पर बैठा। उसने वेल्लोर में अपनी शक्ति का संगठन किया और हाथ से खिसकती सत्ता को हस्तगत करने का प्रयत्न किया। मुस्लिम विजय के प्रभाव को खत्म करने के लिए बेदनूर का शिवप्पा नायक और अन्य स्थानीय नायक एक के बाद एक उठ खड़े हुए। इस तरह मुहम्मदशाह के सम्मुख विकट स्थिति उपस्थित हो गई और उसने अपने पूर्व-परिश्रम के फल को सुरक्षित रखने तथा विद्रोही तत्वों को दबाने के लिये कर्नाटक पर एक नवीन अभियान सङ्गठित किया जिसको उसने धर्मान्ध मुस्तफाखाँ के सुपुर्द किया। मुस्तफाखाँ बहुत पहले से शाहजी की राजभक्ति के प्रति सन्देह रखता था और उन्हें सजा देने के लिए तुला हुआ था। अपनी सम्पूर्ण शक्ति से अभियान को मजबूत बनाने के लिए शाह स्वयं आ गया और उसने बंकापुर में डेरा डाल दिया। इस प्रकार कर्नाटक में नई कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुई और शाहजी शीघ्र ही उनमें फँस गये। १ अगस्त, १६४४ के फरमान में लिखा है कि शाहजी को अपमानित किया गया था।[४]

इक्केरी और सगर पर शिवप्पा नायक ने मुसलमानों का दृढ़ विरोध किया परन्तु एक घनघोर युद्ध में उसे पूर्णतया पराजित कर दिया गया। पश्चिमी कर्नाटक को अधीनता के लिए विवश कर विजयी मुस्तफाखाँ बीजापुर वापस लौट गया। किन्तु इस दौरान में नवयुवक श्रीरंगराय बड़ी तेजी से उन्नति कर रहा था और उसे समाप्त किये बिना कर्नाटक पर मुसलमानों का अधिकार निष्कंटक न था। अतः उसका दमन करने के लिए दूसरा अभियान मुस्तफाखाँ के नेतृत्व में बीजापुर और गोलकुण्डा के शाहों के सम्मिलित प्रयत्न से

---

४ "शिवचरित्र-साहित्य", भाग ४, पृष्ठ २१।

संगठित किया गया। मुस्तफाखाँ ने श्रीरंगराय के विरुद्ध सीधा प्रस्थान किया और उसकी राजधानी वेल्लोर को जीतकर १६४६ ई० में लौट आया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अभियान में शाहजी सम्मिलित न थे, वे बंगलौर में ही रहे और वहीं से घटनाचक्र देखते रहे।

३. शाहजी पर राजकोप—श्रीरंगराय ने अपने साधन संगठित किये और शीघ्र ही वेल्लोर पर अधिकार कर लिया। इस समाचार ने बीजापुर पहुँचकर शाह को अति क्रुद्ध कर दिया। शाहजी के शत्रु अग्नि में घी डालने से न चूके। जो वार्ता श्रीरंगराय और शाहजी में चल रही थी वह एक खुला रहस्य थी। शाह के कानों में यह खबर पहुँची कि शाहजी श्रीरंगराय को अपना समर्थन देकर राजद्रोही हो गये हैं। यह वही समय था जब पश्चिम में शिवाजी ने सिंहगढ़ पर अधिकार कर लिया था और अपनी स्वाधीनता की स्थापना पूना के जिले में व्यावहारिक रूप में कर ली थी। शाह ने निश्चय किया कि बिना पिता की सहमति के शिवाजी यह कार्य नहीं कर सकते। परन्तु दूसरी ओर शाहजी जैसे शक्तिशाली सामन्त को आज्ञाकारी बनाना या उसके प्रति अविश्वास व्यक्त करना भी सरल नहीं था। अतः शाह ने १६४६ ई० में श्रीरंगराय के विरुद्ध एक अभियान संगठित किया, जिसका नेतृत्व मुस्तफाखाँ को दिया गया और साथ में उसे गुप्त निर्देश दिया कि यदि शाहजी अपने कर्तव्य-पालन में ढिलमिल नजर आयें या शत्रु से षड़यन्त्र करते पाये जायें तो शाहजी को गिरफ्तार कर लिया जाय। मुस्तफाखाँ के साथ अफजलखाँ, रनदुल्लाखाँ का पुत्र रुस्तमेजमाँ और अन्य सामन्त भी थे। ५ जून, १६४६ को फौजें बीजापुर से चलीं और गदग और लक्ष्मेश्वर होकर बढ़ती हुई अक्टूबर में बसवपट्टन जा पहुँचीं, जहाँ शाहजी और असदखाँ अपने-अपने दलों सहित मुख्य सेना में सम्मिलित हो गये। कुछ स्थानीय पालेगर भी इन दलों में थे। जल-प्रवाह के समान यह असीम सैन्य-दल वेल्लोर पर चढ़ चला। तब श्रीरंगराय और दक्षिण के नायकों ने अधीनता के प्रस्ताव भेजे, जिनमें

उन्होंने जीवन और रक्षा की याचना की। मुस्तफाखाँ ने श्रीरंगराय की गतिविधि पर पूरी निगाह रखी। श्रीरंगराय ने शाहजी से याचना की कि वे मध्यस्थ बन जाएँ। शाहजी ने शान्ति के लिए खान से बातचीत की और शर्तें प्रस्तुत कीं। परन्तु मुस्तफाखाँ शाहजी की मध्यस्थता का मान रखने को उद्यत न था और उसने मित्रता का दिखावा कर शाहजी को छूट दे दी। परन्तु स्थिति शीघ्र ही विकट हो गई। श्रीरंगराय ने खुले युद्ध का निर्णय किया। भयानक रक्तपात हुआ जिसमें वह पराजित हुआ और अपनी जान बचाकर भाग निकला। वेल्लोर पुनः मुस्तफाखाँ के हाथों में आ गया। फिलहाल शाहजी भी सेनापति के साथ खुले संघर्ष से बच गये। एक बार फिर विजय का झण्डा उड़ाता हुआ मुस्तफाखाँ बीजापुर लौट आया। इसके बाद श्रीरंगराय बहुत दिनों तक घिसट-घिसट कर दीन जीवन बिताता रहा।

आदिलशाह को यह आम सूचना दी गई थी कि शाहजी हृदय से राजभक्त नहीं हैं और गुप्त रूप से अपनी सामर्थ्यानुसार हिन्दू पक्ष का समर्थन करते हैं। शाह को विश्वास हो गया कि विभिन्न पालेगर शाहजी से नेतृत्व की आशा करते हैं और यदि समय पर रोकथाम न की गई तो दक्षिणी प्रदेशों में मुसलमानों के लिए राज्य करना असम्भव हो जायेगा।[५]

शिवाजी की हलचलों से महाराष्ट्र में भी ऐसी ही स्थिति पैदा हो रही थी। अतः सिंहगढ़ और बंगलौर दोनों ही बीजापुर के शासक के लिए खतरे के संकेत हो गये।

दीर्घ चिन्ताग्रस्त मन्त्रणा के बाद दूसरा अभियान १६४८ ई० के आरम्भ में मुस्तफाखाँ के नेतृत्व में बीजापुर से हुआ और फौजें सीधी वेल्लोर से जिंजी को आईं, जो उस समय हिन्दू विद्रोह के तूफान का केन्द्र स्थान था। कुतुबशाह की ओर से प्रसिद्ध मीरजुमला भी मुस्तफाखाँ के साथ था। इस सामन्त की महत्वाकांक्षा ने किस प्रकार

---

५ देखिए "शिवभारत", ६, २८-२४।

नवीन गुत्थियाँ उपस्थित कर दीं, यह ऐसा विषय है जिसका ध्यान समकालीन इतिहास के विद्यार्थी को अवश्य रखना चाहिए। शाहजी ने इस दलबन्दी के दलदल में अपना महत्त्व बढ़ाने के लिए मार्ग बनाने का प्रयास किया और एक ऐसे समय में जब किसी का विशेष ध्यान न था बीजापुर की नौकरी छोड़कर उन्होंने कुतुबशाह की सेवा स्वीकार कर ली। मुस्तफाखाँ इस समय अपने बीच से विश्वासघाती तत्व को छाँट देने के लिए कटिबद्ध था, जो उसके डेरे में बढ़ रहे थे। अपनी इस चेष्टा से उसने कई उन लोगों को भी क्रुद्ध कर दिया जो इसके नीचे कार्य कर रहे थे, जैसे असदखाँ, शाहजी और रुस्तमे-जमाँ। मुस्तफाखाँ ने निश्चय कर लिया कि सारे संकट का एकमात्र कारण शाहजी हैं और उसने उनके (शाहजी के) अपराध के प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए बहुत सावधानी से प्रयत्न शुरू कर दिये। बीजापुर की सेनाएँ उस समय जिंजी के घेरे में व्यस्त थीं और इसके लिए अलग-अलग कार्य बाँट दिये गये थे। इस सम्बन्ध में मुस्तफाखाँ और शाहजी के बीच मर्यादा का प्रश्न झगड़े का कारण हो गया। शाहजी ने इस पर धमकी दी कि व्यय के लिए तुरन्त उनको नकद पैसा न दिया गया तो वे अपनी सेना सहित वापस चले जायेंगे। मुस्तफाखाँ अपने मातहत द्वारा की गई इस धृष्टता से चिढ़ गया परन्तु मित्र-भाव का दिखावा करता रहा और उसने शाहजी को गिरफ्तार करने का एक गुप्त षड़यन्त्र रचा। बीजापुर का एक अधीनस्थ सरदार मुधोल का बाजी घोरपड़े शाहजी का कुख्यात विरोधी था। इसे मुस्तफ़ाखाँ ने उकसाया कि जब रात्रि के आमोद-प्रमोद के बाद शाहजी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हों, तब प्रात:काल के झुटपुटे में वह शाहजी के निवास-स्थान पर अकस्मात टूट पड़े। यह आक्रमण सफल रहा और २५ जुलाई, १६४८ को जिंजी में शाहजी अपने विश्वस्त सहायक कान्होजी जेधे के साथ सोते हुए पकड़ लिये गये। मुस्तफाखाँ ने इस घटना का समाचार बीजापुर में शाह को भेज दिया और अगली कार्यवाही के लिए उसकी आज्ञा माँगी।

मुहम्मद आदिलशाह इस समय बीमार पड़ा था। वह लकवे के

दौरे से निर्बल हो गया था। शाहजी के समान शक्तिशाली मराठा सरदार को शत्रु बनाने के परिणामों को वह अच्छी तरह जानता था, अतः उसने मुस्तफाखाँ को आज्ञा दी कि शाहजी को तुरन्त राजधानी में भेज दे। उसने क्रोधी मुस्तफाखाँ की अपेक्षा अधिक योग्य अपने विश्वासपात्र मन्त्री मुहम्मदखाँ को जिंजी की स्थिति सँभालने के लिए भेज दिया। शाह ने अफजलखाँ को भी भेजा कि शाहजी को संभालकर राजधानी में ले आये। परन्तु वजीर के घटनास्थल पर पहुँचने के पहले ही ९ नवम्बर, १६४८ को मुस्तफाखाँ का देहान्त हो गया। मुहम्मदखाँ ने घेरा जारी रखा और आगामी २८ दिसम्बर को उसके रक्षक रूपा नायक से उसने जिंजी छीन ली। रूपा नायक के पूर्वजों द्वारा ७०० वर्षों के सतत शासन में एकत्रित असीम धन ८९ मजबूत हाथियों पर लादा गया और बन्दी शाहजी के साथ-साथ यह दल बीजापुर की ओर अग्रसर हुआ। अगली ग्रीष्म ऋतु में यह दल निर्दिष्ट स्थान पर आ पहुँचा। अगले वर्ष बीजापुर की सेनाओं ने तंजौर, मदुरा और अन्य प्रसिद्ध स्थानों पर आक्रमण किया और उनको लूट लिया एवं बँगलौर को छोड़कर समस्त कर्नाटक की विजय सम्पन्न करके वजीर मुहम्मदखाँ राजधानी में वापस आ गया। परन्तु श्रीरंगराय पूर्णतया पराजित न हुआ था। शाह के दरबार में यह आम धारणा थी कि यदि शाहजी ने हिन्दू राजाओं को अपना रक्षण देकर हस्तक्षेप न किया होता तो इस विजय में इतना समय न लगता।

अपनी विजय को सुरक्षित समझने के पूर्व अभी दो और खतरे के स्थान शेष थे जिनको आदिलशाह को जीतना था। दक्षिण में बंगलौर और महाराष्ट्र में सिंहगढ़ पर शाहजी और जीजाबाई के दो पुत्रों का सुदृढ़ अधिकार था। आदिलशाह के समक्ष उस समय मुख्य प्रश्न यह था कि उन गढ़ों पर किस प्रकार अधिकार किया जाय। इस प्रश्न के साथ शाहजी का भाग्य भी सम्बद्ध था जो अब बन्दी थे और इसी समय बीजापुर पहुँचे थे। प्रश्न यह था कि उनके साथ कैसा बर्त्ताव किया जाय।

जैसे ही शाहजी को बन्दी बनाया गया, वैसे ही एक सेना जिंजी से बंगलौर पर अधिकार करने के लिए भेजी गई और दूसरी सेना बीजापुर से रवाना की गई जो फिर से सिंहगढ़ और उसके समीपी गढ़ पुरन्दर पर अधिकार कर ले। इन दोनों पर उस समय शिवाजी का सुदृढ़ अधिकार था। इन दोनों स्थानों पर कई दीर्घ और रक्त-रंजित युद्ध हुए जिनमें शाहजी के दोनों पुत्रों ने अपनी वीरता और योग्यता का इतना प्रबल परिचय दिया, जिससे शाह को अब निश्चय हो गया कि यदि शाहजी के प्रति कड़ी कार्यवाही की गई तो बड़ा बुरा नतीजा होगा। मुगल सम्राट् शाहजहाँ के विरुद्ध उनके पिता ने जो स्वनिर्मित योग्य सरदार था, अपने बल और उत्साह का परिचय दे दिया था, और अब वह अपने दोनों योग्यतम पुत्रों के कारण और भी शक्तिशाली हो गया था। ऐसे शक्ति-सम्पन्न सामन्त को पराजित करना सरल कार्य न था।

४. शाहजी के दो पुत्र कार्य-क्षेत्र में—जब पूना में शिवाजी को पता चला कि बीजापुर में उनके पिता पर संकट आ गया है तो उन्होंने तुरन्त राजकुमार मुरादबख्श को पत्र लिखा। यह उस समय दक्षिण में सम्राट् का प्रतिनिधि था। दोनों ओर से सन्देशवाहक भेजे गये और शाहजी की मुक्ति के प्रश्न पर बातचीत शुरू हुई। मुरादबख्श ने लिखा कि वह दिल्ली वापिस जा रहा है और वहाँ पहुँचकर सम्राट् की आज्ञाओं को जैसी वे होंगी तुरन्त भेज देगा। इस प्रकार बीजापुर में शाहजी की मुक्ति के प्रश्न पर दो मास तक हलचल होती रही। शाहजी सर लश्कर अहमदखाँ की सुपुर्दगी में थे, जिसे शान्तिपूर्ण समझौते पसन्द थे। वह अति उग्र तरीके अपनाने के पक्ष में न था। शाह की ओर से अहमदखाँ ने शाहजी से प्रस्ताव किया कि वे सिंहगढ़ और बंगलौर को सौंप दें और पूर्ववत् राज्य की सेवा करते रहें। इस समझौते पर शाहजी ने स्वीकृति दे दी। उन्होंने कहा कि न तो वे स्वयं और न उनके पुत्र शाह के विरोधी हैं। उनको अपने

---

६ दो संग्रामों का विस्तृत विवरण परमानन्द के "शिवभारत", अध्याय १३ व १४ में उपलब्ध है।

जीवन में सम्मानपूर्ण कार्य करने के लिये क्षेत्र और बीजापुर दरबार के पर्याप्त समर्थन की आवश्यकता है। यदि यह चीजें मिल जायें तो वे वफादारी से सेवा के लिए प्रस्तुत हैं। अन्तिम समझौते के लिए इस आधार पर सहमति हो गई। शाहजी ने अपने हस्ताक्षरों से पत्र अपने पुत्रों को भेजे, जिनमें उन्होंने कहा कि वे क्रमशः सिंहगढ़ और बंगलौर को छोड़ दें, उनको आदिलशाह के अधिकारियों के सुपुर्द कर दें और इस प्रकार उनकी प्राण-रक्षा करें। यह आज्ञाएँ दोनों पुत्रों को भेज दी गईं और करीब १० मास से अधिक समय तक बन्दी रहने के बाद १६ मई, १६४९ को शाहजी सम्मानपूर्वक मुक्त कर दिये गये। शाहजी के साथ-साथ उनका युद्ध का साथी कान्होजी जेधे भी मुक्त कर दिया गया। शाहजी अपने पुराने पद और सम्मान पर आसीन कर दिये गये और वर्षों तक बीजापुर में काम करते रहे। उसके बाद उनसे पुनः कर्नाटक जाने और तंजौर तथा अन्य जिलों की विजय को पूरा करने के लिए कहा गया। स्वतन्त्र होते ही उन्होंने पूना जिले का प्रबन्ध करने में शिवाजी को सहायता देने के लिए कान्होजी जेधे को भेजा। शाहजी का कान्होजी को दिया गया विदाई सन्देश इस प्रकार है : "मेरे कारण आपको बन्दीगृह और अपमान के कष्ट झेलने पड़े हैं। कर्नाटक विजय के लिए अब मैं इस शर्त पर सहमत हो गया हूँ कि बंगलौर का प्रान्त और उसकी ५ लाख होन की आय मुझे दे दी जाये। मावल में आपकी पैतृक भूमि है और आपका उधर प्रभाव है। अब आपको अपने घर जाना चाहिए, शिवाजी की सेवा करनी चाहिए और उन देशमुखों को अधीन करना चाहिए जो अब तक मुकाबला कर रहे हैं। यदि मुगल या आदिलशाही अधिकारी शिवाजी को दण्ड देने के लिए सशस्त्र सेनाएँ भेजें तो उनसे डटकर युद्ध करें और शिवाजी के हितों के प्रति वफादार रहें।"[७]

शाहजी पुनः कर्नाटक वापस आये और कनकगिरि को अपना

---

७ इससे शिवाजी का मोरे लोगों के प्रतिकूल होने का कारण स्पष्ट हो जाता है ।। जेधे शकावली ।। यह बहुमूल्य घटनाक्रमसूची करी के कान्होजी जेधे के परिवार से प्राप्त हुई है।

मुख्य स्थान बनाकर उन्होंने कई वर्ष रायचूर दोग्राब में व्यतीत किये। इस समय वे ग्रपने दोनों पुत्रों को उनके ऐश्वर्य-वृद्धि के प्रयत्नों में भी सहायता देते रहे। एकोजी बंगलौर में रह गया ग्रौर सम्भाजी ग्रपने पिता के पास कनकगिरि में ग्रा गया। जिंजी की विजय के बँटवारे पर बीजापुर ग्रौर गोलकुण्डा में १६५१ ई० में खुला युद्ध छिड़ गया ग्रौर इससे शाहजी ग्रौर उनके पुत्रों को परोक्ष सहायता मिली। गोल-कुण्डा के मीरजुमला के विरुद्ध बीजापुर की ग्रोर से शाहजी लड़े। मीरजुमला की हार हुई ग्रौर उसे शाहजी को ६ लाख होन युद्ध का व्यय देना पड़ा। १६५३ ई० से दक्षिणी प्रदेशों में ग्रादिलशाही राज्य के मुख्य समर्थक एकमात्र शाहजी हो गये।

विजयनगर के ध्वस्त प्रदेश में कनकगिरि उस समय ग्रधोगत हिन्दू-साम्राज्य की प्राचीन परम्पराग्रों से युक्त ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान था। यहाँ पर ग्रपने पिता के साथ सम्भाजी रहते थे ग्रौर उनके कार्य में योग देते थे। यहीं पर उन्हें हिन्दुग्रों के प्राचीन वैभव की तुलना में मुस्लिम शासन में उनकी वर्तमान दुरवस्था का ज्ञान हुग्रा। ग्रपने छोटे भाई शिवाजी के समान सम्भाजी में भी प्रतिरोध की पर्याप्त भावना थी। विद्वान् ग्रौर वीर हनुमन्ते परिवार के कई व्यक्ति उनके सहायक थे, जिनमें मुख्य नरोपन्त था, जिसके दो योग्य पुत्र जनार्दन ग्रौर रघुनाथ थे। यह विदित है कि शिवाजी के इति-हास में इन दोनों भाइयों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। कनकगिरि के पालेगर ग्रप्पाखाँ ने विरोध का झण्डा उठाया जिसका सामना करने में शाहजी ग्रौर सम्भाजी ग्रसमर्थ हो गये। ग्रत: १६५४ ई० में ग्रादिलशाह ने ग्रफजलखाँ को उनकी सहायता के लिए भेजा। युद्ध में सम्भाजी मारा गया। यह समझा गया कि संकट-क्षण में सम्भाजी को सैन्य सहायता भेजने में ग्रफजलखाँ ने जान-बूझकर उपेक्षा की इसीलिए यह क्षति हुई। सम्भाजी की माता जीजाबाई इस उद्धत बीजापुरी सेनापति के प्रति क्रुद्ध हो गईं ग्रौर उन्होंने १६५६ ई० के संघर्ष में शिवाजी को इस कृत्य का बदला लेने की ग्राज्ञा दी।

यद्यपि शाहजी को ग्रपने पुत्र की उन योजनाग्रों ग्रौर हलचलों

से पूर्ण सहानुभूति थी जो वह अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य का निर्माण करने के लिये कर रहा था, परन्तु वे इतने चतुर अवश्य थे कि अपने पुत्र के कार्यों में अपने को उन्होंने उलझाया नहीं और वे अन्त तक बीजापुर राज्य के स्वामिभक्त कर्मचारी बने रहे। ४ नवम्बर, १६५६ को मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु से और उसके एक वर्ष बाद उसके स्वामिभक्त मन्त्री खान मुहम्मद की हत्या से उनको बहुत सुविधा मिल गई। बीजापुर में शाह की मृत्यु के बाद शक्ति हथियाने के प्रयत्नों ने और राजकुमार औरंगजेब के आक्रमण ने आदिलशाही शक्ति को स्पष्टतया निर्बल कर दिया गया था जिससे शिवाजी की हलचलों को काफी सुविधा प्राप्त हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय बीजापुरी अधिकारियों से शाहजी बहुत चिढ़ गये थे क्योंकि उन्होंने त्यागपत्र की धमकी दी कि वे उनकी सेवा से अवकाश प्राप्त कर लेंगे।[८]

प्रतीत होता है कि स्थिति सन्तोषजनक ढंग से संभाल ली गई और शाहजी अन्त तक बीजापुर के राजभक्त कर्मचारी बने रहे, यद्यपि ऐसी सूचनाएँ प्राप्त होती रहीं कि पिता और पुत्र राज्य के विरुद्ध परामर्श कर लेते हैं। २७ मई, १६५८ को "महाराज फर्जन्द शाहजी भोसले को अली आदिलशाह ने सूचित किया कि अपने पुत्र शिवाजी के अपराधों के प्रति वे उत्तरदायी न समझे जायेंगे। सब विषयों पर वे अपने चित्त को शान्त रखें और जिस कृपा और उदारता का उस समय तक उन्होंने उपभोग किया है, वे सब उसी प्रकार उसी अंश में और उससे भी बढ़कर बनी रहेंगी। उनके पदों और उनकी जागीरों में कोई परिवर्तन या उनका अपहरण न होगा।"

१६५८ ई० के बाद शाहजी और उनके पुत्र एकोजी ने बहुत प्रयत्न किया कि तंजौर को उसके शासक से जीत लें परन्तु स्थानीय नायकों ने एक संघ बना लिया था जिसने शाहजी को दूर ही रखा। १६५९ ई० में अफजलखाँ की हत्या के बाद शिवाजी की शक्ति शीघ्र ही बढ़

---

८ "शिवाजी सॉवेनिर", पृष्ठ ११५; "हाउस ऑफ शिवाजी", पृ० ८७।

गई और बीजापुर के दरबार ने इस संकट में शिवाजी से सुलह कराने के लिये शाहजी की मदद चाही। इस सम्बन्ध में एक बार फिर शाहजी महाराष्ट्र वापस आ गये। वे अपने पुत्र शिवाजी के साथ कुछ समय तक रहे, उनके प्रदेशों का निरीक्षण किया और उनके एकीकरण के उपाय सुझाये। जीजाबाई को उस समय पुनः अपने पति की प्रेमपात्री होने का सुख प्राप्त हुआ।

इस प्रकार १६६२ ई० के लगभग अली आदिलशाह ने विचार-पूर्वक शाहजी को इस कार्य पर नियुक्त किया कि शिवाजी के साथ सन्धि की व्यवस्था कर दें। आखिरकार आदिलशाह ने उनको आजीविका दी थी, उसी का नमक खाकर उन्होंने उन्नति की थी। शिवाजी ने स्वीकार कर लिया कि अब वह बीजापुर पर अकारण आक्रमण न करेंगे परन्तु दोनों के समान शत्रु मुगल सम्राट् के विरुद्ध दक्षिणी शक्तियों का एक संघ अवश्य बनायेंगे। शिवाजी इस सुझाव से सहमत तो हो गये और प्रतिज्ञा भी की कि बीजापुर के विरुद्ध जान-बूझकर कोई कदम न उठायेंगे पर शर्त यह थी कि उन्हें भी अकारण उत्तेजना न दी जाये।[६] बाद में सैनिक महत्त्व के कारणों से मार्च १६७३ ई० में शिवाजी को आदिलशाही अधिकार से पन्हाला का प्रसिद्ध गढ़ छीनना पड़ा।

अपनी पुरानी जागीर—अपने बालजीवन की भूमि में शाहजी का यह पुनरागमन कई प्रकार से स्मरणीय है। बारह वर्ष से अधिक समय से पिता और पुत्र एक दूसरे से अलग थे, इस दौरान में शिवाजी ने बड़ा नाम पैदा कर लिया था। आज्ञाकारी पुत्र और धर्मप्राण व्यक्ति की भाँति उन्होंने अपने पिता के प्रति प्राचीन परम्परा के अनुसार पूर्ण सम्मान प्रकट किया। वह गाँव के बाहर चलकर आये और एक मन्दिर में पिता से मिले एवं उनकी पालकी के साथ नंगे पाँव रहे। पिता-पुत्र ने खुलकर बातचीत की और वर्तमान स्थिति और भविष्य की सम्भावनाओं पर गूढ़ चिन्तन किया।

---

६ "शिवदिग्विजय" में उद्धृत पत्र, पृ० ३३०।

निस्सन्देह शाहजी को दक्षिण में युद्ध का ४० वर्ष का व्यक्तिगत अनुभव था और इससे शिवाजी को युद्ध, कूटनीति और शासन-कला के सम्बन्ध में बहुत सी उपयोगी शिक्षाएँ प्राप्त हुईं।

मुगलों के सम्बन्ध में शाहजी शिवाजी को निश्चित रूप में कोई सलाह न दे सके, परन्तु चूँकि पूना और कल्याण दोनों उस समय, १६६५ ई० में, मुगलों के हाथ में थे, यह आवश्यक प्रश्न पिता और पुत्र दोनों के सामने उपस्थित था कि राज्य का स्थायी केन्द्र कहाँ पर स्थापित किया जाय ताकि सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था हो सके और वह पूना के समान आसानी से छीनी भी न जा सके। उन्होंने करीब-करीब त्र्यम्बक से लगाकर रंगना तक के गढ़ों का निरीक्षण किया यानी मोटे रूप से नासिक और बेलगाम के बीच के प्रदेश में घूमे और विभिन्न स्थानों की सावधानी से परीक्षा के बाद उन्होंने महद के समीप रायरी के विस्तीर्ण पठार को भावी मराठा राजधानी के लिए चुन लिया। इस पहाड़ी के स्वीकृत हो जाने पर कुछ ही वर्षों में किलेबन्दी होने लगी और आवश्यक भवन तैयार हो गये तथा रायगढ़ ने मराठा राजधानी का रूप शिवाजी के १६६६ ई० में आगरा से वापस आने पर अपना लिया। राजधानी के इस निर्वाचन को बाद के इतिहास ने पूरी तरह सही सिद्ध कर दिया।

५. शाहजी की मृत्यु—कई महीनों तक पूरी तरह साथ रहने के बाद पिता और पुत्र १६६३ ई० के आरम्भ में एक दूसरे से विलग हुए। इसके बाद शिवाजी ने पूना में शाइस्ताखाँ पर अपना वार किया और सूरत पर वीरता से धावा मारा, जिससे रायगढ़ को सुशोभित करने के लिए धन-सामग्री प्राप्त हो गई। शिवाजी के सूरत से वापस आने पर जब उन्होंने और जीजाबाई ने रायरी के पठार पर अपना प्रथम निवास किया तभी बसवपट्टन के समीप घोड़े पर एक दुर्घटना से शाहजी की मृत्यु हो गई। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। अप्रेल १६६३ में अली आदिलशाह ने बंकापुर पर चढ़ाई की थी और अपने दो सेनापतियों बहलोलखाँ और शाहजी को अति शीघ्र अपने पास बुला भेजा था। जब वे उपस्थित हुए तो दोनों को बन्दी बना

लिया गया। शाहजी तो दो दिन में ही छोड़ दिये गये और बेदनूर के विद्रोही नायक का मुकाबला करने के लिए भेज दिये गये।[१०] अपने कार्य को कुछ महीनों में समाप्त करके वे बंगलौर के लिए रवाना हुए। मार्ग में जब वे बसवपट्टन में ठहरे हुए थे कि उन्हें समीप में शिकार खेले जाने की खबर मिली। उन्हें शिकार का बड़ा शौक था, अतः वे चल पड़े। एक मृग के पीछे दौड़ते हुए उनके घोड़े का पैर एक गड्ढे में फँस गया, फलतः घोड़ा और सवार दोनों गिर गये और शाहजी की तुरन्त ही मृत्यु हो गई। यह घटना शनिवार २३ जनवरी, १६६४ को हुई और इसका समाचार शिवाजी को रायगढ़ में प्राप्त हुआ। धर्म-परायण जीजाबाई इस आघात से मूर्च्छित हो गईं और उन्होंने सती होने का निश्चय किया। इस अवसर पर शिवाजी की मनोभावनाओं का हम केवल अनुमान कर सकते हैं। उन्होंने दयनीय प्रार्थनाएँ कीं। माता ने उन्हें स्वीकार कर लिया तथा दस वर्ष तक और उनका साथ दिया।

जीजाबाई के पुत्रों सम्भाजी और शिवाजी और तुकाबाई के पुत्र एकोजी के अतिरिक्त शाहजी के चार अवैध पुत्र थे—भीवजी, प्रतापजी, सन्ताजी और रायभानजी। सम्भाजी कनकगिरि में मारा गया था। उसके दो पुत्र थे—सूरतसिंह और उमाजी। इन दोनों के वंश बहुत दिनों तक चलते रहे।

दक्षिण में मराठा संस्कृति और प्रभाव का जन्मदाता शाहजी को ठीक ही समझा जाता है। ब्राह्मण, मराठा और कारीगरों के बहुत से परिवारों को उन्होंने दक्षिण में बसा दिया जिनके वंशज उन प्रान्तों में अब भी पाये जाते हैं। यह शाहजी ही थे जिन्होंने सिद्ध कर दिया कि निर्बल लोग सबल अत्याचारियों का सामना कर सकते हैं, यदि वे केवल ऐक्य स्थापित कर लें और संगठित हो जायें। कहा जाता है कि क्लाइव और डूप्ले ने इस रहस्य को जान लिया था कि पश्चिमी ढंग पर संगठित कुछ सैन्य-दल भारत विजय कर सकते हैं,

---

१० शिवाजी के सम्बन्ध में अँग्रेजी रेकर्ड संख्या ६७, २० जुलाई, १६६३।

परन्तु उनसे १०० वर्ष पहले स्वयं शाहजी ने एक तत्सदृश अस्त्र गुरिल्ला युद्ध-शैली का विकास कर लिया था। वास्तव में वे राज-निर्माता थे। उन्हें हम मराठा स्वराज्य के निर्माण में पूर्णरूप से शिवाजी को प्रेरणा देने वाले कह सकते हैं। शाहजी ने विजयनगर की परम्परा और संस्कृति को अपना लिया था और अपने बहुमुखी कार्यों द्वारा उन्होंने उनको अपने राष्ट्र के योग्य प्रतिनिधियों तक पहुँचा दिया था। विजयनगर के पतन के पश्चात् शाहजी प्रथम हिन्दू नेता थे जो तीव्र गति और स्थानीय जानकारी द्वारा दिल्ली या बीजापुर की सेनाओं से टक्कर ले सकते थे।

तिथिक्रम

अध्याय ४

६ अप्रेल, १६२७	शिवाजी का जन्म (या, १९ फरवरी, १६३०)
१६३३	पूना प्रदेश का प्रबन्ध करने के लिए दादाजी कोंडदेव की नियुक्ति।
१६३६–१६४७	पूना में शिवाजी का निवास; १६४७–१६६७ तक राजगढ़ में, तदुपरान्त रायगढ़ में।
१६३७–१६४७	गढ़ कौंढाना के बीजापुरी राज्यपाल के रूप में दादाजी कोंडदेव।
१६४०–१६४२	शिवाजी बंगलौर में।
१६४३	शिवाजी बीजापुर में।
१६४४	१२ मावल घाटियों का संगठन।
अगस्त, १६४४	कौंढाना (सिंहगढ़) पर अधिकार।
३० मार्च, १६४५	"हिन्द्रवी स्वराज्य" स्थापना का पवित्र व्रत।
३० मार्च, १६४५	शिवाजी द्वारा सरकारी मुहर का प्रचलन; अपनी नई सरकार के लिए पदों का निर्माण।
१६४६–१६५६	मुहम्मद आदिलशाह का बीमार होना।
७ मार्च, १६४७	दादाजी कोंडदेव की मृत्यु; तोरना पर अधिकार।
१६४८	चाकन और पुरन्दरगढ़ पर अधिकार।
१६४९	सम्भाजी मोहिते पर अचानक आक्रमण; शिरवल और पुरन्दर की लड़ाइयाँ; मूसाखाँ का मारा जाना; फतेहखाँ का खदेड़ा जाना।
१६५३	स्वराज्य सम्पन्न; समुद्र-तटवर्ती विजयदुर्ग के गढ़ का निर्माण प्रारम्भ।

अध्याय ४

चन्द्रमा की प्रथम कला

[१६४४–१६५३]

१. शिवाजी का जन्म और शिक्षरण। २. उनके संरक्षक दादाजी। ३. पहला कार्य। ४. स्वप्न कार्यान्वित। ५. स्वाधीनता की प्राप्ति।

१. शिवाजी का जन्म और शिक्षरण—जुन्नार के समीप शिवनेर के गढ़ में ६ अप्रेल, १६२७ को शिवाजी का जन्म हुआ। हाल ही में प्राप्त कुछ प्रमाणों के अनुसार उनका जन्म ३४½ मास बाद १९ फरवरी, १६३० को माना जाता है। कठिनाई यह है कि इन दोनों तिथियों में से कौन तिथि पूर्णतया सही है, इसे मानने के लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। उनके जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में शिवाजी की माता जीजाबाई बहुत कष्ट में थीं। सम्राट् शाहजहाँ ने दक्षिण पर आक्रमण किया और ८ वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद उसने अहमदनगर के पुराने निजामशाही राज्य को पूर्णतः अधीन कर लिया। शिवाजी के पिता शाहजी ने इसे बचाने का भरसक प्रयत्न किया था। अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में शिवाजी इधर-उधर घूमते रहे, इस समय उनका कोई निश्चित घर न था। अपने जन्म-स्थान शिवनेर से वे अपनी माता के साथ और यदाकदा अपने पिता के साथ सुरक्षा और सुविधानुसार जगह-जगह आते-जाते रहे। यह निश्चित करना कठिन है कि अपनी किशोरावस्था के इस उखड़े

---

१ आगे के वर्णन में मैंने पहली तिथि का उपयोग किया है। इन दोनों तिथियों की यथार्थता के सम्बन्ध में विवाद करना यहाँ आवश्यक नहीं। दोनों में से कोई भी तिथि मान ली जाय, उससे शिवाजी की महानता में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जीवन में वे कहाँ-कहाँ कितने समय के लिए रहे। इस बात से यह जाना जा सकता है कि जन्मकाल से ही वे संकट और कठिनाई का जीवन बिताने के अभ्यस्त हो गये थे। पूना में अपना निवास-स्थान बनाने के पूर्व शिवनेर, बैज़ापुर, शिवपुर और शिवपट्टन आदि स्थानों पर, ऐसा अनुमान किया जाता है, शिवाजी ने अपने जीवन के प्रथम ९ वर्ष व्यतीत किये। इस काल में नारो त्रिमल हनुमन्ते और गोमाजी नायक पानसम्बल उनके संरक्षक थे।

जीजाबाई का वैवाहिक जीवन किसी प्रकार सुखी नहीं कहा जा सकता। यह हम देख चुके हैं कि उनका विवाह ही विवशतावश हुआ था। भोसले और जाधवों के बीच उस समय मैत्री सम्बन्ध न था। जरा-जरा सी बात पर उनके पारिवारिक झगड़े भड़क उठते थे, जैसा कि खण्डग्ले के हाथीकाण्ड से स्पष्ट है।[२] भटवाड़ी के युद्ध में शाहजी की जीत हुई और जीजाबाई के पिता को विरोधी पक्ष का होने के कारण भागकर आत्मरक्षा करनी पड़ी। जाधव देवगिरि के राजवंश से अपनी उत्पत्ति मानकर अपने को उच्च समझते थे, क्योंकि भोसलों में राज-रक्त नहीं माना जाता था। शाहजी के लिए जीजाबाई और शिवाजी सहायक होने के स्थान पर भारस्वरूप ही सिद्ध हुए। हाँ, शिवाजी के बड़े भाई सम्भाजी कुछ सीमा तक पिता के उपयोगी सहायक रहे।

दादाजी कोंडदेव के संरक्षण में अक्टूबर १६३६ से पूना में जीजाबाई निश्चिन्त गृहस्थ जीवन बिताने लगीं। दादाजी ने उनके लिये कसबा में लालमहल नामक एक महल का निर्माण कराया। यहाँ शिवाजी अपनी माता के साथ १६३६ ई० के बाद रहे, तदुपरान्त १६४७ ई० (७ मार्च) में दादाजी की मृत्यु के कुछ समय बाद वे राजगढ़ चले गये। मावल प्रदेश के केन्द्र में स्थित राजगढ़ लगभग २० वर्षों तक शिवाजी का प्रमुख स्थान रहा और इसके बाद आगरा से अपनी सकुशल वापसी पर शिवाजी १६६७ ई० में राजगढ़ से

---

२ "शिवभारत", अध्याय ३, पृ० १५-४५।

अपनी नई राजधानी रायगढ़ (कोंकण में) चले गये। इस स्थान पर भवन-निर्माण का कार्य १६६४ ई० में आरम्भ हो चुका था।

प्रारम्भिक जीवन के ये अति कठोर प्रहार शिवाजी के बाद के जीवन में बड़े लाभदायक सिद्ध हुए। कठिनाई के समय ही सूझ-बूझ और चातुर्य का जन्म होता है, इन विशेषताओं के जीजाबाई और शिवाजी सजीव उदाहरण हैं। जीजाबाई देवगिरि के अपने राजकीय पूर्वजों की स्मृति से ओतप्रोत, साहस और प्रतिरोध की वीर भावना से युक्त क्षत्रिय रमणी थीं। विवाह के बाद से ही वर्षों के कष्टों के कारण यह भावना उनमें परिपक्व हो गई। वह किशोर शिवाजी के लिये सही अर्थ में संरक्षिका के रूप में देवी सिद्ध हुईं। उनकी अपनी सम्पूर्ण सुख-शान्ति पुत्र के कल्याण और सौभाग्य पर केन्द्रित थी। अपने पति द्वारा लगभग परित्यक्ता होने के कारण उन्हें एकमात्र यही आशा थी कि उनका पुत्र बड़ा होकर उन्हें सहारा दे। उनकी उच्च आत्मा सच्चे सिद्धान्तों से डिगने के लिये कभी उद्यत न हुई। पिता ने अपने अल्प साधनों से ७ वर्ष तक मुगलों की शक्ति से मोर्चा लिया। पुत्र भी अधिक नहीं तो उतना तो कर ही सकता है! जो एक मनुष्य कर सकता है, उसे दूसरा मनुष्य भी अवश्य कर सकता है।

पिता की पूना की जागीर का अधिकार स्वतन्त्र रूप से अपने हाथ में लेना शिवाजी के लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ। इस छोटी सी जागीर में शासन-कला सम्बन्धी सभी अनुभवों का प्रयोग सुविधा से हो सकता था और इससे प्राप्त क़ीमती अनुभवों का उपयोग समय आने पर बड़े पैमाने पर किया जा सकता था। शिवाजी की इस स्थिति में जीजाबाई उनकी एकमात्र पथ-प्रदर्शक और नियामक थीं। वह विविध रुचि रखने वाली महिला थीं जो तत्कालीन विचारानुसार परम्परागत धर्म और पौराणिक शिक्षा में पारंगत थीं। रामदेव यादव, हेमाद्रि और ज्ञानेश्वर की गाथाओं में उन्हें बड़ी रुचि थी। क्योंकि उनमें उच्च नैतिक शिक्षा और स्वतन्त्रता की स्वच्छ भावना थी, उनके मस्तिष्क में आर्य संस्कृति की भव्यता के रंग में रंग कर ये परम्पराएँ जमकर बैठ गईं। दूसरी ओर मुसलमानों के बर्बर

ग्रौर मूर्तिभंजक तरीके थे। ग्रलाउद्दीन खिलजी ग्रौर मुहम्मद तुगलक की ग्रसंयत निर्दयता, तैमूर की बर्बरता, चित्तौड़ की राजपूत महिलाग्रों के जौहर जीजाबाई के हृदय को सदैव कचोटते रहते थे। निस्सन्देह इस महिला ने ग्रपने ग्रल्पवयस्क बालक को यह शिक्षा दी कि इस ग्रन्याय का बदला लेना ग्रौर राष्ट्रीय नवजागरण करना परमावश्यक है।

पहाड़ी मावल प्रदेश में एकाकी जीवन के कारण उनको पराक्रम दिखाने के बहुत से ग्रवसर प्राप्त हुए। डकैतियाँ, बल्वे, ग्रव्यवस्था दिन प्रति दिन की घटनाएँ थीं। मौसमों की कठिनाइयाँ भी कम न थीं। वर्षा, धूप, सर्दी तथा ग्रन्य ग्रनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ता था। घुड़सवारी, कुश्ती, भाला फेंकना, तलवार चलाना, भयंकर बाढ़ में तैरना ग्रादि खेलों के द्वारा शिवाजी ने मनुष्य ग्रौर प्रकृति दोनों ही के साथ एक प्रकार से उद्दाम साहचर्य स्थापित कर लिया था। उनके ये निरुद्देश्य परिभ्रमण शीघ्र ही पड़ौसी सरदारों या छोटे-मोटे स्थानीय ग्रत्याचारियों के विरुद्ध सुरक्षा ग्रौर बचाव के लिये व्यवस्थित पर्यटन बन गये।

समय ग्रौर परिस्थिति प्राणीमात्र को ग्रकारण ग्राक्रमण से रक्षा या संकटजनक स्थिति से निकलने के उपाय साधारणतया बता ही देती है। शिवाजी के समय में सुरक्षा का एक सरल ढंग वेष बदलने की कला थी। जान ग्रौर माल की रक्षा के लिए उपयोगी मान कर ग्रधिकांश नर-नारी इसे सीख लेते थे। कई भाषाग्रों का साधारण ज्ञान, वस्त्रों ग्रौर ग्रौजारों की थोड़ी सी सामग्री तथा इनसे भी ग्रधिक प्रत्युत्पन्न बुद्धि सफल वेष-परिवर्तन के लिए ग्रावश्यक थीं। शिवाजी तो इनके ग्रलावा पक्षियों ग्रौर पशुग्रों की बोलियों की नकल भी कर लेते थे। इसी हेतु उन्होंने कई भाषाग्रों के शब्द ग्रौर वाक्य सीख लिये थे। उनकी श्रवण-शक्ति विशेष रूप से विकसित थी। बिना थके हुए वे लम्बी पैदल-यात्रा कर सकते थे ग्रौर बाधाग्रों पर विजय पा लेना उनके लिए सहज था। वे निपुण कुश्तीबाज थे ग्रौर गुलेल ग्रथवा तोड़ेदार बन्दूक से ग्रचूक निशाना लगा सकते थे।

यह स्पष्ट हो जायगा कि उन्होंने नासिक और कोल्हापुर के बीच या उसके भी आगे की सह्याद्रि पर्वतमाला के दोनों ओर के पहाड़ों, घाटियों, दर्रों और दुर्गों को पार किया था, अतः उन्हें उनकी पूरी जानकारी थी। उन्होंने विचारपूर्वक जी भरकर पर्यटन किया था, जिसमें पूर्ण सावधानी से सब चीजों के विषय में सुना और समझा। इस प्रकार उन्होंने लोगों की भावनाओं, आदतों, धन्धों और साधनों की स्वतः जानकारी प्राप्त की और इसके बदले में उनमें वीरता और प्रतिरोध की भावना फूँक दी।

दस और पन्द्रह वर्ष की अवस्था के बीच में शिवाजी द्वारा प्राप्त इस व्यावहारिक प्रशिक्षण के साथ-साथ, उनकी माता, उनके संरक्षक दादाजी और उनके निजी अनुचरों ने उन्हें चरित्र-निर्माण और प्रशासन सम्बन्धी कर्त्तव्यों की शिक्षा दी। ग्रामीण वायुमण्डल में पलने के कारण उनका शरीर और मन स्वस्थ थे। फलतः वे सजग और स्फूर्तिपूर्ण हो गये। इसके विपरीत मुस्लिम-दरबारों के छोटे-मोटे राजकुमार और सामन्त आलसी, भ्रष्ट और विलासी थे। निस्सन्देह शिवाजी को लिखना और पढ़ना सिखाया गया था। उन्होंने परिवार के पुरोहितों द्वारा महाभारत और रामायण के अंश सुने थे। इन दिनों कागज दुर्लभ था और केवल बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्यों की लिखा-पढ़ी होती थी। शिवाजी के नाम से प्रेषित कई पत्रों की खोज हो चुकी है, पर इसका निर्णय करने के लिए सही और स्पष्ट प्रमाणों की कमी है कि इनमें से कितने उन्होंने अपने हाथ से लिखे थे। फिर भी कुछ लेखकों का यह मन्तव्य मिथ्या है कि वे निरक्षर थे। उन्हें निरक्षर मानना पूर्णतः निराधार और अप्रमाणित है। उन दिनों राजकीय पत्रों के मसौदे सचिव और कर्णिक तैयार करते थे और मन्त्रीगण उसे पूरा करते थे। कागज-पत्रों पर स्वामी के हस्ताक्षरों का होना आज के समान उस समय अधिक प्रचलित नहीं था। हाँ, अपने अक्षरों में कुछ शब्द या पंक्तियाँ जोड़ देने का चलन था।

हरिकीर्तन या पारिवारिक पुरोहितों और तुकाराम सदृश प्रसिद्ध सन्तों के उपदेश और भक्तिपूर्ण गीत उस समय सार्वजनिक शिक्षा एवं

आबाल-वृद्ध के प्रशिक्षण के उत्तम साधन थे। शिवाजी ने इन अवसरों से पूरा-पूरा लाभ उठाया। वे हिन्दू-मन्दिरों और पूजा के स्थानों पर नियमित रूप से जाते थे और उन्हें राष्ट्र-निर्माणकारी साधन के रूप में मानकर उनके कार्य में सूझ-बूझ के साथ दिलचस्पी रखते थे। मन्दिरों और धार्मिक संस्थानों के प्रबन्ध एवं उचित संरक्षण के सम्बन्ध में उनके कई पत्रों में उल्लेख हैं।[3] जीवन के विभिन्न पहलुओं में धर्म ही उनके विचारों एवं कार्यों में सर्वश्रेष्ठ आसन पर था। अपनी अत्यन्त उपयोगी शिक्षा का सम्पादन उन्होंने आधुनिक ढंग की पुस्तकों से नहीं किया था बल्कि उन्हें अनुभव की विस्तृत पाठशाला में शिक्षा मिली थी। इस व्यावहारिक शिक्षा की पूर्ति पुराने ग्रन्थों के उन अंशों से हुई थी जिनमें राजनीति, सदाचार और दर्शनशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन है; उदाहरणार्थ रामायण और महाभारत के कुछ भाग, कुछ स्मृतियाँ, शुक्रनीति और चाणक्य नीति के अंश और सन्तों की जीवनियाँ। महाभारत से चुना गया विदुर नीति का अध्याय सम्भवतः शिवाजी को अति प्रिय था। कहा जाता है कि रात्रि में शिवाजी के किले के सभी सिपाहियों को रामायण का युद्ध-काण्ड नियमित रूप से अनुशासन के अंग के रूप में सुनाया और समझाया जाता था।

२. उनके संरक्षक दादाजी—शिवाजी के प्रशिक्षण में दूसरा शक्तिशाली हाथ उनके संरक्षक दादाजी कोंडदेव का था। शासन के व्यावहारिक कार्यों में जो शिक्षण उन्होंने दिया और शिवाजी के सर्वतोन्मुखी विकास की ओर जो ध्यान उन्होंने दिया, उन्हीं के कारण शिवाजी ने इतने पराक्रम कर दिखाये। दादाजी केवल एक मुन्शी या हिसाब-किताब रखने वाले नहीं थे, बल्कि एक ओजस्वी, सच्चरित्र और व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। वह घटनाओं और परिस्थितियों का

---

३ २५ मई, १६४२ को उन्होंने रोहिड़ा के देशपाण्डे को लिखा, "रायरेश्वर की पूजा और प्रबन्ध के प्रबन्ध को तुमने भंग किया है। तुम तुरन्त आओ और अपने अनधिकृत हस्तक्षेप के लिए उत्तर दो।" (राजवाड़े, १५-२६६)।

सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने वाले चतुर राजनीतिज्ञ थे, जिनमें अपने देश के प्रति प्रेम की प्रज्वलित भावना एवं विदेशी राज्य तथा धार्मिक अत्याचार के प्रति घृणा भरी थी। उनकी आयु शाहजी से बहुत अधिक थी और उन्होंने सुख और दुःख में विश्वस्त मित्र और परामर्श-दाता के रूप में भोसले परिवार की सेवा की थी। १६३१-३२ ई० के दुर्भिक्ष में प्रजा के कष्ट दूर करने में दादाजी ने विशेष सेवा की, और उस विनाश के बाद पूना प्रदेश के पुनः-व्यवस्थापन में भी उनका विशेष हाथ रहा।[४] दादाजी स्वयं माल्थन के एक कुलकर्णी थे और समीपस्थ हिंगनी, बेरदी, देवलगाँव और अन्य गाँवों की देख-रेख करते थे, जो भोसले के अधीन थे। जब शिवाजी ने पूना और सूपा की जागीर प्राप्त कर ली तो इसका प्रबन्ध दादाजी के सुपुर्द कर दिया गया ताकि उससे पर्याप्त आय होने लगे। यह कार्य उन्होंने बड़ी लगन और अध्यवसाय से किया। १६३७–१६४७ ई० के दशक के पत्र उन्हें गढ़ कौंढाना और उससे सम्बन्धित जिलों का अधिकार-प्राप्त राज्यपाल बताते हैं।[५]

पूना जागीर के प्रबन्धक के रूप में उनका नया पद कोई पुष्प-शैय्या नहीं थी। पिछले युद्ध में मुरार जगदेव ने शाहजी की जागीर वाले पूना और उसके समीपस्थ प्रदेश को नष्ट कर दिया था। दादाजी को इसका पुनःस्थापन करना था। पूना उस समय एक कस्बा था जिसका अपना स्थायी बाजार था। इस बाजार में दादाजी ने शिवाजी के लिये एक विशाल भवन का निर्माण कराया, जिसका नाम रंगमहल या लालमहल पड़ गया। शिवाजी के लिए उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और साज-सज्जा की व्यवस्था की ताकि लोग उन्हें अपना वैध

---

४ दिसम्बर १६३३ के एक पत्र में लिखा है, "तब दादाजी जिले के राजस्व अधिकारी नियुक्त किये गये। उन्होंने भूमि को समृद्ध बनवाया और देशमुखों और कुलकर्णियों को आदेश दिया कि वे खेती के काम में ज्यादा से ज्यादा लोगों को लगवायें।" (शिवचरित्र साहित्य, खण्ड २, पृ० ९५-९६)।

५ राजवाड़े, १७·७ और १८·७, ६, १६।

स्वामी समझें और उचित सम्मान करें। यह जागीर उत्तर में जुन्नार से दक्षिण में वाई तक फैली हुई थी और उसमें चाकन, सूपा, बारामती और इन्दपुर के मुख्य तालुके सम्मिलित थे, जिनके नाम आज तक प्रचलित हैं। इनका शासन सिंहगढ़ से होता था जो कि सुरक्षित केन्द्रीय स्थान था। जागीर की उत्तरतम सीमा शिवनेर और त्र्यम्बक के गढ़ों को स्पर्श करती थी जिन्हें शाहजहाँ के सन्धि-पत्र के अनुसार शाहजी को समर्पित कर देना पड़ा था। कौंढाना के नीचे शिवपुर था जिसका नामकरण उसके नवयुवक स्वामी के नाम पर हुआ था। यहाँ दादाजी ने बड़े-बड़े उद्यान और आम के बाग लगवाये। पूना के बाजार में आज तक शिवपुर के आम दुर्लभ समझे जाते हैं। बाद में जीजाबाई ने राजगढ़ के नीचे एक नया कस्बा बसाया और उसका नाम शिवपट्टन रखा।

१६४० ई० के करीब जीजाबाई और दादाजी ने शिवाजी का विवाह निम्बाल्कर परिवार की कन्या सईबाई से कर दिया। इसी निम्बाल्कर परिवार की कन्या शाहजी की माता दीपाबाई थी। इस समय तक जागीर का प्रबन्ध सुचारु रूप से हो रहा था। शान्ति और व्यवस्था के पुनःस्थापन से भोसले जागीर में वह समृद्धि स्थापित हो गई जिसका उन्हें पहिले आभास भी न था। सुरक्षा और शासन की वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक उन्नति भी हुई। मावल नामक स्थानीय लोगों की पूर्ण स्वामिभक्त सुसंगठित सेना का निर्माण किया गया। मावल यद्यपि अनपढ़ और असंस्कृत थे परन्तु अत्यन्त विश्वास-पात्र और स्वामिभक्त अनुगामी सिद्ध हुए। ये प्रत्येक बलिदान के लिए सदैव उद्यत रहते थे। मावल पहाड़ियों के ये परिश्रमी निवासी बाद में शिवाजी की फौजों के प्रमुख अंग बन गये। इस देशी सेना ने डकैती, लूट-पाट और अव्यवस्था से जागीर की रक्षा की। जागीर के जंगलों में वन्य पशु भरे पड़े थे। ये फसलों को हानि पहुँचाते और भयानक उपद्रव करते थे। इस आपद् को दूर करने के लिए दादाजी ने विशेष उपाय किये। दादाजी का एक और कल्याणकारी कार्य भूमि की उपज को बढ़ाना था। इसके लिए प्रत्येक सम्भव ढंग

से कृषि और बागवानी को प्रोत्साहन दिया गया। एक पुराने पत्र में लिखा है, "प्रत्येक गाँव में नई फसलें पैदा की गईं; आम, इमली, अनार और नीबू नये सिरे से लगाये गये। प्रत्येक दस नये पेड़ों में से एक उसके मालिक को अपने उपयोग के लिए दे दिया जाता था और केवल नौ पर ही कर देना पड़ता था। सरकार फसल का एक-तिहाई भाग लेती थी और दो-तिहाई उसके मालिक के लिए छोड़ देती थी।" यह मलिक अम्बर के समय का तरीका था और अब सर्वत्र अपना लिया गया था। खेतों की नाप हुई और उनके स्वामित्व का निश्चय किया गया। नये खेत बनाये गये और नहरों तथा कुँओं द्वारा सिंचाई पर ध्यान दिया गया। अल्प समय में ही जागीर असाधारण रूप से समृद्ध हो गई। आय में वृद्धि स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी। इसका उपयोग भविष्य की उन्नति के लिए हो सकता था।

जन-हित का दूसरा काम ग्रामीण पंचायतों और देशी न्याय-संस्थाओं द्वारा पुराने झगड़ों का निपटारा करना था। अपने नवयुवक स्वामी के साथ दादाजी गाँव-गाँव का दौरा करते, मुकद्दमे सुनते और बिना पक्षपात या पूर्व धारणा के न्याय करते थे। इन सब कार्यों में वे अल्पवयस्क शिवाजी को जनता के एकमात्र स्वामी और शासक के रूप में प्रस्तुत करते थे। उन्हीं के नाम से प्रत्येक कार्य होता था। इस विस्तृत कार्य से शिवाजी को शासन के व्यावहारिक नियम सीखने का अत्युत्तम अवसर प्राप्त हुआ और वे जन-साधारण की समस्याओं का उपयोगी अनुभव प्राप्त कर सके। दादाजी स्वयं कठोर अनुशासक थे और अपनी आज्ञाओं के पूर्णतया पालन कराने में ढील नहीं करते थे। उनके न्याय में शीघ्रता और निष्पक्षता थी। उनकी मृत्यु के बहुत दिन बाद तक उनका नाम सतर्क और दृढ़ प्रशासक के रूप में बना रहा, और ५० वर्ष बाद सम्राट् औरंगजेब का भी ध्यान उन्होंने आकृष्ट कर लिया जब सम्राट् दक्षिण में बहुत दिनों तक टिका रहा था। इस प्रकार शिवाजी की बढ़ती हुई किशोरावस्था के ५ या ७ वर्ष अत्यन्त उपयोगी रूप में व्यतीत हुए।

३. पहला कार्य—शाहजी को अपनी जागीर की उन्नति के शुभ

समाचार कर्नाटक में प्राप्त होते थे। इससे उन्हें निस्सन्देह प्रसन्नता होती थी परन्तु साथ ही बीजापुर से प्राप्त समाचारों से चिन्ता भी होने लगती कि उनका अल्पवयस्क पुत्र अपनी जोशीली माता और कठोर अनुशासक दादाजी कोंडदेव के नेतृत्व में शासनाधिकारियों के प्रति अवज्ञा का असुखकर मार्ग अपना रहा है। शिवाजी ने अपनी प्रजा को संगठित कर लिया, गढ़ों की मरम्मत कराई और उनमें सेना नियुक्त कर उन्हें आवश्यक सामग्री से पूर्ण कर दिया। इस प्रकार यहाँ सतत विध्वंसकारी प्रवृत्तियों का केन्द्र स्थापित हो गया। बीजापुर दरबार इन उत्पातों की उपेक्षा न कर सका होगा और उसने इन हरकतों के वृत्तान्त बंगलौर में शाहजी के पास अवश्य भेजे होंगे और इस आशय का संकेत दिया होगा कि उनके पुत्र और उसके संस्थान पर जबरदस्त निगरानी आवश्यक है एवं समय रहते उन्हें नियन्त्रण में ले लेना चाहिए। इसके साथ-साथ सुदूर दक्षिण में शिवाजी के पिता की प्रगति के समाचार शिवाजी और जीजाबाई के कानों तक भी अवश्य पहुँचे होंगे, विशेषकर कर्नाटक अभियान की वे घटनाएँ जिसमें हिन्दू धर्म का निर्दयता से दमन किया गया, खेत विनष्ट किये गये, मन्दिर अपवित्र किये गये, मूर्तियाँ तोड़ी गईं, स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण हुआ और शताब्दियों का संग्रहीत धन लूट लिया गया। यह कितने शर्म की बात थी कि और कोई नहीं, स्वयं शाहजी अपने ही धर्म के विनाश और मुस्लिम शासकों तथा उनके धर्म के गौरव की वृद्धि का साधन बन गये थे।[६]

सन् १६४० के किसी मास में शिवाजी अपनी माता और अपने संरक्षक के साथ बंगलौर में अपने पिता के दर्शन करने गये। चार वर्ष के विछोह के बाद शाहजी उनसे मिलने को इच्छुक थे और अपने पुत्र की नवविवाहिता वधू को भी देखना चाहते थे। अतः

---

६ पूना और बंगलौर में जो घटनाएँ घट रही थीं, उनके समाचारों से इन स्थानों के जिम्मेदार व्यक्तियों के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ रहा था, इसे सिद्ध करने के लिए सही-सही सूत्र उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी उस काल के जो कागज-पत्र उपलब्ध हैं, उनसे जोड़-तोड़ लगाकर आशय मालूम किया जा सकता है।

उन्होंने उन्हें बुला भेजा और सारे परिवार ने अगले दो वर्ष साथ रहकर व्यतीत किये।

शाहजी एक मुस्लिम राज्य के स्वामिभक्त अधिकारी और समर्थक थे। बंगलौर और समीपस्थ प्रदेश प्राचीन विजयनगर के चिन्हों और परम्पराओं से परिपूर्ण था, जिन्हें बेदर्दी से कुचला गया था। शाहजी के दरबार में मर्मभेदी कूटनीतिज्ञ और विवेकशील तथा दूरदर्शी परामर्शदाता थे। ये लोग समय-समय पर इस प्रकार के प्रश्न उठाया करते थे—क्या शाहजी का यह कर्त्तव्य न था कि वे इस गौरवशील प्राचीन संस्कृति और विद्या की रक्षा करते? क्या बीजापुर सरकार के इन विनाशक कृत्यों के विरुद्ध कम से कम उन्हें अपनी सबल आवाज न उठानी चाहिये थी? कम से कम उन्हें ऐसी आज्ञाओं को क्रियान्वित करने से क्यों न इन्कार कर देना चाहिये? बालक शिवाजी बाल-सुलभ जिज्ञासा से इन बातों को सुना करता था।

बीजापुर के अधीन शाहजी की नौकरी का राष्ट्र-विरोधी भाव जीजाबाई और शिवाजी को पसन्द न आया। उन्होंने मुस्लिम जुए से छुटकारा पाने और एक नवीन राष्ट्र के निर्माण के सक्रिय स्वप्न देखने प्रारम्भ कर दिये थे जिसमें राजनीतिक और धार्मिक स्वतन्त्रता और सहनशीलता का आधिपत्य सर्वोपरि था। पिता और पुत्र के भावी उद्देश्यों और विचारों का परस्पर विरोध शीघ्र परिलक्षित होने लगा और यह निश्चय हुआ कि शिवाजी अपनी जन्मभूमि को वापस चले जायँ। परन्तु इसी समय इन सब के लिए बीजापुर से बुलावा आ गया कि दरबार में स्वयं आकर अपने स्वामी को सलाम करें और इस प्रकार असंदिग्ध स्वामिभक्ति का परिचय दें। १६४२ ई० के अन्त में या १६४३ ई० के आरम्भ में अपने सम्पूर्ण शिविर और अनुचर वर्ग सहित सारे परिवार ने बंगलौर से बीजापुर को प्रयाण किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि विरोधी पक्ष की युक्तियों की शक्ति को शाहजी ने स्वीकार कर लिया और तत्पश्चात् प्राचीन विजयनगर साम्राज्य के अन्तिम प्रतिनिधि श्रीरंगराय को सहायता देकर उन्होंने

हिन्दू-हित का समर्थन करने का सक्रिय प्रयत्न किया। उन्होंने बहुधा मुस्तफाखाँ की नीति के विनाशक पहलू का सफल प्रतिकार किया।

बीजापुर दरबार में शिवाजी को बुलाये जाने के सम्बन्ध में प्रचलित एक दन्तकथा में अल्पवयस्क शिवाजी की मनोभावना का चित्रण किया गया है। क्या वह नियमानुकूल मुस्लिम प्रथा के अनुसार सिजदा नहीं करेगा? खुले दरबार में उसने मराठा ढंग से सीधा-सादा नमस्कार किया जो पर्याप्त सम्मानसूचक है परन्तु मुस्लिम सिजदे की सीमा को नहीं पहुँचता। सिजदे में मस्तक को धरती पर टिकाया जाता है। इस धृष्टता के सम्बन्ध में पिता ने यह सफाई दे दी कि बालक गँवार है और दरबार की रीति-नीति को नहीं जानता। वास्तविकता यह है कि शाहजी चाहते हुए भी अपने पुत्र की अनियन्त्रित भावना को दबा नहीं सकते थे।

४. स्वप्न कार्यान्वित—बंगलौर से वापस यात्रा में पिता ने पुत्र को स्वतन्त्र दरबार के उपयुक्त साज-सज्जा से विभूषित कर दिया। परमानन्द ने लिखा है, "थोड़े ही दिनों में शाहजी राजा ने शुभ मुहूर्त में शिवाज़ी को बंगलौर से प्रस्थान करने की आज्ञा दी। उनके साथ पैदल सिपाही, घुड़सवार और हाथी कर दिये एवं उन्हें प्रमुख मंत्रीगण, प्रसिद्ध शिक्षक, बहुमूल्य झण्डे, राज-चिह्न और विशाल कोष भी प्रदान किया।"[७] श्यामराव नीलकण्ठ पेशवा, बालकृष्ण पन्त मजूमदार, बालाजी हरि मजलसी (अर्थात् सभासद), रघुनाथ बल्लाल कोरडे, सोनोपन्त दबीर, रघुनाथ बल्लाल अत्रे चिटनिस—कहा जाता है कि ये तथा शाहजी की अधीनता में सुशिक्षित अन्य कर्मचारी शिवाजी की सेवा में भेजे गये थे। इन सरकारी पदों की स्थापना किस समय हुई और कब नियुक्तियाँ की गईं, यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता है। जैसे-जैसे शिवाजी के नवीन राज्य का निर्माण होता गया, वैसे-वैसे ये लोग सेवा में रखे गये होंगे।

---

७ "शिवभारत" १०, २५-२७।

जागीर के शासन और भूमि को उन्नत बनाने के शिवाजी और दादाजी के प्रयोग से परस्पर होड़ की एक भावना जाग्रत हो गई, जिसने मावल प्रदेश में नव-जीवन का संचार कर दिया। उस स्थान के और आस-पास के अल्पवयस्क मित्र और बचपन के साथी उनके चारों ओर एकत्रित होने लगे ताकि उनके परिश्रम में हाथ बटायें और आवश्यकता होने पर बलिदान कर सकें। इस प्रकार उन्होंने अपने इर्द-गिर्द नवयुवक आज्ञाकारी मित्रों का एक दल एकत्रित कर लिया। उनका दृष्टिकोण विस्तृत होने लगा। वे अपनी जागीर के बाहर परन्तु उसी पर आधारित एक नये 'स्वराज्य' का स्वप्न देखने लगे। वे अपने सैनिक मित्रों से गुप्त परामर्श करने में जुट गये, जिनमें गढ़ों को हस्तगत करने, व्यक्तिगत या सरकारी कोषों पर वीरतापूर्ण आक्रमण कर अर्थ-संग्रह करने, विशेष कार्यों के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के निर्वाचन और गढ़ों की रक्षक सेना सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति, गढ़ी हुई सम्पत्ति और बीजापुर तथा अन्य अधिकारियों द्वारा किये जाने वाले रक्षात्मक उपायों को जानने की योजनाएँ बनाई जाती थीं। व्यापक सरल प्रश्नों पर ये नवयुवक उत्साही वीर दादाजी कोंडदेव का परामर्श और नेतृत्व भी प्राप्त करने का प्रयत्न करते। गोमाजी नायक पनसम्बल, येसाजी कंक, तानाजी मालूसरे, बाजी पासलकर और कन्होजी जेधे के पुत्र बाजीराव जेधे शिवाजी के प्रारम्भिक सहायक हुए। इनका भिन्न-भिन्न स्थानों में प्रभाव था जिसे उन्होंने मुख्य उद्देश्य के लिए संगठित कर लिया।

शिवाजी की वाणी उत्साहवर्धक थी। वे अपने मित्रों को सम्बोधन करते और उन्हें समझाते कि विदेशी मुस्लिम शासन किस प्रकार उनकी मातृभूमि और धर्म पर अत्याचार करता है। जो उन्होंने देखा और सुना था उसका विशद वर्णन वे उन्हें सुनाते थे। क्या इस अन्याय का बदला लेना उनका धर्म नहीं है? इस दिशा में प्रयास मात्र भी सराहनीय और आवश्यक है। "विदेशियों के दिये हुए पुरस्कारों और अपनी पैतृक सम्पत्ति से ही हम क्यों सन्तुष्ट

रहें ? हम हिन्दू हैं, यह सारा देश हमारा है और फिर भी यह मुसलमानों के अधिकार में है और इस पर उनका शासन है। वे हमारे मन्दिरों को अपवित्र करते हैं, हमारी मूर्तियों को तोड़ते हैं, हमारे धन को लूटते हैं, हमारे देशवासियों को बलात् मुसलमान बनाते हैं, खुलेआम गोवध करते हैं। अब हम इस व्यवहार को सहन नहीं करेंगे। हमारी भुजाओं में बल है। अपने पवित्र धर्म की रक्षा में अब हम तलवार खींच लेंगे। अपनी जन्मभूमि को स्वतन्त्र करेंगे और अपने प्रयास से नये प्रदेश और धन प्राप्त करेंगे। हम अपने पूर्वजों के समान ही वीर और योग्य हैं। यदि हम इस पवित्र कार्य को आरम्भ करते हैं तो ईश्वर निश्चय ही हमारी सहायता करेगा। सभी मानुषी प्रयासों को इस प्रकार सहायता प्राप्त होती है। सौभाग्य या दुर्भाग्य ऐसी कोई चीज नहीं है। हम अपने देश के सेनानी और अपनी स्वाधीनता के निर्माता हैं।"[८] प्रत्येक उत्साही व्यक्ति को इन शब्दों से प्रेरणा मिलती थी और मन्द एवं निर्बुद्धि लोगों को भी प्रोत्साहन मिलता था।

एक पुराने पत्र में लिखा है, "मुस्लिम शासन पूर्ण अन्धकार से आच्छन्न है। वहाँ कोई पूछने वाला नहीं है, कोई न्याय नहीं है। अधिकारी जैसा चाहे वैसा करते हैं। स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण, हत्याएँ और हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन, उनके मन्दिरों का विनाश, गोहत्या और तत्सदृश अत्याचार उस शासन में होते रहते हैं।" निजामशाह ने जीजाबाई के पिता, उसके भाइयों और उसके पुत्रों की हत्या खुल्लम-खुल्ला करवा दी थी। फल्टन का बजाजी निम्बाल्कर जबर्दस्ती मुसलमान बनाया गया था। इस प्रकार के अगणित उदाहरण दिये जा सकते हैं। हिन्दू सम्मानित जीवन व्यतीत नहीं कर सकते थे। इसी बात ने शिवाजी को क्रोधित कर दिया था। उनके मन में विद्रोह की प्रबल भावना घर कर गई। वे तुरन्त अपने कार्य में

---

८ "सभासद-इतिहास"। देखिए राजवाड़े में भी अध्याय १५, पृ० ३।

अग्रसर हो गये। उन्हें विश्वास था कि "जिसके शस्त्रों में बल है, उसे न कोई कठिनाई है और न कोई डर।"[९]

इस नवयुवक नेता के कार्यों का ही परिणाम था कि शीघ्र ही जनता की भावनाओं और दृष्टिकोण में आमूल क्रान्ति हो गई तथा पहले का आलस्य समूल नष्ट हो गया। महाराष्ट्र के स्तब्ध वायुमण्डल में गति पैदा हो गई। प्रत्येक व्यक्ति विचारपूर्वक देखने और स्वयं सोचने का अभ्यस्त हो गया। कुछ लोग इस नवीन आन्दोलन में खुशी-खुशी सम्मिलित हो गये और कुछ को विवश विरोध करना पड़ा, किन्तु कोई व्यक्ति इसके प्रति उदासीन न रह सका।

बखरों में एक अस्पष्ट परन्तु सार्थक वर्णन है कि "बंगलौर से पूना वापस आने के तुरन्त बाद मावल की बारह घाटियाँ हस्तगत कर ली गईं।" १ अगस्त, १६४४ के एक फारसी फरमान द्वारा अब यह प्रमाणित हो गया है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, यह फरमान करी के कान्होजी जेधे को सम्बोधन करके बीजापुर के शाह द्वारा लिखा हुआ एक पत्र है।

यह इस प्रकार है: "शाहजी भोसले का अपमान किया गया है और दरबार से हटा दिया गया है और अब हमें यह समाचार मिला है कि उसके प्रतिनिधि दादाजी कोंडदेव ने कौंढाना गढ़ पर विद्रोही हलचलें आरम्भ कर दी हैं। उसका दमन करने तथा उस प्रदेश पर अपने शासन को सिद्ध करने के लिए खण्डोजी और बाजी घोरपड़े को नियुक्त किया गया है ताकि वे उसके विरुद्ध प्रयाण करें। अतः आपको इस पत्र के द्वारा आज्ञा दी जाती है कि अपनी सम्पूर्ण सेना सहित घोरपड़े का साथ दें और अपनी पूरी शक्ति से उस धूर्त विद्रोही दादाजी का उसके समर्थकों सहित नाश कर दें। इस कार्य की सफल समाप्ति पर आपको उचित पुरस्कार दिया जायगा।"[१०]

---

९ अपनी "मराठा राज्य-शासन-पद्धति" में रामचरन पन्त का कथन है:
"गांडीविनो मतमिदं कुतो दैन्यं कुतोभयम्।"
गांडीवी का अर्थ है, अस्त्र-शस्त्रधारी।

१० शिवचरित साहित्य, ४, पृ० २१।

इस पत्र में दिये गये दिनांक सहित स्पष्ट प्रमाण से शिवाजी को प्रारम्भिक कार्यवाहियों के विषय में सारे सन्देह मिट जाते हैं और इससे उनके जीवन के मोड़ के निश्चित आरम्भ-बिन्दु का पता लग जाता है। चूँकि शाहजी का भी इस रूप में वर्णन हुआ है कि वे अपमानित हो चुके हैं, अतः हम यह कह सकते हैं कि बीजापुर का अधिकारी-वर्ग इस समस्त उत्पात का कारण शाहजी को समझता था। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि फरमान में इस उत्पात के कर्त्ता के रूप में दादाजी का उल्लेख है और शिवाजी का नाम कहीं पर नहीं आता। यद्यपि उन पर सन्देह था परन्तु वे अल्पवयस्क थे इसलिए अलग से उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। वस्तुतः शिवाजी के नाम का अधिकृत रूप में वर्णन दादाजी की मृत्यु के बाद अथवा उसके एक-दो वर्ष पूर्व उस पत्र से शुरू हुआ जो शिवाजी ने दादाजी नरसप्रभु को उन शपथों के सम्बन्ध में लिखा था जो दोनों ने १६४५ ई० के ग्रीष्म में राइरेश्वर के सम्मुख ग्रहण की थीं। इस बात से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुस्लिम शासक के विरुद्ध विद्रोह के इस नवीन आन्दोलन के दादाजी हृदय से समर्थक थे और सफलता-प्राप्ति तक इसके नेतृत्व के योग्यतम पात्र के रूप में शिवाजी को प्रोत्साहन देते रहे थे। यह भी स्पष्ट है कि प्रथम गढ़ जिसको विद्रोहियों ने हस्तगत किया सिंहगढ़ था, न कि तोर्ना, जो शिवाजी के अधिकार में इससे एक या दो वर्ष बाद आया। तोर्ना का सैनिक दृष्टि से वह महत्व न था जो सिंहगढ़ का था। तोर्ना में शिवाजी को गुप्त कोष मिला था अतएव उसे भी महत्त्व प्राप्त हो गया। कहा जाता है कि शिवाजी के पक्ष को सहायता देने के लिए यह देवी भवानी का दैवी विधान था। बहुत समय तक धन-जन की सुरक्षा के लिए सिंहगढ़ को पूना से सम्बद्ध रखना आवश्यक रहा क्योंकि खुले मैदान में स्थित होने के कारण पूना पर बड़ी सुविधा से आक्रमण हो सकता था।

१६४४ ई० में शाहजी का बीजापुर के दरबार में अपमानित होने का कारण सम्भवतः श्रीरंगराय के विद्रोह में उनका हाथ

था। जब तक रनदुल्लाखाँ जीवित रहा, वह चतुरता एवं नम्रता से शाहजी की कार्यवाहियों पर नियन्त्रण रखे रहा। १६४३ ई० में रनदुल्लाखाँ के देहान्त से स्थिति बदल गई और दक्षिण में शाहजी और पूना में दादाजी के लिए संकट पैदा हो गया। बीजापुर के अधिकारियों के विरुद्ध भोसलों का यह प्रथम विद्रोह व्यवहारतः पाँच वर्षों (१६४४-१६४६) तक चलता रहा। यदा-कदा गम्भीर होने पर यह भयंकर रूप धारण कर लेता था। सुल्तान मुहम्मदशाह स्थिति को सँभालने के योग्य न था। उसके गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण स्थिति गम्भीरतम हो गई और विद्रोहियों को अवसर मिल गया। १६४४ ई० में सिंहगढ़ की विजय के बाद शिवाजी ने बीजापुर के विरुद्ध खुला आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। इसका एक अन्य प्रमाण ३० मार्च, १६४५ ई० का एक बहुमूल्य लेख है। यह भी एक पत्र है जो आदिलशाह ने कान्होजी जेधे और उसके देशपाण्डे दादाजी नरसप्रभु को लिखा था। इसमें लिखा है : "शिवाजी राजा आदिलशाह के प्रति विद्रोही हो गया है क्योंकि उसने मावलों की सेना संगठित कर ली है और रोहिड़ा गढ़ पर अधिकार करके वहाँ अपने सैनिक रक्षार्थ नियुक्त कर दिये हैं। उसने एक नया गढ़ भी बनवा लिया है जिसका नाम राजगढ़ रखा है। इस प्रकार उसने अपनी स्थिति को सबल बना लिया है। तुम खुल्लम-खुल्ला उसके साथ हो गये हो और शिरवल में हमारे अधिकारी की आज्ञा-पालन के स्थान पर शिवाजी को कर देते हो। तुम हमारे अधिकारी को धृष्टतापूर्ण उत्तर देते हो, इसे सहन नहीं किया जा सकता। यदि तुम तुरन्त शिरवल के थानेदार को अपना समर्पण नहीं कर देते तो बिना दया के तुम्हारा वध कर दिया जायेगा।"

शिवाजी की आरम्भिक प्रगति का स्पष्ट वर्णन इस पत्र में है। सिंहगढ़ के बाद उन्होंने रोहिड़ा पर अधिकार कर लिया, राजगढ़ का निर्माण किया और इस प्रकार मावल के उस भाग पर अपना आधिपत्य जमा लिया। यह सब अल्प समय में हुआ, जो आश्चर्यजनक कृत्य है। प्रारम्भ में जो कार्य गुप्त रूप से शुरू हुआ था वह अब खुली चुनौती

के रूप में सामने आ गया। दादाजी नरसप्रभु ने वह पत्र शिवाजी को भेज दिया और उसके उत्तर के विषय में पूछा। १६ मई, १६४५ को शिवाजी ने उसका निम्नलिखित उत्तर दिया : "शाह को सर्वथा असत्य वृतान्त मिला है। मैं और आप दोनों ही विद्रोही नहीं हैं। कृपया उस पत्र को लेकर आप शीघ्र मुझ से मिलें। आपको कष्ट अनुभव करने का कोई कारण नहीं है। आपकी घाटी का दैविक स्वामी राइरेश्वर हम दोनों को प्रेरणा देता है और सफलता प्रदान कराता है। हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना के लिए वह हम को पर्याप्त बल देता है। हम तो उसके हाथों के केवल यन्त्रमात्र हैं। चाहे जो कुछ हो, मैं और मेरे उत्तराधिकारी उन गुप्त प्रतिज्ञाओं पर अटल रहेंगे जिन्हें हमने दादाजी पन्त की साक्षी में राइरेश्वर के सम्मुख ग्रहण किया है। उसकी यही इच्छा है, धीरज न छोड़िए और मुझ से आकर मिलिये।"[११] इस प्रकार के पत्रों से हमें निश्चय रूप से पता चलता है कि शिवाजी ने अपने पवित्र कार्य को किस प्रकार सिद्ध किया। जैसा कि प्रायः होता है, शिवाजी ऊपर से सुल्तान के प्रति राजभक्त बने रहे और आग्रहपूर्वक कहते रहे कि जो कार्य उन्होंने आरम्भ किया है, वह सर्वथा आत्मरक्षा के हेतु है और सरकारी कार्य का ही एक अंग है। इसका प्रयोजन अनियमितता और अव्यवस्था का अन्त करना है क्योंकि इस पहाड़ी प्रदेश के विकास के लिए शान्ति परमावश्यक है। इस क्षेत्र ने शताब्दियों से किसी शासन, किसी अधिकारी या किसी व्यवस्था को नहीं माना है लेकिन अब इससे अच्छी आय प्राप्त होने लगी है।

इस प्रकार बिना परिणामों की चिन्ता किये शिवाजी अपना कार्य करते रहे। मनुष्य को परखने की उनमें अद्भुत प्रतिभा थी। उन्होंने

---

११ राइरेश्वर का मन्दिर राइरी पहाड़ी के पास है। इसे गढ़ रोहिड़ा न समझना चाहिए, जिसका बाद में नाम विचित्रगढ़ हुआ। वहाँ शंकर भगवान् का मन्दिर भी नहीं है। राइरेश्वर और रोहिड़ा एक दूसरे से ५ मील दूर हैं। करी के पास जेधों की राजधानी राइरी पहाड़ी पर परस्पर शपथ ग्रहण की गई थी। राज० १५ vol., २६७-२६८.

उपयुक्त सहायक मित्र चुन लिए, उनकी योग्यता के अनुसार उनको पद दिये और उनसे महान् कार्य सम्पादित कराये। जनता के साधनों और अपने सहायकों की सामर्थ्य को परखते हुए उन्होंने देश का भ्रमण किया। यदि लेखक मिल गया तो उन्होंने उसे लेखन का कार्य दिया और वीर पुरुष मिल गया तो उसे सेना में उच्च पद दिया। उन्होंने पत्र भी लिखे और लोगों से जा-जाकर भी मिले तथा मैत्री-सम्बन्ध, बहुधा विवाह-बंधनों द्वारा, कायम किये। बहुधा मैत्री-सम्बन्धों के द्वारा उन्होंने लोगों को उकसाया, धमकाया, विवश किया और इस प्रकार अपने दल को शक्तिशाली बना लिया। लोग दैव-प्रेषित नेता के रूप में उन्हें मानते थे, जिसकी आज्ञा का पालन उन्हें पूर्णतः करना चाहिए।

शिवाजी के इन प्रारम्भिक कार्यों का पर्याप्त वर्णन रामदास के वृहद् ग्रन्थों में मिलता है। महाराष्ट्र की जनता में स्फूर्ति और जीवन कैसे पैदा हुआ और किस प्रकार लोग चतुर्दिक आक्रमण के लिए तैयार हुए, इसका रोमांचकारी वृतान्त इनमें मिलता है। यह वृतान्त राष्ट्रीय इतिहास का अङ्ग है, जैसा कि सब देशों में, सब कालों में कार्य-कुशल लोगों का कार्य रहा है। कार्लाइल इसे 'राजा के रूप में वीरों का' इतिहास, कहना पसन्द करता है। तूफान उठने लगा। शिवाजी की ही सामर्थ्य थी कि वह इस में नाव खे कर सकुशल किनारे पर पहुँच सकते थे। देश में एक नवीन उज्ज्वल आशा का संचार हो गया। भक्तिमयी जीजाबाई सब के लिए रक्षक देवी बन गईं। वास्तव में शिवाजी को जीवन में ऐसा आनन्द कभी प्राप्त नहीं हुआ, जैसा कि उस समय होता था जब वे घर आते और अट्टहास के साथ अपने विविध पराक्रमों का विस्तृत विवरण जीजाबाई को सुनाते और बदले में उनकी हार्दिक स्वीकृति प्राप्त करते।

शिवाजी की ये हलचलें बहुत समय तक गुप्त न रह सकीं। बीजापुर सरकार के अधिकारियों और जमींदारों को वे शीघ्र मालूम हो गईं और उन्होंने केन्द्र को इनकी सूचना भेज दी। सौभाग्य से, शिवाजी ने जब अपने साहसिक कार्यों को आरम्भ किया तभी बीजा-

पुर का सुल्तान मुहम्मदशाह बीमार पड़ गया और कुछ समय तक उसके जीवन की कोई आशा न रही। यही वास्तविक कारण है कि शिवाजी के विरुद्ध कोई प्रबल और तात्कालिक कार्यवाही नहीं की गई। अगले दस वर्षों तक (१६४६-१६५६) शाह रुग्णावस्था में रहा और उसके स्वास्थ्य एवं बल का बड़ी तेजी से ह्रास होता गया, जिसके फलस्वरूप राज्य-कार्य की सर्वथा उपेक्षा हो गई।

जीजाबाई के दोनों पुत्र बड़े सहनशील और सूझ वाले थे, जो कुछ शिवाजी ने महाराष्ट्र में किया उसका अनुकरण कुछ अंश तक उनके बड़े भाई सम्भाजी ने कर्नाटक में किया। शाह इस उत्पात का मुख्य कर्त्ता शाहजी को समझता था, फलतः उसने उन्हें बन्दी बना लिया, जिसका वर्णन पूर्व अध्याय में हो चुका है। यह विचारणीय है कि शाहजी के बन्दी होने से शिवाजी की अपने स्वतन्त्र साम्राज्य के संस्थापन की निर्भय योजनाओं को क्षति नहीं पहुँची। उनके आरम्भ के छोटे-छोटे कार्य वास्तव में ठोस थे और उन्हें पूर्ण विश्वास था कि शाह उनके पिता का बाल भी बाँका करने का साहस नहीं कर सकता। परिणाम भी आशानुरूप ही हुआ।

इस सम्बन्ध में परमानन्द ने एक रोचक घटना का वर्णन किया है। शिवाजी के पिता को बन्दी बना लेने के बाद १६४६ ई० के ग्रीष्म में बीजापुर के शाह ने धमकी दी यदि शिवाजी द्वारा जीता गया सिंहगढ़ अविलम्ब वापस न कर दिया गया तो उनका वध कर दिया जायेगा। उस पर पिता (शाहजी) ने पुत्र (शिवाजी) से गढ़ वापस देकर उनकी प्राण-रक्षा करने की प्रार्थना की। सिंहगढ़ एक बहुमूल्य निधि था, जिस पर शिवाजी ने वर्षों का परिश्रम और धन लगा दिया था। यह उनके जीवन की योजना का मुख्य आधार था। जीजाबाई ने अपने पति के हित में शिवाजी से साग्रह प्रार्थना की परन्तु माता और पुत्र एकमत न हो सके और अपने बुद्धिमान परामर्शदाता सोनोपन्त दबीर की राय प्राप्त करने का निश्चय किया गया। इसे परमानन्द ने सुवर्ण पण्डित कहा है। सोनोपन्त ने राजनीतिक खेल के तत्त्व समझाते हुए गढ़ को छोड़ देने की सलाह दी। परमानन्द

ने इस पर अपने ग्रन्थ में एक लम्बा अध्याय लिखा है। सोनोपन्त ने स्पष्ट किया कि वीर पुरुष के लिए सारा संसार खुला पड़ा है।[१२]

५. स्वाधीनता प्राप्ति—१६४४ से १६७४ ई० तक अर्थात् सिंहगढ़ के हस्तगत होने से रायगढ़ में शिवाजी के अभिषेक तक के तीन बड़े महत्त्वपूर्ण दशक हैं जिनमें उस महान् वीर के जीवन का पर्यवेक्षण किया जा सकता है। ये दशक हैं १६४४-१६५३, १६५४-१६६३, और १६६४-१६७४। ये दशक एक दूसरे से कितने भिन्न हैं और उनमें अपनी क्या विशेषताएँ हैं इसकी व्याख्या बाद में करेंगे, पहले हमें प्रथम दशक की मुख्य घटनाएँ जान लेनी चाहिए। इसका अन्त शिवाजी की स्वाधीनता-यात्रा के प्रथम चरण के साथ होता है। दुर्भाग्य से इस प्रथम दशक की कुछ घटनाओं की ठीक तिथि नहीं आँकी जा सकी है। राइरेश्वर मन्दिर की बातों की मीमांसा हम पहले कर चुके हैं, जहाँ गम्भीर प्रतिज्ञाओं का गुप्त रूप से आदान-प्रदान किया गया था। उसके तुरन्त बाद ७ मार्च, १६४७ को दादाजी कोंडदेव का देहान्त हो गया। वह पहले ही अपने अल्पवयस्क स्वामी में पर्याप्त सूझ-बूझ भर चुके थे और इस विश्वास के साथ कि शिवाजी राष्ट्रनायक के रूप में सफल होंगे, दादाजी संतोष के साथ शान्ति की नींद सो गये। इस घटना से शिवाजी की योजनाओं में कोई बाधा न आई, जो पहले बहुत सोच-विचार के बाद बनाई गई थीं। शिवाजी को अपने पाँवों पर खड़ा करके दादाजी ने अपना कार्य पूरा कर दिया था। अब शिवाजी नवीन जोश के साथ आगे आये और बीजापुर के विरुद्ध खुला आक्रमण आरम्भ कर दिया। चाकन को उन्होंने बिना कठिनाई के हस्तगत कर लिया और उसका नाम संग्राम दुर्ग रखकर वहाँ अपनी सेना नियुक्त कर दी। दूसरा आक्रमण पुरन्दर पर हुआ जिसे उन्होंने नाटकीय ढंग से विजय किया।

पूना में शिवाजी के निवास-स्थान की रक्षा दो मजबूत किले करते थे—दक्षिण-पश्चिम में सिंहगढ़ और दक्षिण-पूर्व में पुरन्दर।

---

१२ सुविक्रान्तस्य नृपतेः सर्वमेव महीतलम्॥ १६,४५।

पुरन्दर पर बीजापुर की ओर से एक ब्राह्मण अधिकारी नीलो नीलकण्ठ सरनायक नियुक्त था, जो शाहजी और उनके परिवार का पड़ौसी और मित्र था। १६४८ ई० की वर्षा ऋतु में बीजापुर की ओर से आक्रमण के भय से शिवाजी ने सरनायक को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने वर्षा काल में गढ़ के नीचे पहाड़ी पर आश्रय की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार हो गई और शिवाजी ने गढ़ के नीचे अपना स्थान बना लिया। तभी दीवाली का त्यौहार आ गया। इस दिन शिवाजी और उनकी माता को सरनायक ने अपने भाइयों से अभिवादन करने हेतु गढ़ पर निमन्त्रित किया। इन भाइयों ने शिवाजी को एक पारिवारिक झगड़े के निबटारे के लिए पहले से भी कह रखा था। दीवाली की एक रात को शिवाजी ने सब भाइयों को उनकी खाटों पर गिरफ्तार कर लिया और गढ़ पर स्वयं अधिकार कर लिया। अगले कई दिनों तक परिस्थिति के सम्बन्ध में बातचीत होती रही और जब सब भाइयों ने प्रतिज्ञा कर ली कि वे गढ़ पर शिवाजी की ओर से शासन करेंगे और उनके प्रति वफ़ादार रहेंगे, तब उन्हें मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार शिवाजी ने बिना एक बूँद रक्त बहाये गढ़ पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार शिवाजी ने युक्ति निकालने में अपने असाधारण चातुर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया। अन्त तक सरनायक परिवार मराठा राज्य की सेवा करता रहा। अगले वर्ष जब बीजापुर की सेनाओं ने शिवाजी पर आक्रमण किया तो पुरन्दर बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। यदाकदा उन्होंने इसे अपने शासन का केन्द्र भी बनाया। १६५० ई० में शिरवल में अपनी छावनी से शिवाजी के विरुद्ध बीजापुरी सेनाओं ने अनेक असफल आक्रमण किये। गढ़ पर अपने सुदृढ़ स्थान से वे उनको आसानी से पीछे ढकेल देते थे। इस युद्ध में मूसाखाँ मारा गया और फतहखाँ परास्त होकर भाग निकला।[13] इस प्रकार सम्पूर्ण मराठा इतिहास में सिंहगढ़ और पुरन्दर दोनों का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है।

---

१३ "शिवभारत", अध्याय १४। देखिये के० वी० पुरन्दर लिखित किल्ले पुरन्दर, पृ० १०० इत्यादि; तथा और भी शि० च० सा० १,८४।

पूना के समीप ही एक दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान सूपा था, जो एक विरोधी पड़ौसी सम्भाजी मोहिते के अधिकार में था। यह बीजापुर का कट्टर वफादार और साथ ही शिवाजी से वैमनस्य रखने वाला रिश्तेदार भी था। इसकी बहिन तुकाबाई शाहजी की दूसरी पत्नी थी। सम्भाजी मोहिते बीजापुर का पुश्तैनी सामन्त था। वह न तो शिवाजी के आन्दोलन में सम्मिलित होने को तैयार था और न उनकी नौकरी में आने के लिए। इसके विपरीत, शिवाजी के विरुद्ध उनकी गतिविधियों की जासूसी करने की आशंका से यह शिवाजी के लिए असह्य था कि ठीक अपने पड़ौस में वे उसकी उपस्थिति सहन करते। सम्भाजी के पास करीब ३०० सिपाहियों की सुसज्जित सेना थी। एक अँधेरी रात में कुछ वीर अनुचरों की एक टोली लेकर शिवाजी ने सूपा पर यकायक धावा बोल दिया। सम्भाजो और उसका रक्षक दल हक्का-बक्का रह गया। उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली गई और गढ़ पर अधिकार हो गया। शिवाजी प्रयत्न ने किया कि वे सम्भाजी को अपनी योजना से परिचित कराकर आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए उसे राजी कर लें परन्तु चूँकि वह घमण्डी व्यक्ति इसके लिए तैयार न हुआ अत: शिवाजी ने आवश्यक रक्षक दल की देख-रेख में उसे अपने पिता के पास बंगलौर भेज दिया। शिवाजी ने उसके विरुद्ध जो कार्यवाही की थी उसका वृत्तान्त भी वहाँ भेज दिया। यह दु:ख की बात है कि इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता कि यह घटना कब घटित हुई। अनुमान से हम कह सकते हैं कि यह घटना १६४९ और १६५२ ई० के बीच की होगी।[१४]

साधारणत: भीमा और नीरा के मध्य पूना और शिरवल के बीच के प्रदेश में शिवाजी ने अपनी स्थिति को दृढ़ करने के उद्देश्य से चाकन, पुरन्दर, सूपा और बारामती के केन्द्रों

---

१४ "शिवभारत", अध्याय १४; राजवाड़े में २०.४७, पृ० ७०–७१ पर लिखा है कि सम्भाजी मोहिते १६५७ ई० में गिरफ्तार किया गया था। लेकिन ऐसा विचार है कि घटना के बहुत दिन बाद इसकी तिथि अंकित की गई है।

की रक्षा की पूर्ण व्यवस्था कर दी। ये स्थान बिना रक्तपात और बिना किसी खर्च के अधिकार में कर लिए गये। इस प्रकार एक छोटे सुसंगठित स्वतन्त्र राज्य की शीघ्र ही स्थापना हो गई। अपनी सुनियमित सीमाओं से आगे बढ़ने की कोशिश शिवाजी ने न की—यह सावधानी रखी। उन्होंने यह तभी किया जब उन्हें विश्वास हो गया कि उनकी सत्ता अच्छी तरह स्थापित हो गई है और सुशासन के सभी तत्त्व पूर्णतया संगठित हो गये हैं। अपने अधीन जनता की सद्भावना ही उनका मुख्य आधार थी। इस सहानुभूतिपूर्ण नीति तथा अपने अधीन जनता के कल्याण की भावना से सब को प्रेरणा मिली और यह स्पष्ट हो गया कि उनके जनकल्याणकारी व्यवस्थित शासन और मुस्लिम अव्यवस्था और अनियमितता में कितना अन्तर है। दादाजी की मृत्यु के बाद पूरे सात वर्ष तक अपने बल को सब ओर से संगठित करने और अपने शासन को जनप्रिय बनाने में शिवाजी ने अपनी सारी शक्तियों को केन्द्रित कर दिया। स्वतन्त्र शासन का अर्थ है सुसंगठित एवं सुसीमित भौगोलिक इकाई, जिसमें निर्दिष्ट कानून और अधिकारियों का उचित वर्गीकरण शिवाजी द्वारा अपनाया गया। राजकीय मुद्रा पर मुद्रित आदर्श वाक्य स्वतः उनके उद्देश्य का प्रमाण है। वह यह है: "शाह के पुत्र शिवाजी की यह मुद्रा (जनता के) कल्याण के लिए प्रकाशमान है। यह चन्द्रमा की प्रथम कला के समान नित्य बढ़ने वाली है और विश्व इसका सम्मान करने वाला है।" अपनी योजना के प्रथम चरण की चन्द्र की प्रथम कला से शिवाजी ने ठीक ही तुलना की है। शनैः-शनैः ये कलाएँ बढ़ने वाली और सम्पूर्णता को प्राप्त होने वाली थीं। १६४५ ई० के बाद के शिवाजी के सब पत्रों पर यह मुद्रा अंकित मिलती है।[१५] इस लघु वाक्य की अपेक्षा अन्य किसी प्रकार उनके उद्देश्य और लक्ष्य इतनी अच्छी तरह व्यक्त नहीं हो सकते।

---

१५ देखिए "पत्र सार-संग्रह"।
प्रतिपच्चंद्ररेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववंदिता।
शाहसूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय मुद्रा की भाँति छत्रपति की उपाधि भी उन्होंने १६७४ ई० में अपने वैधानिक अभिषेक के बहुत पहले धारण करली थी। अपने स्वराज्य के प्रथम निर्माण-काल में शायद उन्होंने इसे अपनाया। यह उपाधि राज्य-शासन-पद्धति पर लिखे प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों से ली गई थी जिसका स्वरूप राजत्व के परम्परागत विचारों के अनुरूप निर्माण किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि शिवाजी तथा उनकी माता के कार्यकर्त्ताओं ने शुक्रनीति, मनुस्मृति और सम्भवतया चाणक्य के ग्रन्थों की सहायता ली। अष्ट-प्रधान संस्था, उनकी प्राचीन उपाधियाँ और छत्रपत्रि का नाम नवीन रचनाएँ न थीं। वास्तव में हिन्दू और मुस्लिम शासन-काल में ये रूप और नाम प्रचलित थे और समय तथा सुविधा के अनुसार उनमें से कुछ को शिवाजी ने अपना लिया। पेशवा, मजुमदार, दबीर, सर-नौबत, सरनिस फारसी में अधिकारियों की उपाधियाँ हैं, जिनका बाद में शिवाजी ने संस्कृत में रूपान्तर कर दिया। उपाधियाँ ही नहीं बल्कि पत्रों और लेख्यों के रूप, हिसाब की शैली, राजस्व विभाग के पारिभाषिक शब्द और पदाधिकार के चिन्ह जो मुस्लिम-शासन में बहुत पहिले से प्रचलित थे, पूरे के पूरे ग्रहण कर लिये गये। बहुधा इन्हें संस्कृत तत्समों[१६] के रूप में और आर्य स्वरूप देकर अपनाया गया।

कुछ प्राचीन पत्रों के प्रमाण पर राजवाड़े का कथन है कि 'छत्रपति' शब्द १६४८ ई० में शिवाजी के लिए प्रयुक्त हुआ ज्ञात होता है। कुछ पत्र प्राप्त हुए हैं जो शिवाजी को सम्बोधित कर सन्त तुकाराम ने लिखे हैं और जिनमें छत्रपति शब्द का प्रयोग हुआ है। तुकाराम का देहान्त १६५० ई० में हुआ और यदि ये रचनाएँ प्रमाणहीन नहीं हैं तो यही निष्कर्ष निकलता है कि उस समय शिवाजी ने छत्रपति की उपाधि धारण कर ली थी। इस बात का

---

१६ "अखण्डित लक्ष्मी आलंकृत राजमान्य, राजश्रिया विराजित" और इस प्रकार के वाक्य मूल में फारसी-रूप हैं जिनका रूपान्तर संस्कृत और मराठी में कर लिया गया था।

निर्णय करने में स्पष्ट कठिनाइयाँ हैं। कुछ गिने-चुने ही प्रामाणिक पत्र बच गये हैं। हमारे पास प्राचीन पत्रों की प्रतिलिपियाँ हैं जिनमें प्रतिलिपिकारों ने मूल पाठ की नकल करने में मनमानी की है अथवा अपनी ओर से भी बातें बढ़ा दी हैं। १६५३ ई० के एक पत्र पर और बाद की तिथियों के अनेक पत्रों पर शिवाजी के पेशवा श्यामराजपन्त[१७] और अन्य अधिकारियों की मोहरें हैं, जिनके मूल शब्दों से सिद्ध होता है कि पूर्ण स्वराज्य का प्रथम चरण राजा और आवश्यक मन्त्रियों सहित निस्सन्देह १६५३ ई० तक पूरा हो गया था और उसकी विधिवत् घोषणा हो गई थी। इसकी साक्षी में स्वयं शिवाजी का एक मूल पत्र है जिसे उन्होंने १७ जुलाई, १६५३ को अपने गुरू चाकन के सिद्धेश्वर भट्ट ब्रह्मे को लिखा था। सम्भवतः इन्हें शिवाजी ने संकटपूर्ण कार्यों के समय देवाराधन के लिए नियुक्त किया था। इस पत्र में शिवाजी ने लिखा है, "आपकी तपश्चर्या के बल पर राज्य-स्थापन की मेरी इच्छा पूर्व-योजनानुसार सिद्ध हो गई है। अतः मैं सहर्ष आपके लिए जुन्नार के कोष से १०० स्वर्ण होनों (३०० रु०) का नकद वार्षिक अनुदान स्वीकार करता हूँ।"[१८] यह एक निश्चित वक्तव्य है और हो सकता है कि राज्य उनकी जागीर की पैतृक सम्पत्ति से अधिक न हो, परन्तु इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि शिवाजी का स्वराज्य पूर्णतया १६५३ ई० के लगभग स्थापित हो गया था। अब आगे परिश्रम करके इसका विकास करना तो शेष था, परन्तु प्रथम मंजिल सिंहगढ़ की विजय के दस वर्ष के अन्दर ही पूर्ण हो गई थी।

कहा जाता है कि गढ़ विजय दुर्ग का निर्माण विजय शक अर्थात् ईस्वी सन् १६५३ ई० में हुआ था। यदि यह सत्य मान लिया जाय तो स्पष्ट है कि शिवाजी ने इन शान्त वर्षों में सह्याद्रि के पश्चिम कोंकण के इन जिलों की पूर्ण यात्रा कर ली थी और समुद्र-तटवर्ती प्रदेशों पर

---

१७ शिवनरपति हर्षनिधान। श्यामराज मतिमन्त प्रधान।

१८ "सनदें और पत्र", पृ० ११३।

भविष्य में प्रसार की सम्भावना भी आँक ली थी। वहाँ पर उस समय यूरोप-निवासियों ने अपने व्यापारिक कारखाने खोल रखे थे। १६४८ ई० में राजापुर में अँग्रेजों और डच लोगों ने लगभग उसी समय विंगुर्ला में एक-एक कारखाना स्थापित किया। पुर्तगाल वालों का अपना प्राचीन ठिकाना चौल में था। इन सब से शिवाजी ने मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। उन्होंने अपने भावी राज्य का आधार पश्चिम तट को बनाया और अपनी ही जल-सेना द्वारा उसकी रक्षा का निश्चय किया। जंजीरा के सिद्दियों से भी मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने की सम्भावनाओं को उन्होंने ढूँढ़ा था। उस समय कल्याण और सोंधा के बीच में उन्हीं की एकमात्र मुस्लिम सत्ता थी। इस प्रकार उनके स्वराज्य के विचार ने १६५३ ई० के लगभग एक निश्चित रूप धारण कर लिया। कुछ प्रारम्भिक वर्षों में शिवाजी ने अपने पिता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया परन्तु शाहजी की कारागार से मुक्ति के बाद अपनी जागीर में शिवाजी ने पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।[१९]

शिवाजी की योजना के इस प्रथम चरण की सफल समाप्ति पर परमानन्द ने उनकी उपयुक्त प्रशंसा करते हुए लिखा है, "महाराष्ट्र देश ने उस समय अपने शाब्दिक अर्थ को अपना लिया अर्थात्

---

१९ राजवाड़े, खण्ड १७-१९, "पत्र सार-संग्रह", ७१७-७२२। इनमें तथा अन्य पत्रों में इस बात का और भी प्रमाण मिलता है कि शिवाजी की शासन-व्यवस्था पूर्ण हो चुकी थी। शिवाजी के शासन के अन्तर्गत जारी किये गये, दिनाङ्क २१ मार्च, १६५७ को, एक न्यायालय के फैसले में कई व्यक्तियों के हस्ताक्षर हैं। इनमें ये भी हैं—श्यामराज नीलकण्ठ पेशवा, वासुदेव बालकृष्ण मजुमदार, सोनाजी विश्वनाथ दबीर, बालकृष्ण पन्त और नारोपन्त हनुमन्ते दीक्षित, महादाजी शामराज सुरनिस, नूरबेग सरनौबत, पैदल सेना और पन्ताजी गोपीनाथ चिटनिस। अन्त में ये शब्द हैं—"हजूर की आज्ञानुसार"। यहाँ यह विचारणीय है कि उस समय में छोटे-मोटे जागीरदार भी अपने नीचे इस प्रकार के अधिकारी रखते थे—चिटनिस, मजुमदार, पेशवा, सुरनिस, दबीर आदि। अतः इन शब्दों के योग का यह अर्थ नहीं कि शिवाजी ने ही इन्हें गढ़ा हो। जो प्रचलित थे उन्हें ही उन्होंने अपना लिया।

शिवाजी के प्रयास से वह एक महान् राष्ट्र बन गया।"[२०] "महाराष्ट्र की जनता धनी और सुखी हो गई।" इस प्रकार हम देखते हैं कि कैसे प्रथम चन्द्र-रेखा पूर्णता को प्राप्त हुई, जो सिंहगढ़ विजय के बाद प्रारम्भ होकर शिवाजी के कार्यों के प्रथम दशक को पूर्ण करती है।

---

२० महाराष्ट्रो जनपदः तदानीं तत्समाश्रयात्।
अन्वर्थतामन्वगमत् समृद्धजनतान्वितः ॥ शि० भा० १०.३२ ॥

तिथिक्रम

अध्याय ५

१६३६–१६४४	औरंगजेब दक्षिण का राज्यपाल; उसके नाम पर औरंगाबाद का नामकरण।
१६४८	दौलतराव मोरे का देहान्त।
१६४६–१६५४	अफजलखाँ वाई का राज्यपाल।
जनवरी १६५३- फरवरी १६५८	औरंगजेब पुनः दक्षिण का राज्यपाल।
१६५५	औरंगजेब का गोलकुण्डा पर आक्रमण।
१६५५ अन्तिम मास	शिवाजी का जावली पर प्रथम आक्रमण।
२६ जनवरी, १६५६	हनुमन्तराव मोरे का मारा जाना और जावली का हस्तगत होना।
१६५६	मुल्ला अहमद पर अचानक हमला; कल्याण और भिवण्डी की लूट।
मई १६५६	यशवन्तराव मोरे और उसके भाइयों का मारा जाना।
४ सितम्बर, १६५६	दुर्गों के नये नाम रखे जाना।
४ नवम्बर, १६५६	मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु।
	औरंगजेब का बीजापुर पर हमला प्रारम्भ।
अप्रेल १६५७	शिवाजी द्वारा जुन्नार और अहमदनगर का लूटना।
अप्रेल १६५७	शिवाजी द्वारा सोनोपन्त दबीर को वकील बनाकर औरंगजेब के पास भेजना।
१६५७	लकवे के कारण शाहजहाँ का बीमार पड़ना।
अक्टूबर १६५७	शिवाजी द्वारा कल्याण और उत्तर कोंकण को अधीन करना; केसरीसिंह का प्रबाल गढ़ पर लड़ते हुए मारा जाना।
२५ जनवरी, १६५८	औरंगजेब का औरंगाबाद से दिल्ली जाना; शिवाजी द्वारा प्रतापगढ़ का निर्माण; मोरोपन्त पेशवा की नियुक्ति; अन्य मन्त्रालयों की स्थापना; दक्षिण कोंकण और राजापुर पर चढ़ाई; बालाजी आवजी की चिटनिस पद पर नियुक्ति; सिद्दी के प्रदेश हस्तगत।
२१ जुलाई, १६५८	औरंगजेब का सम्राट् होना।

५ मार्च, १६५९	बाड़ी के सावन्त से शिवाजी की मैत्री-सन्धि; भवानी तलवार की प्राप्ति ।
१६ अगस्त, १६५९	पुर्तगाली वाइसराय द्वारा दक्षिण कोंकण पर शिवाजी के पूर्ण अधिकार की सूचना ।
सितम्बर १६५९	शिवाजी के विरुद्ध अफजलखाँ का प्रस्थान ।
अक्टूबर १६५९	अफजलखाँ का वाई पर पड़ाव ।
अक्टूबर १६५९	शिवाजी का प्रतापगढ़ में निवास ।
१० नवम्बर, १६५९	अफजलखाँ का मारा जाना ।
११ नवम्बर, १६५९	वाई का युद्ध; बीजापुर की सेना की पराजय ।
२८ नवम्बर, १६५९	शिवाजी द्वारा पन्हाला को हस्तगत करना ।
२८ दिसम्बर, १६५९	पन्हाला के नीचे बीजापुर की सेना परास्त; रायबाग तथा अन्य नगरों की लूट ।
जनवरी १६६०	दक्षिण के राज्यपाल के रूप में शाइस्तखाँ का आना ।
फरवरी १६६०	शाइस्ताखाँ का पूना पर अधिकार ।
मई १६६०	पन्हाला पर सलावतखाँ का घेरा ।
जून १६६०	पन्हाला पर घेरा डालने वालों को अँग्रेजों द्वारा सहायता ।
१३ जुलाई, १६६०	शिवाजी का पन्हाला से भाग निकलना ।
१४ जुलाई, १६६०	विशालगढ़ पर बाजीप्रभु का मारा जाना ।
अगस्त १६६०	चाकन पर शाइस्ताखाँ का अधिकार ।
१६६०	शिवाजी द्वारा शाइस्ताखाँ के पास सोनोपन्त दबीर को भेजना ।
२२ सितम्बर, १६६०	शिवाजी द्वारा बीजापुर को पन्हाला वापस देना ।
१६६०	सुवर्ण दुर्ग का शिवाजी द्वारा निर्माण ।
१६६४	सिंधु दुर्ग का शिवाजी द्वारा निर्माण ।
१६८०	कोलाबा का शिवाजी द्वारा निर्माण ।

अध्याय ५

तीव्र प्रगति

[१६५४-१६६०]

१. मोरे परिवार का विनाश।
२. १६५७ की राजनीतिक परिस्थिति।
३. उत्तर और दक्षिण कोंकण पर अधिकार।
४. प्रशासकीय कार्य।
५. अफजलखाँ का अन्त।
६. पन्हाला का घेरा—शिवाजी का बच निकलना।

१. मोरे परिवार का विनाश—शिवाजी की प्रथम सफलता का प्रभाव बीजापुर और तत्पश्चात् मुगल सम्राट् की नीति पर क्या पड़ा, यह बाद में देखेंगे। स्वराज्य के सम्बन्ध में उनके प्रयोगों की अगली स्थितियाँ शनैः-शनैः तीव्रतर और उज्ज्वलतर होती गईं। दूसरी स्थिति (१६५४-६४) में अद्भुत घटनाएँ हुई, जिनके फलस्वरूप वे महाराष्ट्र के पूर्ण नेता के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

शिवाजी ने अब चारों ओर वेग से प्रसरण प्रारम्भ कर दिया। अपनी रखी हुई नींव पर वे सतत् भवन-निर्माण करते रहे, किन्तु अपने शक्तिशाली पड़ौसियों के साथ उन्होंने सावधानीपूर्वक युद्ध को टाला और आन्तरिक विरोधियों का नाश किया, जिन्होंने उनके अभ्युदय के प्रति ईर्ष्या प्रकट की थी। मावल के अधिकांश देशमुख शनैः-शनैः उनके साथ हो गये और उन्होंने उनके नेतृत्व को प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। परन्तु कुछ ऐसे भी थे जिन्हें अपने पैतृक महत्व का गर्व था और जिनकी भक्ति बीजापुर के प्रति इतनी प्रबल थी कि राष्ट्र की पुकार को वे अनसुनी कर देते थे। महाबलेश्वर की पहाड़ी के पश्चिमी तट पर चन्द्रराव उपनाम से विख्यात जावली का मोरे परिवार एक प्राचीन देशमुख परिवार था जिसे उच्च सम्मान प्राप्त था।

उसे उच्च क्षत्रियत्व का अभिमान था क्योंकि वे महान् चन्द्रगुप्त मौर्य के वंशज थे। क्षत्रियत्व का यह मान भोसलों को प्राप्त नहीं था। अधिकांश मावल देशमुखों से मोरे परिवार के पारिवारिक सम्बन्ध थे और उन्होंने शिवाजी का साथ देने से इंकार कर दिया। अत: शिवाजी के लिये मोरे लोगों से निपटना सबसे पहला आवश्यक कार्य हो गया। स्पष्ट है कि दो तलवारें एक म्यान में नहीं रह सकतीं। इस तीखे काँटे को निकालने के लिये कौन-सा सबसे कम हानिकर उपाय होगा, इस पर शिवाजी वर्षों तक विचार करते रहे। उन्होंने बहुत समय तक धीरज के साथ प्रतीक्षा की और निरन्तर बढ़ती हुई इस चिन्ताजनक परिस्थिति को समाप्त करने के लिए मित्रतापूर्ण हल ढूँढ़ निकालने में कोई कोर-कसर न रखी। जब १६४९ ई० में अफजलखाँ वाई का राज्यपाल नियुक्त हुआ तो स्थिति शीघ्र ही बहुत गम्भीर हो गई। ख़ान को शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति का दमन के स्पष्ट आदेश थे। उसने मोरे परिवार को प्रोत्साहन देने और शिवाजी की प्रगति का विरोध करने का कोई भी अवसर हाथ से न खोया।

शिवाजी और मोरे परिवार में कलह का सूत्रपात सन् १६४८ से ही हो गया, जब बालाजी और उसका पुत्र दौलतराव मोरे अपना कोई प्रामाणिक या ज़ागीर का प्रशासन करने वाला योग्य उत्तराधिकारी छोड़े बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। दौलतराव सम्माननीय और ख्याति-प्राप्त व्यक्ति था। उसकी विधवा ने परिवार के एक अल्पवयस्क यशवन्तराव को गोद ले लिया और हनुमन्तराव मोरे की सहायता से, जो परिवार का दूर का रिश्तेदार था, स्वयं राज्य-कार्य चलाती रही। मोरे परिवार के विरोध का अन्त करने पर कटिबद्ध शिवाजी ने कई वर्ष पारस्परिक वार्तालाप में व्यतीत कर दिये ताकि शान्तिमय ढंग से उद्देश्य सिद्ध हो जाय। मोरे परिवार, शिवाजी और अफजलखाँ के बीच एक प्रकार का त्रिकोण संघर्ष प्रारम्भ हो गया। अफजलखाँ बीजापुर की सत्ता का प्रतिनिधि था। १६५४ ई० के आस-पास अफजलखाँ का तबादला वाई से कनकगिरि को हुआ और

शिवाजी को किसी निर्णय पर पहुँचने के लिये अभिलषित अवसर आ गया। कुछ मावल देशमुखों को, विशेषकर कान्होजी जेधे, हैबतराव सिलिमकर और मोरे परिवार के अन्य पड़ौसियों को, उन्होंने अपने पक्ष में कर लिया और जावली को एक प्रस्ताव भेजा। प्रस्ताव में ऐसी शर्तें थीं जिन्हें मानने से मोरे परिवार ने इंकार कर दिया। तब इन देश-मुखों के दलों के साथ उन्होंने अपने सेनापति सम्भाजी कावजी को थोड़ी-सी सेना देकर भेजा ताकि उनके निवास-स्थान को घेरें। प्रथम प्रयास असफल सिद्ध हुआ। तब शिवाजी ने दूसरी सेना रघुनाथ बल्लाल कोर्डे की अधीनता में भेजी। जावली के समीप युद्ध हुआ जिसमें हनुमन्तराव मारा गया। यशवन्तराव जान बचाकर भाग गया और राइरी के गढ़ में शरण ली। जावली से शिवाजी को निकालने हेतु आदिलशाह की सहायता प्राप्त करने के लिये (२६ जनवरी, १६५६) प्रतापराव मोरे बीजापुर भाग गया। शिवाजी स्वयं जावली की ओर चल पड़े और दो मास तक वहाँ ठहरे। उन्होंने मोरे परिवार के घर को पुनः आबाद कर दिया और जागीर पर अपनी सत्ता जमा ली। इस बीच में यशवन्तराव ने राइरी की पहाड़ी चोटी से नयी परेशानी खड़ी कर दी। यह स्थान महद के पास एक बड़ा और ऊँचा पठार है जो मोरे परिवार के अधिकार में था। शिवाजी ने सेनाएँ भेज दीं और अपने प्रतिनिधि हैबतराव सिलिमकर को यशवन्त-राव के पास अधीनता स्वीकार करने के लिये भेजा। लम्बी वार्ता के बाद मई में राइरी के नीचे भेंट का प्रबन्ध हुआ। जब मोरे लोग शिवाजी से मिलने आये तो उन्होंने मुख्य अपराधी यशवन्तराव का वध कर दिया और उसके दो पुत्रों कृष्णाजी और बाजी को बन्दी बनाकर पूना ले गये। बाद में ये दोनों भाई बीजापुर से गुप्त षड़यन्त्र करते पकड़े गये और मार डाले गये।

यह दीर्घ और कष्टप्रद कार्य शिवाजी के अन्य सभी प्रकार से उज्ज्वल चरित्र पर अमिट धब्बा जैसा दिखाई देता है क्योंकि उन्होंने एक प्राचीन मराठा परिवार के चार प्रमुख सदस्यों की समझ-बूझकर हत्या कर डाली। शिवाजी को ऐसा आततायी का कार्य

क्यों करना पड़ा, इसकी व्याख्या की ग्रावश्यकता है। इस सारी घटना के ग्रान्तरिक इतिहास के, परम्परा प्राप्त वर्णनों के ग्राधार पर—विशेषकर इतिहास संग्रह (ऐ० स्फु० ले० १·७) में पारसनीस द्वारा छापी हुई भावपूर्ण मोटे बखर के ग्राधार पर—पुर्निर्माण की ग्रावश्यकता है। जब शिवाजी ने मावल प्रदेश में ग्रपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की तथा छत्रपति की उपाधि धारण की उसी समय से मोरे परिवार के साथ शिवाजी के सम्बन्ध कटु हो गये थे। शिवाजी के इस उत्कर्ष को ग्रधिकांश देशमुखों ने चुपचाप स्वीकार कर लिया था। जावली के मोरे जो ग्रपने दुर्गम स्थान में सुरक्षित थे ग्रौर शक्ति तथा सम्पत्तिवान् थे तथा जिन्हें दो सहस्र वर्षों से भी ग्रधिक की क्षत्रिय वंश की परम्परा का ग्रभिमान था—क्योंकि वे ग्रपना उद्गम प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य से बताते थे—खुले रूप में शिवाजी के प्रभुत्व का विरोध करने लगे। शिवाजी ने लगभग सात वर्ष तक ग्रपनी मधुर ग्रनुनय की सारी कलाग्रों तथा शान्तिमय बात-चीत का उन पर व्यर्थ ही प्रयोग किया। मोरे लोगों ने बीजापुर का पूर्ण सहयोग किया तथा शिवाजी के कार्यों का खुला विरोध किया; यहाँ तक कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई जब शिवाजी विवश होकर या तो सशस्त्र संघर्ष के द्वारा समस्या को हल करें ग्रथवा ग्रपनी स्वराज्य की योजनाग्रों को सदा के लिए त्याग दें। उन्होंने मोरे लोगों के साथ विवाह-सम्बन्ध का प्रस्ताव किया ग्रौर उनसे ग्रपने नेतृत्व को मानने के लिये कहा। जब ये बातें ग्रस्वीकार कर दी गईं तो शिवाजी ने उन्हें बदला लेने की धमकी दी। मोरे लोगों ने शिवाजी के सभी प्रस्तावों को दृढ़ता से ठुकरा दिया ग्रौर धृष्टता से उत्तर दिये। उन्होंने कहा, "तुम्हारी युद्ध की धमकी के विषय में यह उत्तर है कि हम तुम्हारे प्रस्ताव का हार्दिक स्वागत करते हैं। कल के स्थान में ग्राज ही चले ग्राग्रो ग्रौर चाहे जितनी सेना ले ग्राग्रो। तुम स्वतन्त्र राजा होने की बात क्यों करते हो? तुम्हें राजा कौन कहता है? तुम कल के नई उन्नति करने वाले हो। तुम ग्रपने घर में चाहे जितनी बढ़-बढ़ कर बातें बना लो, पर उन्हें कोई सुनने वाला नहीं है। जावली

ग्राग्रो ग्रौर देखो कि इस कठिन प्रदेश में तुम्हारा कैसा स्वागत होता है। बीजापुर के सुल्तान ने जो सम्मान हमें दिया है, हम उसका ग्रादर करते हैं। हम उसकी ग्राज्ञाग्रों का ग्रादर करते हैं, फिर चाहे जो होता रहे।" इस प्रकार शिवाजी को विवश किया गया कि इस सारे मामले को एक भयंकर उदाहरण का रूप दें ग्रौर सारे मराठा समाज को पाठ पढ़ाएँ। उन्होंने ग्रपने ग्रभिषेक के समय जान-बूझकर 'क्षत्रियकुलावतंस' की उपाधि धारण की जिसका ग्रर्थ यह था कि वे वर्तमान क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ थे, ग्रौर यह वास्तविक इतिहास से भी सिद्ध हुग्रा।

मोरे लोग झुक जाने की बुद्धिमता दिखाकर ग्रासानी से ग्रपने को बचा सकते थे, जैसा कि पुरन्दर के सरनायक ने किया। उनकी महिलाग्रों ग्रौर ग्राश्रितों के साथ ग्रति दयालुता का व्यवहार किया गया। मोरे काण्ड की सर्व-साधारण की भाषा में व्याख्या यह है: "मिल गये बारह भाई डूबी चन्द्रराई"।[1] परस्पर विरोधी विवरणों की लम्बी कहानी में से यहाँ पर केवल मूल बात संक्षेप में दी गई है। शिवाजी ने कई शताब्दियों से संचित उसके सम्पूर्ण धन ग्रौर कोष सहित उसकी जागीर को ग्रपने ग्रधिकार में कर लिया। मोरे परिवार के साथ किये गये शिवाजी के इस व्यवहार के प्रति इतिहास निश्चय ही विपरीत निर्णय देगा परन्तु उनके उद्देश्य की दिशा में इसका परिणाम बहुत ही कल्याणकारी सिद्ध हुग्रा, क्योंकि इससे संसार को ज्ञात हो गया कि यदि उनकी योजनाग्रों ग्रौर इच्छाग्रों का स्पष्ट विरोध किया गया तो वे कैसा व्यवहार करेंगे। मोरे परिवार के गढ़ वसोता पर उनका शीघ्र ही ग्रधिकार हो गया। इस प्रकार जुन्नार से वाई तक के सभी बारहों मावल शिवाजी के ग्रधिकार में ग्रा गये।

जावली पर ग्रधिकार करने के बाद शिवाजी ने प्रसिद्ध पारघाट

---

१ मिलाले बारभाई, बुड़ाली चन्द्रराई।। देखो ऐ० स्फु० ले० १,७ मोरे बखर, शिवभारत, जेधे शकावली ग्रादि। शिवाजी ने ग्रपने पिता द्वारा सुझाई गई योजना के ग्रनुसार कार्य किया था। देखो क़ांदार मोरे शि० च० सा० ३,६३९, पृ० २३०।

की घाटी का नियन्त्रण करने के लिए एक नये गढ़ का निर्माण कराया और उसका सार्थक नाम प्रतापगढ़ रखा; जब कि अन्य सब गढ़ों के नये नाम रखे गये थे। निर्माण का कार्य मोरेपन्त पिंगले ने किया। इसके पिता ने शाहजी की कर्नाटक में सेवा की थी और अब वह शिवाजी की सेवा में था। इस गढ़ में देवी भवानी की एक नई प्रतिमा स्थापित की गई। जीजाबाई प्राय: वहाँ रहने आती थीं। मोरेपन्त पिंगले शीघ्र ही शिवाजी का दाहिना हाथ बन गया। जब श्यामराज पन्त की १६६२ ई०[२] के करीब मृत्यु हो गई तो वह पेशवा या प्रधान मंत्री नियुक्त कर दिया गया।

शिवाजी की सफलताओं के द्वितीय दशक के सफल कृत्यों की शृंखला में जावली की विजय प्रथम महत्त्वपूर्ण कड़ी है। जावली की सफलता से दक्षिण में शासन करने वाली दोनों सत्ताओं दिल्ली और बीजापुर, की दृष्टि में वे खटकने लगे। मुगल साम्राज्य के प्रतिनिधि के रूप में एक नवीन व्यक्ति औरंगजेब इस समय इतिहास के रंगमंच पर आया। वह वृद्धावस्था-ग्रस्त शाहजहाँ का पुत्र था। वह धर्मान्ध था और शीघ्र ही शिवाजी का घोर शत्रु बन गया।

२. १६५७ की राजनीतिक परिस्थिति—औरंगजेब शिवाजी से आयु में ६ वर्ष बड़ा था। उसका जन्म दोहद में २४ अक्टूबर, १६१८ को हुआ था और उसने किशोरावस्था में अपने पिता का कष्टों एवं भ्रमणों में साथ दिया था। बड़े होने पर उसका स्वभाव उग्र और हृदय कठोर हो गया जो जीवनपर्यन्त उसके चरित्र के अंग बने रहे। उसके पिता ने दक्षिण में जो युद्ध किया उसे उसने देखा था। उस युद्ध के कारण शिवाजी के पिता को अपना देश छोड़ना पड़ा था। निजामशाही राज्य की विजय के बाद जब शाहजहाँ उत्तर को लौट गया तो उसने औरंगजेब को दक्षिण में अपना प्रतिनिधि या सूबेदार नियुक्त किया और उसको विजित

---

२ प० पा० सं० ८८७ में १६६२ में शामराज की मुद्रा है; शि० च० सा० में गढ़ लिखा है; प० पा० सं० ८६१ में शामराज का पुत्र महादेव लिखा है।

प्रदेश की पूर्ण व्यवस्था करने का आदेश दिया। इस पद पर वह पहले ८ वर्ष तक रहा (१६३६-१६४४), तत्पश्चात् जनवरी १६५३ से फरवरी १६५८ तक ५ वर्ष बाद में रहा। दोनों नियुक्तियों के बीच ९ वर्ष की अवधि में (१६४४-१६५२) औरंगजेब उत्तर-पश्चिम सीमा पर साम्राज्य के युद्धों में व्यस्त रहा, जिसका मराठों से कोई सम्बन्ध न था। अपने प्रथम राजप्रतिनिधित्व के ८ वर्षों में औरंगजेब मुगल-सत्ता को दृढ़ करने और व्यवस्थित सरकार के निर्माण में व्यस्त रहा। परन्तु इस काल में उसके कार्य और प्रगति से सम्बन्धित कोई उल्लेखनीय घटना नहीं है। शिवाजी उस समय अल्पवयस्क थे और मराठों की ओर से उस समय किसी विघ्न की आशंका न थी। औरंगजेब को शिकार का शौक था और उसने अपने सरकारी निवास के लिए उत्तरीय सुदूर स्थित बुरहानपुर की अपेक्षा दौलताबाद के समीप नवनिर्मित खड़की नगर को पसन्द किया। इसको मलिक अम्बर ने बसाया था और अपने नाम पर इसका नामकरण किया था। औरंगाबाद का यह नया नगर मराठों की प्रगति पर निगाह रखने के लिए अधिक उपयोगी स्थान था, जिसका केन्द्र पूना था।

परन्तु १६४४ और १६५३ ई० के बीच ८ वर्ष की अवधि में दक्षिण में बहुत से परिवर्तन हो गये थे। मुगल साम्राज्य के दक्षिणस्थ प्रदेशों पर इस समय में ६ भिन्न-भिन्न व्यक्ति शासन कर चुके थे। इनमें मिर्जा राजा जयसिंह, राजकुमार मुरादबख्श और शाइस्ताखाँ जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति भी थे। इनमें से किसी ने भी अपने शासन का कोई विशेष चिन्ह अपने पीछे नहीं छोड़ा। शिवाजी उस समय मुगल विरोध को उकसाये बिना प्रमुख रूप से अपनी जागीर को दृढ़ करने में व्यस्त थे। १६५७ ई० के आस-पास जब शिवाजी की दृष्टि अपने पिता की जागीर से आगे जाने लगी तब औरंगजेब का ध्यान सर्वप्रथम उनकी ओर गया। जावली के मोरे-परिवार-कांड से निश्चिन्त होकर शिवाजी ने १६५७ ई० की ग्रीष्म में अपना पहला धावा मुगल प्रदेश पर किया और जुन्नार तथा अहमदनगर को लूट

लिया। साथ ही उन्होंने कल्याण और भिवण्डी को हस्तगत करके उत्तर कोंकण के आदिलशाही प्रदेशों पर भी चढ़ाई कर दी। बीजापुर उस समय निरंकुश मुगल आक्रमण में उलझा हुआ था, जिसका प्रारम्भ ४ नवम्बर, १६५६ को आदिलशाह की मृत्यु के बाद हुआ था। उस समय अन्तर्देशीय व्यापार जुन्नार से कल्याण की बड़ी सड़क पर होकर पश्चिमी तट के कल्याण और वसई के बन्दरगाहों को होता था। वे उस समय धन और व्यापार के केन्द्र थे तथा घाटों के नीचे उर्वर प्रदेश पर नियन्त्रण रखते थे। यहाँ जलपोतगम्य अनेक नदी-नाले थे। अपनी जागीर के निकट इस उर्वर प्रदेश पर अधिकार करना शिवाजी बहुत लाभप्रद समझते थे और इसकी रक्षा भी उनके मूल स्थान पूना से अच्छी तरह हो सकती थी।

३. उत्तर और दक्षिण कोंकण पर अधिकार—शिवाजी के चतुर गुप्तचर बहुत दिनों तक चारों ओर के प्रदेश में कार्य करते रहे और उन्होंने स्वयं कल्याण जिले का दौरा किया ताकि उसकी रक्षा की सामर्थ्य का पता लग जाय। जब १६५५ ई० में शिवाजी जावली पर अपना आक्रमण प्रारम्भ करने वाले थे तभी उन्हें यह समाचार मिला कि धन की आवश्यकता आ पड़ने के कारण बीजापुर के आदिलशाह ने कल्याण के राज्यपाल मुल्ला अहमद[3] को सारी संग्रहीत सम्पत्ति शक्तिशाली सशस्त्र रक्षक दल की देख-रेख में बीजापुर ले आने की आज्ञा दी है। मार्ग पर सहायक दल नियुक्त कर दिये गये थे और स्थानीय अधिकारियों को आज्ञा दी गई थी कि पूर्ण सहायता करें। शिवाजी ने एक दल को यह कार्य सौंपा कि जब खजाना पुरन्दर के मार्ग से निकले तो वह सहसा उस पर टूट पड़े और खजाना लेकर भाग जाय। दूसरे दल को कल्याण पर आक्रमण करने का भार सौंपा गया। योजना सफल रही। सारा कोष राजगढ़ के तहखाने में रख दिया गया। जब वह आकस्मिक धावा पूना के समीप हो रहा था, तभी शिवाजी के पेशवा श्यामराज नीलकण्ठ और उसके

---

३ सरकार लिखित "हाउस ऑफ शिवाजी", पृष्ठ ६५ तथा "लीडिंग नोबुल्स ऑफ बीजापुर", पृष्ठ ५५।

चचेरे भाई दादाजी बापूजी ने कुछ चुने हुए सिपाहियों के साथ अकस्मात् कल्याण पर आक्रमण कर दिया। राज्यपाल की अनुपस्थिति में रक्षा का कोई साधन नहीं था। निपुण मावलों का दूसरा दल इसी समय सखो कृष्ण लोहोकरे के नेतृत्व में पड़ौस में ही भिवण्डी पर टूट पड़ा। शिवाजी ने कल्याण और भिवण्डी दोनों स्थानों पर सबल रक्षा-दल नियुक्त कर दिये और बीजापुर के प्रतिरोध का सामना करने के लिए तैयार हो गये। इसके बाद उन्होंने कल्याण के बन्दरगाह पर रक्षा-पंक्ति का निर्माण किया और माहुली तथा कल्याण के उत्तर और दक्षिण में स्थित गढ़ों को हस्तगत कर लिया। चौल, तले, घोसले, राजमची, लोहगढ़, कंगोरी, तुंगतिकोना—ये सब एक के बाद एक थोड़े ही समय में हस्तगत कर लिये गये। इनकी दृढ़ किलेबन्दी कर दी गई। इस प्रकार एक वर्ष के अन्दर ही शिवाजी की छोटी-सी रियासत विस्तार में दूनी हो गई तथा मूल्य और साधनों की दृष्टि से इससे भी अधिक हो गई। इस प्रकार अक्टूबर १६५७ ई० के अन्त तक उत्तर कोंकण का सारा प्रान्त शिवाजी के अधिकार में आ गया। प्रबल और जनहितकारी शासन-व्यवस्था करने में उन्होंने देर नहीं की। इस प्रकार पहले के कुशासन की तुलना में जनता शीघ्र ही परिवर्तन के सुखद परिणामों का अनुभव करने लगी। शिवाजी ने आबाजी सोनदेव को कल्याण प्रान्त का प्रथम राज्यपाल नियुक्त किया। इस नवीन मराठा पड़ौसी के कारण पुर्तगाली अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठे।

कल्याण पर किये गये धावे से सम्बन्धित एक प्रचलित कथा के कारण शिवाजी के चरित्र और उच्च नैतिकता के सम्बन्ध में चारों ओर गीत गाये जाने लगे। कल्याण के बीजापुरी राज्यपाल मुल्ला अहमद ने अपना परिवार वहीं छोड़ दिया था जिसमें उसकी नवयुवती एवं अपरिमेय सुन्दरी पुत्र-वधू भी थी। वह आबाजी सोनदेव के हाथ पड़ गई। यह सोचकर कि उसके नवयुवक स्वामी इस उपहार को स्वीकार कर लेंगे, आबाजी ने उसे आवश्यक सशस्त्र रक्षक दल के साथ पूना भेज दिया। परन्तु शिवाजी ने, जो प्रत्येक

स्त्री के सतीत्व को अपनी माता के सतीत्व के समान ही पवित्र समझते थे, महिला के आगमन पर कहा, "आह ! कितना अच्छा होता यदि मेरी माता आपके समान ही सुन्दर होती" और बन्दी किये जाने के लिए तुरन्त क्षमा-याचना कर उसके घर वापस भेज दिया। साथ ही, उसी समय शिवाजी ने आबाजी के पास अपनी अत्यन्त अप्रसन्नता का सन्देश भेजा और अपने अधिकारियों को कठोर चेतावनी दी कि वे भविष्य में इस प्रकार के क्रूर कृत्य न करें।

कल्याण की विजय से शिवाजी का प्रभाव एक त्रिभुजाकार क्षेत्र पर स्थापित हो गया, जिसका आधार वसई से राजापुर तक समुद्र-तट की रेखा थी और जिसकी दोनों भुजाएँ इन स्थानों से चलकर इन्दापुर पर मिल जाती थीं। उन्होंने इस प्रदेश में बहुत से गढ़ों को जीत लिया जिनमें पनवेल के समीप प्रबलगढ़ था। यह गढ़ एक उच्च बीजापुरी सैनिक केसरीसिंह के अधिकार में था। वह एक युद्ध में मारा गया। इस पर शिवाजी स्वयं गढ़ पर गये। उन्हें मोहरों, होनों और सोने की छड़ों से भरे हुए बर्तन का गुप्त कोष एक विशेष स्थान पर मिला। केसरीसिंह की माता और दो बच्चे उसी समय पकड़ लिये गये जो शिवाजी के भय से छिप गये थे। शिवाजी महिला के पास गये और उसे साष्टांग प्रणाम किया जैसे कि वह उनकी ही माता हो। उसकी सवारी के लिए पालकी दी और अपने रक्षा-दल के साथ उसे उसके जन्म-स्थान देवलगाँव भेज दिया। गढ़ की रक्षा में मारे गये केसरीसिंह और अन्य सैनिकों के शवों का उचित सम्मान से दाह-संस्कार कर दिया गया। पराजित शत्रु के प्रति इस बर्त्ताव से उदार शासक के रूप में शिवाजी का यश दूर-दूर तक फैल गया।

उत्तर कोंकण के जिले से शिवाजी तुरन्त चिपलूण होकर ठीक राजापुर तक दक्षिण में बढ़ गये। इसके भी आगे वे सोंधा तक गये। यात्रा में गुजरने वाले प्रदेश की रक्षात्मक और आर्थिक योग्यता का वह निरीक्षण करते जाते थे। अपना भ्रमण समाप्त कर वे अपने मुख्य स्थान राजगढ़ वापस आ गये। ऐसा ज्ञात होता है कि इस निरीक्षण के पश्चात् उन्होंने पश्चिमी समुद्र-तट को अपने भविष्य के युद्धों का

अत्यन्त उपयोगी आधार बनाने का निर्णय किया। उनकी दृष्टि बाज़ के समान तीक्ष्ण थी। वे परिस्थितियों, लोगों के चरित्रों और वस्तुओं का मूल्यांकन कर लेते थे और अपने प्रयोजन के पूर्ण उपयुक्त योजना बना लेते थे।

४. **प्रशासकीय कार्य**—विजय और प्रसार की अपनी योजनाओं में शिवाजी इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि उनका शासन अधीन जनता के लिए प्रिय और हितकारी हो। इसके लिए उनके साधन थे समान और अविलम्ब न्याय, जीवन में अच्छे से अच्छे कार्य करने के तरीके और दरिद्रों के दुःखों में सहायता। उन्होंने मनमानी लूट और शोषण का कठोरता से दमन किया। अपनी प्रजा की सामर्थ्य का अपनी सेवा में पूरा उपयोग किया जिसे खोज निकालने की उनमें जन्मजात प्रतिभा थी। उनके सभासद नामक दरबारी ने लिखा है, "जनता तभी सुखी होती है जब उसे धन प्राप्त होता है। किलों की शृङ्खला से देश पर नियन्त्रण हो सकता है और इस प्रकार राज्य का निर्माण होता है। दक्षिण की रक्षा की सर्वोत्तम पंक्ति सह्याद्रि की पर्वतमाला है जिसके निवासी मूसलाधार वर्षा में, गहन जंगलों में और कठिन दर्रों में पहाड़ियों पर चढ़ने में निपुण हैं। देशमुखों और देशपाण्डों में से शिवाजी ने अपने सहायक मावले चुने और उन्हें सम्मानित पदों पर पहुँचा दिया। स्थानीय सम्बन्धों से लाभ उठाकर शिवाजी किलों को हस्तगत करने की बातचीत चलाते तथा कभी-कभी रिश्वत का लालच देकर अथवा रक्षकों के परस्पर कलह से लाभ उठाकर अपना लक्ष्य सिद्ध करते थे। अधिकतर दाँव-पेचों का उपयोग किया जाता था; जैसे विक्रयार्थ घास के गट्ठर लादकर शिवाजी के सैनिक किलों में प्रवेश करते थे और इन गट्ठरों में अस्त्र-शस्त्र छिपे रहते थे। इस ढंग से अनेक किलों पर सरलता से अधिकार हो गया और वे विश्वासपात्र रक्षकों को सौंप दिये गये। शिवाजी अपने कर्मचारियों के प्रति बहुत उदार थे और सदैव उनका हित करते थे। उनके पास हजारों लोग एकत्रित हो गये। ईमानदार कार्यकर्ताओं को खूब पुरस्कार मिलते थे। जो बेईमान और धोखेबाज

सिद्ध होते उन्हें सावधानी से निकाल दिया जाता और दण्ड मिलता। इस प्रकार उनके और मुसलमानों के शासन के ढंग में अन्तर शीघ्र ही स्पष्ट हो गया। मुसलमानों के शासन में धनी व्यक्ति दिन-दहाड़े लूट लिये जाते थे जबकि शिवाजी उनकी हानि से रक्षा करते थे।"

प्रशासकीय कार्य बढ़ने के साथ-साथ नई नियुक्तियाँ होती गईं। कल्याण के राज्यपाल आबाजी का भाई नीलो सोनदेव मजुमदार नियुक्त किया गया। आनाजी दत्तो सुरनिस या सचिव बनाया गया। गंगू मंगाजी वाकेनवीस नियुक्त हुआ। रिसाले के सरनौबत मानकोजी दहातोंडे का देहान्त हो गया और उसकी जगह पर नेताजी पाल्कर की नियुक्ति हुई। सब से बड़ी बात यह हुई कि चिटनिस के पद के लिए अत्यन्त वफादार और योग्य सचिव बालाजी आवजी की सेवाएँ प्राप्त कर ली गईं। बालाजी वास्तव में दुर्लभ व्यक्ति था। अब शिवाजी को अपनी आज्ञाओं के अविलम्ब और उचित प्रेषण के लिए एक विश्वासपात्र और स्वामिभक्त व्यक्ति मिल गया। उसका पिता आवजी चित्रे और उसके भाई पश्चिमी समुद्र-तट पर जंजीरा के सिद्दियों के यहाँ उच्च पदों पर नियुक्त थे। कर्तव्य-पालन में तथा-कथित अवहेलना के कारण सिद्दियों ने इनको तिरस्कृत कर कठोर दण्ड दिया था। आवजी के भाई को सिद्दियों ने मार डाला और उसकी धर्मपत्नी गुलबाई और बच्चे मस्कत में निर्वासित कर दिये गये। गुलबाई चतुर महिला थी। जब वह बच्चों सहित जहाज पर जंजीरा से मस्कत जा रही थी तो उसने कप्तान को रिश्वत देकर यह प्रबन्ध कर लिया कि उसको राजापुर में उतार दिया जाय। यहाँ उसका भाई विसाजी शंकर एक सम्मानित व्यापारी था। उसने गुलबाई और उसके बच्चों को मुँहमाँगे दाम देकर दासों के रूप में ले लिया। गुलबाई के तीन पुत्र थे—बालाजी जो युवक हो चला था, एवं दो अल्पवयस्क बालक चिमाजी और श्यामजी। बालाजी की लिखावट अच्छी थी। उसके मामा ने उसको पढ़ा-लिखाकर अपने व्यापार में लगा लिया। तीनों भाइयों और उनकी माता ने अपने नाम बदल लिये और राजापुर में गुप्त रूप से रहने लगे ताकि

सिद्दियों को उनका पता न चल जाए। जब १६५८ ई० के लगभग शिवाजी राजापुर गये तो बालाजी ने उनसे मिलने का उपाय ढूँढ़ निकाला, उनको अपनी विपत्ति सुनाई और सिद्दियों के क्रोध से रक्षा करने की प्रार्थना की। हिन्दू-हित की सेवा का अवसर देखकर शिवाजी ने अविलम्ब प्रार्थना स्वीकार कर ली और सारे परिवार को अपने रक्षण में ले लिया। इस उपकार का बदला उन्होंने कई पीढ़ियों तक सच्ची सेवा करके चुकाया।

यदि एक बार शिवाजी की नीति के सिद्धान्त समझ लिए जाएँ तो कोई न्यायप्रिय आलोचक शिवाजी पर यह लाँछन नहीं लगा सकेगा कि उन्होंने मुसलमान जाति के विरुद्ध निरंकुश कदम उठाया। उनके लिए आदिलशाह और दिल्ली का सम्राट दोनों समान थे। हिन्दुओं की अपनी ही भूमि में सुरक्षा करना और अपने धर्म पर अपने ही ढंग से आचरण करने की पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना शिवाजी के उद्देश्य थे और जब इनमें बाधा पड़ती थी तो वे पूरा बदला चुकाते थे। परन्तु इतने पर भी खुले संघर्ष में उतरने के पूर्व वे समस्त शान्तिमय उपायों से प्रयास कर लेते थे। आरम्भ में वे औरंगजेब के पूर्णरूपेण मित्र थे। वास्तव में शिवाजी के प्रारम्भिक दिनों में औरंगजेब का रूप अज्ञात था। इस बात का किसी को अनुमान नहीं था कि वह एक दिन सम्राट होगा और इतना धर्मान्ध होगा कि हिन्दुओं और उनके धर्म को अपने मनमाने ढंग से समाप्त करने का प्रयास करेगा। १६५६ ई० में अकारण ही उसने बीजापुर के विरुद्ध और १६५७ ई० में गोलकुण्डा के विरुद्ध चढ़ाई कर दी और दक्षिण की सल्तनतों के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप करके सर्वप्रथम कुख्याति प्राप्त कर ली। अगले वर्ष १६५८ ई० में उसका चरित्र नग्न रूप में स्पष्ट हो गया, जब उसने अपने पिता को कारागार में डाल दिया, अपने भाइयों को धोखा दिया, स्वयं राजगद्दी को हस्तगत कर लिया और अपने ज्येष्ठ भाई दाराशिकोह पर अत्याचार किये। इन घटनाओं से देश में सनसनी फैल गई, यहाँ तक कि भविष्य में शिवाजी ने अपने समस्त उपलब्ध साधनों से औरंगजेब की क्रूर

नीति का सामना करना अपना कर्तव्य मान लिया। सूरत की लूट इसका एक उदाहरण है। परन्तु १६५६ ई० तक औरंगजेब से शिवाजी के सम्बन्ध किसी प्रकार शत्रुता के नहीं थे। हमें इतिहास का अध्ययन और अनुसरण कालक्रम से करना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि प्रारम्भिक घटनाओं के अध्ययन के समय निर्णय को पीछे की घटनाएँ प्रभावित कर दें।

मुहम्मद आदिलशाह के देहान्त के बाद जैसे ही औरंगजेब ने बीजापुर के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व किया, शिवाजी ने अपने विदेशमन्त्री सोनोपन्त को औरंगजेब के पास यह सन्देश देकर भेजा कि वह बीजापुर के विरुद्ध मुगलों का साथ देने के लिए तैयार हैं, यदि कोंकण के प्रदेश को उसमें स्थित गढ़ों सहित स्वराज्य में मिला लेने की अनुमति दे दी जाये। उनकी प्रार्थना स्वीकार होने पर सोनोपन्त वापस आ गया और शिवाजी ने तुरन्त उन प्रदेशों पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने ठीक जाँचा कि बीजापुर की समाप्ति पर दूरस्थ मुगलों की अपेक्षा मराठों का अपनी जन्मभूमि पर दावा अधिक और जोरदार है। शिवाजी ने जुन्नार और अहमदनगर के मुगल-अधिकृत प्रदेशों को भी न छोड़ा। वे पूना के अति समीप थे और स्वरूप में मराठी ही थे। १६५७ ई० में शिवाजी ने अपने जन्म-स्थान जुन्नार पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया और सोना, गहने और घोड़े उठा ले गये। उनकी सेनाएँ अहमदनगर की ओर बढ़ीं और बीच के प्रदेश को लूटती हुई उस प्राचीन राजधानी के फाटक तक जा पहुँचीं। अहमदनगर के बलिष्ठ रक्षा-दल ने नगर को बचा लिया। शिवाजो की ओर से नई छेड़छाड़ को रोकने के लिए औरंगजेब ने चटपट उपाय किये। इस डर से कि भविष्य में कुछ दण्ड न दे, शिवाजी ने अपने राजदूत कृष्णाजी भास्कर को औरंगजेब के पास भेजा ताकि पुराने कृत्यों के बारे में सफाई दे दी जाय और उत्तर कोंकण के बीजापुरी जिलों पर उनका अधिकार भी मान लिया जाय।

शिवाजी के सौभाग्य से औरंगजेब अपने पिता के ४ सितम्बर, १६३६ लकवे के कारण अत्यधिक बीमार होने की खबर से इस समय

अति व्याकुल हो गया था। अपनी सारी सेना के साथ जो वह इकट्ठी कर सका, वह तुरन्त उत्तर जाकर सिंहासन के लिये संघर्ष करने को तैयार हो गया। अपने पिता की बीमारी के समाचार को उसने अत्यन्त गुप्त रखा और बीजापुर के अधिकारियों को कड़ी चेतावनी दी कि अपनी सारी शक्ति से शिवाजी पर नियन्त्रण रखें। उनसे कहा गया कि यदि शिवाजी की सेवा आवश्यक ही हो तो उसके पिता शाहजी के समान उसे दूर देश कर्नाटक में कार्य दिया जाय।

२५ जनवरी, १६५८ को औरंगजेब औरंगाबाद से चल दिया और अगली जुलाई में उसने अपने को दिल्ली में सम्राट घोषित कर दिया। शाहजहाँ आगरा के किले में बन्दी बना लिया गया। वहाँ अपने पिता के जीवन-काल में औरंगजेब कभी नहीं गया। २२ जनवरी, १६६६ को जब शाहजहाँ का देहान्त हो गया, औरंगजेब ने आगरा में प्रवेश किया और अगली मई में पहली बार मयूर सिंहासन पर बैठा। इसी समय शिवाजी से उसकी प्रसिद्ध भेंट हुई। जैसे ही शाही सत्ता औरंगजेब को प्राप्त हुई, उसने अपने मामा शाइस्ताखाँ को, जो विश्वस्त और वीर सेनापति था, दक्षिण की सरकार चलाने के लिए नियुक्त कर दिया। उसको विशेष आदेश दिया गया कि वह शिवाजी को उपद्रव करने से रोके। जनवरी १६६० ई० में शाइस्ताखाँ औरंगाबाद पहुँचा। १६५८ ई० के बाद शिवाजी की हलचलों को समझने के लिए उत्तर की इन घटनाओं और उनकी तिथियों को विशेष रूप से स्मरण रखना आवश्यक है।

हमने पहले भी देख लिया है कि १६५७ ई० के अन्त में और १६५८ ई० में पूरे वर्ष भर शिवाजी उत्तर और दक्षिण कोंकण में अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने में लगे रहे। यह क्षेत्र उनकी पैतृक जागीर के सन्निकट घाटों के ऊपर था, जिसे उन्होंने स्वतन्त्र राज्य का रूप दे दिया था। सह्याद्रि पर्वतमाला में बहुत से टेढ़े-मेढ़े दर्रे और घाटियाँ हैं जिनमें होकर ऊपर के प्रदेश से समुद्र-तट तक शिवाजी निर्विघ्न और सुरक्षित यातायात सम्बन्ध बनाये रखते थे। चूँकि उस समय इन दर्रों का ठीक पता न था और न इनका उपयोग बड़ी सेनाएँ करती

थीं, अतएव शिवाजी अपने शत्रुओं की ओर से निर्द्वन्द्व होकर अपना कार्य करते रहे। उस समय उत्तर कोंकण का प्रदेश दक्षिण कोंकण से एक पहाड़ी नाले द्वारा विभाजित होता था जिसका नाम था वसिष्ठी नदी। यह चिपलूण से दभोल तक बहती है। इस नदी के उत्तर में वसई तक का प्रदेश अहमदनगर के पुराने राज्य के अन्तर्गत था और १६३६ ई० की सन्धि के फलस्वरूप आदिलशाह को मिल गया था। वसिष्ठी नदी के दक्षिण का प्रदेश पहले ही से बीजापुर के अधिकार में था और रुस्तमेजमाँ को दी हुई जागीर का भाग था। कल्याण से विंगुर्ला तक के समस्त तटवर्ती प्रदेश में, जिसके दभोल और विजयदुर्ग किलेबन्द अड्डे थे, शिवाजी की प्रतिष्ठा बढ़ती ही जा रही थी। इससे रुस्तमेजमाँ और अन्य शक्तियों की ईर्ष्या भड़कने लगी, जिनमें जंजीरा के सिद्दी और वे योरोपियन व्यापारी भी सम्मिलित थे जिनके कारखाने समुद्र-तट पर थे।

तल, घोसल और राइरी के अपने स्थानों को देकर सिद्दियों ने शिवाजी की मित्रता प्राप्त कर ली। शिवाजी ने स्वयं उन स्थानों पर १६५८ ई० के आरम्भ में अपने दक्षिण के भ्रमण के समय अधिकार कर लिया। इसके बाद शिवाजी ने हरेश्वर के मन्दिर के दर्शन किये और राजापुर की ओर चल दिये, ताकि कुदाल के सावन्त की सहायता करें, जिस पर १६५८ ई० के ग्रीष्म में रुस्तमेजमाँ ने आक्रमण कर दिया था। यह सावन्त भोसले वंश की सन्तान था और संकट-ग्रस्त होने पर उसने शिवाजी से सहायता की याचना की थी। इसके बाद शिवाजी ने स्वयं दक्षिण कोंकण के सारे प्रदेश का भ्रमण किया और अपना निवास-स्थान राजापुर में बनाया। शिवाजी और सावन्त में मैत्रीपूर्ण वार्ता हुई। सावन्त का सन्देशवाहक पीताम्बर शेन्वी शिवाजी से मिला और ५ मार्च, १६५९ को पारस्परिक मैत्री और सहायता के हितार्थ नियमित सन्धि हो गई। इसके बाद सावन्त छत्रपतियों का वफादार मित्र रहा यद्यपि कभी-कभी बाह्य दबावों के कारण उनके सम्बन्धों में बाधा उपस्थित हो जाती थी। इस सन्धि-चर्चा में शिवाजी कुदाल गये जहाँ पर यूरोप की बनी एक

सुन्दर तलवार उन्होंने ३०० होन में खरीदी और उसका नाम 'भवानी' रखा। बहुत से युद्धों में उन्होंने इसका सफल उपयोग किया। इसी तलवार से कुछ महीनों बाद उन्होंने अफजलखाँ का वध किया।[४]

शिवाजी के ये बहुमुखी कार्यकलाप उनकी अद्भुत योग्यता प्रकट करते हैं। उनके सतर्क नेत्र सब जगह, समीप और दूर दौड़ते रहते थे। अपने जीवन-वृत्त के प्रारम्भ में ही उन्होंने एक सबल नौ-सैना की आवश्यकता का अनुभव कर लिया, जिसके ठहरने के उपयुक्त अड्डे हों और जो उनके नव-निर्मित राज्य की रक्षा कर सकें। उनका प्रथम नाविक किला विजयदुर्ग था जिसके निर्माण का आरम्भ १६५३ ई० में हुआ और दूसरा सुवर्ण दुर्ग था जिसका निर्माण १६६० ई० में हुआ। सिन्धु दुर्ग या मलवन १६६४ ई० में बना। अन्तिम महान् नाविक अड्डा कोलाबा था जिसे उन्होंने १६८० ई० में अपनी मृत्यु के ठीक पहले ही बनवाया था। इससे सिद्ध होता है कि शिवाजी नौ-सैना के गठन के प्रयास में सतत संलग्न रहे और वे समझते थे कि राज्य की रक्षा और प्रसार का यह सर्वोत्तम और सर्वोपयोगी साधन है। डा० सेन का कहना है[५]—

"कोंकण का समुद्र-तट विविध मोड़ों के कारण कटा-फटा होने से जल-पोतों के लिए उत्तम शरण-स्थान का काम देता था और तट के समीप के चट्टानी टापू समुद्री अड्डों के रूप में अजेय स्थान बने हुए थे। कोंकण पर निर्द्वन्द्व अधिकार होते ही शिवाजी ने शीघ्र ही एक सबल जंगी बेड़े की आवश्यकता का अनुभव किया। राज्य की शान्ति और सम्पन्नता के लिए यह आवश्यक था। उनका यह उद्देश्य न था कि वे संसार के विरुद्ध समुद्र पर अधिकार करें परन्तु इस प्रभुता में वे अपने पड़ौसियों के साथ हिस्सा बटाने को उद्यत थे। १६ अगस्त, १६५९ को गोआ के राज्यपाल ने पुर्तगाल के राजा को लिखा—वसई और चौल के समीपी प्रदेशों को शिवाजी

---

४ यह तलवार अब भी उनके वंशजों के पास सतारा में है।

५ "मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ द मराठाज," पृ० १७३।

ने अपने अधिकार में कर लिया है और भिवण्डी, कल्याण और पनवेल में उसने कुछ युद्धपोत तैयार कर लिये हैं।" इस महत्त्वपूर्ण विषय के प्रति मुगल सम्राटों ने जबर्दस्त उपेक्षा बरती। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के कारखानों के लिए किले-बन्दो करके अपनी दूरदर्शिता प्रदर्शित की।

कोंकण से हटकर अब हमें पहाड़ी प्रदेशों की ओर ध्यान देना है।

५. **अफजलखाँ का अन्त**—यह कहना कठिन है कि मराठा भू-भाग में एक स्वतन्त्र राज्य के निर्माण के लिये शिवाजी को अपने प्रयास में निर्विघ्न गति की कहाँ तक आशा थी, परन्तु वे किसी भी परिणाम के लिए सदैव तैयार थे। बीजापुर राज्य से चाहे वह कितना ही ह्रासोन्मुख हों, यह आशा रखना व्यर्थ था कि वह मराठा प्रदेश को इस नवागन्तुक से बचाने का प्रयत्न न करके उस पर अपने अधिकार को छोड़ देगा, जिसे शताब्दियों के वीरतापूर्ण प्रयास से स्थापित किया गया था। वास्तव में बीजापुर सरकार शोचनीय अवस्था में थी, कुछ मुगलों के आक्रमण के कारण और कुछ अपनी जन्मभूमि में शिवाजी के आकस्मिक उत्थान के कारण। उस समय मुहम्मदशाह की रानी बड़ी साहिबा अपने अल्पवयस्क पुत्र अली के नाम से राज्य-कार्य सँभाले हुए थी। कुछ समय पहले शाहजी से कहा गया था कि वे अपने पुत्र को आदिलशाही प्रदेश में प्रवेश करने से रोकें। उन्होंने उत्तर दिया कि वे अपने पुत्र के किसी भी आचरण के लिए उत्तरदायी नहीं हैं और बीजापुर की सरकार अपनी इच्छानुसार उनके विरुद्ध कार्यवाही कर सकती है। बीजापुर की सत्ता का इस समय वास्तव में ह्रास हो रहा था और उसके मुस्लिम सामन्त भी विद्रोही हो गये थे। इस संकट-काल में अकेले शाहजी हो अपने स्वामी के साथ थे। यह बात हाल ही में प्राप्त हुए एक फरमान से पूर्णतः सिद्ध है जो २७ मई, १६५८ को शाहजी को लिखा गया था। उसमें लिखा है—"हम आपके स्पष्टी-करण से सन्तुष्ट हैं कि आप अपने पुत्र को रोक नहीं सकते और न

उसके कार्यों के प्रति ही आप उत्तरदायी हैं। अतः हम बंगलौर की आपकी जागीर समस्त सम्मानों और उपाधियों सहित आपको पुनः वापस करते हैं, जो पहले आपके पास थी।"[६] यह राज्य-पत्र यह भी सिद्ध करता है कि बीजापुर की सरकार शिवाजी के आक्रमण के प्रति कितनी अशक्त थी। शिवाजी के ये आक्रमण दक्षिण में औरंगजेब के प्रस्थान के बाद बढ़ते ही गये। अन्य सामन्तों में से कोई भी शिवाजी को दण्ड देने की जिम्मेदारी लेने को उद्यत न था। इस असाध्य कार्य के लिए केवल अफ़जलखाँ ने अपने को प्रस्तुत किया।

शाहजी की गतिविधि के सम्बन्ध में अफ़जलखाँ का नाम कई बार पहले आ चुका है। कहा जाता था कि वह स्वर्गीय मुहम्मदशाह का अवैध पुत्र था। उसकी माता शाही रसोईघर में खाना पकाती थी। कर्नाटक के युद्धों में उसने ख्याति प्राप्त की थी। इस समय बीजापुर राज्य के टुकड़े हो गये थे, मराठा प्रदेश पर शिवाजी ने और कर्नाटक पर उनके पिता ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था। अतः शिवाजी का दमन करना बीजापुर के लिए जीवन-मरण का प्रश्न था। शाहजी और उनके पुत्रों से अफ़जलखाँ का पुराना वैर-भाव था। बीजापुर की साधन-शक्ति इस समय अल्प थी और यह अनुमान ठीक ही था कि उन दुर्गम प्रदेशों में, जहाँ उन्होंने अधिकार कर लिया था, शिवाजी का दमन करना सरल कार्य न था। अतः बीजापुर की रानी ने अफ़जलखाँ को यह गुप्त परामर्श दिया कि मित्रता का ढोंग रचकर या किसी दूसरे तरीके से शिवाजी के सन्देह को शान्त कर दे, ताकि उन्हें जीवित या मृत बन्दी बनाया जा सके। इस परामर्श की अफ़जलखाँ को आवश्यकता न थी। शिरा के कस्तूरीरंग नायक के विरुद्ध उसके विश्वासघातक आचरण की सर्वत्र निन्दा हो रही थी। अतः बड़े गर्व से उसने न्याय व अन्याय के सभी साधनों से शिवाजी को नीचा दिखाने का कार्य बिना परिणाम सोचे स्वीकार कर लिया।

जावली की विजय के बाद वाई के समीप अपनी स्थिति को सुदृढ़

---

६ "हाउस ऑफ शिवाजी", पृ० ८७। इस पत्र का पहले भी उल्लेख हो चुका है।

करने में शिवाजी व्यस्त थे। उन्होंने प्रतापगढ़ का निर्माण कर लिया था और यह माना जाता था कि उनका मुख्य निवास-स्थान वही है और वहीं पर उनके कोष और सामग्री हैं। वाई के जिले से अफजल खाँ भी सुपरिचित था क्योंकि वह इसका राज्यपाल रह चुका था। १२ हजार कुशल सैनिकों को लेकर सितम्बर १६५६ में उसने बीजापुर से प्रस्थान किया और पंढरपुर, महादेव पर्वतमाला और मलवदी होता हुआ वह रहिमतपुर पहुँच गया तथा अपने अभियान को निष्ठुर और प्रतिशोधक बनाने हेतु हिन्दू-मन्दिरों और मूर्तियों को अपवित्र कर जान-बूझकर एक निर्दयी धर्मान्ध व्यक्ति की भाँति आचरण किया। शिवाजी के प्रति घृणा के कारण खासतौर से उसने तुलजापुर और पंढरपुर के प्रसिद्ध मन्दिरों को तोड़ा। मलवदी में बजाजी निम्बालकर पर उसका क्रोध खासतौर से उबल पड़ा जिसे शिवाजी और उनकी माता की प्रेरणा पर पुनः हिन्दू बना लिया गया था।

राजगढ़ से शिवाजी अफजलखाँ की प्रगति पर पूरी निगाह रखे हुए थे। उन्होंने शीघ्र ही निश्चय कर लिया कि वाई और जावली के समीप उससे युद्ध करेंगे, जहाँ ऊँचे पर्वत और दुर्गम घाटियाँ थीं। महाबलेश्वर के पश्चिम में पारघाट के पर्वतीय दर्रे के ऊपर प्रतापगढ़ में अपनी माता के साथ उन्होंने अपना निवास-स्थान बना लिया। जब खान को मालूम हुआ कि शिवाजी प्रतापगढ़ में हैं तो वह सीधे वाई की ओर उनसे युद्ध करने के लिए रवाना हुआ और अक्टूबर में वहीं उसने अपनी छावनी डाल दी। यह जगह प्रतापगढ़ के करीब १६ मील पूर्व में थी और उनके बीच में महाबलेश्वर का ऊँचा पठार था। खान की बर्बरता और उसके अकारण अत्याचार से जन-साधारण के चित्त में इतनी घृणा और क्रोध उत्पन्न हो गया कि उसने स्थानीय लोगों की सहानुभूति और सहायता खो दी। अक्टूबर के मध्य तक दोनों प्रतिद्वन्द्वी आमने-सामने आ गये—एक वाई में पूर्व की ओर और दूसरा प्रतापगढ़ में पश्चिम की ओर तथा दोनों एक दूसरे को पराजित करने के सर्वोत्तम साधनों पर विचार करने लगे।

प्रतापगढ़ का किला एक दुर्गम ऊँची और पतली पहाड़ी की चोटी पर स्थित था, जो खुली लड़ाई के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त था और ख़ान ऐसा ही युद्ध लड़ सकता था। उसके लिए यह सम्भव न था कि अपनी विशाल सेना को एक साथ गढ़ के समीप हटाकर ले जाये। शिवाजी पूरी तरह बचाव में ही रहे और चील की भाँति दृढ़ता से पहाड़ी की चोटी पर डटे हुए उपयुक्त अवसर की टोह में रहे कि मौका पाकर शिकार पर टूट पड़ें। दूसरी ओर खान ऐसे उपाय निकालने की तदबीर में था जिससे शिवाजी को अपने स्थान से व्यक्तिगत सम्मिलन के लिए बाहर निकलवा ले, ताकि उसका शत्रु उसके पंजे में फँस जाये और खुल्लमखुल्ला लड़ने की जरूरत भी न पड़े। इस प्रकार व्यक्तिगत सम्मिलन दोनों का अनिवार्य उद्देश्य भी गया। शिवाजी के लिए इसको टालना कठिन था, अतः यह व्यक्तिगत सम्मिलन किस प्रकार सफल हो, खान और शिवाजी दोनों के सम्मुख यही एकमात्र गम्भीर समस्या थी। खान को अपनी विशाल सेना को बिना किसी परिणाम के अनिश्चित काल के लिए सुसज्जित रखना व्यर्थ लगने लगा, शिवाजी के लिए भी यह असीम तनाव असहनीय हो गया। शिवाजी का निपुण मस्तिष्क ही इस परिस्थिति को भेद सकता था क्योंकि कोई उपयुक्त बाह्य साधन सुलभ न था।

चूँकि शिवाजी सर्वथा बचाव के पक्ष को अपनायें रहे और उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में रहे, अतः खान इस बात के लिए अधीर हो उठा कि आपसी समझौते की व्यवस्था करने का बहाना बनाकर व्यक्तिगत भेंट के लिए शिवाजी को प्रलोभन दे। इस कार्य के लिए उसे एक उपयुक्त प्रतिनिधि के चयन की आवश्यकता थी, जो शिवाजी को जानता हो और साथ ही पूरी वफादारी से खान को व्यक्तिगत सम्मिलन के प्रबन्ध में सहायता दे। वाई के कुलकर्णी कृष्णाजी भास्कर को, जिसके वंशज अब भी वहाँ निवास करते हैं और जो हर प्रकार से बीजापुर सरकार का ऋणी था, अफ़जलखाँ ने इस कार्य के लिये राजी किया। उसे यह कार्य सौंपा गया कि वह

शिवाजी को विश्वास दिला दे कि उनके तथा उनके परिवार के प्रति ख़ान के बड़े आदर और मैत्री के भाव हैं और उन्हें वाई में व्यक्तिगत विचार-विनिमय के लिए ले आये। यह सुझाव भी दिया गया कि यदि शिवाजी ने स्वेच्छा से शाह के अधिकार को मान लिया तो उनका हार्दिक स्वागत होगा और अपने पिता की भाँति आदिलशाही सेवा में उन्हें भी उच्च स्थान दिया जाएगा। यह सम्भव है कि उनकी महत्वाकांक्षाओं और बीजापुर सरकार के हितों का दोनों पक्षों की स्वीकृति से सामंजस्य हो जाय। इससे खान की यह चाल स्पष्ट थी कि शिवाजी को धोखे से मुस्लिम शिविर में ले आया जाय क्योंकि यहाँ उन्हें गिरफ्तार कर बीजापुर ले जाने की सरलता से तरकीब निकल आएगी अथवा किसी अन्य प्रकार से उनका नाश कर दिया जायगा। शिवाजी जैसा तीक्ष्ण-बुद्धि व्यक्ति इस चाल को भाँप गया क्योंकि खान का दृष्टिकोण, उसके वर्तमान आश्वासन और उसका भूतकालीन आचरण सब को ज्ञात थे।

इस प्रकार ख़ान की ओर से कृष्णाजी पन्त शिवाजी से मिलने प्रताप गढ़ में आया और उसने अपने कार्य का सम्पादन बड़ी वफादारी और चतुराई से किया। शिवाजी समझ गये कि उनके लिए जाल बिछाया जा रहा है परन्तु उन्होंने अपनी ओर से किसी प्रकार की अधीरता या कटुता प्रकट न होने दी और हार्दिक अधीनता प्रकट की। उन्होंने खान के प्रति पितृ-तुल्य श्रद्धा व्यक्त की और प्रार्थना की कि अपने अविवेकपूर्ण आचरण के कारण जिस दुरवस्था में वे फँस गये हैं उसमें से खान उन्हें निकाल लें। परन्तु शिवाजी इस विषय को समाप्त करने के लिए आतुर न थे। उन्होंने इसमें बुद्धिमानी समझी कि वार्ता को लम्बा बनाया जाये। खान की तैयारियों का सामना करने में अपनी अक्षमता व्यक्त करते हुए खान के शिविर में जाने की बात के प्रति उन्होंने असीम भय प्रकट किया।

खान के दूत कृष्णाजी भास्कर की सुरक्षा और आराम का शिवाजी ने शानदार प्रबन्ध किया और उसके साथ लम्बी वार्ता चलाई। उन्होंने ब्राह्मण की धार्मिक वृत्ति को जगाने का यत्न किया कि वह

हिन्दू अभ्युत्थान के महान् कार्य में जिसे शिवाजी ने उठाया था, सहायता दे। उन्होंने ख़ान के षड़यन्त्र को असफल करने में उसकी सहायता माँगी। यद्यपि कृष्णाजी को शिवाजी की श्रेष्ठ भावनाओं का यकीन हो गया किन्तु वह अपने स्वामी की सेवा में अडिग बना रहा। उसे ख़ान के आन्तरिक उद्देश्यों का पता न था। प्रताप गढ़ में उसकी अच्छी आवभगत हुई थी और उसे इस बात के लिए राज़ी कर लिया गया कि वह खान को यह समझा देगा कि शिवाजी इतने बड़े दल से युद्ध करने में असमर्थता स्वीकार करता है। वह अपनी उन मूर्खताओं के लिए अफसोस प्रकट करता है और यदि खान उसे क्षमा कर उसकी जान बख्श देगा तो वह उस समस्त प्रदेश को जिस पर उसने अधिकार कर लिया है तुरन्त ही वापिस कर देगा। इन आश्वासनों को लेकर कृष्णाजी भास्कर वाई को वापस आया। उसके साथ शिवाजी का दूत पन्ताजी गोपीनाथ भी था जो स्थिति का पूर्व-स्पष्टीकरण करने और दोनों प्रमुख व्यक्तियों के व्यक्तिगत सम्मिलन के सम्बन्ध में पूर्ण व्यौरा तैयार करने आया था। पन्ताजी पन्त के द्वारा शिवाजी ने खान की चाल को पलट दिया। पन्ताजी ने आग्रह किया कि यदि खान के प्रेम और मित्रता के आश्वासन सत्य हैं तो वह शिवाजी का विश्वास क्यों नहीं करता और इसी प्रकार वह खुद निधड़क आकर प्रताप गढ़ में उनसे क्यों नहीं मिल लेता। उस स्थान पर दोनों ही पक्षों के लिए सैन्य-संचालन असम्भव है। पन्ताजी गोपीनाथ शिवाजी का परम अनुगामी था। चालाकी से बढ़ावा देकर और गुप्त हथकण्डों द्वारा रहस्योद्घाटन में वह निपुण था। उसके साथ शिवाजी का एक निपुण गुप्तचर विश्वासराव नानाजी नायक भी था जो फकीर के वेश में खान के शिविर में घूमता रहता था। वह भिक्षा माँगता, आशीर्वाद देता और बीजापुरी योजनाओं और प्रबन्धों के विषय में अमूल्य जानकारी एकत्रित करता था। इस प्रकार नित्य ही सन्देश और सन्देशवाहक वाई और प्रतापगढ़ के बीच में चलते रहे जिससे शिवाजी को परिस्थिति का पूर्ण विवरण प्राप्त होता रहा और इनकी सहायता से

उन्होंने अपने शत्रु को पराजित करने के लिए उपयुक्त योजनाएँ तैयार कर लीं।

खान को पूरा विश्वास हो गया कि वह बिना खुली लड़ाई के ही अपने उद्देश्य की सिद्धि कर लेगा। उस प्रदेश के बहुत से देशमुखों का नेता कान्होजी जेधे था। वे अफजलखाँ के विरुद्ध हो गये थे। केवल खोपड़े का देशमुख कान्होजी के विरुद्ध था। उसने प्रत्यक्ष रूप से अफजलखाँ का पक्ष अपनाया और प्रतिज्ञा की कि वह शिवाजी को पकड़ लायेगा।[७] इन परिस्थितियों में खान ने यही प्रयत्न शुरू कर दिये कि किसी प्रकार शिवाजी को गढ़ के बाहर ले आया जाय। जिले के सारे खुले स्थानों में उसने अपने सैनिकों को तितर-बितर कर दिया और आदेश दिया कि जैसे ही शिवाजी बाहर निकलने का साहस करे उसे तत्काल पकड़ लिया जाय। शिवाजी इन योजनाओं से पूर्णतया परिचित थे क्योंकि शत्रु की प्रत्येक गतिविधि का समाचार उन्हें समय पर मिल जाता था। उन्होंने अपने चुने हुए जत्थों को गुप्त गुफाओं में नियुक्त कर दिया था। इनकी जानकारी शत्रु को न थी और वे किसी भी आकस्मिक घटना के लिए तैयार थे। पन्ताजी गोपीनाथ ने अपने मिष्ट भाषण और उत्साही वक्तव्यों द्वारा खान को इस बात पर तैयार कर लिया कि वह प्रताप गढ़ के किले के नीचे शिवाजी से मिलने आये। खान को अपने शारीरिक बल का पूरा विश्वास था। पन्ताजी पन्त ने खान को विश्वास दिला दिया कि एक बार दोनों की भेंट हो जाने पर शिवाजी खान की इच्छानुसार ही अनुसरण करेंगे। इस प्रकार भेंट के बारे में निश्चय इस दशा में हुआ कि शिवाजी का पल्ला भारी था और खान का हल्का।

शिवाजी बड़े सूक्ष्मद्रष्टा थे, उन्होंने प्रत्येक आशंका को पहले ही देख लिया था और पहले से ही उसके लिये तैयार हो गये थे। उन्होंने मोर्चे की दीवार के नीचे मिलन का स्थान चुना, जहाँ पर इस समय एक शानदार मकबरा है जिसका निर्माण हाल ही में हैदराबाद के निजाम ने कराया है। जिस जगह दोनों भेंट करने वाले थे उस

---

७ राजवाड़े, १५, ३०२।

स्थान पर लकड़ी के काम का एक बहुत शोभायमान और आकर्षक कुंज बनाया गया। अपने अतिथियों के भोजन और आराम का शिवाजी ने बड़े पैमाने पर प्रबन्ध किया। पारघाट के नीचे से मिलन-स्थान तक पहुँचने के लिए घने जंगल से होकर केवल एक मार्ग साफ-सुथरा बना दिया गया और छोटे-मोटे रास्तों में कटे हुए पेड़ डाल कर उन्हें बन्द कर दिया गया। खान के लोग स्वतन्त्रता से आये, उन्होंने स्थान का निरीक्षण किया और उन्हें विश्वास हो गया कि सब प्रबन्ध ठीक हैं और सन्देह करने की कोई बात नहीं है। खान पन्द्रह सौ अंग-रक्षकों के साथ अपनी ही पालकी में अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित आने को था परन्तु इनके लिए पहाड़ी की चोटी पर पर्याप्त स्थान न था। वे इधर-उधर बिखरे हुए मौके की निगरानी करते रहे। इस विचार से कि कहीं शिवाजी डर न जाये और मिलने भी न आए, खान का दल न्यूनतम कर दिया गया और उसके साथ केवल दो सशस्त्र सेवक रह गये। इतने पर भी सारी योजना प्रकट रूप में खान की अपेक्षा शिवाजी के लिए अधिक भयावह थी। शिवाजी से खान २० वर्ष बड़ा भी था। शिवाजी तम्बू में कोई नौकर नहीं रख सकते थे और न प्रकट रूप में कोई अस्त्र-शस्त्र ही। दो ब्राह्मण राजदूत–खान की ओर से कृष्णाजी पन्त और शिवाजी की ओर से पन्ताजी पन्त—उपस्थित रहने को थे जो प्रारम्भिक परिचय और सम्भावित वार्ता में सहायता दें।

शिवाजी बुरे से बुरे परिणाम के लिए तैयार थे। यह इससे स्पष्ट है कि मार डाले जाने या वन्दी बना लिए जाने की अवस्था में उन्होंने अपने बाद सुचारु रूप से कार्य चलाने के लिए प्रबन्ध कर दिया था। जीजाबाई, अनाजी दत्तो और बालाजी आवजी ऊपर गढ़ में रह गये। अब शिवाजी ने प्रस्थान किया और अपने अतिथि से मिलने के लिए नीचे चल दिये।[८]

---

८ विदा के पूर्व शिवाजी का यह सन्देश था : "हमने आह्वान स्वीकार कर लिया है; ईश्वर की यही इच्छा है। यदि मैं इसमें हार जाऊँ तो तुम शत्रु का अन्त निडर होकर कर देना और राज्य की रक्षा करना।"

इस महत्त्वपूर्ण मिलन के लिए वृहस्पतिवार, १० नवम्बर, १६५९ ई० (मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी शक संवत् १५८१) निश्चित किया गया। सम्भवतया तीसरे पहर ३ और ४ के बीच का समय था। प्रातः शिवाजी ने देवी भवानी की दैनिक पूजा समाप्त की, कलेवा किया, वस्त्र धारण किये, जिसमें कोट के नीचे लोहे की जंजीरों का कवच था और पगड़ी के नीचे सिर पर धातु की टोपी थी और एक लम्बा, सफेद ढीला वस्त्र सब के ऊपर था जिसकी बाहें लम्बी और चौड़ी थीं और उनके अन्दर एक हाथ में कटार तथा दूसरे हाथ की अंगुलियों पर बाघनख थे।[९] तैयारी पूरी हो जाने पर उन्होंने अपनी माता का आशीर्वाद प्राप्त किया और चल दिये।

खान पहले ही आ गया था और अपनी जगह पर बैठा हुआ था। जब कृष्णाजी भास्कर ने शिवाजी के आगमन का समाचार दिया और जैसे ही शिवाजी अन्दर आए, खान उठ खड़ा हुआ और उन्हें छाती से लगा लिया। खान ने अपने बायें हाथ से शिवाजी को मजबूती से पकड़ लिया और ज्योंही कटार भोंकने को उद्यत हुआ, शिवाजी ने पूर्ण सूझ-बूझ से काम लिया और अपनी कटार और बाघनख खान के विशाल शरीर में भोंक दिए, उसकी आँतों को निकालकर बाहर पटक दिया और देखते-देखते उसे धराशायी कर दिया। यह सब कार्य एक क्षण में हो गया। खान के सेवक अपने स्वामी की रक्षा के लिए दौड़े परन्तु शिवाजी के अंगरक्षकों ने उन्हें काट डाला। दोनों ब्राह्मण कूटनीतिज्ञ स्तब्ध रह गये। कहारों ने खान के शरीर को पालकी में डाल लिया परन्तु जब वे उसको लेकर चलने लगे तो उन पर हमला हुआ और वे आहत कर दिये गये। शिवाजी के सैनिकों ने खान का सिर काट लिया और किले में ले जाकर सबसे ऊँची बुर्जी पर एक लम्बे खम्भे में लटकाकर प्रदर्शित किया। तुरन्त पूर्व-निश्चित संकेत दिया गया और छिपे हुए मराठा सैनिक अपने विवरों से दौड़ पड़े और उनके मार्ग में जो भी बीजापुरी सैनिक पड़ा, उसे उन्होंने काट डाला।

---

९ सम्भाजी ने अपने दानपत्र में लिखा है कि यह शस्त्र बिच्छू के समान था।

इस स्मरणीय अवसर पर जो घटना हुई, यह इसकी मुख्य रूप-रेखा है। समस्त देश में लोक-कल्पना की स्वच्छन्दता के कारण वीरकाव्यों और दन्तकथाओं में इतनी बातें जोड़ दी गई हैं कि सत्यासत्य का निर्णय कठिन हो गया है। यह घटना विगत ढाई सौ वर्षों से मराठा अन्तस्तल को आन्दोलित करती रही है।[१०]

जो लोग इस पहाड़ी के ऊपर अँधेरे टेढ़े-मेढ़े मार्गों वाले प्रदेश में गये हैं, वे उस विपत्ति को अच्छी तरह समझ सकते हैं जिसका सामना बीजापुरी सेना को करना पड़ा। इस सेना के सिपाही मार्गविहीन घाटी में बिखरे हुए थे। यह नवम्बर की छोटी सांझ थी। आकाश में अर्द्ध-चन्द्र धीरे-धीरे उदय हो रहा था और उसके प्रकाश में मुस्लिम सैनिक स्फूर्तियुक्त मराठा सिपाहियों की तलवार के शिकार हो रहे थे जो (मराठे सैनिक) मुस्लिम सिपाहियों को भागने से रोकने के लिए जंगल में से निकल पड़ते थे। यह युद्ध प्रतापगढ़ के युद्ध के नाम से पुकारा जा सकता है। नेताजी पालकर, मोरोपन्त पिंगले, कान्होजी जेधे और कुछ अन्य लोगों के नियुक्त स्थान और निश्चित कर्त्तव्य थे जो योजना के अनुसार पूर्व-निर्धारित थे और जो अक्षरशः कार्यान्वित किये गये। शिवाजी ने सब को कठोर निर्देश कर दिया था कि शत्रुओं में से जो अपनी इच्छा से आत्मसमर्पण कर दें, उनकी प्राण-रक्षा की

---

१० अफजलखाँ के सम्बन्ध में अज्ञानदास द्वारा लिखा गया और गाया गया वीरकाव्य अब छप गया है। इसमें लेखक कहता है कि उसे पूना से जीजाबाई ने प्रतापगढ़ बुलाया और अपने पुत्र की शानदार सफलता का गान करने का आदेश दिया। उस काल में ऐसी घटनाओं को प्रकाशित करने का यही एकमात्र साधन था। अज्ञानदास कहता है कि उसके द्वारा रचित वीरकाव्य से जीजाबाई और शिवाजी इतने प्रभावित हुए कि एक सेर सोने की शिला और एक घोड़ा पुरस्कार में दिया। यह काव्य आज भी हमारे हृदय को आन्दोलित कर देता है, इसमें कई बातों का विस्तार से वर्णन है जो सही मानी जा सकती हैं। रचयिता ने शिवाजी के लिए "छत्रपति" और "महाराज" शब्दों का प्रयोग किया है। वह वर्णन करता है कि शिवाजी ऐसे हैं कि उनके तालाब में सभी जीव शान्ति से पानी पी सकते हैं। अफजलखाँ पर उसने धर्मान्धता का आरोप लगाया है। एकवर्थ ने इसका एक पठनीय अँग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है।

जाय और जहाँ तक सम्भव हो रक्तपात न किया जाय। दूसरे दिन वाई स्थित खान के मुख्य शिविर पर शिवाजी ने आक्रमण किया, जहाँ पर सम्भवतः आधी से अधिक सेना के साथ उसका पुत्र फ़ज़लखाँ अधिकारी था। फ़ज़लखाँ पराजित हुआ और भागकर उसने अपनी प्राण-रक्षा की। अफजलखाँ के दो अन्य पुत्र, रुस्तमेजमाँ और कई अन्य विशिष्ट सामन्त बन्दी बना लिये गये और उनके साथ लगभग दस लाख मूल्य के पशु और बहुमूल्य सामान लूट में प्राप्त हुआ।

अफजलखाँ काण्ड से बीजापुर राज्य का पतन एक बार फिर सिद्ध हो जाता है। हत्याओं के द्वारा आगे चलकर लाभ नहीं होता। मुहम्मदगवाँ, चाँदबीबी, लुकजी जाधव, मुरार जगदेव और बहुत से अन्य व्यक्तियों की मुस्लिम शासन में निर्मम हत्या की गई। इन हत्याओं से क्या लाभ हुआ, इसका निर्णय इतिहास नहीं कर सका है। कुछ ही पहले स्वयं बीजापुर में वजीर खानमुहम्मद और उसके बाद बहलोलखाँ का वही हाल रानी दोवागर बड़ी साहिबा के हाथों हुआ था। शिवाजी को अकारण हत्याओं से घृणा थी और यदि वे विवश न हो गये होते तो अफजलखाँ की भी हत्या न करते, यद्यपि यह पूर्ण सत्य है कि वे किसी भी सम्भावित घटना के लिए तैयार थे। आत्म-रक्षा के लिये उन्हें अन्तिम उपाय अपनाने पड़े और यदि सम्भव होता तो वे अफजलखाँ के प्राण न लेते। इसके साथ ही, यदि वे तैयारी करके मिलने न जाते तो यह मूर्खता की पराकाष्ठा होती।

६. पन्हाला का घेरा—शिवाजी का बच निकलना—शिवाजी को पूर्णरूपेण ज्ञात था कि अफजलखाँ की मृत्यु लम्बे संघर्ष का आरम्भ मात्र है और वे जानते थे कि उनके लिए यह आवश्यक है कि अपनी विजय का प्रसार करते जायें, जब तक कि बीजापुर के भूत का खातमा नहीं हो जाता। उन्होंने बड़ी सेना सहित अनाजी दत्तो को रवाना किया और पश्चिमी आदिलशाही जिले की राजधानी पन्हाला को बातचीत के द्वारा हस्तगत कर लिया। यह घटना २८ नवम्बर को यानी खान की मृत्यु से १८ दिन के अन्दर ही घटित हुई। पन्हाला और समीपस्थ कोल्हापुर जिला, बसन्तगढ़, खेलना,

रंगना और अन्य छोटे-छोटे गढ़ों ने शीघ्र ही आत्म-समर्पण कर दिया। इस समय खेलना का नाम शिवाजी ने विशालगढ़ रख दिया। कोल्हापुर का जिला और पन्हाला और विशालगढ़ के किले बहुत समय से रुस्तमेजमाँ के अधिकार में थे। अब रुस्तमेजमाँ से फजलखाँ मिल गया जो अपने पिता की मृत्यु के बाद वाई से भाग निकला था और अब ये दोनों सामन्त शिवाजी का सामना करने के लिए पन्हाला आये। २८ दिसम्बर, १६५९ को शिवाजी ने इनको परास्त किया और लगभग बीजापुर के फाटकों तक इनका पीछा करते चले गये। नेताजी पाल्कर और शिवाजी के अन्य सेनापतियों ने रामबाग गदग और लक्ष्मेश्वर के उपनगरों को बीच के प्रदेश सहित लूट लिया। लूट का विशाल धन लेकर जनवरी १६६० के अन्त तक शिवाजी वापस राजगढ़ आ गये।

इस आपत्ति-काल में आदिलशाह ने अपनी सहायतार्थ सिद्दी जौहर को बुलाया, जो उसके प्रतिनिधि के रूप में कर्नूल प्रान्त का अधिकारी था। उसे इस बात के लिए राजी कर लिया गया कि वह शिवाजी का दमन करने और उन्हें अधीन बनाने का कार्य अपने हाथ में ले ले। इस समय सिद्दी जौहर को सलावतखाँ की उपाधि दी गई। बाजी घोरपड़े, रुस्तमेजमाँ, फजलखाँ तथा अन्य कई सिद्दी के साथ हो गये और इस प्रकार पन्हाल गढ़ पर एक विशाल सेना एकत्रित हुई। जंजीरा के सिद्दी और बाड़ी के सावन्त को भी राजी कर लिया गया कि वे शिवाजी के विरुद्ध कार्य करें। शिवाजी भी शत्रु का सामना करने को तैयार हो गये। उन्होंने रक्षा-कार्य का स्वयं संचालन करने के लिए पन्हाल गढ़ में निवास किया। बीजापुरियों ने गढ़ पर घेरा डाल दिया। फलस्वरूप मई १६६० से कुछ समय तक दोनों ओर से डटकर युद्ध होता रहा। कडतोजी गूजर ने शिवाजी के आदेश से पन्हाला का रक्षण-कार्य सँभाला और सर-नौबत नेताजी पाल्कर शत्रु को परेशान करने के लिए बाहर रहा। वह बाहरी क्षेत्र को नष्ट करने लगा जिससे आक्रमणकारियों को रसद और सहायक सेना न पहुँच सके।

सलावतखाँ बड़ा बुद्धिमान सेनापति था। उसने घेरे पर पूरी शक्ति लगा दी और शीघ्र ही शिवाजी की स्थिति को संकटमय बना दिया। राजगढ़ में जीजाबाई को पता चला कि पन्हाला का घेरा शिवाजी के विपरीत जा रहा है। उन्हें शिवाजी के कुशल के प्रति उत्कट चिन्ता हुई। उन्होंने नेताजी पालकर को अपने पास बुलाया और पन्हाला के घेरे पर सहायता पहुँचाने के विषय में उसकी उदासीनता के लिए उलाहना दिया। जीजाबाई और नेताजी के वार्तालाप का परमानन्द ने विशद् वर्णन किया है। नेताजी ने आश्वासन दिया कि सब मामला ठीक हो जायगा।

इस बीच में सलावतखाँ ने राजापुर के अँग्रेज व्यापारियों से गोला-बारूद और कुछ अंग्रेज बन्दूकचियों के लिए प्रार्थना की, जो पन्हाला के रक्षकों में प्रलय मचा सकते थे। फैक्टरी का मुख्य अधिकारी रिविंग्टन अपने सहायक मिंघम और गिफ्फर्ड सहित एक प्रचण्ड तोप और गोला-बारूद लेकर सलावतखाँ की मदद को आ गया। यह योरुपीय गोलाबारी बड़ी प्रभावशाली सिद्ध हुई और इन्होंने शिवाजी की स्थिति को नितान्त अरक्षणीय बना दिया। राजापुर के अँग्रेज व्यापारियों के इस अकारण हस्तक्षेप से शिवाजी का क्रुद्ध होना उचित था और फलस्वरूप वे प्रतिशोध लेने पर कटिबद्ध हो गये जिसका परिणाम अँग्रेजों के लिए बहुत गम्भीर सिद्ध हुआ, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे।

ठीक इसी समय जब पन्हाला में शिवाजी बहुत परेशान थे, उत्तर में उनके विरुद्ध गम्भीर संकट पैदा हो गया। प्रसिद्ध मुगल सेनापति शाइस्ताखाँ राज्यपाल नियुक्त होकर अहमदनगर आ गया। फरवरी १६६० के अन्त में वह अहमदनगर से चला तथा पूना और बारामती पर अपना प्रभाव स्थापित करता हुआ अप्रेल में दक्षिण की ओर ठीक शिरवल तक बढ़ आया। इस समय शिवाजी पन्हाला में घिरे पड़े थे। शिवाजी के उत्तरी प्रदेशों को अधिकृत करने का उत्तम अवसर जानकर शाइस्ताखाँ उल्टे पाँव वापस गया और मई में पूना पर अधिकार करके शिवाजी के लालमहल पर डेरा डाल

दिया । अगस्त में उसने चाकन को उसके वीर सेनापति फिरंगोजी नर्साला से छीन लिया । इस प्रकार शिवाजी ने देखा कि वे दो चट्टानों में पिस रहे हैं । परन्तु ऐसे ही गम्भीर अवसरों पर शिवाजी की विलक्षण बुद्धि पूरी शक्ति से चमक उठती थी और उनके सामर्थ्य को सिद्ध कर देती थी । इस समय उन्होंने अपने योग्य मन्त्री सोनोपन्त दबीर को शाइस्ताखाँ के पास भेजा कि उनके साथ समझौते की शर्तें तय करे अथवा प्रयत्न-पूर्वक उनके प्रति खान की कटुता को मन्द कर दे । खान शिवाजी के प्रति कठोरता कम करने के लिए लगभग तैयार था क्योंकि वह यह भली-भाँति जानता था कि उसके सिपाहियों के लिए पश्चिमी घाट की दुर्गम पहाड़ियों में शिवाजी के विरुद्ध युद्ध करना बड़ा कठिन कार्य है । इसी बीच में परिस्थिति का वृत्तान्त औरंगजेब को भेजा गया जिसने शाइस्ताखाँ को आदेश दिया कि वह शिवाजी की बात न माने, युद्ध को सतत जारी रखे और उसकी शक्ति का नाश कर दे । इस उद्देश्य से सम्राट् ने जसवन्त सिंह को आज्ञा दी कि वह गुजरात से शिवाजी के विरुद्ध प्रयाण कर दे और शाइस्ताखाँ के हाथ मजबूत करे । शिवाजी अच्छी तरह से समझते थे कि भविष्य में मुगलों से उन्हें क्या आशा है, फलस्वरूप इस समय उन्होंने पन्हाला पर शत्रु के दबाव को कम करने पर अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया ।

उन्होंने सलावतखाँ से वार्त्तालाप आरम्भ किया और आत्म-समर्पण की शर्तें पूछीं । अस्थायी विराम का प्रबन्ध किया गया और सलावतखाँ ने अस्थायी रूप से घेरे की कार्यवाही को रोक दिया । इस परिस्थिति में १३ जुलाई, १६६० की अँधेरी रात में जब घन-घोर वर्षा हो रही थी, शिवाजी गढ़ के पीछे के एक फाटक से निकल-कर विशालगढ़ की ओर भाग गये । उनके साथ अनुरक्त सेवक बाजीप्रभु देशपाण्डे के नेतृत्व में स्वामिभक्त अनुचरों की एक छोटी टोली थी । उनके भाग निकलने का पता शीघ्र ही चल गया और शत्रु के एक दल ने अति निकट से उनका पीछा किया । प्रातःकाल पीछा करने वाले इतने समीप आ गये कि वे विशालगढ़ में

शिवाजी के सकुशल प्रवेश में बाधक हो गये। इस संकट-क्षण में बाजीप्रभु विशालगढ़ के पूर्वी द्वार घोड़खिण्ड नाम के तंग दर्रे पर डट गया। उसके स्वामी को यह अवसर मिल गया कि वह सकुशल गढ़ में पहुँच जाय। बाजीप्रभु स्वयं घण्टों तक अपनी छोटी-सी टोली के साथ पीछा करने वालों के विशाल समुदाय का वीरता से सामना करता रहा, यहाँ तक कि एक-एक करके वे सब काट डाले गये और बाजीप्रभु सांघातिक रूप से घायल होकर गिर गया परन्तु अन्तिम श्वाँस लेने के पहले उसने सन्तोष के साथ यह जान लिया कि उसके स्वामी सकुशल गढ़ में प्रवेश कर गये हैं। बाजीप्रभु द्वारा अपने प्राणों के इस बलिदान को मराठा जाति आज तक कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती है। यह इस बात का उदाहरण है कि शिवाजी की आजीवन किस प्रकार सेवा की गई। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस बलिदान से अमित लाभ हुआ।[११]

शिवाजी के भाग निकलने से उनको बन्दी बनाने की सब बीजापुरी योजनाएँ निष्फल हो गईं। २२ सितम्बर, १६६० को पन्हाला के गढ़ को उन्होंने विधिवत् आदिलशाह को समर्पित कर दिया और उसके साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये ताकि शाइस्ताखाँ द्वारा संचालित भीषण मुगल आक्रमणों की ओर ध्यान देने का अवकाश मिल सके।

---

११ राजवाड़े १५, ३६३।

तिथि-क्रम

अध्याय ६

१६६०	अली आदिलशाह द्वितीय का बड़ी साहिबा से सत्ता छीनना ।
२४ जनवरी, १६६१	शिवाजी द्वारा कर्तलबखाँ पराजित ।
फरबरी १६६१	शाइस्ताखाँ का कल्याण पर अधिकार ।
मार्च १६६१	शिवाजी का राजापुर पर आक्रमण; ६ अँग्रेज व्यापारी बन्दी ।
२९ अप्रेल, १६६१	शिवाजी द्वारा सुर्वे को शृंगारपुर से निकाल देना; बाद में उस परिवार को तथा शिर्के परिवार को मित्र बना लेना ।
मई १६६१–जून १६६२	बड़ी साहिबा की मक्का को यात्रा ।
१६६२	शाहजी का शिवाजी और आदिलशाह के बीच द्वेष-भाव को दूर करना ।
१७ जनवरी, १६६३	राजापुर के अँग्रेज व्यापारी मुक्त ।
५ अप्रेल, १६६३	शाइस्ताखाँ पर रात्रि में आक्रमण ।
६ अप्रेल, १६६३	मुगलों का सिंहगढ़ पर आक्रमण ।
ग्रीष्म, १६६३	आदिलशाह का बंकापुर पहुँचना; शिवाजी के विरुद्ध युद्ध आरम्भ (१६६३–६४) ।
ग्रीष्म, १६६३	मक्का के यात्री पोतों पर शिवाजी का आक्रमण; मुगल अधिकारियों को तीव्र विरोध-पत्र ।
जून १६६३	शाइस्ताखाँ की औरंगाबाद को वापसी । जसवन्त-सिंह के साथ मुअज्जम राज्यपाल नियुक्त ।
दिसम्बर १६६३	शाइस्ताखाँ का बंगाल रवाना होना ।
१ जनवरी, १६६४	शिवाजी का नासिक से सूरत को प्रस्थान ।
८-९ जनवरी, १६६४	शिवाजी का सूरत को लूटना और जला देना ।
१० जनवरी, १६६४	शिवाजी का सूरत से रायगढ़ के लिए चल देना ।
२३ जनवरी, १६६४	शाहजी की मृत्यु ।
मई १६६४	सावन्त की रक्षार्थ शिवाजी कुडाल में ।
३० सितम्बर, १६६४	मिर्जा राजा जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध प्रयाण का आदेश ।

१६०५–१६६७	मिर्जा राजा जयसिंह का जीवन-काल।
नवम्बर १६६४	शिवाजी का मुधौल को लूटना और बाजी घोरपड़े को मार डालना।
२५ नवम्बर, १६६४	शिवाजी द्वारा सिन्धु दुर्ग का निर्माण प्रारम्भ और एक नौ-सेना संगठित करना।
दिसम्बर १६६४	खानापुर के पास खवासखाँ और एकोजी की पराजय।
दिसम्बर १६६४	शिवाजी का हुबली को लूटना।
जनवरी १६६५	शिवाजी का पोंडा हस्तगत करना; सावन्त से सन्धि करना।
१६ जनवरी, १६६५	जयसिंह का बुरहानपुर पहुँचना।
८ फरवरी, १६६५	शिवाजी का बसरूर के बन्दरगाह को लूटना।
फरबरी १६६५	शिवाजी द्वारा गोकर्ण में पूजा।
फरबरी १६६५	जयसिंह का शिवाजी के विरुद्ध आक्रमण आरम्भ करना।
मार्च १६६५	जयसिंह पूना में।
३० मार्च, १६६५	दिलेरखाँ द्वारा पुरन्दर पर घेरा डालना।
३१ मार्च, १६६५	सासवड़ में जयसिंह की छावनी।
१४ अप्रेल, १६६५	दिलेरखाँ का रुद्रमल को हस्तगत करना; मुरार बाजी का मारा जाना।
२० मई, १६६५	शिवाजी के दूत रघुनाथ पण्डित का जयसिंह से सासवड़ में मिलना।
११ जून, १६६५	शिवाजी का जयसिंह से मिलना।
१३ जून, १६६५	शिवाजी का दिलेरखाँ से मिलना।
१४ जून, १६६५	शिवाजी का जयसिंह से सन्धि करना।
१५ जून, १६६५	शिवाजी का सिंहगढ़ और अन्य गढ़ों को समर्पित करना।
५ सितम्बर, १६६५	शिवाजी द्वारा सम्राट का फरमान प्राप्त करना।
२५ नवम्बर, १६६५	जयसिंह का बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण प्रारम्भ करना; शिवाजी का उसके साथ हो जाना।
१६ जनवरी, १६६६	पन्हाला को हस्तगत करने का शिवाजी का असफल प्रयास।
जनवरी १६६६	नेताजी पालकर का शिवाजी की नौकरी छोड़ना और बीजापुर के साथ हो जाना।
२० मार्च, १६६६	नेताजी को औरंगजेब से शाही मन्सब प्राप्त होना।

————

अध्याय ६

उत्थान और पतन

[१६६१–१६६५]

१. कर्तलबखाँ का मान-मर्दन ।
२. अँग्रेज व्यापारी कैद में ।
३. शाइस्ताखाँ पर रात्रि में धावा ।
४. सूरत की लूट ।
५. बीजापुरी हलचल; बाजी घोरपड़े का दमन ।
६. जयसिंह और शिवाजी का सामना ।

१. कर्तलबखाँ का मान-मर्दन—अफजलखाँ काण्ड से शिवाजी को सबक मिला कि बाह्य शक्तियों से किस प्रकार निपटा जाय । अब शाइस्ताखाँ पूना में था । वह शनैः-शनैः शिवाजी की स्वतन्त्रता पर रोक लगा रहा था । परन्तु शीघ्र ही वह खुले युद्ध में न कूदा । चाकन को हस्तगत करने में उसे एक हजार मूल्यवान् प्राणों की आहुति देनी पड़ी थी । पन्हाला से भाग निकलने के बाद शिवाजी सकुशल विशालगढ़ पहुँच गये । वहाँ से वे अविलम्ब राजगढ़ चले गये ताकि शाइस्ताखाँ की तीव्र प्रगति को रोकने का उपाय करें जो अब कोंकण में शिवाजी की शक्ति को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध था, जहाँ उनके धन और रसद के मुख्य साधन थे । अतः कल्याण को हस्तगत करने के उद्देश्य से शाइस्ताखाँ ने एक विशाल सेना सुसज्जित की और उसे एक वीर एवं विश्वस्त सेनापति कर्तलबखाँ के नेतृत्व में रवाना किया । एक युद्ध-कुशल ब्राह्मण महिला अपने दल सहित उसके साथ थी । यह महिला बसीम के पुराने सामन्त उदाराम की पत्नी थी । उदाराम ने जहाँगीर और शाहजहाँ की विशेष सेवा की थी । इस महिला का औरंगजेब बहुत सम्मान करता था और उसने उसे रायबगाँ (सिंहनी राजकुमारी) की उपाधि प्रदान की थी ।

जनवरी १६६१ में कर्तलबखाँ पूना से चला और पश्चिमी घाट के उम्बरखिण्ड दर्रे में होकर लोहगढ़ के नीचे उतरा। यह स्थान वर्तमान लोनावला रेलवे स्टेशन से कुछ दक्षिण में है और कठिन मार्ग है, जैसा कि बहुत-सी सुरंगों में होकर जाने वाले रेल-मार्ग से स्वयं प्रकट होता है। उम्बरखिण्ड का दर्रा बहुत ही तंग था और करीब आठ मील लम्बा था, परन्तु पूर्वीय मैदान से पश्चिम मैदान तक १५ मील से अधिक था। इसमें होकर दो से अधिक व्यक्ति साथ-साथ नहीं चल सकते थे। मार्ग ढालू और तंग है और एक ऊसर जलरहित प्रदेश से निकलता है, जिसके दोनों ओर ऊँची पहाड़ियाँ खड़ी हैं। शिवाजी मार्ग की भूल-भुलय्यों को जानते थे और अपने निपुण गुप्तचरों से सूचना पाकर उन्होंने कर्तलबखाँ की सेना का सर्वनाश करने का प्रयत्न किया। उनकी सुप्रशिक्षित पैदल सेना के जत्थे गुप्त स्थानों में छिप गये। वे संकेत पाते ही शत्रु पर टूट पड़ने को तैयार थे। मुगलों को किसी अचानक संकट का सन्देह न था। अतः बड़ी हँसी-खुशी के साथ सामान, तोपों और गोला-बारूद से लदे हुए धीरे-धीरे उतर रहे थे। जैसे ही सारी सेना तंग मार्गों में फँसी वैसे ही शिवाजी के सिपाहियों ने ऊपर और नीचे के दोनों प्रवेश-मार्गों को अकस्मात् बन्द कर दिया। अब मुगल न तो पीछे मुड़ सकते थे और न आगे बढ़ सकते थे। पास की पहाड़ियों से उन पर पत्थरों और गोलियों की वर्षा होने लगी। कर्तलबखाँ को भागने का कोई मार्ग न मिला। उसके सिपाही प्यास और दम घुटने से मरने लगे। तब उसने रायबगाँ द्वारा शिवाजी से क्षमा-याचना की। उन्होंने भारी जुर्माना माँगा और देखते-देखते एक क्षण में मार्ग साफ कर दिया और बड़ी व्याकुलता से मुगल वापस पूना लौट गये। उम्बरखिण्ड की इस घटना का परमानन्द ने बड़े कलात्मक ढंग से वर्णन किया है।[1]

कर्तलबखाँ के परास्त होते ही शिवाजी ने मुगलों पर निगरानी

---

१ शिवभारत, अध्याय २६; शि० च० प्र०, पृष्ठ ५१ तिथि के लिए।

रखने के लिए नेताजी पाल्कर को नियुक्त किया और स्वयं राजापुर के विरुद्ध रवाना हुए। इसमें उनके दो उद्देश्य थे—प्रथम पन्हाला के घेरे के समय अकारण हस्तक्षेप करने के कारण अँग्रेज व्यापारियों से बदला चुकाना, द्वितीय दक्षिण कोंकण प्रदेश को हस्तगत कर बीजापुर सत्ता को और निर्बल कर देना। उस समय दाभोल, राजापुर और कारवार विदेशी व्यापार के कारण धनी बन्दरगाह थे। नाममात्र के राज्यपाल रुस्तमेज़माँ ने अपने स्वामी के पक्ष में एक अँगुली भी न उठाई। सम्भवत: १६६१ ई० के प्रारम्भिक मासों में शिवाजी ने कोंकण प्रदेश में नियमित धावा कर दिया। उन्होंने निजामपुर को लूट लिया, दपोली के पास पल्वन के सरदार का दमन किया और दाभोल को उसके स्वामी से जिसका वंशनाम दल्वी था छीन लिया। तदुपरान्त उन्होंने चिपलूण के पास परशुराम के मन्दिर में पूजा की तथा संगमेश्वर की ओर बढ़ गये, जो उस समय समृद्ध बन्दरगाह था। वहाँ पर अपने दो विश्वस्त अधिकारियों तानाजी मालुसरे और पिलाजी नीलकण्ठ को छोड़कर स्वयं अकस्मात् राजापुर में प्रकट हो गये।

यहाँ पर उन्होंने अँग्रेजों की फैक्टरी को लूट लिया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ६ अधिकारियों को कब्जे में ले लिया। राजापुर से बहुत-सा लूट का माल प्राप्त किया और बन्दरगाह पर अपने प्रशासक नियुक्त कर दिये। यहाँ से करीब १० मील दक्षिण में खारे-पाटन पर भी उन्होंने अपने प्रशासक नियुक्त कर दिये। इस बीच में यह समाचार पाकर कि संगमेश्वर के समीप स्थित श्रृङ्गारपुर के सरदार सूर्यराव सुर्वे ने तानाजी मालुसरे पर आक्रमण करके उसको हरा दिया है, शिवाजी राजापुर से तानाजी की सहायतार्थ वापस दौड़े। जावली के मोरे की भाँति सुर्वे बहुधा शिवाजी के विरुद्ध षड़यन्त्र करता रहता था। उन्होंने उसे सबक देने का निश्चय किया। २९ अप्रेल को शिवाजी सीधे श्रृंगारपुर पहुँचे। उनके पहुँचने पर सुर्वे अपनी प्राण-रक्षा के लिये भाग खड़ा हुआ और बिना युद्ध ही उसका प्रदेश शिवाजी के हाथ में आ गया। यह प्रदेश

संगमेश्वर से दपोली तक फैला हुआ था। इसकी रक्षा के लिए इस प्रदेश में शिवाजी ने नये गढ़ निर्माण किये। उनके नाम प्रचितगढ़, पालगढ़ और मण्डनगढ़ रखे गये। इस नव-विजित प्रदेश में प्रशासन के लिए त्र्यम्बक भास्कर को नियुक्त किया गया।

श्रृंगारपुर के सुर्वे परिवार का शासन एक अन्य सरदार (कुटरे के) बाघोजी शिर्के के हाथ में था जिसको शिवाजी ने अपनी ओर मिला लिया। उसने अपनी कन्या सोयराबाई का विवाह इस नवयुवक वीर से कर दिया। यह उनका दूसरा विवाह था—निस्सन्देह इस विवाह का राजनीतिक उद्देश्य था ताकि दो महान् प्राचीन क्षत्रिय परिवारों—सुर्वे और शिर्के[२]—को अपने में मिला लिया जाय। इस प्रकार दक्षिण कोंकण के दो शक्तिशाली सामन्त—कुटरे के शिर्के और श्रृंगारपुर के सुर्वे—स्वेच्छा से शिवाजी की सेवा में आ गये। परिणाम यह हुआ कि सारा पश्चिमी समुद्र-तट वसई से मलवन तक सह्याद्रि तक फैले हुए अन्तर्देश सहित शिवाजी के अधिकार में आ गया। सह्याद्रि के पूर्व के प्रदेश जुन्नार से रंगनागढ़ तक पहले से ही उनके अधिकार में थे। इस प्रकार हम मोटे रूप से समझ सकते हैं कि किस प्रकार शिवाजी ने अपने अधिकृत प्रदेशों को बीजापुरी और मुगल राज्यों से अलग करके एकत्र कर लिया।

२. अँग्रेज व्यापारी कैद में—यहाँ यह आवश्यक है कि हम

---

२ छत्रपतियों ने अनेक शिर्के महिलाओं से विवाह किये और अपनी कन्याएँ भी उनको विवाह में दीं, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होता है :—
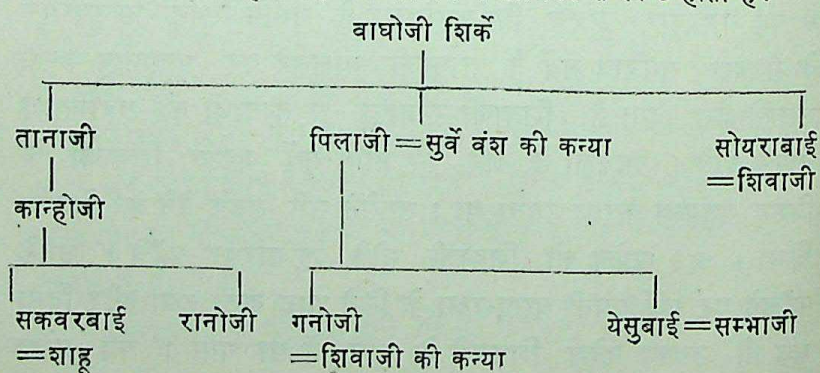
अँग्रेज व्यापारियों की कहानी की ओर लौटें, जिन्हें शिवाजी ने राजापुर में बन्दी बना लिया था। उनके संघर्ष का पूर्व-इतिहास समझे बिना वर्तमान संघर्ष की उपयुक्त व्याख्या नहीं हो सकती। अँग्रेज फैक्टरी के लेख-पत्र अब प्रकाशित हो गये हैं, उनसे इस विषय पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। जब १६६० ई० के आरम्भ में शिवाजी के सैनिक दाभोल आये। उस बन्दरगाह में अफजलखाँ के तीन व्यापारी जहाज थे। अफजलखाँ का शिवाजी ने वध किया था। उसके पुत्र फजलखाँ की प्रार्थना पर दाभोल के राज्यपाल मुहम्मद शरीफ ने उन जहाजों को शीघ्र ही राजापुर भेज दिया और उनको सुरक्षार्थ अँग्रेजी फैक्टरी के संरक्षण में रख दिया ताकि वे शिवाजी के हाथ न पड़ जायें। चूँकि शिवाजी की बीजापुर से लड़ाई थी, उन्होंने अपने प्रतिनिधि को राजापुर भेजा ताकि वह शत्रु के उन जहाजों पर अधिकार करले। फजलखाँ पर उनका बहुत कर्जा है, यह कहकर अँग्रेज उन जहाजों को देना नहीं चाहते थे। उन जहाजों की सम्पत्ति से वे अपना ऋण चुकाना चाहते थे। जब शिवाजी राजापुर पहुँचे, फैक्टरी का मुखिया रैमिंगटन पकड़े जाने के भय से रक्षार्थ समुद्र के रास्ते भाग गया, परन्तु दौरोजी ने माल छीन लिया और द्वितीय अधिकारी गिफ्फर्ड को रोक लिया (२० जनवरी, १६६०)। इस अवसर पर रुस्तमेजमाँ ने शिवाजी से विनय की कि माल पुनः वापस कर दिया जाय और गिफ्फर्ड को छोड़ दिया जाय। शिवाजी सहमत हो गये और मामला उस समय समाप्त हो गया।[3]

इसके बाद पन्हालगढ़ का घेरा हुआ, जहाँ पर सिद्दी जौहर सलावतखाँ के आह्वान पर राजापुर के व्यापारी शिवाजी से लड़ने आये। रेविंगटन, मिंघम, गिफ्फर्ड और उनका दुभाषिया वेलजी

---

२ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि उस समय बहुत से नागरिक, शासक और सामन्त अपनी पूँजी को व्यक्तिगत समुद्री व्यापार में लगाते थे। उनके अपने जहाज होते थे जिन्हें वे विभिन्न देशों में चलाते थे और वस्तुओं के इस विनिमय से बहुत लाभ उठाते थे। मुगल सम्राट् और बहमनी राजाओं के भी अपने पोत होते थे जो समुद्र पर कार्य करते थे।

पन्हालगढ़ गये, गोला-बारूद दिया और गढ़ पर अति विनाशक अग्नि-वर्षा की। शिवाजी ने उन्हें चेतावनी दी कि व्यापारियों की स्थिति में उन्हें निष्पक्ष रहना चाहिए तथा आन्तरिक युद्ध में भाग न लेना चाहिए। अब चूँकि उन्होंने शिवाजी के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया था अतएव उन्हें इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। इस धमकी को उन्होंने खिल्ली में उड़ा दिया और स्पष्ट विरोध-स्वरूप पन्हाला पर अपना झण्डा लगा दिया। उन्होंने कुछ विनाशक गोले भी चलाये जिससे शिवाजी की स्थिति खतरे में हो गई। इस जानबूझ कर किये हुए अपराध के कारण शिवाजी पूरा बदला चुकाने पर तुल गये।

ऐसा समय जल्दी ही आ गया। अँग्रेजी गोले जुलाई १६६० में पन्हाला पर चलाये गये थे और अगले मार्च में शिवाजी राजापुर आ पहुँचे। उनके दो उद्देश्य थे—अँग्रेज व्यापारियों को दण्ड देना और समस्त दक्षिण कोंकण को, जो उस समय बीजापुर के अधीन था, अपने प्रभाव में लाना। राजापुर पहुँचने पर उन्होंने व्यापारियों को मिलने के लिए बुलाया और वे उत्सुकता से आए भी मानो कि वे पन्हाला में किये गये अपने कृत्यों से सर्वथा अपरिचित हों। उनमें से रैन्डलफ टेलर, रिचर्ड टेलर, गिफर्ड, फेरण्ड, रिचर्ड नैपियर और सैमुअल बर्नर्ड नामक ६ व्यापारी तुरन्त पकड़ लिये गये। उनका सामान जब्त कर लिया गया और उन्हें विभिन्न स्थानों को भेज दिया गया। कुछ महाद के पास सोनगढ़ में और कुछ बासोतागढ़ में कैद कर दिये गये। राजापुर के मामलों की व्यवस्था करने और ६ बन्दी व्यापारियों के आराम की देखभाल रखने के लिए शिवाजी ने एक योग्य अधिकारी रावजी सोमनाथ को वहाँ नियुक्त कर दिया। कुछ दिनों रावजी सोमनाथ ने व्यापारियों को सूचना दी कि यदि वे जंजीरा के सिद्दियों के विरुद्ध अभियान में शिवाजी की खुशी-खुशी सहायता करें तो वे छोड़ दिये जायेंगे और उनकी हानि की पर्याप्त पूर्ति कर दी जायगी, परन्तु यदि उन्होंने इंकार किया तो उन्हें अपने छुटकारे के लिए मुक्ति-धन देना होगा। इस प्रस्ताव को व्यापारियों ने अस्वीकृत कर दिया। राजापुर के बहुत से हिन्दू और मुस्लिम

व्यापारियों और साहूकारों के साथ भी ऐसा ही बर्ताव किया गया। शिवाजी का कहना था कि उनका बीजापुर से खुला युद्ध है और जो कोई उनका विरोध करेगा उसे फल भोगना पड़ेगा।

शिवाजी ने इसका विशेष ध्यान रखा कि बन्दी व्यापारियों को सर्वोत्तम सुविधाएँ दी जाएँ। परन्तु उनकी रिहाई में बहुत विलम्ब हुआ। इसका मुख्य कारण उन्हीं की हठधर्मी थी। कुछ अंश तक शिवाजी की व्यस्तता भी कारण थी। वे कसमें खाते, धमकियाँ देते तथा सूरत को अपने अध्यक्ष के पास अत्यन्त उत्तेजक और विकृत वृत्तान्त भेजते थे। उन्होंने उससे प्रार्थना की कि शिवाजी का जुर्माना अदा करके उन्हें कारागार से छुटकारा दिलाये परन्तु अध्यक्ष ने इस विषय में हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया क्योंकि उनके ही आचरण से यह बात पैदा हुई थी। १० मार्च, १६६२ के पत्र में अध्यक्ष ने उन्हें निम्न शब्दों में उलाहना दिया है, "आप भली-भाँति जानते हैं कि आपको कारागार क्यों मिला है। कम्पनी के माल की रक्षा के कारण यह नहीं हुआ था। इसका कारण पन्हाला पर घेरा डालना और उस झण्डे को लेकर गोले छोड़ना था जो अँग्रेजी झण्डा विख्यात है। शिवाजी ने वही किया जैसा और किसी समर्थ व्यक्ति ने किया होता क्योंकि व्यापारियों का यह कार्य नहीं है कि वे गोले-बारूद जैसा सामान बेचें। यह अनुचित है कि वे उनको ले जावें और शत्रु के विरुद्ध चलावें। एक अपरिचित देश में व्यापारियों को शान्त रहना चाहिए। यदि वे शान्त नहीं रह सकते और हस्तक्षेप करते हैं तो उन्हें अपने किये का फल भुगतना चाहिए। हम साफ शब्दों में कह सकते हैं कि आप ही की करनी आपके बन्दी जीवन का कारण है। मि० रेविंगटन ने स्वयं उल्लेख किया है कि शिवाजी की आज्ञा है कि ऐसा कोई सामान न बेचा जाये। पन्हाला में उपस्थित होने के कारण ये शब्द तुम्हारे मुँह से कहलवाये जा रहे हैं क्योंकि उसे आशा है कि इस साधन से वह रुपया प्राप्त कर हानि की पूर्ति कर लेगा।"

अध्यक्ष ने अपनी असमर्थता स्वीकार की कि वह शिवाजी से

आज्ञा-पालन नहीं करवा सकता। जब बन्दियों को विश्वास हो गया कि वे किसी बाह्य साधन से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते, उन्होंने रावजी सोमनाथ से दया की याचना की। इस बीच में रेविंगटन बीमार हो गया और चिकित्सा कराने के लिए छोड़ दिया गया। १७ अक्टूबर, १६६१ को वह सूरत पहुँचा और एक वर्ष बाद मर गया। १७ जनवरी, १६६३ को रावजी पण्डित आया और दूसरे बन्दियों को राजापुर ले गया, जहाँ वे छोड़ दिये गये। उन्हें शिवाजी की मोहर-अंकित निम्नलिखित सन्देश पढ़कर सुनाया गया—"हम भूतकाल को भूल जाएँ। तब हम बीजापुर में लड़ रहे थे, जिसके लिए धन की आवश्यकता थी और इस कारण से राजापुर को हानि उठानी पड़ी। इस घटना को हम दुहरायेंगे नहीं।" इसके बाद अंग्रेज व्यापारियों ने अपना व्यापार राजापुर में आरम्भ कर दिया। फैक्टरी के एक लेखक ने सूरत के अध्यक्ष को सूचना दी, "राजापुर पर शिवाजी के धावे के कारण हमारे २४ हजार होन लूट में गये, हमारे २ आदमी मरे और हमारे व्यापारी दो वर्ष तक कैद में रहे।" अँग्रेज व्यापारी बहुत दिनों तक शिवाजी को उस हानि-पूर्ति के लिए जोर देते रहे, जो उन्हें राजापुर की लूट से हुई थी। शिवाजी ने इसे अस्वीकृत कर दिया क्योंकि उनका विश्वास था कि उन्होंने पूर्ण न्याय से काम किया है।

३. शाइस्ताखाँ पर रात्रि में धावा—इसका उल्लेख पहले हो चुका है कि जब बीजापुर से शिवाजी का घोर संग्राम चल रहा था, शाइस्ताखाँ दूसरी दिशा से उन पर भारी दबाव डाल रहा था। फरवरी १६६१ में कर्तलबखाँ की वापसी के बाद शाइस्ताखाँ ने तुरन्त एक दूसरी बड़ी सेना उत्तर कोंकण में भेज दी और शिवाजी से कल्याण और पेन तक के समीपस्थ जिले छीन लिये। अगली वर्षा-ऋतु में युद्ध थोड़े समय के लिए बन्द रहा परन्तु सैनिक कार्यवाही पुनः आरम्भ हुई और नामदारखाँ ने पेन पर चढ़ाई की, जहाँ पर जनवरी १६६२ में शिवाजी ने उसे परास्त कर दिया। इस पूरे साल में कोई खुला बड़ा युद्ध नहीं हुआ परन्तु शाइस्ताखाँ

अपना जाल शिवाजी के चारों ओर बिछाता रहा और सतारा के इर्द-गिर्द के प्रदेश में उनको निर्बल कर दिया। कुछ समय तक मुगलों की ओर से बढ़ते हुए इस संकट के कारण शिवाजी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। चरमोत्कर्ष-प्राप्त साम्राज्य के सारे साधन ख़ान के साथ थे और शिवाजी के सतत् परिश्रम से निर्मित स्वराज्य व्यावहारिक रूप में मुगलों द्वारा पददलित हो चुका था। स्वयं शिवाजी के महल में ख़ान निवास कर रहा था। उसके सैनिक और गुप्तचर सारे देश में घूम रहे थे। जंगल से निकाले एक वन्य पशु की भाँति वे शिवाजी का पीछा कर रहे थे। तीन लम्बे वर्षों तक शिवाजी ने घोर संघर्ष किया और हल ढूँढ़ने के लिए मस्तिष्क का घोर मंथन किया।

परन्तु ऐसे ही अन्धकार में महापुरुषों की विलक्षणता चमकती है। यदि खुले युद्ध की सम्भावना न हो तो कम से कम स्वयं ख़ान का, व्यक्तिगत रूप से ही सही, घोर प्रतिकार तो होना ही चाहिए। बहुत सोचने-विचारने के बाद शिवाजी ने विलक्षण उपाय ढूँढ़ निकाला। वे सिंहगढ़ में आकर ठहरे ताकि पूना में ख़ान के निवास पर अकस्मात् धावा बोल सकें। यह उन्हीं का महल था जिसके कोने-कोने से वे परिचित थे। शिवाजी ने दो ब्राह्मण गुप्तचर भेजे और मुग़ल शिविर के प्रबन्ध और परिस्थिति के विषय में जो कुछ भी जानकारी प्राप्त हो सकी, उसे संग्रह किया। उन्होंने स्वयं करीब चार सौ चतुर और साहसी मावलों का चुनाव किया और उनकी वेष-भूषा मुगलों की सी बनादी तथा सिंहगढ़ से ५ अप्रेल, १६६३ की संध्या को नीचे उतरे। इस समय शुक्ल पक्ष की छठ का चन्द्रमा उनके सामने उदय हो रहा था। रात्रि की प्रथम घड़ियों में शिविर के मुख्य द्वार पर पहुँचकर जब उन्होंने यह बताया कि वे मुगल सेना की एक टोली हैं और कार्यलग्न सैनिकों को विराम देने जा रहे हैं, वे बिना सन्देह के अन्दर चले जाने दिये गये। मुगल सेनाएँ ऐसे नये रंगरूटों से भरी पड़ी थीं। यह रमजान का महीना था जब ख़ान और उसका परिवार दिन का रोजा खोलने के बाद अर्धरात्रि से

पहले सो गये थे। चन्द्रमा ग्रस्त हो गया था। शिविर ग्रौर ख़ान का मकान सन्नाटे ग्रौर ग्रन्धकार से ग्राच्छादित था। कुछ दीपक टिमटिमा रहे थे ग्रौर बता रहे थे कि लोग कहाँ ठहरे हुए हैं ग्रौर किन स्थलों पर नियुक्त हैं। ऐसे समय करीब ५० ग्रादमी लेकर शिवाजी ने बिना शब्द किये रसोई की पिछली निर्बल दीवार में सेंध लगाकर घर में प्रवेश किया। वे कपड़ों के परदों को काटकर शयनागारों में घुस गये ग्रौर पुरुषों एवं स्त्रियों को उनकी चारपाइयों पर ही कत्ल करने लगे। लोगों ने शोर मचाया, चिल्लाये ग्रौर सब हक्के-बक्के हो गये। इस प्रकार भयानक विनाश करके शिवाजी ग्रौर उनका दल जल्दी से भाग निकले। शिवाजी के कुछ ग्रादमी भागते हुए मार डाले गये परन्तु ग्रधिकांश सकुशल सिंहगढ़ वापस पहुँच गये। इसका पता बाद में चला कि ख़ान उन मारे गये लोगों में न था। उसके हाथों की ग्रँगुलियाँ कट गईं ग्रौर वह बच निकला। उसका एक पुत्र, एक ग्रधिकारी ग्रौर छः महिलाएँ मारी गईं। उसके दो पुत्र ग्रौर ग्राठ दासियाँ घायल हो गईं। इस प्रकार शिवाजी ने शाइस्ताखाँ से तीन वर्ष तक गृहहीन भगोड़ा बनाये रखने का बदला ले लिया।[४]

यशवन्तसिंह मुख्य मुगल शिविर के पास ही था परन्तु ग्रपने ग्रधिकारी को बचाने के लिए उसने उँगली भी न उठाई। ग्रगले दिन प्रातःकाल मुगल सिंहगढ़ पर जबर्दस्त हमला करने के लिए चल पड़े परन्तु गढ़ की तोपों ने उनको बहुत क्षति पहुँचाई। गढ़ पर घेरा डालना ग्रौर शिवाजी को ग्रधीन करना दीर्घकालीन कार्य था ग्रौर इसे ग्रव्यावहारिक समझा गया क्योंकि वर्षा-ऋतु समीप थी। इस भयानक ग्रनुभव के बाद शाइस्ताखाँ ने पूना को ग्ररक्षित समझा ग्रौर वर्षा व्यतीत करने ग्रौरंगाबाद चला गया। वर्षा के ग्रन्त में यशवन्तसिंह ने सिंहगढ़ पर घेरा डालने का प्रयत्न किया परन्तु निराशाजनक प्रयास समझकर छोड़ दिया। मराठा वीर के इस साहसी

---

४ देखो शिव-चरित्र-साहित्य, ५,१२।

कार्य से उसका गौरव बढ़ गया। दुश्मन उसे 'शैतान' का अवतार समझने लगे जिससे कोई स्थान सुरक्षित न था और कोई कार्य कठिन न था। समस्त देश आश्चर्य और आतंक के साथ इसे अपौरुषेय कार्य कहता था। ६ मई को यह समाचार औरंगजेब के पास पहुँचा। उसका सारा परिवार और दरबार घोर दैन्य और दुःख में डूब गया क्योंकि शैतान मराठे ने साम्राज्य के प्रमुख सामन्त को अपने कौशल से इस प्रकार परास्त कर दिया था। औरंगजेब ने तुरन्त शाइस्ताखाँ की बदली बंगाल को कर दी। १ दिसम्बर, १६६३ को खान अपने नये प्रान्त के लिए दक्षिण से रवाना हो गया। शिवाजी विख्यात वीर हो गये जिन्होंने अत्यन्त चतुराई से दो महान् शक्तियों का सामना किया था। परन्तु आगे और भी कुछ होने वाला था।

४. **सूरत की लूट**—शिवाजी निश्चिन्त बैठने वाले व्यक्ति न थे। उनके तीव्र मस्तिष्क ने मुगलों के विरुद्ध नए प्रहारों की योजना बनाली। पूना पर रात्रि का आक्रमण यद्यपि बहुत चमत्कारी था परन्तु उससे साम्राज्य की कोई विशेष हानि न हुई थी। १६६३ ई० की वर्षा-ऋतु में शिवाजी के गुप्तचर और कार्यकर्त्ता पूना और बुरहानपुर के बीच के मुगल प्रदेश पर आँख लगाए हुए थे। वे निर्बलतम स्थान की खोज में थे, जहाँ पर नवीन प्रहार किया जा सके क्योंकि उनसे अब प्रत्यक्ष युद्ध छिड़ गया था। उन्होंने चतुर गुप्तचरों की एक टोली भेजी और समीपस्थ या दूरस्थ प्रदेशों में मुगल सैनिक-व्यवस्था का विवरण प्राप्त कर लिया, और तब उन्होंने सूरत पर प्रहार करने का निश्चय कर लिया। जैसा कि कवि भूषण ने कहा है, वे सम्राट् के हृदय में भयंकर ज्वाला उत्पन्न करना और उसकी ख्याति सदा के लिए मलिन करना चाहते थे। योजना सर्वथा गुप्त रखी गई। किसी को पता नहीं था कि शिवाजी कहाँ जा रहे हैं। उन्होंने प्रकट किया कि वे दक्षिण की ओर जा रहे हैं परन्तु वास्तव में वे उत्तर की ओर चल पड़े।

शिवाजी के जीवन के अब हम द्वितीय दशक में हैं। उनका उदीयमान चन्द्र सदा पूर्णता को प्राप्त होता गया। प्रति वर्ष नई

समस्याएँ और नवीन संकट उपस्थित हो जाते, सफल पलायन सम्पादित होते और शनैः-शनैः अधिक गौरव का लाभ होता। उनका मस्तिष्क सदैव नवीन साहसिक कार्यों की खोज में रहता था। बड़ी कष्टप्रद यात्रा के बाद गुप्तचरों का नेता बहिरजी नायक दूरस्थ सूरत के वैभव का समाचार लाया। यह भारत का समृद्ध प्रवेश-द्वार था। यह वह बन्दरगाह था, जहाँ से सहस्रों मुस्लिम यात्री मक्का जाते और वापस आते थे। मुगल भारत का अधिकांश समुद्री व्यापार सूरत के मार्ग से होता था, जिससे उसका प्रभुत्व शाही दिल्ली से भी बढ़ा हुआ था। इस बन्दरगाह पर कम से कम २० व्यापारी रहते थे—हिन्दू-मुसलमान दोनों—जिनकी हैसियत करोड़ों की थी और कम से कम दो-तीन ऐसे थे जिनकी गिनती संसार के सर्वाधिक धनी व्यक्तियों में थी। केवल एक मुल्ला अब्दुल जाफर के ही बहुमूल्य चीजों से लदे हुए १९ जहाज थे।

शिवाजी ने विचार करना आरम्भ किया। क्या वे ऐसे स्थान पर आक्रमण में सफल होंगे जो लगभग २०० मील दूर था, जहाँ के लिए अच्छी सड़क या सन्देशवाहन के सरल साधन उपलब्ध न थे। सूरत को एकमात्र राजमार्ग बुरहानपुर होकर जाता था, जिससे शिवाजी को दूर रहना जरूरी था। उन्होंने दाँडा राजपुरी और पेन के समीप पहले से दो सैनिक शिविर स्थापित कर लिये थे। उन्होंने इसका उद्देश्य यह प्रसिद्ध किया कि वे सिद्दियों और पुर्तगालियों का दमन करना चाहते हैं। नासिक के पास उन्होंने एक और शिविर स्थापित किया। इन सब में उनके स्वयं के चुने हुए उत्तम सैनिक थे। पूर्व-प्रेषित उचित आदेशानुसार इन विशेष रूप से तैयार सिपाहियों की टोलियाँ, जिनकी कुल संख्या करीब ४ हजार थी, पूर्वनिर्णीत अवसर पर चल पड़ीं। शिवाजी स्वयं लगभग १ जनवरी, १६६४ को नासिक से चले। उनके सैनिकों ने महुली, कोहज, जौहर और रामनगर होकर प्रयाण किया। मंगलवार ६ जनवरी को सूरत से २९ मील दक्षिण में गनदेवी में सब टोलियाँ आपस में मिल गईं। विद्युत के प्रकाश की भाँति उनके आगमन का समाचार सूरत पहुँचा और

प्रत्येक मनुष्य का हृदय भय और चिन्ता से व्याकुल हो गया। बहुत से लोग सुरक्षा के लिये अपने परिवारों सहित नगर से भाग गये।

उस समय सूरत के गढ़ की दीवार बहुत मजबूत न थी और नगर, जनता के मुख्य भाग और व्यापार-केन्द्र सहित, दीवारों के बाहर था। नगर का राज्यपाल इनायतुल्लाखाँ था जो नगर की रक्षा के लिये कोई सेना न रखता था, यद्यपि इस व्यय के निमित्त उसे भत्ता मिलता था। गनदेवी से शिवाजी ने पहले ही विशेष कार्यकर्ता भेज दिये थे ताकि वे राज्यपाल और व्यापारियों को उनके प्रस्तावित आगमन की सूचना दे दें और विश्वास दिला दें कि वे किसी की हानि नहीं चाहते हैं। चूँकि सम्राट से उनका खुला युद्ध हो रहा है जिसके लिये धन की आवश्यकता है और यह धन उन्हें उन लोगों से ही प्राप्त करना है जो सम्राट की छत्रछाया में व्यापार करते हैं और दे सकते हैं।[५] उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सम्राट ने उन्हें पूना स्थित अपने घर से निकाल दिया है और उनका कोष और सम्पत्ति छीन ली है। शिवाजी को सूरत से अच्छी धनराशि की आशा है—करीब ५० लाख, जिसको नगर के धनी व्यापारी चन्दा करके आसानी से इकट्ठा कर सकते हैं। शिवाजी ने राज्यपाल को भी इसी आशय के पत्र लिखे और कुछ विशिष्ट व्यापारियों को भी, जिनमें चन्दे की प्रार्थना की गई थी और इंकार करने पर होने वाले परिणामों की चेतावनी दी गई थी। उन्होंने कहा—"कलहम सूरत में होंगे, आप मुझ से मिलें और लिखित धन दे दें। यदि आप आज्ञा-पालन में असमर्थ रहे तो धन-संग्रहार्थ हमें कठोर उपायों का अवलम्बन करना होगा जिसका उत्तरदायित्व आप पर होगा।" राज्यपाल ने उद्दण्डता भरा उतर अपने प्रतिनिधि के साथ भेज दिया, जिस पर शिवाजी ने सन्देशवाहक को नजरबन्द कर लिया,

---

५ यह पूरा विवरण कई सूत्रों से एकत्रित किया गया है, जो अब प्रकाशित हो गये हैं—फैक्टरियों के रेकर्ड, विदेशी जीवनियाँ, मनूची, डचों के विवरण आदि।

और स्वयं अगले दिन बुधवार ६ जनवरी को ११ बजे दोपहर को पहुँच गये। बुरहानपुर द्वार के बाहर उन्होंने अपने अनुचरों के साथ डेरा डाल दिया।

शिवाजी की चेतावनी पर किसी ने ध्यान नहीं दिया और उनसे मिलने कोई नहीं आया। नगर में भारतीय व्यापारियों के अतिरिक्त नदी के घाट पर दुर्गाकार घेरों के अन्दर अँग्रेज और डच लोगों की दुकानें थीं। परन्तु शिवाजी तोपखाना लेकर मुट्ठी भर विदेशी व्यापारियों से युद्ध करने नहीं आये थे, जिनके पास माल तो पर्याप्त था परन्तु सोना-चाँदी न था। यह तर्क करना उचित नहीं है कि वे उनसे डर गये और इस कारण उन्हें नहीं छेड़ा। राजापुर का अनुभव अभी उन्हें स्मरण था। यदि सूरत के राज्यपाल ने ही नगर या गढ़ की रक्षा करने की ठान ली होती तो वे उससे भी लड़ने की दशा में न थे। राज्यपाल भयभीत होकर रक्षा के लिये गढ़ में भाग गया और नगर को मराठों की दया पर छोड़ दिया। इसीलिए आगे चल कर गड़बड़ी पैदा हुई। शिवाजी के इस कदम का उद्देश्य सम्राट को खुली चुनौती देना और उन पर लादे गये युद्ध के लिए साधन प्राप्त करना था।

थेवेनॉट लिखता है—"कपुचिन पादरियों के आश्रम को छोड़ कर सारा नगर लूट लिया गया। लुटेरों ने आश्रम को कोई हानि नहीं पहुँचाई। पहिले ही दिन सायंकाल को आश्रम का अध्यक्ष फादर ऐम्ब्रोज सूरत में निवास करने वाले गरीब ईसाइयों के प्रति करुणार्द्र हो राजा के पास गया और प्रार्थना की कि उनके प्रति किसी प्रकार की हिंसा न होने दे। शिवाजी ईसाई पादरी के प्रति सम्मान रखते थे, उन्होंने उसे अपनी सुरक्षा में ले लिया और जो कुछ भी उसने ईसाइयों के हित में कहा, उसे स्वीकार कर लिया।"[६]

अपने आगमन के दिन शिवाजी ने कुछ स्थानीय व्यापारी बुला भेजे और अपने सैनिकों को यह कार्य सौंपा कि यथासम्भव शान्तपूर्ण

---

६ सेन लिखित "फौरिन बायग्रैफीज", पृ० १७९।

आग्रह से उनसे धन निकाला जाय। कुछ व्यापारियों को बन्दी बनाकर रोक लिया गया। वृहस्पतिवार ७ जनवरी को डरपोक इनायतुल्ला ने एक नवयुवक के हाथ शिवाजी के पास बनावटी शान्ति-प्रस्ताव भेजा। नवयुवक शिवाजी से बात करता हुआ उनके समीप आ गया और अकेले में एक विशेष सन्देश कहने के बहाने अकस्मात् एक गुप्त कटार निकालकर शिवाजी को मारने के लिए झपटा। एक मराठा अंगरक्षक ने झट से उसका सिर काट लिया, फिर भी वह राजा के ऊपर जा गिरा। शिवाजी के वस्त्रों पर रक्त के धब्बे दीख पड़े। अंगरक्षक नगर-निवासियों और एकत्रित बन्दियों का कत्ले-आम करने के लिए उद्यत थे परन्तु शिवाजी ने कठोरता से सब को रोक दिया और केवल कुछ ज्ञात अपराधियों के हाथ कटवा दिये गये। यदि राज्यपाल और तीन मुख्य व्यापारी—हाजी सैयद बेग, बहिरजी बोहरा और हाजी कासिम—शिवाजी की माँग के अनुसार उपस्थित हो जाते और न्यायसंगत ढंग से मुक्ति-धन के लिए बातचीत करते तो आगे होने वाले संकटों की नौबत न आती। शिवाजी की हत्या करने के राज्यपाल के निकृष्ट षड़यन्त्र के कारण उनकी बदले की भावना भड़क उठी और उन्होंने आज्ञा दी कि आमतौर से धनीमानी व्यक्तियों के घर लूट लिए जायँ और नगर के कई मुहल्लों में आग लगा दी जाये। ८ और ९ जनवरी को पूरे दिन बड़े जोरों से यह लूट और विनाश का कार्य चलता रहा। अग्नि ने अनेक घर स्वाह कर दिये और नगर का दो-तिहाई भाग नष्ट हो गया। "अग्नि ने रात्रि को दिन के समान बना दिया और धुएँ से दिन रात बन गया। यह धुआँ इतना घना था कि उसने एक बड़े बादल की भाँति सूर्य को छिपा दिया।" अँग्रेज पुजारी के इस वर्णन को कवि भूषण ने कवित्व-पूर्ण ढंग से वर्णन किया है।[७]

घरों और सन्दूकों के किवाड़ मराठों ने तोड़ डाले और जितना लूट का माल उनके हाथ लगा, उठा ले गये। इस लूट का कोई

---

७ "शिवराज भूषण काव्य", पद २०१।

प्रतिरोध न किया गया और सब प्रकार की वस्तुओं के ढेर के ढेर शिवाजी के डेरे के सामने इकट्ठे हो गए। नगर में अपने चार दिन के निवास का उन्होंने पूरा लाभ उठाया परन्तु धन प्राप्त करने के लिए अकारण निर्दयता से वे दूर रहे।[८]

शनिवार ९ जनवरी को शिवाजी को समाचार मिला कि नगर की रक्षा के निमित्त एक मुगल सेना बड़ी तेजी से आ रही है। अगले ही दिन उन्होंने नगर को ऐसे ही अचानक छोड़ दिया जैसे अचानक वे आये थे। अपने साथ वे केवल सोना, चाँदी, मोती, हीरे और छोटे व हल्के वजन के बर्तन ले गये। कपड़ों और घरेलू वस्तुओं के जो ढेर इकट्टे किये गये थे, वे नगरवासियों में निःशुल्क वितीर्ण कर दिये गये क्योंकि उनको बेचने का समय नहीं था। जो लूट का माल वे अपने साथ ले गये, उसके मूल्य का ठीक-ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। हो सकता है कि शिवाजी को भी उसके यथार्थ अंकन का कभी अवकाश न मिला हो। परन्तु यह राशि एक करोड़ के ऊपर अवश्य रही होगी। इसकी दूनी भी हो सकती है। यह लूट सीधे रायगढ़ भेजी गई, जिसका उपयोग सरकार की भावी राजधानी के किलेबन्दी के लिए किया गया। मलवन का विशाल-काय सिंधु दुर्ग इसी लूट से लगभग उसी समय निर्मित हुआ था। शिवाजी के चले जाने के एक सप्ताह बाद खानदेश से मुगल सेना सूरत पहुँची और देखा कि सूरत सर्वथा बे-सूरत हो गया था।[९]

५. बीजापुरी हलचल; बाजी घोरपड़े का दमन—रायगढ़ में लौटने के एक सप्ताह बाद शिवाजी को दुःखद समाचार मिला कि शिकार खेलते हुए २३ जनवरी, १६६४ को तुंगभद्रा नदी के दक्षिण में बसवपट्टन के समीप एक दुर्घटना से उनके पिता का देहान्त हो गया। इस घटना के कारण यह आवश्यक है कि बीजापुर से शिवाजी के सम्बन्ध और उनमें उनके पिता के कार्य का पुनः उल्लेख किया

---

८ देखिये सरकार लिखित "शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स", पृ० १००।

९ बखरों में "सूरत बेसूरत" शब्दों में आम वर्णन है।

जाय। सितम्बर १६६० में शिवाजी ने पन्हाला बीजापुर को वापस कर दिया और उस राज्य से एक प्रकार की क्षणिक विराम-सन्धि कर ली ताकि वे अपना ध्यान शाइस्ताखाँ के आक्रमणों की ओर लगा सकें। उन्होंने अपना अधिकार राजापुर और दक्षिण कोंकण पर दृढ़ कर लिया। उन्होंने उस संघर्ष से लाभ उठाया जो उस समय अली आदिलशाह और उसकी माता बड़ी साहिबा में सत्ता के लिए चल रहा था। १६६० ई० के अन्त में अली ने पूर्ण सत्ता जमा ली और उसकी माँ अप्रसन्न होकर मक्का चली गई। मई १६६१ से जून १६६२ तक वह बाहर रही। इस बीच शाहजी को मध्यस्थ बनाकर आदिलशाह ने शिवाजी से मित्रता करने का प्रयास किया। अफजलखाँ की घटना से दो या तीन वर्ष तक शिवाजी का बीजापुर से खुला युद्ध रहा था, इसे हम देख चुके हैं। इस समय शाहजी का आचरण सर्वथा सन्देह-मुक्त न था। ऊपर से उन्होंने पुत्र के आचरण के प्रति अपने उत्तरदायित्व से इंकार किया परन्तु शिवाजी के विद्रोह का दमन करने में शाह को कोई सहायता भी न दी। वह यह कार्य कैसे कर सकते थे? आखिर शिवाजी उनके पुत्र ही तो थे! पुत्र प्रशंसनीय उत्साह की सफलता से प्रकाश में आ गया और पिता का व्यक्तित्व पृष्ठभूमि में पड़ गया। प्रारम्भ में प्रत्येक सफल क्रान्तिकारी विद्रोही ही होता है और संकट एवं साहसपूर्ण जीवन के बाद वह वैधानिक राजा बन जाता है।

शाहजी के देहान्त से शिवाजी के जीवन का तीसरा और अन्तिम दौर प्रारम्भ होता है। शाइस्ताखाँ के वापस बुलाये जाने पर सम्राट् ने अपने पुत्र राजकुमार मुअज्जम को दक्षिण का राज्यपाल नियुक्त किया और यशवन्तसिंह को उसका मुख्य सहायक। वे दोनों शिवाजी के विरुद्ध प्रबल उपाय करने के प्रति उदासीन थे परन्तु शिवाजी ने एक क्षण का भी विश्राम न किया। वे और नेताजी पालकर दोनों गिद्धों की भाँति अहमदनगर और औरंगाबाद के बीच के मुगल प्रदेश पर टूटते रहे। शिवाजी की नौ-सेना ने अब यात्री जहाजों को तंग करना शुरू कर दिया, जो सूरत से मक्का जाते थे। यह माना जाता था कि

शिवाजी कोई अमानुषी व्यक्ति है जिसके पर हैं और जो उसे कहीं भी पहुँचा देते हैं। कहा जाता था कि उसमें अदृश्य हो जाने की शक्ति है और जहाँ पर वह चाहे अदृश्य होकर विचर सकता है। अँग्रेजी व्यापारियों ने लिखा है—"खबर यह मिली है कि शिवाजी हवाई पक्षी है जिसके पंख हैं। नहीं तो यह असम्भव था कि वह एक ही समय में अनेक स्थानों पर उपस्थित होता। जिन नगरों के पास न तो रक्षा-साधन हैं न रक्षक, उनको लूटता-जलाता हुआ वह दौड़ते-दौड़ते भोजन प्राप्त करता है। दक्षिण गृह-युद्ध में फँसा हुआ है और शिवाजी विजेता के रूप में अनियन्त्रित शासन करता है। समीप के सब राजाओं और सामन्तों पर उसका आतंक है। उसकी शक्ति दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है। वह स्फूर्तिमान और कर्मशील है। वह अद्भुत परिश्रम करता है और अपने मुख्य व्यक्तियों से भी परिश्रम लेता है। इसी कारण वह इधर से उधर अविश्वसनीय चातुर्य से उड़ता रहता है।"

इस समय (१६६४ ई० में) शिवाजी ने सम्राट् के अधिकारियों और परामर्शदाताओं को एक बहुत सख्त चिट्ठी लिखी, जिसमें उन्होंने लिखा, "आप भली-भाँति जानते हैं कि उन प्रसिद्ध सेनापतियों और योग्य परामर्शदाताओं का क्या हाल हुआ है जिन्हें सम्राट ने गत तीन वर्षों में मेरे देश और मेरे गढ़ों को हस्तगत करने के लिए भेजा है। यह विचित्र बात है कि आप इस कार्य की असम्भवता को नहीं समझते। आपके अधिकारियों को सर्वथा मनगढ़न्त वृत्तान्तों के भेजने में लज्जा नहीं आती है। मेरा घर यहाँ पर कल्याणी और बीदर के नगरों की तरह नहीं है जिन पर सुविधा से आक्रमण हो सका और हस्तगत किये जा सके। मेरे देश में ऊँची पर्वतमालाएँ हैं, जो ६०० मील लम्बी और १२० मील चौड़ी हैं। ६० नवनिर्मित और अजेय दुर्ग इसकी रक्षा करते हैं। अफजलखाँ मेरे विरुद्ध आया और विवश होकर नष्ट हो गया। आपके महान् अमीर-उल-उमरा शाइस्ताखाँ ने तीन वर्ष तक घोर परिश्रम किया और भयानक विपत्ति सही तथा अपमानित होकर चला गया। अपने देश की रक्षा करना मेरा

धर्म है और यह मैं करूँगा। ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरे प्यारे देश का कोई आक्रान्ता अब तक फूलाफला नहीं है।"[१०]

इसका उल्लेख पहले हो चुका है कि अली आदिलशाह ने पन्हाला का गढ़ शिवाजी से वापस ले लिया। १६६३ ई० के आरम्भ में शाह ने कर्नाटक के अभियान पर प्रस्थान किया और बंकापुर पर पड़ाव डाला। उसका संकल्प था कि वह दक्षिण कोंकण को पुनः हस्तगत कर लेगा, जिसे शिवाजी ने अधिकृत कर लिया था। उसका यह भी संकल्प था कि वाड़ी के सावन्त को पुनः अधीन कर लेगा जो शिवाजी से मिल गया था। आदिलशाह की उपस्थिति से सावन्त डर गया और विंगुर्ला के डच व्यापारी और गोआ के पुर्तगाली भी डर गये। इस कदम का शिवाजी ने तुरन्त विरोध किया। वे स्वयं मई में कुदाल पहुँच गये और उन सब की भर्त्सना की जिन्होंने उनका साथ छोड़ दिया था। बहुमूल्य उपहार भेंट कर डच और पुर्तगाली लोगों ने उनकी सद्भावना प्राप्त कर ली। शिवाजी ने कुदाल में एक सबल सेना नियुक्त कर दी और जून में राजगढ़ वापस आ गये।

अपनी सत्ता के प्रति इस प्रत्यक्ष अपमान को आदिलशाह न सह सका। उसने अपना सारा प्रयास कुदाल को पुनः वापस लेने के लिए केन्द्रित कर दिया और इख़लसखाँ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना कुदाल को पुनः जीत लेने के हेतु भेजी। उसी समय उसने अपने मन्त्री ख़वासखाँ को आज्ञा दी कि वह बीजापुर से एक सुसज्जित सेना लेकर इख़लसखाँ की सहायता के लिये प्रयाण करे। मुधोल के बाजी घोरपड़े को भी उसी समय आज्ञा मिली कि वह कुदाल जाय। शिवाजी का सौतेला भाई एकोजी भी तंजौर से शिवाजी का विरोध करने और उनके अधिकार से कुदाल छीनने के लिए पहुँच गया। वास्तव में यह एक जबर्दस्त जोड़-तोड़ था जिसका पूरा-पूरा विवरण शिवाजी के पास पहुँचता रहता था क्योंकि इस एकत्रीकरण में कई

---

१० सरकार लिखित "हाउस ऑफ शिवाजी", पृ० ९८। बीजापुरी सरदारों के लिए देखिए पृ० ५५।

मास लग गये। शिवाजी संकट के मुकाबले के लिए उद्यत थे। उन्होंने उन सहयोगियों पर वीरतापूर्वक एक-एक कर आक्रमण किया। शिवाजी के विरुद्ध आदिलशाह का यह अन्तिम प्रहार था।

१६६४ ई० की शरद् ऋतु में आदिलशाह की योजनाएँ परिपक्व हो गईं और उसी वर्ष के नवम्बर मास में शिवाजी ने अपना प्रथम प्रहार मुधोल पर अकस्मात् आक्रमण करके किया। यह उनके चचेरे भाई कट्टर शत्रु बाजी घोरपड़े का स्थान था जो आदिलशाह का कट्टर समर्थक था। वह स्वराज्य की ओर शिवाजी की प्रगति का सर्वथा विरोधी था, जिसने १६४८ ई० में जिंजी में शाहजी के पकड़वाने में मुख्य हाथ बँटाया था। यह घटना शिवाजी के हृदय में चुभ रही थी।

शिवाजी की योजना थी कि कुदाल पर आक्रमण में खवासखाँ का साथ देने से घोरपड़े को रोका जाय। यह ज्ञात होने पर कि शिवाजी पूरे वेग से मुधोल की ओर आ रहे हैं, बाजी राजा ने वह स्थान छोड़ दिया और अपने दल-बल सहित वीरता से युद्ध करने बाहर आ गया। भयंकर रक्तपात हुआ, जिसमें बाजी और उसके कुछ अधिकारी मारे गये। तदुपरान्त शिवाजी ने मुधोल पर अधिकार कर लिया और उसको लूट लिया। शिवाजी को वह भारी धनराशि प्राप्त हो गई जो शान्ति के दीर्घ समृद्ध-काल में एकत्रित की गई थी। शिवाजी के पास व्यर्थ नष्ट करने के लिए समय न था क्योंकि उन्हें अपने दूसरे शत्रु खवासखाँ को समाप्त करने की चिन्ता थी जो बीजापुर से कुदाल की ओर चल चुका था। बाजी के कनिष्ठ पुत्र मालोजी घोरपड़े को मुधोल का सामन्त बनाया गया[११] और शिवाजी

---

११ वर्षों बाद शिवाजी ने मालोजी को इस प्रकार लिखा, "यह अफसोस की बात है कि मेरे पिता ने तुम्हारे पिता के साथ जितनी भलाई की, उस सब को भूलकर मेरे पिता को पकड़वाने में उन्होंने मुस्तफाखाँ की मदद की। वह तुम्हारा पिता ही था जिसने मेरे पिता को बन्दी करके मुस्तफाखाँ के हाथ में दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि मेरे और तुम्हारे परिवार में कटु शत्रुता की बुनियाद पड़ी और जिसका फल रक्तपात हुआ। मेरे लोगों ने तुम्हारे पिता को मार डाला किन्तु अब समय आ गया है कि पिछली गलतियों को सुधारा जाय। ("शिवाजी सॉवेनिर", पृ० १४६)।

तुरन्त उस दिशा को मुड़ गये जिधर से खवासखाँ के ग्राने की सूचना मिली थी। उस पर ग्रकस्मात् ग्राक्रमण किया गया। इस सम्बन्ध में डच व्यापारियों ने लिखा है—"ग्रपने चुने हुए सैनिकों को लेकर शिवाजी खानापुर को लूटने गया था। इस समय वह खवास खाँ की सेना से एक मील से भी कम दूर होकर निकला पर सेनानायक (ख़वास खाँ) हिला भी नहीं। खान इतना सख्त घायल हो गया था कि वह शीघ्र ही मर गया।[१२] उसके २०० ग्रादमी मारे गये ग्रौर सारा नकद रुपया छिन गया। शिवाजी ने ग्राराम से खानपुर, हुबली ग्रादि को लूट लिया ग्रौर उचित सुरक्षा में माल को भेज दिया।"[१३] स्वयं शिवाजी ने इस विषय में लिखा है, "इस पर खवासखाँ मेरी ग्रोर बढ़ा ग्रौर ग्रपनी ग्रोर से बलपूर्वक मैंने ग्राक्रमण का उत्तर दिया। घोर युद्ध हुग्रा, जिसमें शत्रु की पूर्णतया पराजय हुई ग्रौर उसके कुछ उच्च वीर ग्रधिकारी मारे गये। वह बीजापुर की ग्रोर भाग गया। तब मैं सामन्त को ग्रपने पक्ष को ग्रकारण त्यागने के लिए दण्ड देने के लिए घूमा, उसके प्रदेश को लूट लिया ग्रौर उसके गढ़ों ग्रौर नगरों को हस्तगत कर लिया। चूँकि पुर्तगालियों ने उसको शरण दी, मैंने बारूद से उनके पोडा के गढ़ को उड़ा दिया ग्रौर केवल शक्ति से उसको हस्तगत कर लिया। उन्होंने शान्ति की याचना की ग्रौर कुछ तोपें मुझे दीं। पीताम्बर शेनवाई दोनों पक्षों की ग्रोर से बातचीत करने के लिए दूत के रूप में ग्राया। मैंने सावन्त के प्रदेश का ग्राधा भाग ग्रपने राज्य में मिला लिया ग्रौर ग्राधा उसे वापस दे दिया। मैंने उसे स्मरण दिलाया कि वह भोसले वंश का है ग्रौर देश तथा धर्म की रक्षा करने में उसे मेरे साथ होना चाहिए।"[१४]

इस युद्ध में बीजापुर के पक्ष में कार्य करने के लिए शिवाजी

---

१२ खवासखाँ की मृत्यु का यह विवरण मिथ्या है। वह बहुत समय तक बीजापुर की सेवा में रहा ग्रौर २० जनवरी, १६७६ में कत्ल किया गया।

१३ डा० बालकृष्ण लिखित "शिवाजी द ग्रेट", खण्ड १, पृ० ५३३।

१४ "शिवाजी सॉवेनिर", पृ० १४४।

का सौतेला भाई एकोजी बंगलौर से आया परन्तु उसकी सेना बहुत थोड़ी-सी थी। शिवाजी ने उसके इस निन्दनीय आचरण की ओर ध्यान देने की चेष्टा भी न की, जब तक कि १० वर्ष बाद शिवाजी का अभिषेक न हो गया। इस भ्रातृ-विद्रोह के लिए दण्ड देने का कार्य उन्होंने भविष्य के लिए सुरक्षित रख लिया। आदिलशाह ने एकोजी को उसकी सेवाओं का पुरस्कार दिया।[१५]

सबल नौ-सेना के लाभों को शिवाजी पहले ही समझ गये थे, जिसकी सहायता से योरोपीय देशों ने, जो भूमि पर इतने निर्बल थे, पश्चिम तट पर स्थायी बस्तियाँ बना ली थीं और अपार धन विदेशी व्यापार द्वारा इकट्ठा कर लिया था। उनको नियन्त्रण में रखने के लिए मलवन के समीप अभेद्य चट्टान पर सिन्धु दुर्ग नामक चमत्कारिक गढ़ का निर्माण कर डच और पुर्तगाली बस्तियों के पास अपना नाविक अड्डा बना लिया। २५ नवम्बर, १६६४ को यह महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ हुआ और इसकी समाप्ति उस वृहत् धन-राशि के कारण सम्भव हो सकी जिसे शिवाजी ने अनेक व्यापारिक नगरों की सम्पत्ति लूटकर संग्रह किया था। देश ने शिवाजी के साहसी पराक्रमों का स्वागत किया और ईश्वर को धन्यवाद दिया कि अन्त में उसने उनके लिए एक रक्षक भेज दिया है।

"युद्ध का व्यय उठाने के लिए युद्ध" शिवाजी के राष्ट्रीय शासन का नियम था। आप इसको चाहें जो कुछ कहें—लूट, डाका या आधुनिक गणतन्त्रीय भाषा में वैधानिक युद्ध-दण्ड जो विजयी सरकार लगाती है। इसको हैम्पडेन के समय का टनेज और पाउण्डेज भी आप कह सकते हैं। सिन्धु दुर्ग के तैयार होने के पहले शिवाजी उस बन्दरगाह में अपने जहाज बनवाते थे और अपनी शक्ति प्रदर्शित करने के लिए समस्त समुद्र-तट पर उनको भेजते थे। दक्षिण की ओर प्रथम साहसिक अभियान का नेतृत्व उन्होंने स्वयं किया। ८ फरवरी, १६६५ की सुबह बेदनूर तट तक सुदूर दक्षिण में वे बसरूर के

---

१५ बी० आइ० एस० एम० क्यू० ११, पृ० ४७।

बन्दरगाह में अचानक प्रगट हुए । उनके साथ जहाजों का एक बड़ा बेड़ा था जिसमें ८५ मध्यम आकार के और ३ बड़े आकार के युद्धपोत थे। उस बन्दरगाह से उन्होंने एक दिन में लूट की विशाल राशि प्राप्त कर ली और कारवार वापस आ गये। मार्ग में शिवरात्रि के दिन शिवगोकर्ण[१६] पर उन्होंने महाबलेश्वर की प्रतिमा की भक्तिपूर्वक पूजा की। आनन्दोत्सव के मध्य में उन्हें यह भयंकर समाचार मिला कि मिर्जा राजा जयसिंह ने उनके राज्य पर आक्रमण कर दिया है। इस नए संकट का सामना करने के लिए वे स्थल-मार्ग से शीघ्र वापस रवाना हुए। यह था जीवन उस महान् वीर नेता का—उसकी प्रतिभा सफलता का कारण थी, सफलता वैभव का कारण थी और इसी के साथ नवीन संकटों को जन्म मिलता था। इन संकटों को अपनी अद्भुत इच्छा-शक्ति से जीत कर वह सुरक्षा की स्थापना करते थे। कुदाल में गत वर्ष उन्होंने जो सफलता प्राप्त की थी और उसके शासक सावन्त पर जो प्रभाव था वे सर्वथा उलट गये। वही पीताम्बर शेनवाई अब सावन्त की ओर से शिवाजी के विरुद्ध उस दरबार के साथ एक संघ बनाने के लिए एक नई सन्धि की व्यवस्था करने बीजापुर जा रहा था। सावन्त को एक और कड़ा सबक सिखाने की आवश्यकता थी।

६. जयसिंह और शिवाजी का सामना—सूरत पर आकस्मिक आक्रमण करके शिवाजी सम्राट् के क्रोध के पात्र हो गये थे। औरंगजेब ने मुअज्जम और यशवन्तसिंह को वापस बुला लिया और मिर्जा राजा जयसिंह के नेतृत्व में एक नवीन अभियान भेजा। दिलेरखाँ सहायक के रूप में साथ था। इन्हें पूरी तरह सुसज्जित कर दिया गया था ताकि वह शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति का समूल नाश कर दें और बीजापुर को अन्तिम रूप से फतह कर लें। औरंगजेब के सामन्तों में जयसिंह और दिलेरखाँ योग्यतम और कट्टर राजभक्त थे। उन्होंने अपने कर्त्तव्य को हृदय से स्वीकार कर

१६ महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश ८,३३ में इस गोकर्ण मन्दिर का उल्लेख किया है।

लिया था। अपने जीवन में जयसिंह पराजय से परिचित न हुआ था। १६१७ ई० में १२ वर्ष की अवस्था में उसने दिल्ली के सम्राट् की सेवा में प्रवेश किया और उत्तर में बलख से दक्षिण में बीजापुर तक और पश्चिम में कांधार से पूर्व में मुंगेर तक साम्राज्य के विभिन्न अभियानों में अपनी विशिष्टता प्रमाणित की थी। शाहजहाँ के राजत्व-काल में प्रत्येक वार्षिक जन्मोत्सव के अवसर पर किसी न किसी विजय के उपलक्ष में उसको पुरस्कार मिला था। सम्राट् के दरबार में जयसिंह का वही सम्मानित स्थान था जो बादशाह के पुत्रों का था। कूटनीतिज्ञता में भी वह युद्ध-कला से कुछ कम चतुर न था जिसके लिए उसका सहायक दिलेरखाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय था। साम्राज्य के सम्मुख प्रस्तुत किसी भी घोर विपत्ति में केवल जयसिंह ही सम्राट् का अन्तिम सहायक था। उसकी वाणी मधुर और विश्वासोत्पादक थी और अपनी राजस्थानी के अतिरिक्त वह तीन विदेशीय भाषाएँ—तुर्की, फारसी और उर्दू—बोल सकता था। इस समय वह ६० वर्ष का था और अपने दीर्घ भूतकालीन अनुभव के द्वारा उसने राजनीतिज्ञ की गम्भीरता और संयम का विकास कर लिया था। प्रस्तुत आज्ञा को उसने बहुत सोच-विचार कर स्वीकार कर लिया क्योंकि उसके सामने अफजलखाँ, शाइस्ताखाँ और यशवन्तसिंह के दुखद उदाहरण उपस्थित थे। "जो कार्य मैंने स्वीकार किया है, वह मुझे एक क्षण भी आराम और शान्ति नहीं देता है"—ये शब्द हैं जो उसके द्वारा सम्राट् को लिखे गये प्रत्येक पत्र में पाये जाते हैं।

औरंगजेब के जन्मोत्सव के अवसर पर ३० सितम्बर, १६६४ को इस विशिष्ट कार्य-सम्पादन के लिए विधिवत् पोशाक जयसिंह को प्रदान की गई। दिलेरखाँ के अतिरिक्त उसने अपने साथ अपने पुत्र कीरतसिंह, दाऊदखाँ कुरैशी, कई राजपूत और बुन्देले राजकुमारों को ले लिया। तोपखाने का अधिकारी निकोलो मनुची उसके साथ चला। कभी पहिले ऐसी चुनी हुई सेना ने दक्षिण में प्रवेश नहीं किया था। ९ जनवरी, १६६५ को जयसिंह नर्मदा को पार करता हुआ

१६ जनवरी को बुरहानपुर पहुँचा ग्रौर वहाँ तैयारी में कुछ दिन व्यतीत कर १० फरवरी को ग्रौरंगाबाद पहुँचा। ३ मार्च को वह पूना पहुँचा, जहाँ से यशवन्तसिंह ग्रपनी वापस यात्रा पर तुरन्त रवाना हो गया। इस समय जैसा कि हम जानते हैं शिवाजी कनारा के तट पर थे।

ग्रपने ग्राने से पहिले ही जयसिंह ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया था कि बीजापुर से शिवाजी को कोई सहायता न पहुँच सके। वास्तव में सम्राट् की ग्राज्ञा से ही इस समय ग्रादिलशाह शिवाजी से युद्ध कर रहा था ग्रौर इसी कारण कुदाल के सावन्त ने शिवाजी का पक्ष त्याग दिया था। सम्राट् ने जयसिंह से ग्राग्रह किया कि कोंकरण में वह शिवाजी का पीछा करे। इस प्रस्ताव का उसने तीव्र विरोध किया क्योंकि वह पूरी तरह जानता था कि वे ग्रगम्य पर्वतीय प्रदेश उसकी सेना की सैनिक गति-विधि के लिए सर्वथा ग्रनुपयुक्त थे। वहाँ शिवाजी के विरुद्ध किसी प्रकार की सफलता पाना कठिन ही था। परन्तु लोहगढ़ ग्रौर राजगढ़ के बीच पठार पर उसने तुरन्त ग्रपना ग्रधिकार स्थापित कर लिया। उसने पूना ग्रौर उसके ग्रास-पास शिवाजी के लिए कोई ग्रड्डा न छोड़ा। बम्वई में ग्रँग्रेजों के पास ग्रौर गोग्रा में पुर्तगालियों के पास उसने ग्रपने दूत भेजे ग्रौर उनकी नौ-सेनाग्रों को निमन्त्रण दिया कि वे विद्रोही के विरुद्ध युद्ध में उसे सहयोग दें। कर्नाटक के विभिन्न पोलीगरों को उसने विशिष्ट ब्राह्मण प्रतिनिधि भेजे। ग्रफजलखाँ का पुत्र फजलखाँ ग्रौर बेदनूर का नायक ग्रपने निर्दिष्ट दलों के साथ जयसिंह के साथ हो गये। जयसिंह ने रिश्वत ग्रौर प्रलोभन के द्वारा शिवाजी के ग्रनुयायियों को भी निर्बल करने का प्रयास किया। उसकी प्रार्थना पर सम्राट् ने उसे पूर्ण ग्रधिकार दे दिया कि वह ग्रपने भारी दायित्व के हितार्थ जो भी ग्रावश्यक समझे कार्य करे। लेखा ग्रौर हिसाब-परीक्षकों के बिना हस्तक्षेप के कोष का पूरा नियन्त्रण उसके हाथ में था। वर्षा-ऋतु के समीप होने के कारण जयसिंह ने ग्रपना मुख्य शिविर सासवड़ के समीप स्थापित किया ग्रौर ग्रपना ग्रस्थायी निवास पूना में रखा।

पश्चिमी दर्रों की रक्षार्थ ७ हजार सेना सहित उसने अपने सेनापति कुतुबुद्दीनखाँ को लोहगढ़ में नियुक्त किया।

केवल सैनिक तैयारियों पर जयसिंह का विश्वास न था। उसने निजी दूत रखे जो शिवाजी को समझाएँ कि वे स्वेच्छा से अधीनता स्वीकार करलें और अनावश्यक युद्ध से बच जाएँ। उसने शिवाजी से कहलवाया कि वह स्वयं भी हिन्दू-धर्म का उतना ही शुभचिन्तक है जितने कि शिवाजी और यदि वे इच्छापूर्वक सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर लें तो उनके हितों में वृद्धि हो जायेगी। इस आचरण में शिवाजी को किसी अपमान की गन्ध न आए, इस हेतु जयसिंह ने उस सम्मान की ओर संकेत किया जो सम्राट् की सेवा से उसने प्राप्त किया और जिसके कारण वह मुगल राज्य का मुख्य हिन्दू सामन्त बन गया था।

पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित कर ३१ मार्च को जयसिंह पूना से सासवड़ चल दिया और तुरन्त दिलेरखाँ को पुरन्दर के गढ़ का घेरा डालने में लगा दिया। राजगढ़ हस्तगत करने के लिए उसने दाऊदखाँ कुरैशी को भेजा, जहाँ पर शिवाजी का मुख्य कार्यालय और कोष था। १४ अप्रेल को पुरन्दर के एक पृथक भाग ने, जो रुद्रमल या वज्रगढ़ के नाम से विख्यात था, अधीनस्थ होने का प्रस्ताव किया। इस बीच में शिवाजी के सेनानी नेताजी पालकर ने परेण्डा को हस्तगत करने का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे। ऐसा मालूम हुआ कि पुरन्दर अधिक दिन न टिक सकेगा, यद्यपि इसके वीर रक्षक मुरारबाजी ने दिलेरखाँ को यह अनुभव करा दिया था कि शिवाजी के आदमी मुगलों का क्या कुछ कर सकते हैं।

३० मार्च को दिलेरखाँ पुरन्दर के सामने आ गया और अपनी विशाल सेना के द्वारा उसने इस पर घेरा डाल दिया। उसने गढ़ पर जोरदार गोलाबारी शुरू कर दी जिसका तुरन्त प्रभाव पड़ा। मुरारबाजी ने हमलावरों को भूखा मारने और उनके गोला-बारूद में आग लगा देने की अपनी सदा की गुरिल्ला युद्ध-कला का प्रयोग किया परन्तु इन मन्दगामी और अपूर्ण उपायों का सुसज्जित

और बहुल सामग्री-युक्त मुगल सेना पर कोई प्रभाव न पड़ा। मुरार के पास केवल करीब दो हजार चुने हुए मावल सैनिक थे जो उसी के समान उत्साहपूर्ण थे। जब नीचे का गढ़ रुद्रमल दिलेरखाँ के हाथ में आ गया तो उसने अपना निवास-स्थान उसके नीचे की चट्टान पर बनाया, जो मची के नाम से प्रसिद्ध थी। इस पर रक्षकों ने ऊपर के गढ़ में शरण ली और अपनी छोटी तोपों से निरन्तर अग्नि-वर्षा जारी रखी। उन्होंने मुगलों पर इस क्रोध से आक्रमण किया कि एक बार मुरार ने ठीक उसके डेरों तक खान का पीछा किया, जहाँ पर दोनों दल एक दूसरे से भयानक रण में जुट गये। बहुत से मराठे खेत रहे। मुरारबाजी का एक हाथ और उसकी ढाल जाती रही, परन्तु उसने तब भी हार न मानी। अपने अंगोछे से उसने अपने कटे हुए हाथ को बाँध लिया और शत्रु को काटता रहा। जैसे ही वह स्वयं दिलेरखाँ पर झपटा, लोग उस पर टूट पड़े, उसे पकड़ लिया गया और उसका सिर काट लिया गया। उसके साथियों ने उसके गिरे हुए धड़ को उठा लिया और शिवाजी के पास अन्त्येष्टि के लिए भेज दिया। अब भी मुगल ऊपर के गढ़ में प्रवेश न कर सके। वह स्थान जहाँ मुरारबाजी खेत रहा, रणतेम्ब कहा जाता है, जिसका अर्थ है रण की पहाड़ी।

इस समय अप्रेल का मध्य था। गोआ के पूर्व में भीमगढ़ पर शिवाजी को (१४ मार्च) जयसिंह और दिलेरखाँ के आगमन के और सब दिशाओं में उनके भयंकर आक्रमणों के प्रथम समाचार प्राप्त हुए। वे जल्दी से पीछे लौटे और मध्य अप्रेल तक पुरन्दर पहुँच गये। सम्भवतया वे शिरवल में कुछ काल के लिए ठहर गये, जहाँ उन्हें मुरारबाजी का बिना सिर का शव प्राप्त हुआ। इस दृश्य से उन्हें उस भयानक स्थिति का ज्ञान हुआ जो उनके सम्मुख थी। कुछ दिन आगा-पीछा सोच-विचार कर उन्होंने अधीनता स्वीकार करने का निश्चय कर लिया।

कुछ समय तक दोनों पक्षों में सन्देशों का आदान-प्रदान होता रहा। तत्पश्चात् ११ जून, १६६५ को ६ ब्राह्मण सलाहकारों के साथ

शिवाजी अपनी पालकी में बैठकर जयसिंह के डेरे पर गये, जो सासवड़ से करीब दो मील पर पुर के नारायण मन्दिर के मैदान के पास उनके शिविर के बीच में लगा हुआ था। जयसिंह ने बुद्धिमता से इसका ध्यान रखा कि दिलेरखाँ की अनुपस्थिति में कोई वार्त्तालाप न किया जाये क्योंकि उसे अन्देशा था कि वह गुप्तचर का काम कर सम्राट के पास कोई विरुद्ध वृत्तान्त न भेज दे। शिवाजी के आगमन के दूसरे दिन अर्थात् १२ जून को जयसिंह ने शिवाजी को अपने प्रतिनिधि रायसिंह के साथ दिलेरखाँ से उसके डेरे में मिलने के लिए भेजा। विना अस्त्र-शस्त्र के शिवाजी दिलेरखाँ के पास गये। शिवाजी की ओर से इस विशेष सम्मान पर खान मुग्ध हो गया और उसने उन्हें दो घोड़े, एक तलवार, एक रत्न-जटित कटार तथा वस्त्र भेंट में दिये और वह स्वयं उन्हें जयसिंह के पास ले गया। जब खान ने शिवाजी की कमर पर तलवार बाँधना प्रारम्भ किया तो उन्होंने कहा—"मैं बिल्कुल निःशस्त्र रहना चाहता हूँ। आपका सौजन्य मेरी सर्वोत्तम रक्षा है।" इसके बाद तीनों सामन्तों में स्वतन्त्र और स्पष्ट वार्त्तालाप हुआ और उन चार दिनों में जब तक शिवाजी मुगल शिविर में रहे, शर्तें निश्चित हो गईं। वे १५ जून को रवाना हुए और उन गढ़ों को वापस देने आ गये जिनके समर्पण के लिए वे सहमत हो गये थे।

इस महत्त्वपूर्ण सम्मिलन के तीन मुख्य वृत्तान्त प्राप्त हैं—प्रथम, वे पूर्ण फ़ारसी वृत्तान्त जो स्वयं जयसिंह ने सम्राट को भेजे थे। दूसरा, मनुची-वर्णित वृत्तान्त जो घटना-स्थल पर इसका साक्षी था। तीसरा, फारसी में एक गुमनाम व्यक्ति का रोचक काव्यमय वृत्तान्त जिसे किसी शिविर में उपस्थित मेधावी लेखक ने लिखा था और जिसका प्रकाशन हाल में "जयसिंह को शिवाजी का पत्र" शीर्षक से हुआ है। यह प्रशंसनीय साहित्यिक रचना है, जिसमें मुगल शिविर के वातावरण का विस्तृत चित्र है तथा इस विषय में शिवाजी के पक्ष का वर्णन है, जैसा कि प्रथम में सरकारी पक्ष का पता लगता है। इन तीनों वृत्तान्तों के आधार पर हम इस महती घटना का संक्षेप में

वर्णन करेंगे। "जयसिंह को शिवाजी के पत्र" को केवल इस कारण कि इसकी रचना काव्यमय है, सारहीन मानकर तिरस्कृत नहीं कर सकते क्योंकि यह स्मरण रखने के योग्य है कि जयसिंह के सरकारी वृत्तान्त भी प्रायः वास्तविक तथ्यों की लीपा-पोती करने के विचार से लिखे गये हैं। शिवाजी की वास्तविक शिकायतों को जयसिंह सम्राट् को लिख ही नहीं सकता था।

जयसिंह लिखता है, "पवल के पास शाही सेना के आगमन पर शिवाजी के प्रतिनिधि मेरे पास आने लगे और फिर मेरे पूना पहुँचने तक वे दो बार मेरे पास पत्र लाये। परन्तु मैंने कोई उत्तर न दिया और उन्हें निराश वापस भेज दिया। उसने फिर हिन्दी में एक लम्बा पत्र मुझे भेजा जिसमें उसने कहा कि वह शाही ड्योढ़ी का उपयोगी सेवक है और वह बीजापुर की विजय में निःसंकोच सहायता देगा। उत्तर में मैंने उसे लिखा कि शाही सेना उसके विरुद्ध भेजी गई है, यदि उसे अपना जीवन और अपनी कुशलता प्यारी है तो वह शाही दरबार का दास हो जाये।" जब उसे बहुत कष्ट हुआ और हमारी सेनाओं ने रुद्रमल को हस्तगत कर लिया तो शिवा ने प्रस्ताव किया और प्रार्थना की कि उसके प्राण और उसका धन छोड़ दिया जाये। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और उसके विरुद्ध अपना युद्ध जारी रखा। २० मई को शिवा का गुरू, जो रघुनाथ पण्डित के नाम से विख्यात है, एक गुप्त राज-सन्देश लेकर आया और उसने शिवा की अधीनता के सम्बन्ध में शर्तों का वर्णन किया। मैंने उसके साथ बात करने से इंकार कर दिया। पण्डित वापस चला गया और दूसरा सन्देश लेकर आया। मैंने कहा कि यदि शिवा सहमत है कि सम्राट् की आज्ञाओं का पालन करेगा तो वह क्षमा कर दिया जायेगा। ९ जून को ब्राह्मण शिवा के पास गया और ११ जून को समाचार लाया कि शिवा आ गया है। मैंने अपने बख्शी को शिवा को अन्दर लाने के लिए भेजा।"

शिवाजी जयसिंह के साथ पूरे तीन दिन ठहरे। इस काल में सरकारी कार्य के अतिरिक्त दोनों में अवश्य ही राष्ट्रीय और धार्मिक

महत्त्व के विभिन्न विषयों पर और भारतीय राजनीति की साधारण स्थिति पर वार्तालाप हुआ होगा। बिना कुछ सारगर्भित परिणामों पर पहुँचे ऐसे दो महत्त्वशाली व्यक्तियों का मिलन असम्भव है। जयसिंह के सुझाव पर उसके पुत्र कीरतसिंह के साथ शिवाजी १३ जून को दिलेरखाँ से मिले और एक सन्धि पर सहमत होने के बाद १५ जून को मुगल शिविर से चल दिये। इस सन्धि के अनुसार उन्हें अपने प्रसिद्ध गढ़ों में से २३ गढ़ मुगल अधिकार में देने थे और केवल छोटे-छोटे १२ गढ़ उनके अधिकार में रहने थे। गढ़ों को अधिकार में लेने के लिए कीरतसिंह स्वयं शिवाजी के साथ गया। कौंढाना या सिंहगढ़ तुरन्त कीरतसिंह को दे दिया गया। शिवाजी की माता और धर्मपत्नी ने तुरन्त गढ़ को ७ हजार गढ़-रक्षकों सहित खाली कर दिया। १९ जून को सम्भाजी को साथ लेकर, जिसको मुगल सेना में सेवा करनी थी, कीरतसिंह अपने पिता के पास वापस आ गया। रिक्त गढ़ों की कुञ्जियाँ जयसिंह ने सम्राट् के पास भेज दीं।

सम्राट् को लिखे गये जयसिंह के पत्र सरकारी वृत्तान्त मात्र प्रतीत होते हैं और उनसे इसका कुछ पता नहीं लगता कि वह कहाँ तक शिवाजी के विचारों से सहमत या असहमत था। इस न्यूनता की पूर्ति प्रशंसनीय ढंग से फारसी के "जयसिंह के पत्र" से होती है। यह शिवाजी के नाम से लिखा गया है और इसमें उसके हिन्दू हृदय को प्रेरणा दी गई है कि वह उस राष्ट्रीय और धार्मिक उन्नति को समझे और समर्थन करे, जिस कार्य को शिवाजी ने अपने हाथ में ले रखा था, ताकि उसके देश को अत्याचारी मुस्लिम शासन से छुटकारा मिले। शिवाजी ने आग्रह किया था कि हिन्दू होने के नाते उन दोनों को साथ होकर कार्य करना चाहिए ताकि उन्हें धार्मिक स्वाधीनता पुनः प्राप्त हो जाये और ऐसे अत्याचार बन्द हो जाएँ जो मन्दिरों को लूटने में, उनको धराशायी करने में और बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन कराने में निहित हैं। उसका यह भी कथन था कि औरंगजेब की सत्ता की मुख्य समर्थक राजपूत राजाओं की शक्ति है और, जैसा कि

शिवाजी ने संकेत किया, यह लज्जा की बात थी कि जयसिंह के सदृश क्षमता वाला महान् शासक सम्राट् की नीति के विरुद्ध उँगली भी न उठाये। इतना ही नहीं बल्कि हिन्दू धर्म को नीचा दिखाकर उसकी आज्ञा का दीन भाव से पालन करे। इस प्रसिद्ध सम्मिलन में खुलकर व्यक्तिगत विवाद अवश्य हुआ होगा। औरंगजेब के बाद के आचरण से इसकी पुष्टि होती है। उसने जयसिंह पर विश्वासघात का सन्देह किया और एक वर्ष बाद उसका खुला अपमान किया, जब जयसिंह और उसके पुत्र रामसिंह के सक्रिय समर्थन से न सही तो लापरवाही से ही शिवाजी आगरे से भाग निकले।

शिवाजी के आगमन के दिनों में मुगल शिविर के सनसनीपूर्ण वातावरण को फारसी का यह काव्यमय पत्र स्पष्टतया प्रकट करता है, जिसका प्रशंसनीय चित्रण मनुची ने भी किया है। शिविर में अपूर्व हलचल थी। पूरी सतर्कता थी कि चालाक शिवाजी कोई हरकत न कर बैठे। यदि स्वयं लेखक उस वातावरण में उपस्थित न होता तो छोटे-छोटे विवरण नहीं दिये जा सकते थे, जिनका पत्र में उल्लेख है। शिवाजी ने जयसिंह के ध्यान में यह बात बिठाई कि चालाक सम्राट् किस तरह उसे झूठी आशाओं में भरमा रहा है। अफजलखाँ काण्ड में किये गये अपने व्यवहार के सम्बन्ध में पूरा विवरण देकर शिवाजी ने अपनी ओर से विश्वासघात के विषय में जयसिंह के समस्त भ्रम को दूर कर दिया। शिवाजी ने जोर देकर समझाया कि लोग नहीं जानते कि अफजलखाँ ने १२०० हब्शियों के सुरक्षित दल को उस स्थान के समीप छिपा रखा था जहाँ पर वे मिले थे और इस कारण उसे अपनी प्राण-रक्षा के लिए वह आचरण करना पड़ा। इस पत्र में उन चुभते हुए उपालम्भों का भी वर्णन है जो स्वयं शिवाजी ने जयसिंह को दिये। परन्तु गम्भीरता-पूर्वक जयसिंह यह सदैव कहता रहा—"इस सब के होते हुए भी सम्राट् हमारा स्वामी है। उसकी आज्ञा का पालन करना और उसके प्रति पूर्णतया राजभक्त रहना हमारा कर्त्तव्य है।" इस पर शिवाजी ने उत्सुकता से यह सीधा-सा प्रश्न किया—"क्या शाहजहाँ के

प्रति ऐसा ही राजभक्त रहना आपका कर्त्तव्य न था, जब आपको विद्रोही औरंगजेब के विरुद्ध दाराशिकोह के नेतृत्व में प्रयाण करने की आज्ञा दी गई थी ? क्या शाहजहाँ और दारा आपके स्वामी न थे ? क्या आपकी ईमानदारी में उन्हें पूर्ण विश्वास न था। उस समय आपकी राजभक्ति को क्या हुआ था, जब आपने विश्वासघात करके उनका साथ छोड़ दिया और औरंगजेब से मिल गये ? क्या आप यह नहीं मानते कि इन घृणित पापों में आप डूबे हुए हैं ? ईश्वर के सामने आपको यह निश्चय उत्तर देना होगा, भले ही इस संसार में न देना पड़े। जो भी हो, मित्र ! औरंगजेब से सावधान रहो। यदि आप मुझे सहायता दें तो बहुत अच्छा और ठीक, यदि नहीं तो अपनी देखभाल करने की मुझ में क्षमता है। मैंने अपना निश्चय कर लिया है और उसके अनुसार कटिबद्ध हूँ।"

जयसिंह और शिवाजी के सम्मिलन के कुछ रोचक विवरण मनुची देता है। जयसिंह ने शाइस्ताखाँ के सदृश परिणाम से बचने और शिवाजी पर सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जब शिवाजी के प्रतिनिधि जयसिंह के पास विभिन्न प्रस्ताव लेकर आये तो जयसिंह ने शिवाजी को उनके द्वारा सूचित किया—"यदि आप मेरा पूरा विश्वास कर सकते हैं तो आप मेरी सलाह का अनुसरण करें। मैं प्रयत्न करूँगा कि सम्राट् आपके हितों में वृद्धि करें।" शिवाजी ने यह सलाह मान ली, जयसिंह पर पूरा विश्वास किया और बेधड़क बिना कोई अस्त्र-शस्त्र और अंग-रक्षक लिए सिंह की गुफा में उससे मिलने चले गये। शिवाजी के आगमन पर सारे शिविर में उत्तेजना व्याप्त हो गई कि उनके आगमन से कहीं कोई संकट उपस्थित न हो जाये। परन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि वह अकेला ही आया है और उसके साथ कोई अनुचर भी नहीं है तो शिविर में लोगों को कुछ राहत मिली। जयसिंह ने अपने ही निवास के पास शिवाजी के लिए एक डेरा दिया। एक सायं को जब मनुची और जयसिंह ताश खेल रहे थे, शिवाजी बिना पूर्व-सूचना के अकस्मात् अन्दर आ गये। सब उनके स्वागत में उठ खड़े हुए और जब वे बैठ

गये तब मनुची की ओर संकेत करके शिवाजी ने जयसिंह से पूछा, "यह नवयुवक कौन है ?" मनुची उस समय २५ वर्ष का था और शिवाजी से करीब १२ वर्ष छोटा था । जयसिंह ने उत्तर दिया—यह नवयुवक फिरंगियों का नेता है । इसके बाद उन दोनों का—मनुची और शिवाजी का विभिन्न विषयों पर, विशेषकर योरुप के राज्यों, उनकी स्थलीय एवं जलीय शक्तियों के सम्बन्ध में और उनकी युद्ध-प्रणाली पर लम्बा वार्तालाप हुआ । मनुची उर्दू अच्छी बोलता था और बिना दुभाषिये के उनका प्रत्यक्ष वार्तालाप हुआ ।

यथासमय जयसिंह को सम्राट् का उत्तर प्राप्त हुआ । उसने पुरन्दर की सन्धि की पुष्टि कर दी । ५ सितम्बर, १६६५ का दूसरा वैसा ही पत्र शिवाजी को मिला, जिसकी भाषा कुछ कठोर थी। जब सम्राट् का फरमान पहुँचा, जयसिंह ने शिवाजी को उसे औपचारिक ढंग से ग्रहण करने के लिये आमन्त्रित किया । कीरतसिंह के साथ शिवाजी ६ मील पैदल गये और उचित सम्मान एवं प्रतिष्ठा से फरमान का स्वागत किया । पुरन्दर की सन्धि से शिवाजी ने बीजापुर की विजय में मुगलों का साथ देना स्वीकृत किया और उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का वफादारी से पालन किया । चूँकि शिवाजी स्थानीय दशा से पूर्णतया परिचित थे, उनका सहयोग बीजापुर से होने वाले युद्ध में जयसिंह के लिये अमूल्य सिद्ध हुआ । जयसिंह ने अर्पित गढ़ों पर अधिकार कर लिया, परन्तु उसके पास उन सब की रक्षा के लिए पर्याप्त सेना न थी । केवल पुरन्दर, सिंहगढ़ और लोहगढ़ के लिए वह रक्षक सेनाओं और अन्य आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था कर सका । कुछ अन्य गढ़ों की दीवारें और परकोटे गिरा दिये गये ।

तत्पश्चात् जयसिंह ने बीजापुर के विरुद्ध किये जाने वाले युद्ध की तैयारी में वर्षा-ऋतु व्यतीत की, जिसमें नेताजी पालकर के नेतृत्व में ९ हजार मावलों सहित शिवाजी सम्मिलित हुए । २५ नवम्बर, १६६५ को सासवड़ से संयुक्त दलों ने प्रयाण किया और १८ दिसम्बर, को मंगलवेढ़े पहुँच गये । वहाँ मुधोल का मालोजी घोरपड़े और

बंगलौर से एकोजी आ गये और शर्जाखाँ व खवासखाँ के अधीन बीजापुरी सेनाओं में सम्मिलित हो गये। ये बीजापुर से मुगलों का सामना करने आ गये थे। घोर युद्ध हुआ, जिसमें नेताजी पालकर और दिलेर खाँ ने बीजापुरी दलों को पूर्णतया पराजित कर दिया। दोनों भाइयों, शिवाजी और एकोजी, का प्रथम बार खुले युद्ध में सम्मिलन हुआ। परन्तु मुगलों के लिए यह युद्ध इतना लाभकारी सिद्ध न हुआ जितनी उन्हें आशा थी। दिलेरखाँ ने जयसिंह द्वारा उसके प्रति किए हुए वास्तविक या कल्पित दुर्व्यवहारों के सम्बन्ध में गुप्त रूप से सम्राट् को पत्र भेजा। वह जयसिंह की गतिविधि और कामों पर गुप्तचर का कार्य करता रहा। यह वास्तव में सम्राट् की ही निर्दिष्ट योजना थी क्योंकि प्रारम्भ से ही उसे सन्देह था कि जयसिंह को दक्षिण के हिन्दुओं के प्रति सहानुभूति है। कुछ भी हो मुगल सेना के इन दो प्रमुख व्यक्तियों में स्पष्ट विरोध का युद्ध के परिणामों पर अच्छा प्रभाव न पड़ा। अपूर्व वीरता और दृढ़ता से बीजापुरी सेनाओं ने अपने जीवन के लिए संग्राम किया। गोलकुण्डा की सेनाएँ भी उनके साथ थीं। इन दोनों राज्यों की समाप्ति का अवसर अभी नहीं आया था।

जयसिंह और दिलेरखाँ बीजापुर के समीप तक बढ़ते चले गये, परन्तु दिलेरखाँ के दुर्व्यवहार के कारण जयसिंह ने परेण्डा की ओर कूच कर दिया। शिवाजी ने पन्हाला को हस्तगत करने का प्रस्ताव किया और १६ जनवरी, १६६६ को उस पर आक्रमण भी किया, परन्तु अपने प्रयत्न में वे सफल न हुए।

इस समय शिवाजी और नेताजी पालकर में खेदजनक मतभेद पैदा हो गया जिसका कोई सन्तोषजनक कारण नहीं मिलता। इस पर सावधानी से विचार और खोज करने की आवश्यकता है क्योंकि शिवाजी के इतिहास से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। निस्सन्देह नेताजी वीर योद्धा था और सैनिक चालों में शिवाजी के बाद उसी का नम्बर था। उसने मराठा राज्य की दीर्घकाल तक अमूल्य सेवा की। किसी अनुशासन सम्बन्धी विषय पर उनमें झगड़ा हो गया

और जब जयसिंह का बीजापुर से युद्ध हो रहा था, नेताजी ने शिवाजी की सेवा त्याग दी और बीजापुरी सेनाओं में सम्मिलित हो गया। इस कारण जयसिंह के सम्मुख विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गई। जयसिंह ने गुप्त उपायों द्वारा नेताजी को मुगल सेवा में ले लिया और सम्राट् से उसको ५ हजार का पद दिलवा दिया (२० मार्च, १६६६)। उचित स्थान पर नेताजी के विषय में विस्तृत उल्लेख किया जायेगा।

———

तिथिक्रम

अध्याय ७

१५ जून, १६६५	पुरन्दर की सन्धि।
२२ जनवरी, १६६६	शाहजहाँ की मृत्यु।
५ मार्च, १६६६	शिवाजी का आगरा को प्रस्थान।
१२ मई, १६६६	शिवाजी का औरंगजेब के दरबार में उपस्थित होना।
२० मई, १६६६	जाफरखाँ द्वारा शिवाजी की प्रार्थना का सम्राट् के सम्मुख उपस्थित किया जाना।
२९ मई, १६६६	शिवाजी की दूसरी प्रार्थना।
८ जून, १६६६	शिवाजी का प्रार्थना करना कि उसे रामसिंह की निगरानी से हटा दिया जाये।
९ जून, १६६६	शिवाजी का अपने अनुचरों को हटा देना।
१५ जुलाई, १६६६	शिवाजी का रामसिंह से ऋण लेना।
१५ जुलाई, १६६६	आगरा में कवि परमानन्द की उपस्थिति का प्रथम उल्लेख।
१७ अगस्त, १६६६	शिवाजी का आगरा से भाग निकलना।
२३ अगस्त, १६६६	कवि परमानन्द बन्धन में।
२० नवम्बर या १२ सितम्बर, १६६६	शिवाजी का राजगढ़ पहुँचना।
२६ दिसम्बर, १६६६	परमानन्द का चन्दनगाँव से वापस लाया जाना।
२६ दिसम्बर, १६६६	नेताजी पालकर का सम्राट् के दरबार में लाया जाना।
२७ मार्च, १६६७	नेताजी का मुसलमान बनाया जाना और अफगानिस्तान में सेवा करने के लिए भेजा जाना।
मई १६६७	जयसिंह का वापस बुलाया जाना; उसके स्थान पर मुअज्जम और यशवन्तसिंह की नियुक्ति।
मई १६६७	बहलोलखाँ द्वारा रंगना का घेरा; शिवाजी का घेरा तोड़ना।
२८ अगस्त, १६६७	बुरहानपुर में जयसिंह की मृत्यु।
सितम्बर १६६७	आदिलशाह की शिवाजी से सन्धि।

११ दिसम्बर, १६६७	पुर्तगालियों की शिवाजी से सन्धि।
६ मार्च, १६६८	औरंगजेब की शिवाजी से सन्धि।
५ अगस्त, १६६८	सम्भाजी का मुगल-शिविर में सम्मिलित होना।
१६६८	बीजापुर और गोलकुण्डा द्वारा शिवाजी को चौथ देना स्वीकार करना।

अध्ययाय ७

सिंह अपनी ही गुफा में परास्त

[१६६६-१६६७]

१. आगरा जाने में हिचकिचाहट। २. दरबार खास। ३. आश्चर्यजनक पलायन। ४. बाद के परिणाम; शान्ति।

१. आगरा जाने में हिचकिचाहट—शिवाजी इतने चतुर थे कि पुरन्दर में उन्होंने जयसिंह के प्रति अधीनता की प्रवृत्ति अपनाली और निपुणता के साथ इसको भावी उन्नति की सीढ़ी बनाया। पुरन्दर का सन्धि-पत्र उनके लिए क्षणिक पराजय था, परन्तु किसी प्रकार भी अन्तिम समाप्ति न था। आखिरकार जयसिंह हिन्दू था, जिसका नाश करने की अपेक्षा शिवाजी उसे अपने पक्ष में मिलाना चाहते थे। पुरन्दर का सन्धि-पत्र दिखावा-मात्र था। उसका अर्थ शिवाजी के लिए अपमानजनक नहीं समझना चाहिए। युद्ध में उनकी पराजय नहीं हुई थी। जयसिंह को यह पूर्ण विश्वास था कि वह सम्राट् और शिवाजी में स्थायी समझौता करा देगा। क्या यह कार्य शान्तिपूर्वक न हो सकता था, यदि दोनों व्यक्तिगत रूप से मिलें और सब बातों को स्वयं तय कर लें? शिवाजी सम्राट् की दक्षिण में सेवा करने के लिए पहिले से ही सहमत हो गये थे, किन्तु इस सम्बन्ध में यह सावधानी रखी कि उन्होंने स्वयं को अर्पित न करके अपने स्थान पर सम्राट् की सेवा के लिए अपने अष्ट-वर्षीय बालक को नियुक्त कर दिया। सन्धि में एक शर्त यह भी थी कि शिवाजी स्वयं सम्राट् से मिलेंगे। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, जयसिंह ने स्थायी समझौता करने के लिए यह उपाय उत्तम समझा अर्थात् उसे पूर्ण आशा थी कि इसके द्वारा वह औरंगजेब को हिन्दू राजाओं से मित्रता स्थापित करने की अकबर महान् को नीति पर ले आयेगा। यह

प्रयोग परीक्षण के योग्य था। जयसिंह ने शिवाजी से बार-बार यह आग्रह किया कि वे स्वयं सम्राट से मिलें और उसको वे सब शिकायतें बतायें, जो उन्होंने पुरन्दर की छावनी में बताई थीं। इसी आधार पर उसने सम्राट् से भी आग्रह किया कि वह शिवाजी के आगमन का स्वागत करे, उसकी हार्दिक सद्भावना की परीक्षा ले और दक्षिणी प्रान्तों में शान्ति स्थापित रखने के लिए उसका शक्तिशाली समर्थन प्राप्त करे। जयसिंह का विचार था कि यदि एक बार भी शिवाजी सम्राट् से मिल लें और सम्राट् उसकी ओर कृपा-पूर्वक ध्यान और सम्मान दे तो वे साम्राज्य के राज-भक्त सेवक बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों को लाभदायक एकता के सूत्र में बाँधने के लिए जयसिंह ने मध्यस्थ का कार्य किया। इतिहास के अनुसार यह जयसिंह की भयंकर भूल हुई कि वह अपने स्वामी के चरित्र को ठीक-ठीक न समझ सका।

जयसिंह ने अपनी व्यक्तिगत जमानत दी कि सम्राट् से मिलने पर शिवाजी को कोई हानि न होगी। उसने शिवाजी को विश्वास दिलाया कि सम्राट् उनसे मिलने को उत्सुक है और गोलकुण्डा एवं बीजापुर की विजय के लिए, जिन पर उसकी बहुत दिन से आँख लगी हुई थी, उनकी सेवाओं का उपयोग करना चाहता है। एक ओर औरंगजेब को शिवाजी के व्यक्तिगत आगमन से सम्भवतया अनिष्ट का सन्देह था, दूसरी ओर शिवाजी को भी सम्राट् की सत्यता के प्रति पूरा विश्वास न था। औरंगजेब ने अपने ही भाई मुराद के साथ विश्वासघात किया था; निर्दयता से दाराशिकोह और शुजा का नाश किया था; चतुरता से अपने पिता को बन्दी कर लिया था और स्वार्थवश राजगद्दी पर अधिकार कर लिया था। उसने अपने पुत्रों को भी अपने क्रोध का शिकार बनाया था। उसकी ये सर्वविदित करतूतें थीं जिनके कारण शिवाजी को आशा न थी कि उन्हें स्वयं मिलने से कोई विशेष लाभ होगा। परन्तु इसके अतिरिक्त और भी कई विचार थे जिनके कारण वे इस संकट में पड़ने के लिए विवश हो गये। उन्होंने सोचा कि सम्राट् से मिलने से

और उसके दरबार को देखने से उनको साम्राज्य की आन्तरिक शक्ति का वास्तविक बोध हो जायेगा और इससे वे स्वयं निर्णय कर सकेंगे कि दरबार में कौन उनके मित्र हो सकते हैं और कौन शत्रु। इस प्रकार वे जान सकेंगे कि हिन्दू-साम्राज्य का उनका अपना स्वप्न कहाँ तक व्यावहारिक है। अपने दक्षिण के संकुचित क्षेत्र में शिवाजी की उत्कट इच्छा थी कि पश्चिमी तट पर अपनी राजधानी के पास से सिद्दियों को हटा दें। जयसिंह ने शिवाजी को विश्वास दिलाया कि यह उद्देश्य पारस्परिक वार्तालाप से सुविधापूर्वक सफल हो जायेगा। अत: यद्यपि शिवाजी के लिए शाही दरबार में जाने का विचार लुभावना न था, किन्तु इससे कुछ ऐसे अवसर प्राप्त हो सकते थे जो परीक्षण के उपयुक्त थे। इस योजना पर उन्होंने बार-बार विचार किया और अपनी माता एवं सलाहकारों के साथ कई दिन तक विचार करते रहे। कुछ आपातदर्शी लोगों ने इस कदम को संकटजनक और गलत घोषित कर दिया। परन्तु पुरोहितों, ज्योतिषियों और सबसे अधिक शिवाजी की अन्तरात्मा देवी भवानी ने इस कार्य के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी। जयसिंह और उसके पुत्र कीरतसिंह ने उनके पास लिखित प्रतिज्ञा भेजी कि जब तक शिवाजी राजधानी में ठहरेंगे, जयसिंह और उसका ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह दोनों उनके जीवन और सुरक्षा के प्रति उत्तरदायी होंगे। फलत: निश्चय हो गया और पासा फेंक दिया गया। जयसिंह ने सम्राट् को शिवाजी के शीघ्र ही दरबार में उपस्थित होने का समाचार भेज दिया।

१६६६ ई० के आरम्भिक मासों में इन विषयों पर वार्तालाप होता रहा। शिवाजी बुरी से बुरी परिस्थिति के लिए तैयार थे। उन्होंने अपनी अनुपस्थिति में कार्य को जारी रखने के लिए यथासम्भव पूर्ण व्यवस्था कर दी थी। जीजाबाई प्रशासन की प्रमुख बनाई गईं और मोरोपन्त पेशवा, नीलोपन्त मजूमदार और प्रतापराव गूजर सेनापति कार्यकारिणी के सदस्य नियुक्त हुए। शिवाजी ने अपने जिलों का भ्रमण किया, स्थानीय अधिकारियों और गढ़ों के रक्षकों

में उत्साह और प्रेरणा फूँक दी। सोमवार, फाल्गुन सुदी ६, ५ मार्च, १६६६ को वह राजगढ़ से चल दिये। उनके साथ उनका पुत्र सम्भाजी, कुछ चुने हुए अधिकारी, सेवक और चार हजार व्यक्तियों का रक्षा-दल था। उनके साथ कौन-कौन थे, इसकी यथार्थ सूचियाँ उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु तानाजी मालुसरे, येसाजी कंक, बाजी शर्जेराव जेधे, हीरोजी फर्जन्द, बालाजी आवजी, नीराजी रावजी, रघुनाथ बल्लाल कोर्डे, त्र्यम्बक सोनदेव दबीर और मदारी मेहतर कुछ प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, जिनका प्राप्य लेखों में उनके साथियों के रूप में उल्लेख किया गया है। सम्राट् ने एक लाख रुपये पेशगी में दिये और आज्ञा दी कि सम्पूर्ण यात्रा में उनका सम्मान शाहजादे की भाँति किया जाय। अपनी यात्रा में शिवाजी जिस जिले में होकर निकले, उस जिले का स्थानीय अधिकारी अपने क्षेत्र में उनके साथ रहा।

५ अप्रेल, १६६६ को सम्राट् ने शिवाजी को लिखा—"आपका पत्र, जिसमें आपने सूचना दी है कि आप चल दिये हैं, मेरे सम्मुख उपस्थित किया गया है। मेरी कृपा में पूर्ण विश्वास रखकर और पूर्ण शान्त चित्त से अविलम्ब आइए। मुझ से भेंट करने के बाद आप मेरी राजकीय कृपाओं से वैभवशाली हो जायेंगे और आपको घर वापस जाने की अनुमति मिल जायेगी। मैं आपको एक भव्य खिलअत भेज रहा हूँ।"

जब शिवाजी औरंगाबाद पहुँचे, नागरिकों के दल उनके दर्शनार्थ आए। परन्तु राज्यपाल सफशिकनखाँ उनका स्वागत करने न आया। उसे आशा थी कि शिवाजी उससे मिलने स्वयं आयेंगे। यह अपमान शिवाजी को खटक गया और वे सीधे जयसिंह के शिविर में पहुँचे। जयसिंह ने राज्यपाल को तुरन्त डाँटा। अगले दिन राज्यपाल उपस्थित हुआ और उसने अपने अपराध की क्षमा-याचना की। मार्च के मध्य में शिवाजी औरंगाबाद से रवाना हुए और सुविधापूर्वक धीरे-धीरे आगरा की ओर बढ़े। वह बड़े धैर्य से मुगल सरकार के व्यक्तियों और आन्तरिक दशाओं का अध्ययन करते जाते थे। उन्हें अपने कार्य से सम्बन्धित जो भी बात मालूम हुई, उन्होंने

उसे ध्यान में रखा। इस यात्रा में किसी अनिष्ट घटना का वर्णन नहीं है। २ मास में लगभग ५०० मील की यात्रा तय की गई।

सम्राट् ने आगरा के किले में शिवाजी का स्वागत किया, दिल्ली में नहीं, जैसा कि प्राय: माना जाता है। आगरा शाहजहाँ का प्रिय निवास-स्थान था, जहाँ पर प्रसिद्ध मयूर सिंहासन था। जब १६५८ ई० में औरंगज़ेब सम्राट् हुआ तो उसने दिल्ली में अपने राज्यारोहण की घोषणा की। आगरा के किले में उसने अपने पिता को बन्दी रखा, जहाँ वह तभी गया जब २२ जनवरी, १६६६ को उसके पिता का देहान्त हो गया। शोक-काल समाप्त होने के बाद औरंगज़ेब ने प्रथम सार्वजनिक प्रवेश आगरा के किले में किया और निश्चय किया कि वह अपना ५०वाँ चान्द्र जन्म-दिवस वहीं मनायेगा। उस वर्ष यह १२ मई, १६६६ को पड़ा। उसका यह भी निश्चय था कि वह वहाँ अपना प्रथम भव्य दरबार मयूर सिंहासन पर बैठ कर करेगा। चूँकि आगरा में शिवाजी के आगमन की आशा थी, ऐसा प्रबन्ध किया गया कि सम्राट् से उसकी सर्वप्रथम भेंट १२ मई को दरबार में हो। उस समय औरंगजेब अपने वैभव के शिखर पर था। हाल ही में वह लम्बी बीमारी से छुटकारा पाकर पूर्ण स्वस्थ हुआ था। सभी आन्तरिक और बाह्य शत्रु पराजित हो गये थे। उसने अभी तक अपनी उस धर्म-नीति की घोषणा नहीं की थी जिसके कारण उसे राजपूतों से युद्ध करना पड़ा और अन्य संकट सामने आये। एक सरल अल्पकालीन अभियान में उसके सेनापतियों ने विद्रोही शिवाजी को परास्त कर दिया था। इस प्रकार १६६६ ई० का यह जन्मदिवसोत्सव औरंगजेब के लिए विशिष्ट अर्थ रखता था और शिवाजी की उपस्थिति से इसे अधिक महत्त्व प्राप्त होने वाला था। इस अत्यन्त गर्वपूर्ण दिवस का परिणाम मुगलों के लिये क्या हुआ, यह इतिहास में अंकित है।

२. दरबार खास—जयपुर राज्य के ग्रन्थागारों में हाल ही में कुछ समकालीन पत्र पाये गये हैं जो इन महत्त्वशाली घटनाओं पर पूर्ण और उचित प्रकाश डालते हैं। इनमें शिवाजी की सम्राट् से भेंट और उनका चमत्कारिक पलायन भी सम्मिलित है। इस नवीन

प्रमाण के आधार पर इन घटनाओं की अब यथार्थ व्याख्या हो सकती है। उस समय के मुगल दरबार का सर्वप्रमुख सामन्त मिर्जा राजा जयसिंह था। शिवाजी पर उसकी सफलता ने उसके गौरव में चार चाँद लगा दिये थे। चूँकि शाही दरबार से उसका सतत सम्बन्ध रहता था, उसने अपने ही संवाद-लेखक रख लिये थे, जो दरबार की प्रत्येक महत्त्वशाली घटना का नियमित वृत्तान्त हिन्दी और फारसी में लिखकर उसकी राजधानी आम्बेर भेजते रहते थे। ये वृत्तान्त और पत्र अब उपलब्ध हैं और अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। ये ढाई सौ वर्ष से अधिक समय तक अन्धकार में रहने के बाद अब प्रकाश में आये हैं। इनमें से करीब २० हिन्दी-पत्रों का सम्बन्ध शिवाजी के आगमन से है। इनमें इसका विशद वर्णन है कि उनका स्वागत कैसे हुआ, अपने प्रति प्रदर्शित तिरस्कार पर वे कैसे क्रुद्ध हुए और आगरा में अपने तीन मास के बन्दी जीवन में उनके साथ कैसा व्यवहार किया गया। आगरा में शिवाजी के अनुचरों में 'अनुपुराण' या तामिल नाम 'शिवभारत' के लेखक कवि परमानन्द की उपस्थिति अब स्पष्ट हो गई है। हाल में उपलब्ध और प्रकाशित ये ग्रन्थ अपना बहुमूल्य ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं, क्योंकि शिवाजी और परमानन्द की समकालीनता सम्बन्धी सन्देह को अब इन्होंने दूर कर दिया है।[1]

परमानन्द के अपूर्ण महाकाव्य में भोसले परिवार और शिवाजी की जीवनी की कहानी १६६१ ई० तक वर्णित है और इस तिथि के बाद के भाग यदि लिखे गये हैं तो अप्राप्य हैं। परमानन्द महाराष्ट्रीय ब्राह्मण था जो बहुत समय से बनारस में रहता था। स्थानीय जिज्ञासु लोगों की प्रार्थना पर उसने मराठा वीर-नायक के आश्चर्यजनक जीवन पर अपना ग्रन्थ लिखा था। उसकी योजना इस संस्कृत के महाकाव्य में १०० सर्ग रखने की थी, जिनमें से इस समय प्रारम्भ के इकत्तीस और बत्तीसवें के कुछ भाग प्राप्य हैं।

---

१ सर जदुनाथ सरकार द्वारा रचित 'शिवाजी का राजवंश'।

अब हम आगरा में शिवाजी के आगमन की कहानी पर पुनः आते हैं। १२ मई को आगरा का दीवानेआम एक अनोखा दृश्य उपस्थित कर रहा था। समस्त वर्गाकार दीवानखाना पुरुषों और उनके विविध ठाठ-बाट से परिपूर्ण था और उच्चत्तम मुगल वैभव का भव्य प्रदर्शन कर रहा था। हिन्दू प्रथा के अनुसार सम्राट् ने बहुमूल्य वस्तुओं का तुलादान किया और मयूर सिंहासन पर विराजमान हुआ। इस अवसर पर शिवाजी ने क्या किया, इसका आँखों देखा वर्णन उद्धृत करते हैं :—

"महाराजकुमार रामसिंह ने शिवाजी को एक पत्र भेजा है, जिसमें उससे प्रार्थना की गई है कि वह ११ मई तक आगरा पहुँच जाये ताकि सम्राट् से भेंट कर सके। सम्राट् की आज्ञानुसार कुमार और फिदवीखाँ को एक दिन पहिले कूच करना है जिससे कि वे मार्ग में शिवाजी का स्वागत करें और उसे राजधानी ले आवें। मिर्जा राजा ने ताजसिंह को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा है जिससे कि वह रास्ते भर शिवाजी के साथ रहे। ११ मई को शिवाजी मलिक चाँद की सराय पहुँच गया और वहाँ ठहर गया, तब कुमार रामसिंह ने गिरिधरलाल मुंशी को एक विशिष्ट चोगा और चाँदी के आभूषणों सहित एक घोड़ा दिया और उससे कहा—'आप जायें और मेरी राम-राम कहें।' अतएव ४० सवार लेकर गिरिधरलाल वहाँ गया, शिवाजी को अपने स्वामी का नमस्कार कहा और उनके सम्मिलन के प्रबन्ध की सूचना दी। शिवाजी ने एक चोगा और २०० रु० नकद देकर गिरिधरलाल को विदा किया।

"शनिवार, १२ मई को रामसिंह शिवाजी का स्वागत करने गया और दोनों सामन्त नूरजंग के बाग में मिले। ताजसिंह ने शिवाजी से कहा—'यह कुमार रामसिंह हैं' और तब कुमार के पास आकर शिवाजी की ओर संकेत किया। कुमार आगे बढ़ा और शिवाजी से गले मिला। उसके बाद मुखलिसखाँ शिवाजी से मिला। कुमार अपने ही डेरे के पास शिवाजी को एक तम्बू में ले गया और संगीत

आदि से उनका स्वागत किया। तब रामसिंह और मुखलिसखाँ शिवाजी को लेकर दरबार पहुँचे। इस बीच में सम्राट् दीवानेआम से चला गया था और दीवानेखास में अपने आसन पर बैठ गया था, जहाँ पर शिवाजी को ले जाया गया। सम्राट् ने असदखाँ बख्शी को आज्ञा दी कि शिवाजी को पेश करे। असदखाँ उसको सम्राट् के सम्मुख ले गया। शिवाजी ने नज़राने में एक हजार मोहरें और दो हजार रुपये तथा निसार (न्यौछावर) में पाँच हजार रुपये भेंट किये। इसके साथ कुछ अन्य छोटी-मोटी भेटें भी उन्होंने दीं। सम्भाजी का भी सम्राट् से परिचय कराया गया और उसने नज़राने में पाँच सौ मोहरें और एक हजार रुपया और निसार में दो हजार रुपये भेंट किये। राजा राजसिंह के सामने ताहिरखाँ के स्थान पर शिवाजी को खड़ा कर दिया गया। सम्राट् ने उससे न तो बातचीत की और न एक शब्द ही कहा।

"सम्राट् का जन्म-दिवस था और संस्कार के पान राजकुमारों और सामन्तों को बाँटे गये। शिवाजी को भी एक पान मिला। उस अवसर की खिलअतें राजकुमारों, वजीर जाफ़रखाँ और राजा यशवन्तसिंह को भेंट की गईं। इस पर शिवाजी को क्रोध आया और वह व्यग्र हो उठा। पूर्ण आवेश में उसकी आँखें लाल हो गईं। सम्राट् ने यह देख लिया और कुमार से कहा—'शिवा से पूछो उसको क्या कष्ट है?' कुमार शिवा के पास आया और शिवाजी ने उससे कहा—'आपने देखा है, आपके पिता ने देखा है और आपके पादशाह ने देखा है कि मैं कैसा व्यक्ति हूँ और तब भी आपने जान-बूझकर मुझे इतनी देर खड़ा रखा है। आपका मनसब मैं फेंकता हूँ। यदि आप मुझे खड़ा रखना चाहते थे तो उचित पद-क्रमानुसार ऐसा कर सकते थे।' यह कहकर उसने राजगद्दी की ओर अपनी पीठ फेरी और अशिष्टता से चल दिया। कुमार ने उसका हाथ पकड़ लिया परन्तु उससे हाथ छुड़ाकर वह एक ओर जाकर बैठ गया। कुमार उसके पीछे-पीछे गया और उसे समझाने का प्रयत्न किया परन्तु उसने ध्यान नहीं दिया और जोर से

कहा—'मेरा मृत्यु-दिवस आ गया है। या तो आप मुझे मार डालें अथवा मैं स्वयं आत्महत्या कर लूँगा। आप चाहें तो मेरा सिर काट लें, परन्तु मैं सम्राट् के आगे नहीं जाऊँगा।'

"चूँकि शिवाजी राजी न हो सका, कुमार सम्राट् के पास वापस आया और वृत्तान्त बताया। सम्राट् ने मुल्तफ़त खाँ, आकिल खाँ और मुखलिस खाँ को आज्ञा दी कि वे जाएँ, शिवा को सान्त्वना दें, उसको ख़िलअत भेंट करें और दुबारा पेश करें। ये तीनों सामन्त शिवा के पास गये और उससे ख़िलअत पहनने को कहा परन्तु उसने इंकार कर दिया, और कहा—'मैं ख़िलअत स्वीकार नहीं करता। सम्राट् ने जान-बूझकर मुझे यशवन्तसिंह से नीचे खड़ा रखा है। मैं ऐसा आदमी हूँ, और तब भी उसने मुझे हठपूर्वक खड़ा रखा है। मैं सम्राट् के मनसब को अस्वीकार करता हूँ। आप चाहें मुझे बन्दी बनायें अथवा मार डालें, परन्तु ख़िलअत नहीं पहनूँगा।' अतः सामन्तगण वापस लौट गये और सम्राट् से वृत्तान्त कह सुनाया। सम्राट् ने तब कुमार से कहा कि वह उसे अपने साथ अपने निवास-स्थान पर ले जाये और सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न करे रामसिंह शिवाजी को अपने डेरे पर ले गया, अपने निजी कमरे में उसको बैठाया और उसे समझाने लगा। परन्तु शिवाजी कुछ भी सुनने को तैयार न था। शिवाजी को अपने साथ एक घण्टा रख कर कुमार ने उसे उसके डेरे में भेज दिया।"

इस बीच में सम्राट् के लिए यह एक जटिल प्रश्न बन गया कि आगे शिवाजी से कैसा बर्ताव किया जाय। अनेक सामन्तों का आग्रह था कि शिष्टाचार का जबर्दस्त उल्लंघन करने के निमित्त उन्हें कठोर दण्ड दिया जाय। अपनी ओर से रामसिंह निरन्तर शिवाजी के पास अपने आदमी और उपहार भेजता रहा और युक्ति-संगत मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता रहा। राजधानी की पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी सिद्दी फ़ुलाद रामसिंह से मिलने आया और सम्राट् की ओर से उसे सन्देश दिया, जिसका अभिप्राय शिवाजी को तुष्ट करना था। अगले दिन, १३ मई को, रामसिंह सम्राट् के दरबार में शिवाजी

के पुत्र के साथ उपस्थित हुआ। सम्राट् ने बालक को एक पूरी पोशाक, एक रत्नजटित कटार और मोतियों का एक हार दिया। समयान्तर में सम्राट् ने यह निश्चय किया कि या तो शिवाजी का वध कर दिया जाय अथवा किसी गढ़ में बन्दी कर दिया जाय। उसने सिद्दी फुलाद को आज्ञा दी कि शिवाजी को रदन्दाज़ खाँ के मकान पर ले जाय जो एक नीच कुलोत्पन्न धर्मान्ध नवयुवक, सम्राट् का कृपापात्र था, और उस समय आगरे के किले का अधिकारी था। जब्र रामसिंह ने यह बात सुनी तो सम्राट् को यह सन्देश भेजा—"मेरे और मेरे पिता के सुरक्षा के वचन पर शिवाजी आये हैं। अतएव पहले आप मुझे मार डालें और फिर अपनी इच्छानुसार शिवाजी से बर्त्ताव करें।" तब सम्राट् ने कुमार से कहा कि वह शिवाजी की ओर से एक जमानती पत्र पर हस्ताक्षर करे ताकि वे भाग न सकें और न कोई हानि कर सकें।' १५ मई को प्रातःकाल शिवाजी कुमार के डेरे पर गये और सदाचरण का वायदा किया, और तब रामसिंह ने जमानती पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

जयपुर के एक पत्र में आगरा में शिवाजी के आकार-प्रकार और उनके अनुचरों का इस प्रकार वर्णन किया है—"वह केवल सौ सेवक लेकर अकेला गया है और उसके रक्षक-दल की संख्या २०० से २५० के बीच में है जिनमें से १०० के पास अपने घोड़े हैं और शेष बारगीर हैं। जब शिवाजी पालकी पर सवार होकर निकलता है तो बहुत से पैदल तुर्की टोपी लगाये हुए उसके आगे चलते हैं। उसका झण्डा गेरुए और लाल रंग का है और उसके ऊपर सोने का काम है। उसके साथ ऊँट बहुत कम हैं और वे केवल सामान ढोने के लिये हैं। उसके पास सौ बंजारे हैं। उसके समस्त उच्च अधिकारियों के पास चढ़ने के लिए पालकियाँ हैं, अतः उसके साथ बहुत सी पालकियाँ चलती हैं।

"देखने में शिवाजी शरीर से दुबला और छोटा है। उसकी मुखाकृति अति गौर-वर्ण है और बिना पहले से जाने ही व्यक्ति स्वतः समझ जाता है कि वह कोई शासक है। उसका ओज और

पौरुष स्पष्ट है। वह बहुत ही वीर और उच्चात्मा पुरुष है। उसके दाढ़ी है। उसका पुत्र ९ वर्ष का है और आकृति में विशेष रूप से सुन्दर और गौर-वर्ण है।

"शिवाजी थोड़े से सैनिक साथ लाया है परन्तु उसकी सुसज्जा अत्यन्त भव्य है। उसका झण्डा लेकर एक दीर्घकाय हाथी उसके सामने चलता है। उसके सामने सिपाहियों का एक अग्रदल रहता है। उसका दल अंदाज और शान से चलता है। उसकी पालकी पूर्णतया चाँदी के पत्तरों से मढ़ी हुई है और उसके डण्डे सोने के पत्तरों से। जन-साधारण उसकी वीरता की बहुत प्रशंसा करते हैं—इस कारण से कि उसने सम्राट् के सामने निःशंक और कड़े उत्तर दिये।"

१२ मई से १७ अगस्त तक अर्थात् तीन मास से अधिक समय तक शिवाजी आगरे में रहे। वे नज़रबन्द थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया, निगरानी कठोर होती गई। यह गतिरोध कैसे भंग किया जाय—यह समान प्रश्न था जो इस बीच में सम्राट् और शिवाजी दोनों के चित्त को व्यग्र किये रहा। सम्राट् ने यह निश्चय कर लिया कि उनका वध करा देगा, उसे तो केवल यही निश्चय करना था कि यह किस सुविधाजनक तरीके से सम्पन्न हो। शिवाजी भी समझते थे कि उनको क्या दण्ड मिलने वाला है और इसका सामना करने की वे तैयारी करने लगे। इस विषय पर जयपुर के पत्रों में निम्न-लिखित लेख हैं:—"एक दिन रामसिंह के डेरे में साधारण वार्तालाप में शिवाजी ने कहा—'केवल भावी मुझे यहाँ ले आई है। आपने महा-राजा (मिर्ज़ा राजा) को यह मन्त्रणा क्यों न दी कि सम्राट् के हाथों में मुझे न डालें।' शिवाजी ने तब कुछ रुपये वजीर जाफ़रखाँ को दिये ताकि उसका समर्थन प्राप्त हो जाये और अन्य दरबारियों पर भी उन्होंने न्यूनाधिक व्यय किया। अनेक सामन्तों को उन्होंने उपहार भेजे ताकि उनकी कृपा प्राप्त हो जाये। २० मई को जाफरखाँ ने शिवाजी की प्रार्थना सम्राट् के सम्मुख उपस्थित की और उनके अपराध को क्षमा करा लिया और उनकी प्राण-रक्षा कर ली। इसके पूर्व सम्राट् ने रामसिंह और शिवाजी को आज्ञा दी थी कि सेवा-कार्य पर काबुल

जाएँ। परन्तु बाद में उसने यह आज्ञा रद्द कर दी। इस बात की भी सम्भावना थी कि शिवाजी को सम्राट् के सम्मुख उपस्थित किया जायेगा और उन्हें विधिवत् क्षमा कर दिया जायेगा।

"२९ मई को शिवाजी ने सम्राट् को एक प्रार्थना-पत्र में लिखा—'यदि सम्राट् मुझे मेरे सब गढ़ वापस कर देंगे तो मैं दो करोड़ रुपये दूँगा। मुझे जाने की आज्ञा दी जाये। आपकी सेवा में मेरा पुत्र यहाँ रहेगा। आपके शब्द पर पूरा विश्वास करके मैं यहाँ आया। मेरी राजभक्ति पक्की है। आपका इस समय बीजापुर से युद्ध हो रहा है। मुझे जाने दें और मैं आपकी सेवा में युद्ध करूँगा।' इस प्रार्थना का सम्राट् ने उत्तर दिया—'अपने प्रति मेरे नम्र रुख के कारण शिवाजी का सिर फिर गया है। उसको घर जाने की आज्ञा कैसे मिल सकती है? उसको दृढ़ता से कह दो कि वह किसी से मिले नहीं, कुमार के घर भी न जाये।' इसके बाद शिवाजी के निवास-स्थान के चारों ओर कड़ा पहरा लगा दिया गया है।"

"८ जून। शिवाजी ने सम्राट् को इस आशय का प्रार्थना-पत्र दिया है—'मेरे लिए एक निवास-स्थान की आज्ञा दें जहाँ मैं चला जाऊँ। परन्तु रामसिंह की सुरक्षा में मुझे यहाँ न रखें।' सम्राट् ने उत्तर दिया—'रामसिंह सच्चा सेवक है। आपको उसकी निगरानी में रहना है।' अतः अब कुमार के आदमी कोतवाल की सेनाओं के अतिरिक्त शिवाजी पर पहरा लगा रहे हैं। रामसिंह कहता है—'यदि शिवाजी भाग जायें अथवा आत्महत्या करलें तो सम्राट् के प्रति मैं इसका उत्तरदायी हूँगा।' इसके बाद ताजसिंह और उसके अनुचर शिवाजी के पलंग पर पहरा रखते हैं और अर्जुनजी, सुखसिंह और अन्य राजपूत चारों ओर चक्कर लगाते हैं। इस पर शिवाजी ने रामसिंह को कहलाया—'जो सुरक्षा-पत्र आपने सम्राट् को दिया है, उसे वापस ले लें और जो कुछ सम्राट् मुझ से करना चाहें, उन्हें करने दें।' इस बीच में सम्राट् ने मिर्ज़ा राजा को पत्र लिखा कि शिवाजो के सम्बन्ध में किस मार्ग का अनुसरण किया जाये। उसके उत्तर की प्रतीक्षा है।"

"शुक्रवार, ८ जून को शिवाजी ने अपने समस्त नौकरों को विदा कर दिया। उन्होंने उनसे कहा—'आप सब जायें। मेरे पास कोई न रहे। यदि सम्राट् की इच्छा है तो मेरा वध हो जाने दो।' इस पर उनके आदमियों ने अपना सामान चलने के लिए लाद लिया। फ़ुलाद खाँ के द्वारा शिवाजी ने सीधे सम्राट् को कहला भेजा—'मेरी प्रार्थना है कि मेरे आदमियों को यात्रा के लिए आज्ञा-पत्र दे दिये जायें।' ये आज्ञा-पत्र प्राप्त हो गये और २५ जुलाई के लगभग शिवाजी का अनुचर-वर्ग आगरा से चल दिया।"

१६ जून। शिवाजी ने सम्राट् से प्रार्थना की कि उन्हें बनारस जाने की आज्ञा दी जाय ताकि वे वहाँ पर साधु की भाँति अपने दिन व्यतीत करें। सम्राट् ने उत्तर दिया—'उसे फकीर हो जाने दो और इलाहाबाद के गढ़ में रहने दो। उस पर वहाँ मेरा सूबेदार अच्छी तरह निगाह रखेगा। सम्राट् की सेनाएँ शिवाजी के निवास पर कड़ा पहरा लगाये हुए हैं। कुमार भी पूरी दृढ़ता और सावधानी से काम कर रहा है। रामसिंह शिवाजी के पुत्र को दरबार में ले जाता है।[2] सम्राट् को जयसिंह से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ है। यह अफवाह है कि शिवाजी कुछ सामन्तों से गुप्त रूप से अपनी मुक्ति की प्रार्थना कर रहे हैं। उसने उनके द्वारा सम्राट् से प्रार्थना की है कि गढ़ों को स्वयं समर्पित करने के लिए उन्हें जाने की आज्ञा दी जाये। सम्राट् ने यह कहकर इंकार कर दिया है—'उसको वहाँ स्वयं जाने की क्या आवश्यकता है, उसके लिखने पर उसके आदमी स्वयं गढ़ों को सौंप देंगे।' आगरा में आशातीत लम्बे समय

---

२ सम्भाजी उस समय ९ वर्ष का था और कभी-कभी सम्राट् से मिलता था। संस्कृत के एक पत्र (१६८० ई०) में अपने भूतकालीन जीवन का वृत्तान्त देते हुए उसने लिखा है कि जब वह आगरा में था तो सम्राट् ने उसको मल्ल युद्ध के लिए प्रेरित किया (सम्भवतया उसके समवयस्क किसी अन्य बालक से)। उसने सम्राट् की आज्ञा मानने से स्पष्ट इंकार कर दिया।

प्रादुर्भूत बालभावेन्द्रप्रस्थाधिनाथानुज्ञातमल्लयुद्धदत्ताज्ञाभंग।

(सम्भाजी दान-पत्र)

तक ठहरने के कारण शिवाजी के पास पैसा नहीं रह गया है। अपनी मुक्ति प्राप्त करने के लिए उसको रिश्वत, उपहार और अन्य आवश्यक कार्यों में बहुत व्यय करना पड़ा है। उसको सामान भी बहुत लेना था। जुलाई के मध्य में उसने कुमार रामसिंह से ऋण माँगा और ६६ हजार रुपये प्राप्त किये हैं। यह धन मिर्ज़ा राजा को देने के लिए उसने दक्षिण में अपने अधिकारियों को हुण्डी लिख दी है।"

इस प्रकार समय व्यतीत होता गया। जयसिंह ने उत्तर में सम्राट् को दृढ़तापूर्वक लिखा कि शिवाजी के विरुद्ध कोई कठोर कार्य न किया जाये, अपितु उनसे मित्रता की जाये और उनकी सेवाओं का दक्षिण में उपयोग किया जाये। उसने आग्रह किया कि सम्राट् उसकी शपथ और सुरक्षा का मान करे जो उसने गम्भीरता-पूर्वक शिवाजी को दी है कि उसकी कोई हानि नहीं होगी। उसने आग्रह किया कि सम्राट् का वायदा संसार में सबसे पवित्र वस्तु है। इस प्रकार के आश्वासन के उल्लंघन से न केवल शक्तिशाली जयसिंह बिगड़ेगा अपितु और सब राजपूत राजा भी विरुद्ध हो जायेंगे, इस आशंका से शिवाजी का वध करने का आखिरी कदम उठाने से सम्राट् रुक गया।

साथ ही अन्तःपुर से सम्राट् पर दबाव डाला जा रहा था कि वह शिवाजी का वध करा दे। पूना में खान के शिविर पर शिवाजी के धावा करने के कारण शाइस्ताखाँ की पत्नी शिवाजी के अत्यन्त विरुद्ध थी। औरंगजेब की मौसी वजीर जाफरखाँ को ब्याही थी, जिससे शिवाजी एक बार वार्तालाप करने के लिए मिले थे। परन्तु जाफरखाँ की पत्नी ने अपने पति पर जोर देकर शिवाजी को थोड़ी बातचीत के बाद विदा करा दिया। वह ऐसे भयानक शैतान को महल में रोकना खतरनाक समझती थी क्योंकि इसी ने शाइस्ताखाँ पर घातक वार किया था। ऐसा ख्याल किया जाता था कि शिवाजी अपने दूर खड़े विरोधी पर अकस्मात् कूद कर आक्रमण करने में समर्थ हैं।

इसके बाद १७ अगस्त, श्रावण कृष्णा १२, तक शिवाजी के आगरा में निवास के कोई विशद विवरण प्राप्य नहीं हैं। इस दिन वे आश्चर्यजनक ढंग से भाग निकले। योजना सर्वथा उन्हीं के द्वारा निर्मित हुई थी जिससे प्रकट होता है कि उनका मस्तिष्क कितना उर्वर था। इस घटना से शिवाजी तुरन्त प्रसिद्ध हो गये। वह देवदूत माने जाने लगे जो हिन्दू धर्म के अभ्युत्थान के लिए विशेष रूप से अवतरित हुए थे। पलायन की यह योजना उनके मन में कैसे आई और किस प्रकार वे निपुणता से इसको कार्यान्वित करने में सफल हुए, यह इतिहासकार के लिए सदैव पहेली बनी रहेगी। हम उन लोगों की सहायता से इसे हल करने का प्रयत्न करेंगे, जिन्होंने आँखों देखा हाल लिखा है।

३. आश्चर्यजनक पलायन—फ्रेन्च-यात्री थेवेनॉट उस समय आगरा में था और उसने वही वृत्तान्त लिखा है जो उसने घटना-स्थल पर देखा और सुना था। इस घटना के लिए वही हमारा एकमात्र बुद्धिमान् साक्षी है। उसका वृत्तान्त जयपुर के पत्रों की कथा का पूर्ण समर्थन करता है। उसने शिवाजी के आगमन के कारण की व्याख्या की है। थेवेनॉट लिखता है, "सूरत की लूट का समाचार सुनकर और शिवाजी को समाप्त करने की इच्छा से औरंगजेब ने अपने दरबार के राजाओं से बातचीत की—वह जानता था कि इनमें शिवाजी के बहुत से मित्र थे। उसने कहा कि वह उसकी वीरता के कारण शिवाजी का बहुत सम्मान करता है और उसकी इच्छा है कि वह दरबार में आये। उसने यह स्पष्ट कहा कि उसे इस बात से खुशी होगी कि वह शिवाजी जैसे वीर का अपने दरबार में सम्मान करे। उसने राजाओं को आज्ञा दी कि वे शिवाजी को पत्र लिखें और अपना शाही वचन दिया कि उसकी कोई हानि न की जायगी। उसने अब बीती हुई बातें भुला दी हैं। जो कुछ सम्राट् ने कहा उसे बहुत से राजाओं ने लिख दिया और एक प्रकार से वे खुद उसके वचनों के जामिन हो गये। अतः शिवाजी को स्वयं दरबार में आने और अपने पुत्र को अपने साथ लाने में कोई कठिनाई प्रतीत न हुई।

"प्रारम्भ में उसकी आशानुरूप सेवा-सुश्रूषा की गई। परन्तु कुछ समय बाद शिवाजी ने सम्राट् में कुछ शुष्कता पाई और दृढ़ता से स्पष्ट कह दिया कि उसे विश्वास हैं कि वह उसका (शिवाजी का) वध करना चाहता है, यद्यपि वह उसके शाही वचन पर आया है। वह किसी भी प्रकार उसकी सेवा में उपस्थित होने के लिये बाध्य न था। शाइस्ताखाँ और सूरत के राज्यपाल से सम्राट् को ज्ञात हो गया होगा कि वह किस प्रकार का व्यक्ति है। किन्तु यदि फिर भी उसका विनाश हुआ तो उसके पास ऐसे आदमी हैं जो उसकी (शिवाजी) मृत्यु का बदला ले लेंगे। यह आशा करके कि वह बदला ले लेंगे, उसने निश्चय कर लिया है कि अपने ही हाथों से वह अपनी जान दे दे और अपनी कटार निकालकर उसने अपनी हत्या करने का प्रयत्न भी किया परन्तु रोक दिया गया और उसके ऊपर पहरा बैठा दिया गया।

"सम्राट् खुशी से उसका वध करा देता, परन्तु उसे राजाओं के विद्रोह का भय था। प्रतिज्ञा के प्रतिकूल व्यवहार के कारण वे पहले से ही असन्तुष्ट थे और इस दुर्व्यवहार के कारण उन सब को उसके लिए चिन्ता हो गई थी। इस विचार से औरंगजेब विवश हो गया कि उसके साथ अच्छा व्यवहार करे और उसके पुत्र का आदर करे। उसने उसे आश्वासन दिया कि उसका लेशमात्र भी विचार उसका वध कराने का नहीं है। औरंगजेब कन्धार को जीतने की इच्छा रखता था। उसने शिवाजी से आग्रहपूर्वक युद्ध में साथ चलने को कहा। दक्षिण से आने वाली उसकी सेनाओं के लिये सम्राट् ने अनुमति-पत्र दे दिया। जब उसे ये अनुमति-पत्र प्राप्त हो गये तो उसने स्वयं दरबार से भाग जाने के लिए उनका उपयोग करने का निश्चय किया। उसने ये अनुमति-पत्र अपने अधिकारियों को दे दिये ताकि वे निश्चित स्थानों पर घोड़ों की व्यवस्था कर दें, और इसके लिए यह बहाना बनाया गया कि वे लोग फौजों को लेकर आएँगे। जब पूरी तैयारी हो गई तो शिवाजी और उसका पुत्र बाँसों में लटकती हुई टोकरियों में बैठकर गुप्त रूप से नदी के

किनारे पहुँच गये। उन्होंने नदी को पार किया, तैयार खड़े घोड़ों पर बैठ गये, और कहारों से यह कहकर भाग गये—जाओ और सम्राट् को सूचित कर दो कि तुमने राजा शिवाजी को यहाँ पहुँचा दिया है। वे दिन-रात बढ़ते चले गये और निर्दिष्ट स्थानों पर सदा उनको नये घोड़ें मिलते रहे।

"शिवाजी के पलायन पर औरंगजेब अत्यन्त बौखला गया। बहुतों को विश्वास था कि उसके पलायन की बात झूठी है जो जान-बूझ कर बनाई गई है। उनका कहना था कि वास्तव में उसका वध कर दिया गया। राजा डील-डौल में छोटा है, कपिल वर्ण है, उसकी आँखें चपल हैं जिनसे अतिशय बुद्धिमत्ता झलकती है।"[3]

जयपुर के पत्र और थेवेनॉट का वृत्तान्त बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं और दोनों सत्य समझे जा सकते हैं। औरंगजेब का विश्वास-घातपूर्ण आचरण अत्यन्त निन्दनीय है। पहले उसने छल से शिवाजी को आगरा आने पर राजी कर लिया और वहाँ नीचतापूर्वक उसका वध करने पर आमादा हो गया। वह इतना डरपोक था कि इस कार्य को वीरतापूर्वक न कर सकता था। उसको ज़नमत का भय था, जो पिता और भाइयों के प्रति उसके बुरे आचरण के कारण उसके पक्ष में न था। सम्राट् यदि अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर शिवाजी का वध करा देता तो औरंगजेब का नाम तुरन्त सम्पूर्ण भारत में बदनाम हो गया होता।

औरंगजेब विचारशील आत्म-निरीक्षक प्रकृति का व्यक्ति था और बिना पहले विचारे काम नहीं करता था। अपने मनोभावों पर उसे पूर्ण अधिकार था। खुले दरबार में शिवाजी के प्रथम भड़क उठने से सम्राट् के सामने तीन हल थे—(१) उनका वध करा देना, (२) उनको मुसलमान बनाकर उनकी सेवाओं का उपयोग करना, और (३) अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उनसे मित्रता करना और वापस भेज देना। इनमें से प्रत्येक बात के समर्थक लोग थे। सम्राट्

---

३ फौरिन बायोग्राफीज़ ऑफ शिवाजी, पृ० १८३।

प्रथम दो उपायों के सम्बन्ध में बहुत समय तक डाँवाडोल रहा और अन्त में उसने निश्चय किया कि उसका वध करा दे। वह इस प्रयत्न में था कि किसी भी सम्भव प्रकार जनता में यह भ्रम पैदा करदे कि इस घृणित कार्य में उसका हाथ नहीं है। अत: उसने ऐसा मार्ग ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जिससे अभीष्ट परिणाम प्राप्त हो जायें और वह प्रत्यक्ष रूप से उसमें न फँसे। सम्राट् के इस घृणित उद्देश्य की सफल पूर्ति के लिए रामसिंह के डेरे के समीप शिवाजी का निवास होना हितकर न था क्योंकि इस दशा में सर्वप्रथम रामसिंह के रक्षकों को हटाना जरूरी था। अत: पुलिस से शिकायत कराई गई कि रामसिंह के पड़ोस के खुले वातावरण में शिवाजी का निवास होने से उस पर पर्याप्त पहरा नहीं लग सकता है। फलस्वरूप सम्राट् ने आज्ञा दी कि १८ अगस्त को शिवाजी को फिदाईहुसैन के मकान में निर्वासित कर दिया जाये जिसे जल्दी-जल्दी पूरा किया गया था। यह बन्दी के निवास के लिए बहुत उपयुक्त था। जब शिवाजी को सूचना मिली कि उन्हें एक नये और अधिक सुविधाजनक मकान में निर्वासित किया जायेगा तो वे इस परिवर्तन का अर्थ समझ गये। अतएव जो दिन उनके निवास-परिवर्तन के लिए नियुक्त किया गया था उसकी पहली रात को ही वे भाग गये। उन्होंने रामसिंह से पहिले ही कहा था कि जिस जमानती पत्र पर उसने हस्ताक्षर किये हैं, उसको वह रद्द करा दे क्योंकि उनकी इच्छा थी कि उनके कृत्य से रामसिंह पर आक्षेप न लगे।

शिवाजी यह प्रकट करते रहे वे मृत्यु के लिए तैयारी कर रहे हैं। पिता ने पुत्र का आलिंगन किया और अपने दुर्भाग्य पर फूट-फूट कर रोने लगे। उन्होंने उस कुघड़ी को कोसा जिसमें उन्होंने अपना घर छोड़ा था। निराशाजनक अवस्था में यह प्राय: प्रतीत होता था कि शिवाजी ने सम्पूर्ण आशा त्याग दी है और वे ऐसे शब्द बोलते थे जिनका अर्थ यह था कि यदि उन्हें जीवन-दान दिया जाय तो वे सम्राट् की प्रत्येक शर्त को पूरा कर देंगे। उन्होंने प्रत्येक प्रभावशाली व्यक्ति से प्रार्थना भी की कि वह सम्राट् से अनुनय-विनय

करे कि उन्हें प्राणदान दिया जाए। उनके अधिकांश आदमी पहले ही जा चुके थे। वे बीमार हो गये अथवा उन्होंने यह बहाना किया। उनकी सेवा में केवल एक या दो नौकर हीरोजी फर्जन्द और मदारी मेहतर रह गये थे। १७ अगस्त की संध्या को कोई अन्य व्यक्ति उनकी खाट पर चादर तान कर सो गया और शिवाजी एवं सम्भाजी दोनों अलग-अलग टोकरियों में भाग गये, जैसे थेवेनॉट ने वर्णन किया है। वर्णनानुसार नीराजी रावजो, दत्ताजी त्र्यम्बक और रघुमित्र उनके साथ गये। जैसे ही वे अपने निश्चित गुप्त स्थान पर पहुँचे, अपने घोड़ों पर सवार हो गये जो पूर्व-प्रबन्धानुसार तैयार थे। वे मथुरा के मार्ग से घोड़ों पर बैठकर दक्षिण को रवाना हो गये।

दूसरे दिन सुबह हीरोजी भी, जो उनकी खाट पर सो रहा था, चुपचाप बाहर आया और पहरेदारों से बोला कि शिवाजी बीमार हैं और गाढ़ निद्रा में हैं, अतः उन्हें छेड़ा न जाये। ऐसा प्रतीत होता है कि १८ तारीख को दोपहर तक किसी ने शिवाजी की ओर ध्यान न दिया। फुलादखाँ जब स्वयं अन्दर आया और उस जगह का निरीक्षण किया, तब पता लगा कि चिड़िया उड़ गई है। अत्यन्त भयभीत होकर वह सम्राट् के पास गया और सूचना दी कि जादू से शिवाजी लुप्त हो गया है क्योंकि पहरेदारों ने किसी को मकान से बाहर जाते नहीं देखा और वे सावधानी से उस जगह पर पहरा देते रहे हैं। सम्राट् इतना मूर्ख न था कि जादूगरी का विश्वास कर लेता। अत्यन्त भय और आतुरता से उसने समस्त राज्यपालों और स्थानीय अधिकारियों को कठोर एवं आवश्यक आज्ञाएँ भेजीं कि भगोड़ों को पकड़ लिया जाये। तुरन्त समस्त दिशाओं में खोजी दल भेजे गये। दर्रों और पुलों पर आवागमन रोक दिया गया। लगभग एक पूरे दिन या कम से कम १८ घण्टे पहले शिवाजी निकल चुके थे। सम्राट् ने शिवाजी के पलायन के लिए रामसिंह को उत्तरदायी ठहराया और उसको आज्ञा दी कि वह स्वयं जाये और भगोड़े को पकड़ लाये। कुमार धौलपुर की ओर तलाश में गया। फुलादखाँ ने भी क्रोध के आवेश में कहा

कि रामसिंह के पहरेदारों की सहायता से शिवाजी भाग गया है। कुछ दिनों में कुमार अपदस्थ कर दिया गया और उसके लिए दरबार निषिद्ध कर दिया गया। कुछ दिनों बाद इसका पता लगा कि वे मिठाइयों की उन टोकरियों में छिपकर भाग निकले थे जो बाहर भेजी जाती थीं। जो पहरे पर थे उन्हें लापरवाही के लिए कठोर दण्ड दिया गया। कई दिनों तक जाँच-पड़ताल होती रही। जो सम्पत्ति, जवाहरात, हाथी, घोड़े आदि शिवाजी छोड़ गये थे, उन्हें जब्त कर लिया गया। शिवाजी के आगरा छोड़ने के दो दिन बाद त्र्यम्बक सोनदेव और रघुनाथपन्त कोर्डे का पता लगा और वे बन्दी बना लिये गये। फुलादखाँ और उसके अधीनस्थ कर्मचारियों ने उनको कठोर शारीरिक यातनाएँ दीं। अन्त में ३ अप्रेल, १६६७ को वे छोड़ दिये गये, जब शिवाजी को घर पहुँचे ६ मास हो गये थे।

१५ जुलाई, १६६६ के लिखे हुए जयपुर के एक पत्र में परमानन्द के विषय में इस प्रकार लिखा है, "शिवाजी के पास एक कवि है जिसको कवीन्द्र या कवीश्वर कहते हैं, जिसको उसने एक नर और एक मादा हाथी, एक हजार नकद रुपये, एक घोड़ा और कपड़ों का एक जोड़ा दिया है। शिवाजी कहता है कि चूँकि मैं बाहर जाने में असमर्थ हूँ, मैं इस प्रकार अपने हाथियों और घोड़ों को बाँट दूँगा और स्वयं यहाँ पर एक फकीर की भाँति रहूँगा।"

२३ अगस्त को किसी स्थानीय अधिकारी द्वारा लिखित पत्र में लिखा है—"सब परगनों को उस आशय की आज्ञाएँ हमने भेज दी हैं। आज दौसा से मनोहरदास पुरोहित और नाथूराम ने सूचित किया हैं कि दो हाथी, दो ऊँट, एक घोड़ा, लद्दू बैल और ४० हरकारे लेकर परमानन्द कवीश्वर वहाँ पहुँच गया है। मैंने मनोहरदास से कहा है कि कवि को वहाँ रोक ले और लद्दू बैलों की अच्छी तरह तलाशी ले।" २८ दिसम्बर के एक दूसरे पत्र में लिखा है—"मनोहर

दास और नाथूराम यह लिखते हैं कि शिवाजी के सेवक कवीन्द्र कवीश्वर परमानन्द को रोक लिया गया था। बाद में मिर्ज़ा राजा की एक आज्ञा प्राप्त हुई कि उसको छोड़ दिया जाये और जहाँ पर वह हो उसे पहरे में रख दिया जाये। हमें पूछताछ करने पर मालूम हुआ है कि बनारस जाने के इरादे से वह उदई को चला गया है। अतः यह समाचार पाकर मैंने उसी दिन २ सवार और १५ पैदल भेज दिये। हिंडौन परगने के चन्दन गाँव में वे उसके पास पहुँच गये और बुधवार २६ दिसम्बर को उसे वापस ले आये। अब वह कहता है—'मैं दिल्ली जाना चाहता हूँ।' अतः मुझे आज्ञा दें कि मैं उसके साथ क्या करूँ। उसके पास बहुत सामान है।" कवि परमानन्द के विषय में जयपुर के पत्रों में आगे कुछ नहीं है।

समस्त प्रकृत प्रमाणों से एक मुख्य तथ्य यह प्रकट होता है कि बाह्य जगत शिवाजी के नितान्त पक्ष में था; उसने औरंगजेब को दोषी ठहराया कि उसने विश्वासघातपूर्वक अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन किया, जो सम्राट् की प्रतिज्ञा के नाते सर्वदा पवित्र रहती है। यदि यह बात न होती तो शिवाजी इतनी आसानी से भाग न सकते थे अथवा भागने के बाद वे शीघ्र पकड़ लिये गये होते। गलत और अन्यायपूर्ण ढंग के कारण शक्ति-सम्पन्न सम्राट् भी अशक्त हो जाते हैं। कुछ समय बाद रामसिंह को विधिपूर्वक क्षमा मिल गई, परन्तु वह फिर कभी उस स्नेहपूर्ण विश्वास का भागी न हो सका जो उसे पहिले प्राप्त था। यह भी स्पष्ट है कि शिवाजी के पलायन में रामसिंह का कुछ भी हाथ न था। शिवाजी की अपनी विलक्षण बुद्धि और समीपवर्ती लोगों के हृदयों को जीतने के उनके तरीके उनकी सकुशल वापसी में मुख्य सहायक सिद्ध हुए। चूँकि भागने में अल्पवयस्क सम्भाजी अपने पिता का साथ न दे सकता था, उसे मथुरा में कुछ विश्वस्त पुजारियों के पास रख दिया गया, और पिता स्वयं गौंडों के देश में होकर गोलकुण्डा और बीजापुर पहुँच गये। १२ सितम्बर, १६६६ को अथवा आगरा से प्रस्थान करने

के २५वें दिन वह अकस्मात् परिव्राजक संन्यासी के वेष में अपनी माता के सम्मुख राजगढ़ में उपस्थित हुए।[४]

इस अत्यन्त रोमांचक नाटकीय सफलता का समाचार बड़ी तेजी से समस्त देश में फैल गया। प्रत्येक भारतीय गृह में इस विषमता पर चर्चा होने लगी—एक ओर तो आगरा के उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक भवन में एक एकाकी कृश शरीर वाला व्यक्ति था और दूसरी ओर अपनी समस्त सत्ता और वैभव से परिवेष्ठित उच्च मयूर सिंहासन पर आसीन अत्यन्त बलशाली और अत्यन्त भयोत्पादक सम्राट् था। इस घटना से समस्त भारत में हर्ष की लहर दौड़ गई, जिससे प्रत्येक हिन्दू के हृदय में पददलित मानवता के प्रति नवीन साहस और नव आशा का संचार हुआ। शिवाजी की प्रसिद्धि अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त हो गई क्योंकि उन्होंने सर्वाधिक चालाक और शक्तिशाली मुगल सम्राट् को हतबुद्धि कर दिया था। वह तुरन्त अखिल भारतीय व्यक्ति हो गये। जन्मभूमि में उनके आगमन पर विशिष्ट हर्ष से स्वागत किया गया और समस्त दक्षिण में उत्सव मनाये गये। इस घटना की घोषणा करते हुए गढ़ों से तोपें छोड़ी गईं। चूँकि यह हर्षोत्सव अनियमित होने लगे, अतः शिवाजी ने बाद में स्थायी आदेश जारी कर दिये जिनमें निश्चित कर दिया गया कि विशेष अवसर पर कितनी तोपें छोड़ी जाएँगीं। उन सब व्यक्तियों को उन्होंने पुरस्कार प्रदान किये जिन्होंने कठिन परीक्षा के समय उनकी सेवा की थी। नीराजी रावजी, बालाजी आवजी, हीरोजी फर्जन्द, रघुनाथपन्त कोर्डे, त्र्यम्बक सोनदेव और अन्य लोगों को पुरस्कार प्राप्त हुए। इस घटना की स्मृति में सब गढ़ों में मिठाई बाँटी गयी। शिवाजी यह देखकर प्रसन्न हुए कि उनकी

---

४ जयपुर के पत्रों में यह तारीख दी गई है, देखिए 'हाउस ऑफ शिवाजी', पृ० १५१।

किन्तु जेधे की शकावली में शिवाजी के राजगढ़ पहुँचने की तारीख २० नवम्बर दी गई है, अर्थात् आगरा से रवाना होने के ९२ दिन बाद।

अनुपस्थिति में राजकार्य सन्तोषजनक रीति से चलता रहा। मुगल सेना देश को पीड़ित कर रही थी परन्तु विश्वासघात या पक्ष-त्याग का एक भी उदाहरण शिवाजी के अधिकारियों में न था। इससे यह स्पष्ट हो गया कि उन्होंने अपने राज्य और शासन को कुछ ही वर्षों में किस पूर्णता और व्यवस्था को पहुँचा दिया था और किस प्रकार अनियमितता और अव्यवस्था का लोप हो गया था।

सम्भवतः सबसे बड़ा लाभ जो शिवाजी को इस साहसिक कार्य से हुआ, वह यह था कि वे शाही दरबार की क्रिया-प्रतिक्रिया एवं वहाँ के लोगों और वहाँ की राजनीति के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आ गये। इसके सबल और निर्बल पक्ष का उन्होंने सूक्ष्मता से अवलोकन किया और अपने भावी कार्य में इस अनुभव से पूर्ण लाभ उठाया। वे इस परिणाम पर पहुँचे कि मुगल साम्राज्य अन्दर से खोखला हो गया है, वह अन्याय, अत्याचार और भ्रष्टता से परिपूर्ण है और उसको सरलता से पराजित किया जा सकता है। औरंगजेब द्वारा सत्ता की पराकाष्ठा-प्राप्ति के इस दिन से इतिहासज्ञ मुगल साम्राज्य का पतन आँकते हैं। इसके बाद औरंगजेब का पतन आरम्भ हुआ, यद्यपि सर्वप्रथम यह गति मन्द थी। शिवाजी सदैव उसके मस्तिष्क में घूमते रहे और सम्राट् अपने जीवन के अन्तिम दिन तक उस भूल पर पश्चात्ताप करता रहा कि उसने शिवाजी का तुरन्त वध क्यों न करा दिया। अपनी वसीयत में उसने लिखा है, "राज्य से सही समाचार एकत्र करने में एक क्षण की भी उपेक्षा के भयंकर परिणाम हो सकते हैं, जिसका प्रायश्चित्त आजीवन करना पड़ता है। उस दुष्ट शिवा को सावधानी से पहरे में रखने के प्रति मैंने उपेक्षा की और इस कारण मुझे मृत्युपर्यन्त युद्ध की भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।"[५]

४. बाद के परिणाम; शान्ति—सम्राट् की कैद से शिवाजी के पलायन ने उस विजय की सारी सफलता को नष्ट कर दिया जो

---

५ सरकार कृत "शिवाजी", पृ० १५७ और आगे।

जयसिंह ने दक्षिण में की थी। इसी से सम्राट् को चिन्ता बढ़ गई। पुरन्दर के सन्धि-पत्र से सन्तुष्ट रहने की अपेक्षा शिवाजी को आगरे की यात्रा से अधिक लाभ हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि उस सन्धि-पत्र का पालन करना अब उनके लिए आवश्यक न था। शिवाजी से अपनी सुरक्षा के प्रसंग में सम्राट् को नेताजी पाल्कर का ध्यान आया जिसे जयसिंह ने हाल में मुगल सेवा में प्रविष्ट कर लिया था और जिसे दक्षिण के युद्ध का मूल्यवान् अनुभव था। औरंगजेब ने जयसिंह को लिखा कि नेताजी को पकड़ ले और बन्दी बनाकर दरबार में भेज दे। उसे भय था कि वह शिवाजी से मिलकर दक्षिण में अधिक कठिनाई उत्पन्न कर देगा। अत: नेताजी और उसका चाचा कोंडाजी राजधानी में पहुँच गये। तब सम्राट् ने नेताजी को सुझाव दिया कि यदि वह मुसलमान हो जाये तो उसे बहुत पुरस्कार दिया जायगा। यदि उसने इंकार कर दिया तो उसे आजीवन कारागार में डाल दिया जायगा। नेताजी परिस्थिति-वश सहमत हो गया और मुसलमान बना लिया गया। उसका नाम मुहम्मद कुलीखाँ रखा गया (२७ मार्च, १६६७)। तत्पश्चात् उसका एक मुस्लिम महिला से विवाह कर दिया गया और उसे आज्ञा मिली कि महाबतखाँ के साथ अफगानिस्तान को युद्ध के लिए जाए। यहाँ वह ८ वर्ष रहा और अच्छे कार्य के लिए उसकी बहुत प्रशंसा हुई। नेताजी के भावी जीवन और शुद्धि का विवरण दिया जायगा।

अपनी वापसी पर कुछ समय तक शिवाजी ने विश्राम किया ताकि उनका बिगड़ा स्वास्थ्य सुधर जाये। वे इस पर मनन करते रहे कि मुगलों के विरुद्ध वे किस मार्ग का अनुसरण करें। विशाल सेनाएँ लिये हुए जयसिंह अब भी दक्षिण में था। परन्तु शिवाजी ने ऐसा अवसर न आने दिया कि वह उनकी ओर ध्यान दे। वास्तव में शिवाजी ने कुछ समय तक इसका विशेष ध्यान रखा कि मुगलों को किसी प्रकार चिढ़ाया न जाय। कोंकण में अपनी सत्ता के संगठन की ओर उन्होंने ध्यान लगाया और वहाँ की राजस्व-व्यवस्था की कोशिश की। पुरन्दर की सन्धि के अनुसार वे

कायदे से मुग़लों के आधीन हो गये थे। बाह्य रूप से वे इसका पालन करते रहे। उन्होंने सम्राट् को सूचना भेजी कि अपने प्राणों के भय से वे दरबार से भाग आये हैं, व्यक्तिगत रूप से कोई दुर्भावना नहीं है, और सम्राट् की सेवा के लिए अब भी वे उसी प्रकार प्रस्तुत हैं, जैसा कि पहली प्रतिज्ञा के अनुसार थे। उन्होंने जयसिंह को लिखा, "सम्राट् ने मुझे त्याग दिया है अन्यथा मेरा इरादा था कि उनसे आज्ञा माँगता कि बिना अन्य सहायता के अपने ही साधनों से मैं पुनः उनके हितार्थ कांधार विजय करूँ। यदि आपकी मध्यस्थता से मुझे क्षमा मिल जाये तो मैं अपने पुत्र सम्भाजी को राजकुमार की सेवा में भेज दूँगा और आवश्यकतानुसार मैं स्वयं भी अनुचरों सहित सेवा के लिए सन्नद्ध रहूँगा।"

शकावली में लिखा है, "मई १६६७ में बहलोलखाँ और एकोजी राजे ने रंगना के गढ़ पर घेरा डाल दिया। शिवाजी राजे ने आक्रमण किया और घेरा तोड़ दिया। शिवाजी और आदिलशाह में एक सन्धि सितम्बर में हुई।" इससे सिद्ध होता है कि आदिलशाह ने इस समय दक्षिण कोंकण पर पुनः अधिकार करने की कोशिश की। पर शिवाजी ने उसको छीन लिया। दक्षिण में मुगल सेना के सम्मुख सेनापति के रूप में जयसिंह की स्थिति असह्य हो गई। इसके दो कारण थे—शिवाजी का पलायन, और बीजापुरी सेनाओं के समक्ष उसकी असफलता। जब शिवाजी आगरा में बन्द थे, जयसिंह ने अपने पुत्र रामसिंह से आग्रह किया कि वह शिवाजी पर पहरा रखने का अप्रिय कार्य स्वीकार न करे, क्योंकि इसका यह अर्थ था कि एक हिन्दू राजकुमार दूसरे हिन्दू राजकुमार को बन्दीगृह में रखे। इस प्रकार जयसिंह और रामसिंह सम्राट् की निगाह से गिर गये। सम्राट् को सन्देह था कि वे ही शिवाजी के पलायन के लिए उत्तरदायी हैं। शिवाजी के कुछ ब्राह्मण अनुचरों ने, जो शिवाजी के पलायन के बाद आगरा में पकड़ लिये गये थे, शारीरिक यातना दिये जानें के कारण यह स्वीकार कर लिया कि रामसिंह ने छलपूर्ण कार्य किया है। दूसरी ओर जयसिंह निरन्तर सम्राट् को कटु पत्र

लिखता रहा, जिनमें उसने वस्तु-स्थिति पर घोर दुःख प्रकट करते हुए परिणाम के लिए अपने मन्द भाग्य को कोसा था। उसका अपमान किया गया और सम्राट् ने उसे दरबार में वापस बुला लिया। शाहजादा मुअज्जम को राज्यपाल बनाकर भेजा गया और वह मई १६६७ ई० में पहुँच गया। जयसिंह ने औरंगाबाद में राजकुमार को कार्य-भार सौंप दिया और उत्तर की ओर अपनी यात्रा पर चल दिया। वह वृद्धावस्था, परिश्रम तथा अपने इस सार्वजनिक अपमान से होने वाली घोर निराशा के कारण जीर्ण-शीर्ण हो गया था। उसे इस विचार से बड़ा दुःख था कि आजीवन स्वामि-भक्ति-पूर्ण सेवाएँ उसके सम्मान और गौरव की रक्षा करने में असफल सिद्ध हो गईं। मार्ग में ही २८ अगस्त, १६६७ को बुरहानपुर में उसका देहान्त हो गया। (आयु ६२ वर्ष, जन्म १६०५ ई०)।

इस समय शिवाजी की कदापि इच्छा न थी कि मुगलों के विरुद्ध किसी युद्ध का संचालन करें और जब उन्होंने सुना कि जयसिंह वापस बुला लिया गया है तो उन्होंने शान्ति की साँस ली। अपनी समस्त अनुनय शक्ति के द्वारा वे जयसिंह को डिगा न सके अथवा जयसिंह सम्राट् के विचारों से पूर्णतया बद्ध था। इसलिए निर्बल और आलसी मुअज्जम और स्पष्ट-हृदय एवं मैत्री-भावपूर्ण यशवन्तसिंह के दक्षिण के शासन में लौटने पर उन्हें खुशी हुई। इस समय क्रूर दिलेरखाँ गोंड प्रदेश को विजय करने के हितार्थ देवगढ़ के विरुद्ध अभियान के कारण वहाँ पर उपस्थित न था। दिलेरखाँ की धृष्टता तथा जासूसी प्रकृति जिसके कारण उसने सम्राट् पर अत्यधिक प्रभाव जमा लिया था, मुअज्जम को सदैव नापसन्द थी। दिलेरखाँ और यशवन्तसिंह खुल्लम-खुल्ला एक-दूसरे से घृणा करते थे क्योंकि यशवन्तसिंह शाहजादे का विश्वस्त सलाहकार था। मुग़ल शासन की इन आन्तरिक बातों के बारे में शिवाजी को पूर्ण जानकारी थी और इनसे पूरा लाभ उठाने में वे नहीं चूके।

सम्राट् की सेवा करने के शिवाजी के प्रस्ताव का यशवन्तसिंह और शाहजादे ने हृदय से स्वागत किया, क्योंकि वे जानते थे कि

उनको दबाना सम्भव नहीं है। उन्होंने शिवाजी के प्रस्ताव को सानुरोध सम्राट् के पास भेज दिया। सम्राट् ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और शिवाजी की "राजा" की उपाधि को मान्यता प्रदान कर दी। औरंगाबाद के राज्यपाल के दरबार में सम्भाजी को भेजा गया। उसकी प्रथम भेंट ४ नवम्बर को हुई और तदनन्तर घर वापस जाने की आज्ञा मिल गई। ६ मार्च, १६६८ के एक पत्र में मुअज्जम ने सम्राट् की आज्ञा शिवाजी के पास भेज दी, जिसके द्वारा उन्हें राजा की उपाधि दी गई थी और सम्राट् सन्धि के लिए सहमत हो गया था। यह सन्धि दो वर्ष तक बनी रही।

५ अगस्त, १६६८ को सम्भाजी मुगल शिविर में पुनः सेवा के लिए आया। उसके अधीन सेना के नेता थे—प्रतापराव गूजर और नीराजी रावजी। सम्भाजी को पंचहजारी मनसब दिया गया और भेंट में एक रत्न-जटित तलवार और एक हाथी मिला। बरार में उसके व्यय के निमित्त जागीर भी दी गई। अपने वास्तविक हितों के संरक्षण के निमित्त शिवाजी ने यह अनोखा ढंग अपनाया जिसके कारण पुरन्दर के सन्धि-पत्र के अनुसार अधीनता से उन्हें कोई व्यावहारिक हानि न हुई। जल्दी ही उनके अधिकांश गढ़ उन्हें वापस मिल गये, जैसा अगले अध्याय में हम पढ़ेंगे। वे नाममात्र के लिए औरंगजेब के अधीन थे। बीजापुर से भी उनका सम्बन्ध शान्तिपूर्ण रहा। पश्चिम तट पर योरोपीय सत्ताओं ने भी उनकी मित्रता प्राप्त करनी चाही। पुर्तगालियों ने अपने प्रतिनिधि शिवाजी के पास भेजे और उनके साथ सन्धि-पत्र द्वारा शान्ति स्थापित कर ली (११ दिसम्बर, १६६७)। जब मुगल सम्राट् ने उनको राजा मान लिया तो बीजापुर और गोलकुण्डा का बर्त्ताव भी उनके प्रति स्वतन्त्र राजा का हो गया। मुअज्जम के द्वारा उन दोनों राज्यों से चौथ लेने का अधिकार शिवाजी को प्राप्त हो गया और इस प्रकार वे प्रदेश उनके अधीन हो गये। इन करों की प्राप्ति के निमित्त वार्षिक मराठा धावों से बचने के लिए वे उनको वार्षिक धन-

राशि देने पर सहमत हो गये—बीजापुर ३ लाख और गोलकुण्डा ५ लाख रु०। इस प्रकार १६६८ ई० की साल में शिवाजी के जीवन-चन्द्र की अन्तिम कला तेजी से पूर्णता की ओर बढ़ती है।

तिथिक्रम

अध्याय ८

९ अप्रेल, १६६९	सम्राट् द्वारा हिन्दू-विद्यालयों और मन्दिरों को गिराने की आज्ञा।
४ सितम्बर, १६६९	काशी-विश्वेश्वर के मन्दिर का तोड़ा जाना और उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण।
जनवरी १६७०	शिवाजी का बरार को लूटना।
४ फरबरी, १६७०	शिवाजी का सिंहगढ़ पर पुनः अधिकार।
३ मार्च, १६७०	कल्याण और भिवण्डी पुनः हस्तगत।
अप्रेल १६७०	जुन्नार, अहमदनगर और परेण्डा की लूट।
३-६ अक्टूबर, १६७०	सूरत पर शिवाजी का दूसरा धावा।
१६ अक्टूबर, १६७०	वाणी और डिण्डोरी पर दाऊदखाँ पराजित।
नवम्बर १६७०	बुरहानपुर और करंजा पर शिवाजी का धावा। महाबतखाँ मुगल राज्यपाल नियुक्त।
५ जनवरी, १६७१	शिवाजी द्वारा गढ़ साल्हेर हस्तगत।
२६ जनवरी, १६७१	शिवाजी द्वारा सम्भाजी को प्रशासकीय कर्त्तव्यों की दीक्षा।
वर्षा, १६७१	दिलेरखाँ द्वारा पूना को लूटना।
दिसम्बर १६७१	महाबतखाँ का वापिस बुलाया जाना। उसकी जगह बहादुरखाँ की नियुक्ति।
दिसम्बर १६७१	इखलसखाँ का साल्हेर पर घेरा डालना।
फरबरी १६७२	साल्हेर पर मुगलों की पराजय।
फरबरी १६७२	शिवाजी के पक्ष में कन्हेरगढ़ पर वीरतापूर्ण मोर्चा।
१६७२	शिवाजी के राजदूत काजी हैदर का बहादुरखाँ से मिलना और परेण्डा में बन्द किया जाना।
१६७२	मोरोपन्त द्वारा जुन्नार और रामनगर हस्तगत।
१६७२	बहादुरखाँ द्वारा बहादुरगढ़ का निर्माण।
२४ नवम्बर, १६७२	अली आदिलशाह द्वितीय की मृत्यु।
६ मार्च, १६७३	शिवाजी द्वारा पन्हालागढ़ पर अधिकार।

१५ अप्रेल, १६७३	उम्बरानी की लड़ाई। बहलोलखाँ पराजित। प्रतापराव गूजर का हुबली को लूटना।
२४ फरबरी, १६७४	नेसारी की लड़ाई। प्रतापराव का मारा जाना।
२३ मार्च, १६७४	सम्पगाँव की लूट।

अध्याय ८

और महान् विजयें

[१६६८—१६७३]

१. मुगल धर्मान्धता की नवीन लहर। २. शिवाजी की प्रतिक्रिया; अपहृत गढ़ों पर पुनः अधिकार। ३. सूरत की दूसरी लूट और उसका परिणाम। ४. साल्हेर का भयानक रक्तपात। ५. पन्हाला पर अधिकार। ६. प्रतापराव गूजर का आत्म-बलिदान।

१. मुगल धर्मान्धता की नवीन लहर—शाहजादे के द्वारा सम्राट् और शिवाजी में शान्ति कराने के पश्चात् शीघ्र ही शाहजादे और उसके धृष्ट अधिकारी दिलेरखाँ में तीव्र मतभेद पैदा हो गया। शिवाजी ने तुरन्त इससे लाभ उठाया। सम्राट् खान का बहुत सम्मान करता था और उसके निन्दात्मक वृत्तान्तों का अपने पुत्र के बयानों की अपेक्षा अधिक विश्वास करता था। इससे उनमें प्रबल मनमुटाव उत्पन्न हो गया। शाहजादा का सलाहकार यशवन्तसिंह था जो दिलेरखाँ का तीव्र विरोधी था। उनकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शत्रुता उस समय चरम सीमा पर पहुँच गई जब शिवाजी शान्ति का प्रस्ताव उपस्थित कर रहे थे। इस समय सम्राट् का ध्यान उत्तर भारत में पहले से निश्चित कार्यों की ओर आकृष्ट था जिसके कारण दक्षिण के कार्यों की नितान्त उपेक्षा हुई। सम्भाजी प्रतापराव गूजर और नीराजी रावजी के संरक्षण में औरंगाबाद में रह रहे थे। शाहजादा और यशवन्तसिंह से उनकी गाढ़ी मित्रता हो गई। वे सब शिकार द्वारा मनोरंजन और शिविर-जीवन के आमोद-प्रमोद में साथ-साथ भाग लेते थे। मुगल-मराठा-भ्रातृत्व के इस दौर से दिलेर खाँ इतना चिढ़ गया कि उसने सम्राट् को सूचना भेजी कि शाहजादा

मराठों की मदद से उसे पदच्युत करने की योजना तैयार कर रहा है। इस पर सम्राट् ने अपने पुत्र को स्पष्ट आवश्यक आज्ञा भेजी कि वह दोनों मराठा अधिकारियों—प्रतापराव गूजर और नीराजी रावजी—को तुरन्त बन्दी बना ले। चूँकि शाहजादा मराठों का मित्र था, उसने दोनों अधिकारियों के पास इस समाचार को गुप्त रूप से पहुँचा दिया, और इस प्रकार उन्हें घर वापस जाने का अवसर मिल गया। इस आचरण से मुअज्जम और दिलेरखाँ के पारस्परिक सम्बन्ध और भी कटु हो गये तथा दक्षिण के मुगल प्रशासन में और भी अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। ठीक इसी समय औरंगजेब ने हिन्दू प्रजा को पीड़ित करने की अपनी मनोनीत नीति की घोषणा की और ९ अप्रेल, १६६९ को सार्वजनिक आज्ञाएँ निकालीं कि "हिन्दुओं के समस्त विद्यालय और मन्दिर गिरा दिये जायँ और उनकी धार्मिक शिक्षा तथा प्रथाओं का दमन किया जाए।" उसके समस्त अधिकृत प्रदेश में काफिरों पर चौमुखी आक्रमण के लिए नये विभाग का संगठन किया गया। उसने इस सम्बन्ध में निर्दिष्ट काल पर विवरण माँगे कि मन्दिरों और विद्यालयों के विध्वंस करने, जज़िया लगाने, हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से अलग करने, हिन्दू-मेलों और त्यौहारों को निषिद्ध करने के सम्बन्ध में क्या निश्चित प्रगति हुई।[1]

औरंगजेब के हृदय में यह थोथी धारणा जम गई थी कि ईश्वर ने उसे यह पद और सत्ता इसलिए दी है कि वह अपने धर्म को ऊँचा उठाये और अन्य धर्मों का दमन करे। उसके विचारानुसार अन्य धर्म उसके धर्म की बराबरी नहीं कर सकते थे। अपने पिता की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् जब उसने समझ लिया कि वह सिंहासन पर भली-भाँति से जम गया है, उसने पूर्ण तत्परता और प्रचण्डता से अपना जीवन-कार्य प्रारम्भ किया। इस धर्मान्धता से उसने प्रथम बुन्देलों से, तत्पश्चात् राजपूतों से और अन्त में दक्षिण के लोगों से

---

१ सरकार कृत "औरंगजेब", खण्ड ३, पृ० २६४-२८६।

लड़ाई मोल ली। अपने पुत्र अकबर के विद्रोह से उसका ध्यान दक्षिण की ओर गया। शिवाजी ने सम्राट् की गलत नीति का दृढ़ता के साथ खुलकर विरोध किया। इस नीति का प्रथम प्रदर्शन १६६९ ई० में किया गया, जब काशी-विश्वेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर तोड़ा गया। वही दशा मथुरा के केशवराय मन्दिर की हुई। मथुरा में कृष्ण-पूजा का औरंगजेब इतना प्रचण्ड विरोधी था कि उसने नगर का नाम बदलकर इस्लामाबाद रख दिया। अहमदाबाद और उज्जैन के साथ भी यही व्यवहार हुआ। "साम्राज्य के समस्त नगरों और ज़िलों में नियमित योजनानुसार आचरण पर नियन्त्रण करने वाले अधिकारी नियुक्त किये गये जो इस्लाम के सिद्धान्तों पर बलपूर्वक आचरण कराते थे। दीवाली और होली के त्यौहार कड़ाई से रोक दिये गये। इस बड़े कार्य में नियुक्त बहुसंख्यक अधिकारियों के ऊपर एक महा-निर्देशक नियुक्त किया गया। बंगाल, उड़ीसा, आसाम और राजस्थान के प्रान्तों का भी यही हाल हुआ। बाद में स्वामिभक्त जयपुर राज्य की राजधानी आमेर के मन्दिर १६८० ई० में भूमिसात् कर दिये गये।"

औरंगजेब की धर्म-नीति की कठोरता वृद्धावस्था और अनुभव के बाद भी कम न हुई। गुजरात के समस्त हिन्दू अनुदानों को उसने जब्त कर लिया और करुण प्रार्थनाओं एवं राजनीतिक औचित्य दोनों के प्रति बहरा बना रहा। जब वह गुजरात का राज्यपाल था, तभी उसने १६४४ ई० में अहमदाबाद के चिन्तामणि मन्दिर में गाय काट कर एवं उसे मस्जिद का रूप देकर भ्रष्ट कर दिया।

सम्राट् को अपने पद के कारण समस्त धर्मों एवम् जातियों का संरक्षक होना चाहिए था किन्तु उसने जो आचरण किया उससे समस्त विचारशील पुरुषों को घोर चिन्ता उत्पन्न हो गई। उपासना तथा अन्तःकरण की स्वतन्त्रता और सहनशीलता के ज्वलन्त उदाहरण भारतीय जनता के सम्मुख अकबर और कबीर के रूप में उपस्थित थे। शिवाजी को इन सब बातों का अवश्य पता था। हमें मानना चाहिए कि आगरे में अपने तीन मास के निवास-काल में

शिवाजी ने अपने कान और अपनी आँखें इसलिये खुली रखीं कि हिन्दू-धर्म पर होने वाले आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए वह उपाय ढूँढ़ निकालें। उनके लिये उस समय यह सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। शिवाजी ने चुनौती को स्वीकार कर लिया और इसके हल में आजीवन लगे रहे।

४ सितम्बर, १६६९ को काशी-विश्वेश्वर मन्दिर के भूमिसात् करने का समाचार सम्पूर्ण देश में दावानल के समान फैल गया और इसके फलस्वरूप घोर आतंक उत्पन्न हो गया। इस घटना की सजीव साक्षी में प्राचीन मन्दिर के स्थान पर वह मस्जिद आज तक खड़ी हुई है। इस धर्म के प्रति किये गये अन्याय और अपमान का प्रतिकार करने के लिए शिवाजी सन्नद्ध हो गये। दक्षिण के मुगल-प्रशासन में नित्य बढ़ती हुई अव्यवस्था से पूर्ण लाभ उठाकर १६७० ई० के आरम्भ में मुगल प्रदेश पर प्रत्येक दिशा में उन्होंने अपना आक्रमण आरम्भ कर दिया। जो प्रसिद्ध गढ़ उन्होंने जयसिंह को अर्पित कर दिये थे, उन्हें वह सवेग पुनः हस्तगत करने लगे। जनवरी १६७० ई० के आरम्भ में उनकी सेनाओं ने बरार को लूट लिया और २५ लाख रुपये एकत्रित किये। औसा के प्रान्त पर भी ऐसे धावे किये गये। इस समय शाहजादा और दिलेरखाँ का झगड़ा अपनी चरम सीमा को पहुँच गया था। दिलेरखाँ ने विद्रोह कर दिया। पहले से प्राप्त सम्राट् की आज्ञानुसार वह बन्दी बनाया जाने वाला था कि उसे अपने विरुद्ध आदेश का पता चल गया और वह अपनी समस्त सैनिक सामग्री छोड़कर मालवा भाग गया। शाहजादा और यशवन्तसिंह ने उसका पीछा किया और शिवाजी से भी पीछा करने में सहायता करने की प्रार्थना की। दक्षिण में सम्राट् का शासन व्यवहार रूप में पंगु हो गया। चूँकि शिवाजी को वास्तविक समाचार प्राप्त हो जाते थे अतः उन्होंने स्थिति से लाभ उठाया और ४ फरवरी, १६७० को समुचित प्रतिशोध के रूप में सुप्रसिद्ध सिंहगढ़ को पुनः हस्तगत कर खुले युद्ध की घोषणा कर दी।

२. शिवाजी की वीरोचित प्रतिक्रिया; सिंहगढ़ पुनः हस्तगत—जयसिंह को जो गढ़ अर्पित किये गये थे, उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिंहगढ़ था, क्योंकि पश्चिम प्रदेश की यह राजधानी माना जाता था और उस देश पर शासन के लिए उसके शासकों के हाथ में यह कुंजी के समान था। पुरन्दर का स्थान इसके बाद था। इसी कारण जयसिंह ने हठ की थी कि शिवाजी सर्वप्रथम सिंहगढ़ को अर्पित करें। जून १६६५ ई० में जयसिंह से मिलने के बाद स्वयं शिवाजी ने कीरतसिंह को यह गढ़ अर्पित किया था। इस समय गढ़ की रक्षा का भार एक विश्वस्त और वीर मुगल अधिकारी उदयभान राठौर पर था। कोई अन्य गढ़ मनुष्यों और प्रकृति द्वारा इतना सुरक्षित न था और अब मुगलों द्वारा भी इसकी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध था। जिसके हाथ में सिंहगढ़ हो, वही पूना का स्वामी हो सकता था।

इसका प्रमाण मिलता है कि स्वयं शिवाजी सिंहगढ़ को अजेय मानते थे, तो भी इस साहसिक कार्य के लिए उनकी माता जीजाबाई ने उन्हें प्रेरित किया क्योंकि उनके चित्त में काशी-विश्वेश्वर के विध्वंस का सार्वजनिक अपमान तीखे काँटे की भाँति खटक रहा था। सिंहगढ़ के गीति-काव्य में लिखा है कि जब जीजाबाई ने देखा कि सिंहगढ़ को पुनः विजित करने के प्रश्न पर—जिसका मतलब था अपने सर्वश्रेष्ठ सैनिकों में से कुछ का बलिदान और सम्राट् को चुनौती—शिवाजी हिचकिचा रहा है, तो उसने उससे चौपड़ खेलने के लिए जोर दिया जिसकी बाजी थी इस गढ़ की विजय। जीजाबाई ने शर्त लगाई कि यदि शिवाजी खेल में हार जाये तो उसे मूल्य चुकाना होगा और यदि वह इन्कार करेगा तो उसके नव-निर्मित राज्य को वह अभिशाप दे देगी—माता का अभिशाप! अब शिवाजी क्या करते ?[२]

---

२ सिंहगढ़ के गीति-काव्य को पाठक अवश्य पढ़ें। इसका बहुत सुन्दर अनुवाद एकवर्थ ने किया है। शिवाजी अपनी माता से कहता है—"हे देवी, मेरे सारे गढ़ तेरे हैं। कृपया वह चीज मुझ से न माँग, जो मेरी नहीं है।" उसने उत्तर दिया—"माता के अभिशाप का ध्यान रहे। इसकी ज्वाला तेरे विशाल राज्य को भस्म कर देगी। मुझे सिंहगढ़ दे।"

निस्सन्देह शिवाजी गढ़ को वापस लेना चाहते थे, परन्तु उन्हें आशंका थी कि इस आक्रमण से वे सम्राट् के विरुद्ध भयंकर युद्ध में अनावश्यक रूप से फँस जायेंगे, जिस युद्ध की समाप्ति एक हद तक सुविधापूर्वक हो गई थी। वे यह भी भली-भाँति जानते थे कि गढ़ को विजय करने का एकमात्र उपाय यह है कि उसके वीर योद्धा रस्से डालकर दीवारों पर चढ़ जायें, चुपचाप भीतर प्रवेश करें और मुख्य द्वारों को खोल दें ताकि इनके द्वारा आक्रामक दल अन्दर प्रवेश कर जाये। सिंहगढ़ ही एक गढ़ है जो तोपों से अभेद्य है। वहाँ ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ गोलाबारी के लिए तोपें लगाई जा सकें। उसके सभी पार्श्व सीधे खड़े हैं जिनमें से एक ओर वाह्य जगत् से यातायात-सम्बन्ध रखने के लिए एक संकरा रास्ता मुख्य द्वार को जाता है। जीजाबाई ने इस कठिनाई का निराकरण कर दिया। उसने शिवाजी के प्रिय साथी तानाजी मालुसरे और उसके भाई सूर्याजी को बुलाया और मातृ-स्नेह के द्वारा उन्हें इस साहसिक कार्य के लिए उद्यत कर लिया।

माघ कृष्णा नवमी की रात्रि को (४ फरवरी, १६७०) जब अर्द्ध-रात्रि के बाद चन्द्रोदय हुआ, तानाजी ने प्रयास किया और गढ़ को हस्तगत करने में सफल हुआ परन्तु अपने जीवन से हाथ धो बैठा। संध्या के वाद ३०० मावले लेकर वह गढ़ के पास आ गया। सूर्याजी के नेतृत्व में बहुत से सिपाही मुख्य द्वार के समीप छिपे रहे और तानाजी स्वयं अपने अनुचरों सहित एक गोह की सहायता से दीवारों पर चढ़ गया। कुछ सन्तरी जो उससे लड़ने आये उन्हें मार कर उसने फाटक खोल दिये। परन्तु बिना शोर के यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता था। पहरेदार जाग गये, खतरे की घण्टी वज गई और गढ़ की अन्त समय तक रक्षा करने की दृढ़ भावना से सेनाध्यक्ष आ गया। घोर रक्तपात आरम्भ हुआ जिसमें दोनों पक्ष के अनेक वीर मारे गये। इनमें दोनों पक्षों के नेता तानाजी और उदयभान भी थे। गढ़ पर अधिकार हो गया और राजगढ़ में शिवाजी को परिणाम की सूचना देने के लिए एक बहुत बड़ी अग्नि प्रज्वलित की

गई। दूसरे दिन सुबह तानाजी का शव पालकी में शिवाजी श्रौर जोजाबाई के सम्मुख लाया गया। इस क्षति पर उन्होंने हार्दिक शोक प्रकट किया। गढ़ तो पुनः हस्तगत हो गया, परन्तु सिंह तानाजी न रहा।[3]

गढ़ पर प्रति वर्ष तानाजी के अद्‌भुत पराक्रम की जयन्ती मनाई जाती है। गढ़ अब भी अपने उसी गौरव को लिए खड़ा है। जीजाबाई ने पूना से तुलसीदास चारण को बुलाया श्रौर गीति-काव्य लिखने का श्रादेश दिया, जिसमें तानाजी मालुसरे की वीरता श्रौर बलिदान का हृदयस्पर्शी छन्दों में वर्णन है। जो लोग काम श्राये, उनके रिश्तेदारों को शिवाजी ने बहुत से पुरस्कार दिये। तुलसीदास के गीति-काव्य का गायन श्राज भी सहस्रों श्रोताश्रों के सम्मुख उत्साहप्रद स्वर में होता है। श्रोताश्रों के हृदय करुणा श्रौर देश-भक्ति के भावों से श्रोत-प्रोत हो जाते हैं। इस गीति-काव्य की पुरानी अनोखी भाषा से, जैसी कि हमारे सामने है, इस उत्तेजक प्रसङ्ग के विश्वस्त लेख के रूप में, इसकी ऐतिहासिक यथार्थता सिद्ध होती है। एकवर्थ ने इसका अँग्रेजी में अनुवाद किया है।

जब इस मुख्य गढ़ का पतन हो गया तो दूसरों को हस्तगत करने में बहुत समय न लगा, क्योंकि वे इतने सुरक्षित न थे। इन गढ़ों की रक्षा केवल स्वामिभक्त मावलों द्वारा हो सकती थी, जो शिवाजी की विलक्षण बुद्धि द्वारा प्रतिपादित विशेष शैली में निपुण थे। मुगलों को गढ़ अर्पित करते समय वे भली-भाँति जानते थे कि उन्हें पुनः हस्तगत करना कठिन कार्य न होगा। अतः वे शान्तिपूर्वक अर्पित कर दिये गये थे श्रौर अब वे बड़ी शान्ति के साथ पुनः ले लिये गये। पुरन्दर पर श्राक्रमण हुश्रा श्रौर ८ मार्च, १६७० को उस

---

३ सिंहगढ़ श्राज भी केवल महाराष्ट्रवासियों के ही लिए नहीं वरन् पूरे भारत से श्राने वाले यात्रियों के लिए अपूर्व दर्शनीय स्थान है। पूना श्राने पर ये लोग अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए यहाँ से १८ मील दूर स्थित सिंहगढ़ अवश्य जाते हैं। मोटर बसें थोड़े से किराये में श्राधे घण्टे में यहाँ पहुँचा देती हैं। गढ़ की तलहटी से ऊपर चढ़ाई ३ मील है, जिसे पैदल ही चढ़ना पड़ता है।

पर अधिकार कर लिया गया और सेनानायक रजीउद्दीनखाँ को कैद कर लिया गया। उसी समय शिवाजी के आदमियों ने नासिक के पास चाँदवाड़ पर धावा बोला और वहाँ एकत्रित शाही कोष उठा ले गये। माहुली के लिए भी प्रयास किया गया परन्तु इसका रक्षक मनोहरदास औरंगजेब का विश्वस्त अधिकारी था। उसने सफलतापूर्वक रक्षा की और कुछ समय के लिए शिवाजी को यह प्रयत्न छोड़ना पड़ा। मुगल राज्यपाल उजबेगखाँ को ३ मार्च, १६७० को मारकर कल्याण और भिवण्डी पर अधिकार कर लिया गया। मनोहर दास को भी समय पर सहायता नहीं मिल सकी और उसने स्वयं १६ जून को माहुली शिवाजी को अर्पित कर दिया। वह मुगल शासन के अन्तर्गत अन्यत्र चला गया। इस प्रकार शिवाजी को उत्तर कोंकण का समस्त प्रदेश पुन: प्राप्त हो गया और उन्होंने शीघ्र ही उन सारे चिह्नों को नष्ट कर दिया जो जून १६६५ ई० को सम्राट् के प्रति उनकी अधीनता स्वीकार करने के परिचायक थे। अप्रेल १६७० ई० के अन्त तक जुन्नार, अहमदनगर, परेण्डा और बहुत से अन्य महत्त्वशाली मुगल प्रदेशों पर शिवाजी की सेनाओं ने धावे किये और उन पर भारी कर लगाये। वीर तथा कुशल मुगल सेनापति दाऊदखाँ कुरेशी ने, जो पहले पुरन्दर के घेरे में दिलेरखाँ के आधीन कार्य कर रहा था, शिवाजी के आक्रमण का वीरतापूर्वक सामना करने का भरसक प्रयत्न किया और कुछ समय के लिए उसने माहुलीगढ़ को पुन: जीत लिया। दाऊदखाँ का विस्तार में वर्णन आगे आएगा।

३. सूरत की दूसरी लूट और उसका परिणाम—सम्राट् पर नवीन प्रहार करने का विचार शिवाजी के उर्वर मस्तिष्क में पुन: उत्पन्न हुआ और एक बार फिर उनका ध्यान सूरत की ओर गया। उन्हें सूचना मिली कि सूरत के राज्यपाल का देहान्त हो गया है और वहाँ पर कोई सबल रक्षा-दल नहीं है। फलत: शिवाजी १५ हजार घुड़सवारों और चुने हुए सेनानायकों को लेकर ३ अक्टूबर, १६७० ई० को यकायक सूरत के सामने उपस्थित हो गए। पूरे

तीन दिन तक नगर पर लूट श्रौर श्रग्नि का निर्मम राज्य रहा श्रौर लगभग श्राधा नगर जलकर राख हो गया। योरुपीय व्यापारी पर्याप्त सावधान थे, उन्होंने श्रपने बहुमूल्य सामान श्रौर कोष को कुछ मील दूर स्वाली के बन्दरगाह में भेज दिया था, जो शिवाजी की पहुँच के बाहर था। उन्होंने शिवाजी का विरोध नहीं किया श्रौर न उन्होंने उन्हें छेड़ा। तीसरे दिन जब उन्होंने सुना कि बुरहानपुर से सूरत की सहायतार्थ बड़ी सेना श्रा रही है तो नगर पर १२ लाख रुपये वार्षिक कर लगाकर वे पीछे हट गये। वे यह घोषित करते गये कि यदि धन प्राप्त न हुश्रा तो वे पुनः श्राक्रमण करेंगे। उन्होंने घोषणा की कि यदि बिना विरोध के नियमित रूप से धन प्राप्त होता रहा तो उस व्यापारिक नगर के शान्तिप्रिय व्यापारियों को कोई हानि न पहुँचाई जायगी। सूरत की श्रँग्रेजी फैक्टरी के दो प्रतिनिधि नगर के बाहर उनके डेरे में उपस्थित हुए श्रौर वस्त्रों, तलवारों श्रौर चाकुश्रों के उपहार उपस्थित किये। मराठा राजा ने उदारता के साथ उनका स्वागत किया श्रौर उन्हें विश्वास दिलाया कि श्रँग्रेजों की उनसे कोई हानि न होगी क्योंकि वे उनके मित्र हैं।

इस बार शिवाजी ने सूरत से ६६ लाख का कोष संग्रह किया, श्रौर साल्हेर श्रौर मुल्हेर के मार्ग से वापस श्राये। जब वे चाँदवाड़ के समीप पहुँचे तो उन्हें ज्ञात हुश्रा कि दाऊदखाँ कुरेशी के नेतृत्व में एक बड़ी मुगल सेना उनका मार्ग रोके पड़ी है। दाऊदख़ाँ को शिवाजी की गति का ठीक समाचार प्राप्त हो गया था। शिवाजी पर १६ श्रक्टूबर की रात्रि को वाणी श्रौर डिण्डोरी के बीच में उसने श्रति भयानक श्राक्रमण किया। शिवाजी के सम्मुख यह कठिन समस्या उपस्थित हो गई कि सैनिकों श्रौर कोष की रक्षा किस प्रकार की जाये। उन्होंने तुरन्त श्रपनी सेना को चार पृथक् भागों में विभक्त कर दिया। प्रत्येक भाग एक चतुर श्रौर कुशल नेता के श्रधीन था। उन्होंने निश्चय किया कि मुगलों को गुरिल्ला युद्ध के द्वारा परेशान किया जाय श्रौर सीधी लड़ाई से यथासम्भव दूर रहा जाय। उन्होंने प्रकट किया कि वे श्रौरंगाबाद पर श्राक्रमण

करने जा रहे हैं। पाँचवाँ और छोटा जत्था सूरत की लूट का मुख्य भाग लेकर चुपके से एक गुप्त दर्रे में होकर निकल गया जबकि अन्य जत्थे शत्रु को उलझाये रहे। युक्ति सफल हो गई और कोष सुरक्षित पहुँच गया। परन्तु वाणी और डिण्डोरी के बीच में एक स्थान पर संघर्ष अति कठोर और हानिकारक सिद्ध हुआ, क्योंकि मुगलों ने भीषण आक्रमण किये। यह कार्यवाही विभिन्न योग्य अधिकारियों इखलसखाँ और बकीखाँ के नेतृत्व में हुई जिनका निर्देशन स्वयं दाऊदखाँ कर रहा था। शिवाजी ने स्वयं इस प्रत्यक्ष और रक्त-रंजित रण में मराठों का नेतृत्व किया। सब मिलाकर ३ हजार मुगल और कुछ मराठे मारे गये। कुछ अधिकारियों और सैनिकों के साथ-साथ मराठों ने ४ हजार घोड़े पकड़ लिये। बाद में शिवाजी ने इन्हें मुक्त कर दिया और घर जाने की आज्ञा दे दी। माहुर के देशमुख की वीर पत्नी रायबगाँ, जिसने एक बार पहले कर्तलबखाँ की पराजय के समय शिवाजी का सामना किया था, अब मुगल-पक्ष की रक्षार्थ आगे बढ़ी; परन्तु वह पराजित कर दी गई। उसे पूर्णतया वश में करके घर चले जाने दिया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप एक मास तक मुगल सत्ता निश्चेष्ट हो गई। डिण्डोरी का मुगल राज्यपाल सिद्दीहिलाल शिवाजी की सेवा में आ गया।

सूरत से शिवाजी की वापसी के बाद कई वर्षों तक मराठों के आगमन की झूठी खबरों से ही नगर भयातुर हो जाता था, जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत के इस ऐश्वर्यशाली बन्दरगाह का व्यापार लगभग समाप्त हो गया। अगले नवम्बर और दिसम्बर मास में यह भय बराबर बना रहा और बीच-बीच में अगले कई वर्षों तक भी पैदा होता रहा।[४]

सूरत की इस दूसरी लूट के बाद शिवाजी ने बरार, बागलान

---

४ इस मामले से सम्बन्धित अनेक गूढ़ विवरण बड़े दिलचस्प हैं जिनका अध्ययन सर जदुनाथ सरकार लिखित "शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स" (पृ० १७८-७९) में किया जा सकता है। उन्होंने इन विवरणों को अच्छी तरह क्रम से लगा दिया है।

ग्रौर खानदेश पर ग्रचानक ग्राक्रमरण किया। दिसम्बर के ग्रारम्भ में उन्होंने स्वयं खानदेश पार किया ग्रौर मार्ग में बागलान जिले के कुछ गढ़ों पर ग्रधिकार करते गये। उनके सेनापति प्रतापराव गूजर ने बुरहानपुर के उपनगर बहादुरपुर को लूट लिया ग्रौर शीघ्रता से बरार में प्रवेश कर करंजा के धनी ग्रौर समृद्ध नगर पर वह यकायक टूट पड़ा। एक करोड़ रुपये का लूट का माल ४ हजार बैलों ग्रौर खच्चरों पर लादकर ले जाया गया। मुक्ति-धन प्राप्त करने के लिए करंजा के सबसे धनिक व्यापारी पकड़ कर ले जाये गये। इसके बाद से शिवाजी ने उन मुगल-प्रदेशों पर चौथ का कर खुल्लमखुल्ला लगा दिया, जिनमें से होकर वे गमन करते थे। इसके द्वारा वे यह घोषरगा करना चाहते थे कि समस्त मराठा प्रदेश पर उनका ग्रधिकार है, न कि मुगलों का। सम्राट् की नीति का यह समुचित उत्तर था।

४. **साल्हेर का भयानक रक्तपात**—जब शिवाजी बरार ग्रौर खानदेश में व्यस्त थे, उनका पेशवा मोरो त्रिमल पिंगले उत्तर कोंकरग में होकर बागलान में प्रविष्ट हुग्रा। उसने मुगलों से त्र्यम्बक ग्रौर कुछ ग्रन्य गढ़ छीन लिये ग्रौर मुल्हेर होता हुग्रा वह पश्चिम खानदेश में पहुँच गया। साल्हेर के गढ़ तक वह जहाँ भी पहुँचा उसने चौथ लगा दी। साल्हेर खानदेश ग्रौर गुजरात की सीमा पर है। यह स्थान सैनिक दृष्टि से ग्रत्यन्त महत्त्व का था। इस पर ग्रधिकार करने के लिए शिवाजी जीवन भर सतत् प्रयत्नशील रहे ग्रौर कुछ भयंकर युद्ध भी लड़े गये जिनमें दोनों पक्षों की बहुत हानि हुई। इससे सिद्ध होता है कि यदि ग्रावश्यकता होती थी तो शिवाजी ग्रौर उनके मराठे खुली लड़ाइयों से बचने का प्रयत्न कभी नहीं करते थे। जब शिवाजी करंजा की लूट के बाद लौट रहे थे, उनका पेशवा मोरोपन्त ग्रपना दल लेकर उनसे ग्रा मिला। संयुक्त सेना ने साल्हेर के गढ़ पर घेरा डाल दिया ग्रौर ५ जनवरी, १६७१ को उस पर ग्रधिकार कर लिया। ग्रधिकार करने के पूर्व गढ़ के मुगल ग्रधिकारी फतहउल्लाखाँ से थोड़े समय का परन्तु घोर संग्राम हुग्रा।

मुगल सरकार ने एक वर्ष तक उस स्थान पर पुनः अधिकार करने के लिए भारी प्रयत्न किये। उस समय दोनों दलों में कई स्मरणीय युद्ध हुए।

दक्षिण के मुगल शासन में अव्यवस्था की ओर शीघ्र ही औरंगजेब का ध्यान गया। सूरत की दूसरी लूट और बागलान की विजय से उसे स्थिति की गम्भीरता का बोध हो गया था। नवम्बर १६७० ई० में उसने अनुभवी योद्धा महाबतखाँ को दक्षिण का सर्वोपरि अधिकारी बनाकर भेजा। उसके सहायक के रूप में गुजरात से एक अन्य योग्य सेनापति बहादुरखाँ भी बुलाया गया। दाऊदखाँ और दिलेरखाँ वहाँ पहले से ही थे। प्रायः सम्राट् स्वयं दक्षिण जाने के लिये कहता था, परन्तु यदि उसके कथन में तनिक भी सचाई थी तो वह कभी पूरी न हो सकी। सम्भवतया इसका कारण यह था कि उसे साहस न होता था कि वह स्वयं शिवाजी का व्यक्तिगत रूप से सामना करे। अनेक प्रसिद्ध राजपूत अधिकारी अब दक्षिण को भेजे गये। जनवरी १६७१ ई० में महाबतखाँ, यशवन्तसिंह, दाऊदखाँ और अन्य अधिकारी औरंगाबाद में इकट्ठे हो गये। उन्होंने शाहजादा मुअज्जम से भेंट की और शिवाजी की रोकथाम के उपायों पर पूर्णतया विचार किया। परन्तु हम स्वयं समझ सकते हैं कि अनेक योग्य व्यक्तियों को एकत्रित कर देने से ही परिस्थिति का संभल जाना निश्चित नहीं है; अपितु सम्भावना तो यह होती है कि ऐसे बुद्धिमान व्यक्तियों में प्रायः मतभेद पैदा हो जाता है, जिससे परिणाम विपरीत हो जाता है। इतना ही नहीं, पहेली और उलझ जाती है। उनमें पारस्परिक ईर्ष्या भी थी जिससे न समन्वय हो सका और न मिलजुल कर कदम ही उठाया जा सका। इस मुगल-मराठा युद्ध और साल्हेर की कहानी का विवरण-युक्त वर्णन कठिन कार्य होगा। १६७१ ई० की वर्षा-ऋतु में परनेर में मुगलों ने अपनी छावनी डाली, जहाँ विभिन्न अधिकारी नित्य संगीत और नृत्य द्वारा आनन्द मनाते थे। एक ओर तो अधिकारीगण इकट्ठे होकर अपना दिल बहलाते थे और दूसरी ओर उनके सिपाही सैकड़ों की संख्या में महामारी के कारण शिविर में मृत्यु का शिकार

हो रहे थे। पंजाब और अफगानिस्तान की चार सौ नर्तकियाँ शिविर में उपस्थित थीं और अधिकारियों द्वारा इनको संरक्षण प्राप्त था।[५]

इस सन्देह के कारण कि शिवाजी के साथ महाबतखाँ का गुप्त समझौता हो गया है, सम्राट् ने महाबतखाँ को दक्षिण से वापस बुला लिया और वहाँ के शासन के लिए बहादुरखाँ और दिलेरखाँ को नियुक्त कर दिया। वे शीघ्रता से सूरत से आ गये, जब तक कि महाबतखाँ के हाथ में ही अधिकार था, और साल्हेर पर घेरा डाल दिया। साल्हेर इस समय मराठों के अधिकार में था। शिवाजी को और भी पंगु बनाने के लिए बहादुरखाँ और दाऊदखाँ ने घेरे का संचालन इखलसखाँ पर छोड़ दिया और स्वयं पूना की ओर हट गये ताकि साल्हेर को पहुँचने वाली मराठों की सहायता को बन्द कर दें। बहादुरखाँ सूपा की ओर बढ़ा और दिलेरखाँ दिसम्बर १६७१ ई० में पूना पहुँच गया। दिलेरखाँ ने इस स्थान के निवासियों का एक बड़ी संख्या में कत्ल करवा दिया। परन्तु शिवाजी ने स्थिति को संभाल लिया। प्रतापराव गूजर, आनन्दराव मकाजी, मोरोपन्त पिंगले और शिवाजी के अन्य सेनानायकों ने खानदेश में इखलसखाँ के छोटे से दल को इतनी हानि पहुँचाई कि बहादुरखाँ और दिलेरखाँ को शीघ्र ही पूना के क्षेत्र से वापस लौट कर उत्तर की ओर आना पड़ा। इसके बाद फरवरी १६७२ ई० के प्रथम सप्ताह में साल्हेर पर भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें मुगल पूर्णतया पराजित हुए। इखलसखाँ और लगभग ३० मुख्य मुगल अधिकारी घायल हो गये अथवा पकड़ लिये गये तथा कई हजार सैनिक मारे गये। मोरोपन्त ने साल्हेर और मुल्हेर दोनों को हस्तगत कर लिया, उनकी भावी रक्षा का अविलम्ब पर्याप्त प्रबन्ध कर दिया और अपने स्वामी को सफलता का समाचार देने वापस आ गया। सभासद लिखता है—"शिवाजी का बचपन का सैनिक मित्र सूर्यराव काकड़े मारा गया। असंख्य घोड़ों, हाथियों और ऊँटों सहित दस

---

५ सरकार लिखित "शिवाजी", पृ० १८९।

हजार से अधिक सिपाही मारे गये। रण-स्थल पर रक्त की नदी बह निकली। लूट में ६ हजार घोड़े, उतने ही ऊँट, १२५ हाथी, कोष और आभूषणों सहित मुगल-शिविर का सारा सामान मराठों को प्राप्त हो गया।" इस अद्भुत विजय का मुख्य श्रेय शिवाजी के पेशवा की रण-कुशलता और वीरता को है, जिसके सम्बन्ध में एक समकालीन कवि कहता है—

"पूना की घाटियाँ शिवाजी का नाम प्रतिध्वनित कर रही हैं वहाँ पर उनका निर्भीक पेशवा विचरण कर रहा है, उसने साल्हेर के मुगलों का ऐसा संहार किया, जैसा अर्जुन ने पूर्व-समय में कौरवों का किया था।"[६]

साल्हेर का युद्ध शिवाजी की सेना द्वारा खुला युद्ध था जिसमें उन्होंने सुसज्जित और योग्यतम व्यक्तियों द्वारा संचालित मुगल सेनाओं का सामना किया। इसमें गुरिल्ला युद्ध की पद्धति का लेश-मात्र भी अंश न था। मुगल सेना की इस पराजय के कारण सम्राट् द्वारा महाबतखाँ का ठीक उसी प्रकार अपमान हुआ जैसा पाँच वर्ष पूर्व जयसिंह का हुआ था। उसकी बदली अफगानिस्तान के लिए कर दी गई। मार्ग में उसका देहान्त हो गया। उसने दीर्घ-काल तक बड़ी स्वामिभक्ति के साथ साम्राज्य की सेवा की थी।

सभासद ने साल्हेर के युद्ध का भव्य चित्र चित्रित किया है। मराठे सरदारों और मावल सैनिकों ने प्रख्यात मुगल अधिकारियों को पराजित किया। इस समाचार से शिवाजी का हृदय प्रफुल्लित हो गया। जों सन्देशवाहक यह समाचार लाये, शिवाजी ने उन्हें सोने के कंगन और कड़े पहिनाये। खूब मिठाई बाँटी गई। दिलेरखाँ ने भागकर अपनी प्राण-रक्षा की। बहुत से घायल मुगल शिवाजी के हाथों में पड़ गये। उनकी उचित चिकित्सा की गई और उपचार

---

६ पुण्याच्या कप्या गर्जताती शिवाजी
तिथें नांदतो पेशव्या मर्द गाजी।
जशीं मर्दिलीं कौरवें पाण्डवानें
तशीं मारिलीं मोगलें पेशव्यानें॥ (सभासद बखर, पृ० ६३)

हो जाने पर उपहार सहित उन्हें विदा कर दिया गया। कुछ ने स्वेच्छा से शिवाजी की सेवा स्वीकार कर ली।" इस प्रकार कुछ ही वर्षों में शिवाजी न केवल पूर्व-स्थिति को ही पहुँच गये अपितु वे मुगल-साम्राज्य के उत्तम प्रशासकों और सेनापतियों के प्रतिद्वन्द्वी हो गये। उनके अधिकारी और सैनिक ऐसे प्रशिक्षण प्राप्त थे कि प्रत्येक विकट परिस्थिति में वे अपना चातुर्य और पराक्रम दिखा सकते थे। एक उत्साही नेता सारे राष्ट्र के चरित्र को किस प्रकार परिवर्तित कर सकता है और समृद्धता की ओर शीघ्र गति से अग्रसर कर सकता है, इसका अच्छा उदाहरण शिवाजी के इस सैनिक-संगठन से प्राप्त होता है।

इस राष्ट्रीय परिवर्तन का एक उदाहरण चाँदवाड़ के समीप कन्हेरगढ़ ने उपस्थित किया, जहाँ रामाजी पंगेरा को शिवाजी ने अपना अधिकारी नियुक्त किया था। विशाल सैन्य-दल सहित दिलेरखाँ ने इस गढ़ पर अकस्मात् आक्रमण किया। रामाजी ने ६०० व्यक्तियों के छोटे परन्तु चुने हुए दल के द्वारा इस जबर्दस्त सेना का सामना किया। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगादी, यहाँ तक कि लगभग समस्त रक्षक घायल हो गये, पर शत्रु को पराजित कर वापिस लौटाने में सफल हुए। सेवा और बलिदान की यह भावना द्रुत गति से मराठा जाति में शिवाजी के चमत्कारी नेतृत्व से व्याप्त हो गई। साल्हेर के सामने मुगल सैन्य के पलायन और फलस्वरूप विनाश के कारण औरंगजेब ने भारी भर्त्सना की। दिलेरखाँ तथा अन्य लोगों को लिखे गये एक पत्र में उसने अपने क्रोध को कटुतम शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया—

"अपने स्वामी को इस प्रकार लज्जा में डुबाने की बजाय रण-क्षेत्र में प्राण क्यों न त्याग दिये? तुम जीवित क्यों हो और मुझे यह भयानक समाचार क्यों भेजते हो? तुम्हें भली-भाँति ज्ञात है कि किस प्रकार आदिलशाह, कुतुबशाह, पुर्तगाली और सिद्दी मेरी कृपा की याचना करते हैं और मेरे झण्डे के नीचे सम्मिलित होने की उत्कट इच्छा प्रकट करते हैं? यदि तुम इन सब को एक साथ संगठित कर

लेते और शिवाजी पर प्रत्येक दिशा से हमला करते तो वह सरलता से पराजित हो जाता।" परन्तु कहना सरल है, करना कठिन है।[६अ]

बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने इन उपालम्भों के उत्तर में सम्राट् को उत्तेजक प्रतिवाद भेजा और लिखा :—

"यदि सम्राट् को स्मरण हो कि यही शिवाजी अद्भुत तरीके से आगरा में कठोर शाही कैद से पहिले चतुरता से भाग चुका है, तो हमारा अपराध इतना निन्दनीय न दीखेगा।"

सभासद लिखता है :—

"(साल्हेर के सामने मुगल पराजय का) समाचार सम्राट् को प्राप्त हुआ और उससे उसे घोर दुःख हुआ। तीन दिन तक वह दरबार में न आया और कहता रहा, 'ज्ञात होता है सर्वशक्तिमान् ईश्वर मुसलमानों से उनका साम्राज्य छीनकर एक काफिर को देना चाहता है। इन परिणामों को देखने की अपेक्षा मैं मर क्यों न जाऊँ।' सम्राट् का धायभाई बहादुरखाँ कोका उस समय सम्राट् के पास था, जब उसने उपयुक्त शोकपूर्ण शब्द कहे। उसने सम्राट् को यह कहकर सान्त्वना दी—'मैं मुगल सम्मान को पुनः स्थापित करने को तैयार हूँ। मैं जाऊँगा और शिवाजी पर आक्रमण करूँगा तथा उसका मान-मर्दन करूँगा।' इस घोषणा से सम्राट् को सान्त्वना मिली। उसने तुरन्त बहादुरखाँ को दक्षिण के शासन में नियुक्त कर दिया और दिलेरखाँ को उसका सहायक बना दिया।"

६अ 'पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान,' २,७-५२ में इसी प्रकार के वर्णन से तुलना करो :—

मृतं किमिति नो तस्मिन् युद्धे सालेरिपर्वते।
तेषां तत्कंदनं श्रुत्वा मया किं जीव्यतेऽधुना॥

अफजलोपि हतो येन एकेनैवं महामतिः।
महाबलो महाबाहुरेदिलस्यातिसंमतः॥

द्रष्टव्यं स्वामिभिस्तत्र क्रियद्यत्नेन रक्षितः।
तथापि पक्षिवत्तूर्णं पुत्रेण सह निर्गतः॥

ततस्तेनातिनिपुणः प्रविचार्य विवेकतः।
काजी हैदरनामासौ प्रेषितो यवनोत्तमः॥

एक तत्कालीन मराठी कवि ने शिवाजी की अटूट सफलता पर सम्राट् के दुःख का इस प्रकार वर्णन किया है :—

जैसे सागर के जल की तौल नहीं हो सकती,
जैसे मध्याह्न सूर्य की ओर कोई टकटकी लगाकर देख नहीं सकता,
जैसे अपनी मुट्ठी में कोई जलता कोयला नहीं दबा सकता,
उसी प्रकार मैं इस शिवाजी पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता।[७]

साल्हेर की विजय के शीघ्र पश्चात् प्रतापराव गूजर ने फिर सूरत को धमकी दी पर अन्यत्र व्यस्तता के कारण उसने अपना आक्रमण रोक दिया। तब भी उसने सूरत के व्यापारियों और अन्य नागरिकों को एक कठोर पत्र लिखा, जिसका राज्यपाल ने उतना ही धृष्ट: उत्तर दिया। यहाँ उनके दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इनसे मुगल-मराठा शत्रुता की तत्कालीन पराकाष्ठा का ही पता चलता है।[८] बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने सम्राट् को सूचित किया कि शिवाजी ने समझौते के लिए उनके पास अपने विश्वस्त दूत काजी हैदर को भेजा है। परन्तु सम्राट् इस विचार के ही पक्ष में न था कि शिवाजी के साथ सन्धि हो, अतएव उसने आज्ञा दी कि दूत को बन्दीगृह में डाल दिया जाये। तब उसको परेण्डा में कैद कर दिया गया, परन्तु वह शीघ्र ही भाग निकला और शिवाजी की सेवा में वापस आ गया। स्पष्ट है कि शिवाजी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को सम्राट् द्वारा विधिवत् स्वीकार कराना चाहते थे। चूँकि यह प्रयास असफल रहा, उन्हें राज्याभिषेक के विधिवत् संस्कार द्वारा संसार के सम्मुख अपनी स्वाधीनता की घोषणा करनी पड़ी और यह राज्याभिषेक शीघ्र ही सम्पन्न हुआ। एक मुस्लिम अधिकारी काजी हैदर को शान्ति-प्रस्ताव करने का कठिन कार्य सौंपकर शिवाजी ने यह स्पष्ट कर दिया कि किसी

---

७ सरित्पतीचें जल मोजवेना। माध्यान्हिचा भास्कर पाहवेना।
मुष्टींत वैश्वानर बांधवेना। तैसा शिवाजीं मज जिंकवेना।।
(सभासद बखर, पृ० ६३)

८ सरकार लिखित 'हाउस ऑफ शिवाजी'।

जाति या धर्म के प्रति उन्हें पक्षपात नहीं था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हिन्दुओं के समान मुसलमान भी उनसे प्रेम करते थे।

साल्हेर और मुल्हेर पर अधिकार करने के बाद पेशवा मोरोपन्त उत्तर कोंकण में पहुँचा और जून १६७२ ई० में उसने जौहर और रामनगर के प्रदेशों को जीत लिया। इस प्रकार उसने सूरत के सीधे मार्ग को शिवाजी के लिए साफ कर दिया जिसके फलस्वरूप बाद में उस नगर को सदैव भय बना रहा। सम्राट् इसका निराकरण करने में असमर्थ रहा। यद्यपि बागलान के अधिकांश गढ़ों ने शिवाजी के सम्मुख सर्मपण कर दिया था, परन्तु उनके जन्म-स्थान शिवनेर का गढ़ १७५५ ई० के लगभग तक मुगलों के ही अधिकार में रहा।

बहुत समय से रामनगर के राजा दमन के पुर्तगालियों से चौथ प्राप्त कर रहे थे ताकि कोलियों के हमलों से उनकी सुरक्षा निश्चित हो जाये। यह ख्याल किया जाता है कि रामनगर के अनुकरण पर चौथ लगाने का तरीका शिवाजी ने अपना लिया। शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् मराठा सत्ता के प्रसरण में यह एक प्रबल साधन के रूप में विकसित हो गया।[६]

बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने शिवाजी के विरुद्ध प्रबल उपाय किये और सम्राट् के नष्टप्राय गौरव को पुन: स्थापित करने के निमित्त भरसक प्रयत्नशील रहे। पूना में शिवाजी के केन्द्रीय शासन पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से बहादुरखाँ ने मुख्य मुगल शिविर को औरंगाबाद से पेड़गाँव को स्थानान्तरित कर दिया, जो पूना के पूर्व में भीमा नदी के मोड़ पर स्थित था। १६७२ ई० में पेड़गाँव में एक बड़े गढ़ का निर्माण हुआ और इसका नाम बहादुरगढ़ रखा गया।

१६६९ से १६७२ ई० तक के तीन वर्ष शिवाजी और उनके सैनिकों के लिए कठिन परिश्रम के थे। परन्तु इस परिश्रम से बलिदान, सहयोग और राष्ट्रीय भ्रातृत्व की भावना का उदय हुआ और कुछ समय तक मराठों की उच्छेदक प्रवृत्तियाँ रुक गईं। शिवाजी के

---

६ देखो सरदेसाई रचित 'शककर्ता शिवाजी', पृ० १५०।

प्रेरक नेतृत्व में सर्वप्रथम राष्ट्रीय एकता और सम्मिलित प्रयास का जन्म हुआ। जैसा कि ग्रांट डफ प्रमाणित करता है, वास्तव में यह सर्वोपरि सेवा है जो शिवाजी ने अपनी जाति की की।[१०]

५. पन्हाला पर अधिकार—मुग़ल-साम्राज्य पर प्रहार करने के साथ-साथ शिवाजी बीजापुर के प्रदेशों को भी शनैः-शनैः हस्तगत करते रहे। परन्तु जयसिंह के अभियान के समय से साधारणतया उन दोनों के बीच में शान्ति रही। २४ नवम्बर, १६७२ को अली आदिलशाह द्वितीय की मृत्यु पर यह शान्ति भंग हुई। उससे आदिलशाही राज्य के मन्त्रियों और अधिकारियों में सत्ता के निमित्त संघर्ष प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर शिवाजी सह्याद्रि पर्वतमाला से संलग्न उत्तर से दक्षिण तक अपने अधिकृत प्रदेशों को संगठित करने में व्यस्त थे। जिन गढ़ों और स्थानों का राजनीतिक या सैनिक महत्त्व है, उनको दृढ़तापूर्वक अपने अधिकार में रखने के प्रति वे पूर्ण सजग थे। पूना प्रदेश के लिए सिंहगढ़ का जो महत्त्व था, वही महत्त्व दक्षिणी क्षेत्र की सुरक्षा के लिए पन्हाला गढ़ का था। सिद्दीजौहर सलावतखाँ के विरुद्ध पन्हाला पर उनका स्मरणीय युद्ध असफल सिद्ध हुआ था और २२ सितम्बर, १६६० से गढ़ पर बीजापुर का अधिकार था। कदाचित् शिवाजी की ओर से कोई आकस्मिक हमला हो इसलिए यहाँ एक शक्तिशाली दल नियुक्त था। सिंह तानाजी मालुसरे की मृत्यु द्वारा सिंहगढ़ पर अधिकार हो जाने के बाद पन्हाला को पुनः जीतने के लिए शिवाजी और अधीर हो उठे। उसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने साधन एकत्रित कर लिये। राजापुर में उन्होंने वीर योद्धाओं का एक दल इकट्ठा किया और पन्हाला के विरुद्ध लड़ाई में उनका नेतृत्व करने के लिए आनाजी दत्तो से कहा। आनाजी को एक चतुर सहकारी कोंडाजी रावलेकर मिल गया। उसने अँधेरी रात में पन्हाला पर आकस्मिक आक्रमण

---

१० "अपनी जाति को शिवाजी की उच्चतम देन प्रदेश और सम्पत्ति न थे, जिन्हें उन्होंने प्राप्त किया, किन्तु सेवा और बलिदान के उदाहरण थे, जिनसे उन्होंने मराठा लोगों के हृदय को परिपूर्ण कर दिया।"

का प्रबन्ध किया। यह योजना लगभग वही थी जो दो वर्ष पूर्व तानाजी मालुसरे ने सिंहगढ़ के विजयार्थ बनाई थी। कोंडाजी वेष बदलकर गढ़ में गुप्त रीति से प्रवेश कर गया और रक्षा-दल को अपने साथ मिला लिया। ६ मार्च, १६७३ फाल्गुन की कृष्णा त्रयोदशी रात्रि को ६० चुने हुए साथियों को लेकर रस्से की सीढ़ियाँ डालकर मराठा नेता दीवारों पर चढ़ गया और ढोल पीट-पीटकर इतना शोर और गड़बड़ी पैदा कर दी कि रक्षकों को पता न चला कि क्या हो गया और क्या करना है। कोंडाजी के आदमियों ने फाटक खोल दिये और आनाजी पन्त की टोलियाँ अन्दर घुस आईं। जो भी लड़ने आया उसे उन्होंने तलवारों से काट डाला। वे सीधे मुख्य-रक्षक बाबूखाँ के निवास में पहुँचे और उसी समय उसका वध कर दिया। बाबूखाँ का सहायक नागोजी पण्डित इतना डर गया कि वह अपनी जान लेकर भाग गया। इस प्रकार जब रक्षक दल का कोई नेता न रह गया तो गढ़ सरलता से मराठों के हाथ आ गया। कठोर दण्ड का भय दिखाकर बहुत सा गढ़ा हुआ धन हस्तगत कर लिया गया। शिवाजी को यह समाचार रायगढ़ में मिला और वे तुरन्त पन्हाला पहुँचे ताकि उसकी सुरक्षा का स्थायी प्रबन्ध कर दें। अब इस क्षेत्र में दो और गढ़ थे—सतारा और पर्ली—जो अब तक बीजापुर के अधिकार में थे। शीघ्र ही इन पर भी अधिकार कर लिया गया। बीजापुर का राज्य अपने अन्तिम विनाश की ओर तेजी से बढ़ रहा था। पर्ली का गढ़ शिवाजी ने समर्थ रामदास को मन्दिर बनाने के हेतु दे दिया और उसका नाम सज्जनगढ़ रखा गया।

पन्हाला के हस्तगत होने की कथा संस्कृत के कवि जयराम पिण्ड्ये ने बड़े वीरतापूर्ण और सजीव ढंग से लिखी है। उसका वृत्तान्त पूर्णतया समकालीन है। इसका अध्ययन सावधानी से करना चाहिए।[११]

६. प्रतापराव गूजर का बलिदान—बीजापुर इन सब बातों

---

११ "पणालपर्वतग्रहणाख्यान।"

को चुपचाप बर्दाश्त न कर सकता था। सत्ता-प्राप्त मन्त्री खवासखाँ ने तुरन्त विशाल सैन्य-सामग्री सहित बहलोलखाँ को पन्हाला पुनः जीतने के लिए भेजा। यह निश्चय करके कि बीजापुर से आगे पहुँचने के पूर्व ही खान का सामना किया जाये, शिवाजी ने प्रतापराव गूजर और आनन्दराव मकाजी को उससे लड़ने के लिए भेज दिया। बीजापुर से करीब ३६ मील पश्चिम में उम्ब्रानी के समीप दोनों दल आमने-सामने आ गये। मराठे बीजापुरियों के चारों ओर मँड़राने लगे और उन्हें भूखा मारने लगे। कष्ट को और अधिक सहन करने में असमर्थ पाकर १५ अप्रेल, १६७३ को मुस्लिम सैनिक खुले युद्ध के लिए आ गये। तब उन्हें पराजय के साथ भारी हानि भी उठानी पड़ी। बहलोलखाँ ने दया की प्रार्थना की। प्रतापराव ने वीरतापूर्वक उसे क्षमा कर दिया। खान को वापस जाने की आज्ञा प्राप्त हो गई परन्तु उसने विश्वासघात करके अपनी प्रतिज्ञा भंग की और दूसरी दिशा से शीघ्र आक्रमण आरम्भ कर दिया।

जब शिवाजी ने उम्ब्रानी के युद्ध का पूरा वृत्तान्त सुना, तो उन्होंने प्रतापराव की इस दयालुता को सर्वथा अनुचित ठहराया कि बहलोलखाँ को पूर्णतया मराठों के पंजों में फँस जाने के बाद बिना हानि पहुँचाये निकल जाने दिया गया। शिवाजी ने अपने सेनापति के इस आचरण के लिए कठोर उपालम्भ भेजा और कहा कि वह उन्हें उस समय तक अपना मुँह न दिखाये जब तक कि बहलोलखाँ को पूर्ण आधीन न कर ले। अपने स्वामी द्वारा इस अनभ्यस्त निन्दा से प्रतापराव के स्वाभिमान को चोट पहुँची और वह तुरन्त खान का पीछा करने चल पड़ा। उसने ठीक अनुमान किया कि यदि वह बहाना बनाकर कोल्हापुर जिले पर टूट पड़े तो खान तुरन्त उस पर आक्रमण करेगा। प्रतापराव अपने मुख्य स्थान से पहिले दक्षिण की ओर गया और हुबली के समृद्ध नगर को लूट लिया। आशानुसार बहलोलखाँ अपना पूरा दल लेकर उसके विरुद्ध आ डटा। वह दक्षिण कोंकण को शिवाजी से पुनः जीतने के लिए कटिबद्ध था। शीघ्र ही शर्जाखाँ बहलोलखाँ से आ मिला और उन दोनों ने मिलकर अपना कार्य बड़े

उत्साह और दृढ़ता से प्रारम्भ कर दिया। प्रतापराव उत्सुकता से उस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था जब उसका और बहलोलखाँ का द्वन्द्व युद्ध हो। अपने गुप्तचरों से खान के वास्तविक स्थान का पता पाकर प्रतापराव घटप्रभा नदी के उत्तर की ओर करीब एक मील पर गढ़ हिंग्लाज के समीप नेसरी के तंग दर्रे में उस पर टूट पड़ा। प्रतापराव को यह समाचार उस समय मिला जब उसके साथ केवल छः या सात अंगरक्षक ही थे और उसकी मुख्य सेना बहुत पीछे थी। परन्तु क्रोध के आवेश में साधारण सावधानी बरते बिना ही वह चल पड़ा और खान की सेना पर आक्रमण कर दिया। परन्तु आठ व्यक्ति कितने ही शक्तिशाली और दृढ़प्रतिज्ञ क्यों न हों, किस प्रकार सहस्रों को हरा सकते हैं। २४ फरवरी, १६७४ की यह बात है, सब के सब देखते-देखते काट डाले गये। वीर योद्धा की भाँति प्रतापराव लड़ता हुआ मारा गया। उसने सिद्ध कर दिया कि अपने प्राणों की अपेक्षा उसे अपने स्वामी का हित कितना प्रिय था। अपने सेनापति की मृत्यु पर शिवाजी को कितना शोक हुआ और इस दुःखद परिणाम के लिए उन्होंने स्वयं अपनी कितनी निन्दा की, इसकी कल्पना ही की जा सकती है; वर्णन करना कठिन है।

जब प्रतापराव मारा गया, उस समय उसका सहायक आनन्दराव मकाजी बहुत दूर न था। उसकी मृत्यु का समाचार पाकर वह बदला लेने के लिए शीघ्र ही आगे बढ़ा। बहलोलखाँ को दिलेरखाँ से सामयिक सहायता प्राप्त हो गई जिसके फलस्वरूप उसने अपने को उस जटिल परिस्थिति से निकाल लिया जिसमें वह फँस गया था। बहलोलखाँ की जागीर के मुख्य स्थान सम्पगाँव को आनन्दराव ने लूट लिया और डेढ़ लाख होन की लूट ले गया (२३ मार्च, १६७४)। उसकी वापसी पर बहलोलखाँ ने अकस्मात् आक्रमण किया परन्तु उसने आक्रमणकारियों को परास्त कर दिया और कुशलपूर्वक घर वापस आ गया। इन घटनाओं से शिवाजी की कथा उनके जीवन की सबसे शानदार घटना राज्याभिषेक तक पहुँच जाती है।

———

तिथिक्रम

अध्याय ९

५ जून, शनिवार, १६७४	रायगढ़ में शिवाजी का अभिषेक ।
वर्षा ऋतु, १६७४	शिवाजी का बहादुरखाँ से शान्ति का प्रस्ताव ।
२४ सितम्बर, १६७४	शिवाजी का पूरक अभिषेक ।
१६७४	शिवाजी का बहादुरखाँ के शिविर को लूटना ।
अप्रेल १६७४–जून १६७६	दिलेरखाँ दक्षिण से अनुपस्थित ।
१६७४	आनाजी दत्तो का पोंडा पर घेरा ।
२२ मार्च, १६७५	शिवाजी राजापुर में, पोंडा पर आक्रमण की योजना ।
५ मई, १६७५	शिवाजी का पोंडा, कारवार और सौंधा पर अधिकार ।
१२ जून, १६७५	बेदनोर की रानी शिवाजी के अधीन ।
११ नवम्बर, १६७५	शिवाजी का सतारा पर अधिकार । बहुत बीमार पड़ना । सन्त रामदास का पर्ली में निवास आरम्भ ।
१९ नवम्बर, १६७५	बहलोलखाँ का खवासखाँ को बन्दी कर लेना और बीजापुर की सत्ता हस्तगत करना ।
१६७५	शृङ्गारपुर में सम्भाजी बन्दी ।
१६७६	शिवाजी का खटाव पर अधिकार ।
१९ जून, १६७६	नेताजी पालकर का पुनः हिन्दू धर्म अपनाना ।
५ दिसम्बर, १६७६	पीताम्बर शेन्वी का बन्दी होना ।
सितम्बर १६७८	पीताम्बर शेन्वी की मृत्यु ।

———

अध्याय ६

कार्य की पूर्ति[1]

[१६७४-१६७६]

१. राज्याभिषेक; इसका वास्तविक महत्त्व ।
२. संस्कार ।
३. सर्वत्र अशान्ति का वर्ष ।

१. राज्याभिषेक; इसका वास्तविक महत्त्व—मनुष्य केवल कार्य और सफलताओं का ही इच्छुक नहीं है, अपितु प्रदर्शन और दिखावे का भी है । हिन्दू राष्ट्र के लिए प्रतिपादित प्राचीन शास्त्रोक्त विधि से अपना भव्य राज्याभिषेक करके शिवाजी ने प्राचीन प्रथा को पुनर्जीवित कर दिया और कम से कम भारत के एक भाग में पूर्ण हिन्दू राज्य की पुनः स्थापना कर दी ।

इस संस्कार में एक सिंहासन का निर्माण, विधिपूर्वक स्नान के बाद उस पर आरोहण, वैदिक मन्त्रों के उच्चारण सहित पवित्र जलों का अभिषेक––ये सब सम्मिलित हैं । शिवाजी का यह अपूर्व प्रयोग जन-साधारण का ध्यान आकृष्ट करने और भारतीय ढंग से अपने

---

१ निर्जित्य सर्वानिवनीमहेन्द्रान् नृपः स सिंहासनमध्यरोहत् ।
योऽधत्त दिल्लीपतिचित्तशल्यं अनन्यगच्छन्नृपतीतिशब्दम् ।।
क्रमेण जित्वा स दिशश्चतस्रो राजा शिवच्छत्रपतिः प्रतापात् ।
निःशेषयन्म्लेच्छगणं समस्तं पाति स्म पृथ्वीं परिपूर्णकामः ।।

पृथ्वी के सब राजाओं को जीतकर वह नृप सिंहासनारूढ़ हुआ, जिसने दिल्लीपति के हृदय में शल्य भोंक दिया । ऐसा ही व्यक्ति नृपति कहलाता है ।

राजा शिव छत्रपति अपने प्रताप द्वारा क्रम से चारों दिशाओं को जीतकर और सभी म्लेच्छों का नाश करके और अपनी कामनाओं को पूर्ण करके पृथ्वी का पालन करता था ।

(शि-च-प्र०, पृ० १३१ और १४१)

आदर्श की पुष्टि करने के लिए सर्वोत्तम उपाय था। 'राजा' कहलाने की प्राचीन प्रथा अधिकांश मराठा सामन्तों में प्रचलित थी, परन्तु इसका तात्पर्य वास्तविक राजत्व से नहीं था और न प्राचीन समय में कोई ऐसा मराठा राजा हुआ था जिसने प्राचीन गुप्त सम्राटों के समय से राज्याभिषेक कराया हो। अपने परामर्शदाताओं से दीर्घ और गम्भीर विचार-विनिमय के बाद शिवाजी ने न केवल हिन्दू अपितु मुस्लिम और ईसाई सत्ताओं पर यह प्रभाव डालने की योजना निकाली कि मराठे अब सही अर्थों में अपनी भूमि के स्वामी हैं और धार्मिक अत्याचार अब सह्य न होंगे। समकालीन साहित्य में शिवाजी के राज्याभिषेक का प्रसिद्ध उद्देश्य इस प्रकार प्रकट किया गया है कि मनुष्य मात्र के लिए पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता नये राज्य का वास्तविक अंग है। इस अर्थ को व्यक्त करने के लिए संस्कृत ग्रन्थों से मराठा राजा के लिए छत्रपति की उपाधि विशेष रूप से ली गई।

साथ ही राज्यारोहण संस्कार के द्वारा शिवाजी ने इस विचार का अन्त कर दिया कि वे बीजापुर राज्य के जागीरदार हैं और इस रूप में उसके पराधीन सेवक हैं। इस विचार का भी अन्त कर दिया गया कि वे एक लुटेरे हैं। अब भी मोरे लोगों के समान कुछ ऐसे मराठा सामन्त थे जो स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना न कर सकते थे और इस विचार से चिपके हुए थे कि वे बीजापुर के अधीन हैं। इन दकियानूसी विचारों को सदा के लिए समाप्त करना जरूरी था। एक बार यदि विधिवत् स्वतन्त्र राज्य की घोषणा हो जाये, तो राजा कर लगाने तथा समानता के आधार पर अन्य शक्तियों से व्यवहार करने के अधिकार का प्रयोग कर सकता था और यह सिद्ध कर सकता था कि वह नवोदयी नहीं है। उसके जाति-भाइयों में एक और धारणा थी कि प्राचीन काल में क्षत्रियों का अस्तित्व मिट गया है और अब कोई क्षत्रिय नहीं हो सकता, क्योंकि महान् परशुराम ने इस जाति को विनष्ट कर दिया था। इस निरर्थक सामाजिक विचार का एक प्रबल प्रहार द्वारा अन्त करना आवश्यक था। इन विविध उद्देश्यों को अपने चित्त में रखकर शिवाजी ने अपने

विधिवत् राज्याभिषेक का निश्चय किया। उन्होंने उत्तर की सिसोदिया क्षत्रिय जाति से अपना वंशगत सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया।

१६७३ ई० के प्रारम्भ से ही सार्वजनिक राज्याभिषेक के विचार को वास्तविक रूप देना आरम्भ हो गया। तैयारियाँ पूरी होने पर शुक्रवार, ५ जून, १६७४ को रायगढ़ में यह संस्कार सम्पन्न हुआ। उस दिन सूर्य सिंह राशि में प्रविष्ट हुआ था।

रूढ़िवादी ब्राह्मण शिवाजी के इस दावे को मानने के लिये तैयार न थे कि वह रक्त से क्षत्री हैं, यद्यपि कर्म द्वारा इस स्वत्व को उन्होंने सिद्ध कर दिया था। इस प्रकार के संस्कार को हुए एक सहस्र से भी अधिक वर्ष व्यतीत हो गये थे और इस कारण लोगों को इसकी याद भी भूल सी गई थी। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण और दक्षिण की मुस्लिम विजय के पश्चात् दक्षिण की समस्त प्राचीन विद्या काशी पहुँच गई थी। अपनी परम्परागत प्राचीन विद्या के लिए प्रसिद्ध देव, धर्माधिकारी, शेष, भट्ट तथा मौनी सदृश प्राचीन परिवारों ने अपने पवित्र ग्रन्थों के साथ पैठन स्थित अपना घरबार छोड़ कर अपना नया विश्वविद्यालय गंगा के तट पर स्थापित कर लिया था। पैठन के निरक्षर विचारहीन लोगों की आवाज में अब कोई बल न था। हिन्दू विचार और विद्या पर अब बनारस का अधिकार होने लगा था। अतएव शिवाजी को अब बनारस के गागाभट्ट से वार्तालाप करना पड़ा, जो उस सम्प्रदाय के हिन्दू स्मृतिकारों के विद्वान् प्रतिनिधि थे। उनको रायगढ़ आने का आमन्त्रण मिला ताकि वे इस प्रकार की व्यवस्था कर दें जो वर्तमान की आवश्यकता के साथ-साथ प्राचीन प्रथा के भी अनुसार हो।

अकबर के राजत्व-काल में बनारस के एक विद्वान् ब्राह्मण कृष्ण-नरसिंह शेष ने 'शूद्राचार-शिरोमणि' नामक एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि वर्त्तमान कलियुग में क्षत्री का अभाव है। शिवाजी की आत्मा इस अपमानजनक स्थिति को सहन न कर सकी। कृष्ण शेष की घोषणा

का सार्वजनिक खराडन करना ग्रावश्यक था। ग्रत: उन्होंने कुछ विद्वान् ब्राह्मणों—केशवभट्ट पुरोहित, भालचन्द्र भट्ट तथा सोमनाथ भट्ट कात्रे का एक प्रतिनिधि-मराडल उदयपुर ग्रौर उत्तर भारत में ग्रन्य क्षत्रिय परम्परा के केन्द्र-स्थानों को भेजा ताकि वह जनमत को इस पक्ष में करे कि क्षत्रिय जाति का पुनर्जीवन ग्रावश्यक है ग्रौर यह घोषगा कर दे कि इस जाति का लोप कभी नहीं हुग्रा। इस प्रतिनिधि-मराडल का नेता था बालाजी ग्रावजी, जो शिवाजी की योजनाग्रों का रक्षक ग्रौर निपुरा कूटनीतिज्ञ था। इस पुनरुज्जीवक ग्रान्दोलन का उद्घोषित उद्देश्य समाज को मिथ्या ग्रौर तर्कहीन विचारों से शुद्ध करना ग्रौर उस पतित ग्रवस्था का ग्रन्त करना था जो ग्रज्ञान के कारगा स्वभाषा, स्वधर्म ग्रौर स्वराष्ट्र के क्षेत्र में उत्पन्न हो गई थी।[२] शिष्ट-मराडल ने विरोध करने के लिए कृष्गा शेष की समयोग्यता के विश्वेश्वर उपनाम गागाभट्ट नामक व्यक्ति को ढूँढ़ निकाला। इनके पूर्वज गोविन्दभट्ट ने पैठन छोड़कर सोलहवीं शताब्दी के ग्रारम्भ में बनारस को ग्रपना निवास-स्थान बना लिया था। वे इस समय ग्रपनी गूढ़ विद्वता ग्रौर तीक्ष्गा तर्क-शक्ति के प्रदर्शन के लिए तैयार थे, ग्रौर कृष्गा शेष को उसी के तर्कों से परास्त कर सकते थे। गोविन्दभट्ट के वंशजों ने बनारस में विद्या ग्रौर शास्त्र का ग्रपना स्वतन्त्र विशाल सम्प्रदाय स्थापित किया। उन्होंने धर्म, स्मृति ग्रौर राजनीति पर ग्रनेक उत्कृष्ट ग्रन्थ तैयार किये, जो इस समय भी भारतीय न्यायालयों में प्रामाणिक समझे जाते हैं।[३]

राजपूत राजा भट्ट-परिवार का इतना सम्मान करते थे कि भारत के उस भाग में कोई संस्कार तब तक पूर्ण न माना जाता था जब तक कि उस परिवार का कोई व्यक्ति संस्कार के लिए

---

२ स्वराष्ट्र-स्वधर्म-स्वभाषादिकांचा। जगी मान व्हावा ग्रसा हेतु साचा॥

३ इनके नाम हैं—मयूख, उद्योत, कमलाकर ग्रादि। नीलकण्ठ भट्ट का 'व्यवहार-मयूख', कमलाकर भट्ट का 'निर्णय कमलाकर' या 'निर्णय सिन्धु', दिनकर भट्ट का 'दिनकरोद्योत' ग्रौर धार्मिक पुस्तिकाग्रों ग्रौर ग्रन्थों या प्रबन्धों की बहुत बड़ी संख्या है, जिनसे हिन्दू विधि के विद्यार्थी सुपरिचित हैं।

उपस्थित न हो। विश्वेश्वर उपनाम गागाभट्ट स्वयं प्रसिद्ध लेखक थे। उनको एक प्रसिद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ 'कायस्थ धर्म-प्रदीप' लिखने का श्रेय है, जिसमें 'शूद्राचार शिरोमणि' के काल्पनिक सिद्धान्तों का पूर्णतया खण्डन किया गया है और कायस्थ जाति के लिए क्षत्रियोचित संस्कार स्वीकृत किये गये हैं। बनारस के सामाजिक और धार्मिक सम्मेलनों में भट्टों को प्रमुख पद प्राप्त था। वह शिष्ट-मण्डल बालाजी आवजी के नेतृत्व में प्रारम्भिक प्रबन्ध पूर्ण करके वापस आ गया।

शिवाजी ने अपने सभासदों और अपने परामर्शदाता परमानन्द और रामदास से परामर्श किया। तत्पश्चात् अपने प्रतिनिधि गोविन्दभट्ट खेड़कर को भेजा कि वह गागाभट्ट को उचित सम्मान के साथ रायगढ़ ले आये। भट्ट यथासमय आ गये और राजा के अभिषेक के विषय में विभिन्न विचार रखने वाले प्रमुख व्यक्तियों से परामर्श किया। उन्होंने अपने विरोधियों के हृदय में यह विश्वास जमा दिया कि यह आवश्यक है कि शिवाजी को असंदिग्ध क्षत्रिय-गुण और स्वभाव-युक्त ईश्वर-प्रदत्त वीर योद्धा स्वीकार किया जाये, जैसा कि भगवद्गीता और स्मृतियों में प्रतिपादित किया गया है। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि दयालु सर्वशक्तिमान् ने पुनः शिवाजी के रूप में जन्म लिया है ताकि औरंगजेब द्वारा पीड़ित जनता की रक्षा करें।[४] गागाभट्ट प्रगाढ़ पाण्डित्य और प्रभावशाली वक्तृत्व-कला से पूर्ण थे। उन्होंने तत्कालीन महाराष्ट्र-निवासी अधिकांश महापण्डितों को अपने पक्ष में कर लिया। शिवाजी के निर्देशानुसार चतुर बालाजी आवजी ने उनकी सहायता की।

अनेक विशिष्ट अतिथि आमन्त्रित किये गये और विशेष पालकियों में रायगढ़ लाये गये। राजधानी में पण्डितों, कूटनीतिज्ञों, सेनानायकों, सामन्तों, मित्रों और सम्बन्धियों का विस्तृत समुदाय एकत्रित हो गया। अभिषेक का अर्थ था, द्विजों के समस्त विहित संस्कारों को सम्पादित

४ देखो पृ० ३१, टि० १८।

करना, जिनकी शिवाजी के लिए उपेक्षा की गई थी और जिनके लिए विशाल तैयारियों की आवश्यकता थी। पवित्र नदियों से पवित्र घड़ों में जल, स्वस्थ शुभ लक्षण युक्त हाथी और घोड़े, मृग और सिंहों के चर्म, विशेष बनावट के छत्र और चमर, भिन्न आकृतियों के स्वर्ण-पात्र और अन्त में शास्त्र में निर्दिष्ट रूप और माप का एक भव्य सिंहासन जो प्रभुत्व-सम्पन्नता का प्रतीक होता है, इन सब का प्रबन्ध करना था। विभिन्न भवनों और आवश्यक वस्तुओं के निर्माण पर सावधानी से ध्यान दिया गया, जैसे, राजमहल, देवालय, तालाब, फाटक, गढ़, अतिथि-गृह, कार्यालय, सैनिक-भण्डार और सामग्री-गृह।[५]

संस्कारों के आरम्भ होने के पूर्व शिवाजी ने कोंकण प्रदेशों, विशेषकर चिपलूण का निरीक्षण किया, जहाँ पर उन्होंने सैनिक पुर्निरीक्षण भी किया और सैनिक कर्तव्यों के कुशलतापूर्वक पालनार्थ कुछ कठोर आज्ञाएँ दीं। वे रायगढ़ वापस आये और प्रतापराव गूजर के स्थान पर जो हाल में मारा गया था, हम्बीर राव मोहिते को सेनापति नियुक्त किया। चिपलूण से वापसी में शिवाजी प्रतापगढ़ गये, अपने कुल की इष्ट-देवी तुलजा भवानी की पूजा की और ५६ हजार रुपये का स्वर्ण-छत्र चढ़ाया। ज्येष्ठ सुदी ४, शक सं० १५९६, तदनुसार २९ मई, १६७४ को शिवाजी का यज्ञोपवीत-संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुआ और दो दिन बाद ज्येष्ठ सुदी ६ को राजमहिषी के साथ वैदिक मन्त्रों द्वारा उनका पुनः विवाह हुआ। पुण्याह-वाचन, यज्ञ-अग्नि, प्रायश्चित्त और शान्ति-कर्म वेदविहितरीत्यनुसार और वेद-पाठ सहित समुचित रूप से किये गये।

२. **राज्याभिषेक-संस्कार**—इन प्रारम्भिक रीतियों के बाद मुख्य संस्कार शनिवार, ज्येष्ठ सुदी १३, तदनुसार जून ६, १६७४ को सूर्योदय के एक घण्टा पूर्व सम्पन्न हुआ, जब शिवाजी

---

५ 'संकीर्ण साहित्य', जिल्द ३, नं० १२३, पृ० १५५ से २०० तक में इनका विस्तृत विवरण छपा है।

सिंहासन पर बैठे और राजछत्र उनके सिर पर ताना गया। वे बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहिने हुए थे। उनके पारिवारिक पुरोहित प्रभाकर के पुत्र बालमभट्ट ने ब्रह्मा (मुख्य पुरोहित) का कार्य किया और संस्कार के धार्मिक अंग की व्यवस्था की। शिवाजी को स्वर्ण और अन्य वस्तुओं से तोला गया जिन्हें दान कर दिया गया। उनका वजन १६ हजार होन बताया गया है जो करीब १४० पौंड होता है (१ होन = ७/२४ तोला)। अँग्रेजी पत्रों में उनका वजन १५० पौंड दिया हुआ है, जिससे स्पष्ट है कि वे तनिक भी मोटे नहीं थे। सूरत के प्रेसीडेण्ट जार्ज आक्सेण्डन का एक सम्बन्धी हेनरी आक्सेण्डन उस अवसर पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से प्रतिनिधि के रूप में रायगढ़ में उपस्थित था। उसने उन सब बातों का यथातथ्य वृत्तान्त लिखा है जो उसने इस भव्य संस्कार के विषय में देखा और सुना था।

सिंहासन कुछ ऊँचा था, वह बहुमूल्य और शोभायमान था। वह लगभग वर्गाकार था—१३½ फुट लम्बा और १२ फुट चौड़ा। चारों कोणों पर चार स्तम्भ लगे हुए थे ताकि स्वर्ण-वस्त्र के वितान को सँभाले रहें। जब शिवाजी इस पर आरूढ़ हुए, आठों मन्त्री अपने हाथों में राजत्व के विभिन्न चिह्न लिये हुए चारों ओर खड़े थे। उनके पीछे अन्य अधिकारी, सामन्तगण, अतिथि और विशिष्ट दर्शक थे। शिवाजी के ऊपर पवित्र जल छिड़का गया और ब्राह्मणों एवं पुरोहितों ने उनके ऊपर पवित्र चावलों की वर्षा की। वे वैदिक ऋचाओं का गान कर रहे थे जिनके साथ-साथ संगीत के मधुर आलाप थे और भेंट दी जा रही थी। धन और वस्त्र उपहार-स्वरूप वितरित किये गये। सबके अध्यक्ष पुरोहित गागाभट्ट को बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों के अतिरिक्त १ लाख रुपया नकद मिला। अधीनस्थ पुरोहितों को उनके पदानुसार ५ हजार रुपये से २५ रुपये तक नकद मिले। अन्य ब्राह्मणों को कुछ कम मिला, परन्तु किसी को २५) रुपये से कम न मिले। योगियों, भिखारियों, साधुओं और यतियों के साथ समस्त उपस्थित जनों को भिन्न-भिन्न प्रकार के उपहार, अन्न और वस्त्र प्रदान किये गये।

प्रातःकाल ८ बजे के लगभग जैसे ही शिवाजी धार्मिक कृत्यों से निवृत्त हुए, उन्होंने सिंहासन पर बैठकर जार्ज ग्राक्सेराडन से वार्तालाप किया। ग्राक्सेराडन के साथ उसका सहायक ग्रौर द्विभाषिया नारायण सेनाय था। राजदूत उपहार में एक ग्रँगूठी, एक ग्रँग्रेजी जंजीर, एक कलंगी, एक जोड़ी रत्नजटित कंकण ग्रौर तीन बड़े मोतियों की एक लड़ी लाया था, जिन सब का मूल्य ३ हजार रुपये था। बाद में भी उपहार दिये गये ग्रौर उपस्थित जनों का पान ग्रौर इत्र से सत्कार किया गया। तत्पश्चात् हाथी पर सवार होकर शिवाजी जुलूस में जगदीश्वर के मन्दिर गये,[६] तव जयजयकार करती भीड़ ने सोने ग्रौर चाँदी के फूलों की वर्षा की। ग्राज यह ग्राश्चर्य की बात मालूम होती है कि हाथी गढ़ पर कैसे चढ़ गये थे।

सभासद के ग्रनुमानानुसार संस्कार में सिंहासन ग्रौर भवनों के निर्माण की लागत को मिलाकर ५ करोड़ रुपये व्यय हुए। इसमें सम्भवतया गढ़ों ग्रौर राजधानी की सुसज्जा का व्यय भी शामिल है। सर जदुनाथ सरकार के ग्रनुमानानुसार केवल संस्कार में करीव पचास लाख रुपये व्यय हुए। वृद्धा जीजाबाई का सौभाग्य था कि उसने राज्याभिषेक को ग्रपनी ग्राँखों से देखा, ग्रौर ग्रपने पुत्र के लिए स्वतन्त्र राज्य का उसका स्वप्न भी पूरा हुग्रा। इस विशाल उत्सव के ठीक ग्यारह दिन बाद १७ जून, १६७४ को रायगढ़ के नीचे पाचाड़-स्थित निवास-स्थान पर उसका देहान्त हो गया। जैसा कि सर जदुनाथ लिखते हैं—"ग्रपनी ग्राँख बन्द करने के पहिले उसने यह सुख प्राप्त किया कि उसका पुत्र मानुषी महत्ता की उच्चतम सीमा को प्राप्त हो गया था, वह ग्रपनी जन्मभूमि का ग्रभिषिक्त राजा, ग्रजेय विजेता ग्रौर धर्म का प्रबल रक्षक था। जीजाबाई के

---

६ वहाँ पत्थर पर ग्रंकित पद्य देखिए—

प्रासादो जगदीश्वरस्य जगतामानन्ददोऽनुज्ञया
श्रीमच्छत्रपतेः शिवस्य नृपतेः सिंहासने तिष्ठतः।
श्रीमद्रायगिरौ गिरामविषये हीराजिना निर्मितो
यावच्चन्द्रदिवाकरौ विलसतस्तावत्समुज्जृंभते ॥

जीवन की यही आकांक्षा थी। ऐसा प्रतीत होता है कि दयालु परमात्मा ने उसके जीवन को इतना दीर्घ कर दिया कि वह उसके अभिषेक के दृश्य को देख सके।" पाचाड़-स्थित उसके राजमहल-तुल्य निवास के जीर्णशीर्ण अवशेष, कूप और प्राचीर उत्सुक दर्शक को अब भी उस धर्मपरायण महिला की भक्ति का स्मरण दिलाते हैं।

प्राचीन आर्य-परम्परा के अनुसार अभिषेक का संस्कार सम्पादित हुआ था। रक्तवर्ण राष्ट्रीय चिह्न के साथ स्वर्णजटित ध्वज, भव्य राजकीय छत्र, दीर्घकाय ढोल प्राचीन हिन्दू राजाओं की सज्जा के अनुरूप थे। इस राष्ट्रीय अवसर पर वे पुनरुज्जीवित किये गये। इसका ध्यान रहे कि भगवाध्वज का रामदास की प्रेरणा पर नया प्रयोग प्रचलित नहीं किया गया था। वह पहिले ही से प्रचलित हिन्दू राष्ट्रीय ध्वज था, जिसको स्वभावतः मराठा जत्थे अपने पास रखते थे। स्वर्णजटित बहुमूल्य चिह्न विशेष अवसरों पर प्रदर्शन के निमित्त था।[७] दीवारें, कुर्सियाँ, हाट का भव्य राजमार्ग, फाटक, गढ़ की दीवारें, गंगासागर सरोवर सब काले कठोर पत्थर के बने हुए थे जिनके जीर्ण-शीर्ण अवशेष आज तक विद्यमान हैं। इससे राजधानी की सम्पूर्ण योजना और निर्माण की रूपरेखा आज भी समझी जा सकती है।

सर जदुनाथ ने इस संस्कार के अनेक रोचक विवरण दिये हैं जिन्हें विद्यार्थी को अवश्य पढ़ना चाहिए। कुछ उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं—"तैयारी में बहुत मास लग गये। पण्डितों और प्रतिनिधियों की मण्डली ने, जो उदयपुर और जयपुर की आधुनिक प्रथा का पता लगाने भेजी गई थी, रामायण, महाभारत और राजनीतिक ग्रन्थों का प्रगाढ़ अध्ययन किया। भारत के प्रत्येक भाग को निमन्त्रण भेजे गये। ब्राह्मण, सामन्त, स्थानीय अधिकारी, विदेशी राज्यों के प्रतिनिधि, विशिष्ट दर्शक—जिनकी संख्या ११ हजार और उनकी स्त्रियों और बच्चों को मिलाकर ५० हजार थी, सब उपस्थित थे। सब का कुछ महीनों तक उत्तम भोजन से सत्कार किया गया।"

निर्धारित पद्धति और दर्शनीय संस्कार के अतिरिक्त इस अवसर

---

७ भगवा झण्डा और जरी-पटका।

का मुख्य उपयोग मराठा राज्य के संविधान को अन्तिम रूप देने के लिये किया गया। समय-समय पर इसके अंश आवश्यकतानुसार प्रचलित होते गये थे। आठ मन्त्रियों में से कुछ तो पहिले से ही चले आ रहे थे और सम्भवतया छत्रपति की उपाधि भी पहिले से ही थी। राजा ने अब विधिवत् उपाधि ग्रहण की—"क्षत्रिय कुलावतंस, सिंहासनाधीश्वर, महाराज छत्रपति।"[८] शिवाजी ने समय की गणना के लिए अपना संवत् चलाया जिसका नाम राजशक रखा गया। इसका आरम्भ उनके अभिषेक की तिथि से हुआ जिसके कारण उनको उचित ही शककर्ता अर्थात् युग का निर्माता कहते हैं। उसके पूर्व दो संवत् प्रचलित थे—विक्रम और शक संवत्।[९] फारसी

---

८ उपाधियों और सरनामों के रूप जो शिवाजी ने राज्याभिषेक के समय निश्चित किये थे, सरकारी पत्रों की निम्नाङ्कित शैली में संक्षिप्त किये हुए हैं, जिसका प्रयोग उसके बाद मराठा राज्य ने सदा दृढ़ता से किया था। स्वास्तिश्री राज्याभिषेक शके १ आनन्दनाम संवत्सरे ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी मन्दवासरे (५ जून, १६७४) क्षत्रियकुलावतंस श्री राजा शिवछत्रपति सिंहासनाधीश्वर स्वामी यांनीं समस्त राजकार्यधुरन्धर विश्वास निधि राजमान्य राजश्री……पण्डित प्रधान यांसीं आज्ञा केली ऐसीजे—इस निश्चित सरकारी रूप में, जिसके पहले ऊपर के सिरे पर राज्य की मुहर (प्रतिपच्चन्द्र) रहती थी, तीन निश्चित उपाधियाँ अंकित हैं। प्रथम क्षत्रिय कुलावतंस, द्वितीय सिंहासनाधीश्वर तथा तृतीय श्रीराजाछत्रपति स्वामी। भाषा मराठी है जिसने अब फारसी का स्थान ले लिया था। इसमें शिवाजी के द्वारा प्रचलित नवीन संवत् का उल्लेख है और इस सबसे मराठा राज्य के संविधान की व्याख्या हो जाती है। राजव्यवहार कोश से नवीन पारिभाषिक शब्दावली ली गई है। शिवाजी ने इस प्रकार घोषणा कर दी कि वे अब सच्चे क्षत्रिय हैं और दिल्ली के बादशाह के साथ समानता के आधार पर व्यवहार करने के लिए समर्थ हैं। छत्रपति स्वामि साधारण व्यवहार के लिए प्रसिद्ध शैली थी।

९ यह शिवाजी द्वारा प्रचलित अभिषेक संवत् मराठा राज्य के अन्त १८१८ ई० तक व्यवहार में था। यह धारणा गलत है कि १७७७ ई० में नाना फड़नीस और सखाराम बापू ने इसे बन्द कर दिया। उन्होंने केवल उस थोड़े से समय के लिए निषेध किया था कि राजा शाहू द्वितीय के नाम पर अधिकृत पत्र न निकाले जायें, जो समय उसके गोद लिए जाने (१५ सितम्बर, १७७७) और उसके वैधानिक अभिषेक (२० दिसम्बर, १७७७) के बीच में व्यतीत हुआ था। इसी प्रकार ढडफाले के इतिहास (इ० वृ० १८३५) के पृ० ३७८ पर की टिप्पणी का अर्थ लगाना चाहिए।

ग्रौर उर्दू के स्थान पर, जिसको मुस्लिम शासकों ने ग्रपनी सत्ता के चिन्ह-स्वरूप लागू कर दिया था, शिवाजी ने मराठी को राज-भाषा बना दिया। राजकीय कार्य के लिये जान-बूझकर शिवाजी ने संस्कृत शब्दावली को ग्रपनाया जिसके लिये 'राजव्यवहार कोश' नामक दरबारी शब्दों का एक कोश तैयार कर स्वीकृत किया गया। रघुनाथ पन्त हनुमन्ते के योग्य निर्देशन में यह उत्कृष्ट कार्य विभिन्न विद्वान् पण्डितों द्वारा सम्पादित हुग्रा, जिनमें ढुंडिराज लक्ष्मण व्यास का विशेष उल्लेख है।[10] इसी प्रकार प्रशासकीय कार्य के संचालन के लिए नियम ग्रौर उपनियम बनाये गये, जिनमें सम्बोधन के रूप ग्रौर राजकीय पत्रकों की प्रामाणिकता ग्रौर पूर्णता-सूचक मुद्राएँ भी सम्मिलित हैं। शिवाजी के संविधान में सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता ग्राठ विभागों की रचना है जो भिन्न-भिन्न ग्राठ मन्त्रियों को दिये गये। इनका नाम ग्रष्ट-प्रधान पड़ गया। ये (यद्यपि ग्रपने ग्राधुनिक विकसित रूप में नहीं) ग्रार्य-नीतिशास्त्र के ग्रनेक प्राचीन ग्रन्थों, मुख्यतया शुक्रनीति, से लिये गये थे। मन्त्रियों के नाम ग्रौर उनके ग्रधिकृत पद-नाम फारसी ग्रौर संस्कृत में नीचे दिये जाते हैं।

१. पेशवा—मुख्य प्रधान (प्रधान मन्त्री)—मोरो त्रिमल पिंगले। इस पद का वेतन १५ हजार होन वार्षिक था।
२. मजूमदार—ग्रमात्य (राजस्व मन्त्री)—रामचन्द्र नीलकण्ठ, जिसका वेतन १२ हजार होन वार्षिक था।
३. सुरनिस-सचिव (ग्रर्थ मन्त्री)—ग्रानाजी दत्तो।
४. वाकेनवीस—मन्त्री (व्यक्तिगत परामर्शदाता, गृह मन्त्री या मुख्य सचिव)—दत्ताजी त्र्यम्बक।

ये चारों सिंहासन के दाहिनी ग्रोर बैठते थे। निम्नलिखित चार सिंहासन के बाईं ग्रोर बैठते थे :—

---

१० सोयं शिवच्छत्रपतेरनुज्ञां मूर्धाभिषिक्तस्य निधाय मूर्ध्नि।
ग्रमात्यवर्यो रघुनाथनामा करोति राज्यव्यवहारकोशम्॥
व्यासान्वयाब्धिचन्द्रेण लक्ष्मणव्याससूनुना।
कोशोऽयंधुंडिराजेन रघुनाथमुदे कृतः॥

५. सरनौबत—सेनापति–हम्बीरराव मोहिते ।
६. दबीर–सुमन्त (परराष्ट्र मन्त्री)—रामचन्द्र त्र्यम्बक ।
७. न्यायाधीश––रावजी नीराजी ।
८. पण्डित राव (धर्म मन्त्री)—रघुनाथ पण्डित । अन्तिम ६ का वेतन १० हजार होन वार्षिक था। होन ३॥) रुपये के लगभग था ।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि शिवाजी के इस भव्य संस्कार से सर्व-साधारण हिन्दू का हृदय और विशेषकर मराठों का हृदय कितना प्रफुल्लित हो उठा और हिन्दू-जाति पर जो कई शताब्दियों से मुस्लिम-शासन के कारण पीड़ित थी, क्या प्रभाव पड़ा। उनके धर्म और स्वातन्त्र्य के हितार्थ एक नवीन रक्षक का आगमन हुआ था। इसके साथ ही इस उत्सव से सम्राट् के हृदय पर भी भारी आघात पहुँचा होगा। हमारे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है कि बीजापुर और गोलकुण्डा के अधिकारियों पर शिवाजी के अभिषेक के समाचार का क्या प्रभाव पड़ा। वे शीघ्रता से अपने पतन की ओर उन्मुख थे। उन्हें सम्राट् के चंगुल से अपने अस्तित्व की रक्षा के अतिरिक्त किसी अन्य विषय की चिन्ता न थी।

यद्यपि इस अभिषेक संस्कार से शिवाजी पूर्ण क्षत्रिय हो गये, किन्तु थोड़े से ऐसे लोग भी थे जिन्होंने इस संस्कार को इस कारण दूषित समझा कि ५ जून, १६७४ को नक्षत्र अशुभ थे। एक विद्वान् साधु निश्चलपुरी गोसावी जो तान्त्रिक विद्या के मन्त्र-प्रयोग में पारंगत था, आगे आया और शिवाजी ने जो कुछ किया था उसकी निन्दा की। उसने भविष्यवाणी की कि यदि तुरन्त ही उपचार न किया गया तो परिणाम बुरे होंगे। उसने अपने कथन के प्रमाण में अभिषेक के ठीक पश्चात् जीजाबाई और शिवाजी की एक पत्नी के देहान्त के उदाहरण प्रस्तुत किये। शिवाजी ने इसमें कोई हानि न देखी और निश्चलपुरी द्वारा प्रस्तावित लघु पैमाने पर पुनः राज्याभिषेक का आयोजन स्वीकार कर उन्होंने विरोध

को शान्त कर दिया। इस कार्य के लिए निश्चलपुरी को उन्होंने रायगढ़ में आमन्त्रित किया और तीन मास पीछे ललित पंचमी को (२४ सितम्बर, १६७४) एक संस्कार किया गया जिसका विवरण प्रकाशित हो गया है।[११]

३. सर्वतोमुखी अशान्ति का वर्ष—राज्याभिषेक से मृत्यु तक शिवाजी के अल्प जीवन के अन्तिम ६ वर्ष पूर्व-काल की तुलना में सर्वथा भिन्न हैं। उनका निजी स्वास्थ्य, जो साधारणतया काफी अच्छा था, पारिवारिक झंझटों के कारण बिगड़ने लगा—विशेषकर सम्भाजी के दुश्चरित्र तथा राज्य के भविष्य की चिन्ता के कारण कि जिस राज्य को उन्होंने आजीवन उद्योग कर स्थापित किया था, वह कैसे स्थायी रहे? यह सभी जानते हैं कि धनोपार्जन से अधिक कठिन उसकी सुरक्षा है। शिवाजी ने अब तक राष्ट्र-निर्माण के हितार्थ जो कार्य किये थे, अभिषेक संस्कार से उन सब प्रयत्नों की पूर्ति हो गई परन्तु अब मराठा राज्य को जीवित रखना और आन्तरिक संघर्ष और बाह्य आक्रमण से सुरक्षित करना था। उनके दुश्चरित्र पुत्र सम्भाजी की भाँति उनका सौतेला भाई एकोजी भी उनका सहायक न था। उसे शिवाजी के विरुद्ध एक दुराग्रह था। वह अपने आपको इस भावना से अलग न रख सका कि वह बीजापुर के सुल्तान के अधीन उसका आश्रय-भोगी है; जबकि वह राज्य स्वयं उस समय मृत्यु के दिन गिन रहा था। मुगल आक्रमण और शिवाजी की महत्वाकांक्षा के बीच बीजापुर और गोलकुण्डा का अस्तित्व डाँवाडोल था।

बहादुरखाँ ने सम्राट् को विश्वास दिलाया था कि वह यथा-शक्ति मराठा राजा के सिर को झुका देने का प्रयत्न करेगा और उसके अभिषेक के प्रभाव को नष्ट कर देगा। अपने अधिकृत प्रदेश के मध्य में कोई सम्राट् एक स्वतन्त्र राज्य के अस्तित्व को कैसे सहन कर सकता था। जब महाराज रायगढ़ में अपने अभिषेक में व्यस्त थे,

---

११ 'शिवराज्याभिषेक कल्पतरु', बी० आई० मण्डल क्यू० १०, ६, अं १, पृ० २९।

उन्हें सूचना मिली कि बहादुरखाँ उनके विरुद्ध प्रयत्नशील है। इस पर शिवाजी ने प्रथम प्रहार करना निश्चय किया। उसका ध्यान हटाने के लिए १६७४ ई० की प्रबल वर्षाऋतु में शिवाजी ने अपना राजदूत बहादुरखाँ के पास शान्ति का प्रस्ताव लेकर भेजा। इस बीच भीमा पर पेड़गाँव में स्थित मुख्य मुगल शिविर पर शिवाजी ने आकस्मिक धावा कर दिया। उन्होंने अपने दल को दो भागों में विभक्त किया। २ हजार सैनिकों का एक छोटा दल खान से डटकर युद्ध करने के लिए तत्पर हुआ। खान मराठों का सामना करने के लिए असावधानी से करीब ५० मील आगे बढ़ गया। इस प्रकार जब खान अपने आधार-स्थान से दूर था, मराठों का दूसरा और मुख्य विभाग (७ हजार से अधिक सैनिक वाला) अकस्मात् मुगल शिविर पर टूट पड़ा, उनके समस्त तम्बुओं और सामग्री में आग लगा दी और एक करोड़ से ज्यादा का माल लूट में ले गया। इनमें २०० चुने हुए घोड़े थे जो सम्राट् को उपहार देने के लिए रखे हुए थे। रायगढ़ में अभिषेक के कुछ सप्ताहों के भीतर जुलाई में यह घटना घटी। अगले दो मास तक आक्रमण जारी रहा। जौहार और रामनगर के कोली प्रदेश को शिवाजी की सेना ने अग्नि और तलवार से विनष्ट कर दिया। दशहरा के समीप (अक्टूबर) स्वयं शिवाजी ने बागलान, खानदेश और बरार में एक अभियान का नेतृत्व किया और औरंगाबाद से लेकर उत्तर के समस्त मुगल प्रदेश को लूट लिया। अन्य जगहों के साथ शिवाजी ने एरण्डोल के पास धरनगाँव की अँग्रेजी फैक्टरी को लूट लिया और आग लगा दी। उस स्थान का मुगल अधिकारी कुतुबुद्दीनखाँ खेशगी वीरतापूर्वक शिवाजी का सामना करने आया परन्तु हारकर शरण लेने के लिए औरंगाबाद भाग गया (नवम्बर १६७४ ई०)। उसके ३०० सैनिक मारे गये।

शिवाजी का मुकाबला करने में बहादुरखाँ प्रत्येक दशा में असमर्थ रहा। फलतः शान्ति-वार्ता के लिए प्रसन्नता से तैयार हो गया जिसका प्रस्ताव कुछ समय से शिवाजी कर रहे थे। शिवाजी सम्राट्

को १७ गढ़ पुनः वापस करने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने अपने पुत्र को अनुमति दे दी कि वह ६ हजार की मनसबदारी के पद पर मुगल सेना में रहे। शर्तों की सूचना सम्राट् को भेजी गई, उसने अपनी स्वीकृति भेज दी। परन्तु वार्ता समाप्त होने के पूर्व ही शिवाजी ने रूप बदल दिया। मुगल दूत जो मुगल शर्तें तय करने आये थे, उन्हें उन्होंने वापस भेज दिया। इस असफलता का परिणाम यह हुआ कि बहादुरखाँ सम्राट् की आँखों से गिर गया। शिवाजी ने कहा—"बहादुरखाँ एक थपथपाए बच्चे की तरह था। उसने शिवाजी से गुप-चुप भारी रिश्वत ले ली और बहाना बनाया कि वह उसे सम्राट् के लिए ले रहा है और मराठों से विधिवत् शान्ति कर ली।"

(जेधे शकावली)

शिवाजी के अभिषेक के बाद दो वर्षों (अप्रेल १६७४ ई० से जून १६७६ ई०) तक बहादुरखाँ दक्षिण में मुगल-हितों का भार अकेले ही वहन करता रहा क्योंकि अथक परिश्रमी दिलेरखाँ को सम्राट् ने उत्तर में बुला लिया। औरंगजेब को शीघ्र ही पता चल गया कि शिवाजी के दमन का कार्य बहादुरखाँ से नहीं हो सकता। वह उस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उत्तम मार्ग ढूँढ़ने लगा। वह स्वयं शिवाजी से लड़ने क्यों नहीं गया—यह कहना कठिन है। सम्भव है, उसे शिवाजी के विरुद्ध स्वयं नेतृत्व करना पसन्द न था। इस विषय पर उसने दिलेरखाँ से परामर्श किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जब तक ऐसा व्यक्ति न मिले जो भौगोलिक परिस्थिति से भली-भाँति परिचित हो और दक्षिण के मुख्य व्यक्तियों को भी जानता हो, तब तक शिवाजी का दमन करना सम्भव नहीं है। उनकी राय में ऐसा व्यक्ति नेताजी पालकर थां, जिसका शिवाजी से पहिले झगड़ा हो गया था और जो, उन्होंने विचार किया, अब मुसलमान होने के कारण सम्राट् के पक्ष का समर्थन करेगा। नेताजी उर्फ मुहम्मद कुलीखाँ को बुलाया गया। वह तुरन्त तैयार हो गया कि यदि आवश्यक धन और सामग्री युक्तरूप से उसे मिलती रहे तो शिवाजी को अपने जाल में फँसाने का वह भरसक प्रयत्न करेगा। सम्राट् ने नेताजी

की प्रत्येक माँग को स्वीकार कर लिया, और उसके साथ दिलेरखाँ को भी शिवाजी के विनाश के लिए भेज दिया। उन्होंने शिवाजी की गति के समाचार प्राप्त कर लिये और वे सतारा के समीप एक स्थान पर उनके निकट आ गये। एक दिन प्रात:काल एकाएक नेताजी मुगल-शिविर से लापता हो गया। वह चुपके से भाग गया था। वह शिवाजी से मिला और प्रत्येक घटना की सविस्तार सूचना उन्हें दे दी। वह ८ वर्ष से मुसलमान था और उसने अपने नये परिवार को उत्तर में छोड़ रखा था। उसने शिवाजी से शुद्धि की प्रार्थना की और आवश्यक प्रायश्चित करने के बाद १९ जून, १६७६ को हिन्दू धर्म में पुन: प्रविष्ट हो गया। इस प्रकार सम्राट् द्वारा रचित शिवाजी को परास्त करने की अति गूढ़ योजना असफल हो गई। इसके बाद नेताजी शिवाजी की सेवा में रहा और सम्भाजी के शासन-काल में वृद्धावस्था में उसका देहान्त हुआ। परन्तु उसके जीवन के इस अन्तिम रूप के विषय में कोई लेख प्राप्त नहीं है।

मन्त्रियों की लगातार क्रान्तियों के कारण अब बीजापुर राज्य विनाश के गड्ढे में दिन-प्रति-दिन गिरता जा रहा था। बालक सुल्तान सिकन्दर आदिलशाह गद्दी पर था और खवासखाँ उसका मुख्य मन्त्री। इसके हाथ में सम्पूर्ण सत्ता थी। औरंगजेब ने अपने सेनापतियों बहादुरखाँ और दिलेरखाँ को प्रेरित किया कि वे आदिलशाही राज्य को अधीन कर लें क्योंकि उस समय उसकी दशा निर्बलतम थी। खवासखाँ ने बहादुरखाँ से षड्यन्त्र किया और स्वयं भीमा नदी के तट पर एक स्थान पर १९ अक्टूबर, १६७५ को उससे जाकर मिला। इस मिलन का अर्थ यह लगाया गया कि खवासखाँ तुच्छ व्यक्तिगत लाभ के लिए आदिलशाही राज्य को बेचना चाहता है। इस घातक चाल का पता खवासखाँ के विरोधी बहलोलखाँ को लग गया और तुरन्त खवासखाँ को बाँकापुर में बन्दी कर लिया और स्वयं सत्ता छीन ली (१९ नवम्बर, १६७५)।

शिवाजी ने इस अवसर से लाभ उठाने में देर न की। गोआ के पुर्तगाली भी अपने प्रदेश की रक्षा के प्रति सतर्क थे कि कहीं

शिवाजी बीजापुर को हानि पहुँचाकर अपनी शक्ति को बढ़ाने में सफल न हो जाएँ—विशेषकर तटवर्ती प्रदेशों में। जब कभी भी भारत की देशी शक्तियों में कोई युद्ध छिड़ जाता, इन योरुपीय समुद्री व्यापारियों का साधारण व्यापार विरोधी दलों को तोपें, हथियार और गोला-बारूद देकर लाभ कमाना हो जाता था। इस कारण शिवाजी का ध्यान बहुत पहिले से उनकी ओर जा चुका था और उनकी इच्छा थी कि स्वयं अपने नौ-साधनों को विकसित कर सत्ता और व्यापार दोनों यूरोप वालों के हाथ से छीन लें। इस उद्देश्य से उन्होंने निपुण राजनीतिज्ञ पीताम्बर शेनॉय को अपनी सेवा में रख लिया, जिसे इन योरुपीय व्यापारियों के पारस्परिक झगड़ों और उनकी समस्याओं का पूरा ज्ञान था। वह उनकी भाषा पढ़ना और लिखना जानता था। पीताम्बर के प्रभाव से शिवाजी को कुछ नाविक सेना और तोपखाने के विशेषज्ञ अधिकारी गोआ से प्राप्त हो गये और उन्होंने अपने ही ज़हाज बनाने के कार-खाने और शस्त्रागार मलवन में स्थापित कर लिये। शिवाजी को चौथ-कर लगाने के अमूल्य तरीके पीताम्बर शेनॉय ने ही बताये थे। पुर्तगाली और अन्य तटीय शक्तियों में चौथ लेने और देने का चलन था।[12] अपने कार्य के लिए शिवाजी ने यह प्रथा अपना ली और अपने स्वराज्य के प्रसार के लिए उन्होंने इसे एक लाभप्रद साधन के रूप में 'उन्नत कर लिया। इस प्रकार चौथ मराठों के लिये राजनीति की एक चाल बन गई।

कोलाबा, स्वर्णदुर्ग, विजयदुर्ग और सिन्धुदुर्ग के सुरक्षित अड्डों सहित कोलाबा से मलवन तक का पश्चिमी तट पहिले से ही शिवाजी के अधिकार में था। बीच के प्रदेश में स्थित चौल और जंजीरा शिवाजी के

---

१२ ६ सितम्बर, १६७६ के एक पत्र में वर्णन है कि शिवाजी ने पीताम्बर को बन्दी कर लिया और उसके पत्रों एवं सम्पत्ति को जब्त कर लिया। इससे प्रकट है कि कुछ समय के लिए पीताम्बर शिवाजी का कृपा-पात्र न था, परन्तु जाँच करने पर वह निर्दोष पाया गया और अपने पद पर पुनः आरूढ़ कर दिया गया। १ सितम्बर, १६७८ के लगभग पीताम्बर का देहान्त हो गया।

लिए काँटा-स्वरूप थे। इसके निकट दक्षिण में गोग्रा की महत्त्वपूर्ण चौकी थी, जिससे पुर्तगाली शिवाजी की समुद्री प्रगति को रोक सकते थे। गोग्रा के दक्षिण में पोंडा ग्रौर कारवार दो ग्रन्य स्थान थे, जो पूर्णतया सवल एवं उपयुक्त थे ग्रौर बीजापुर के ग्रधिकार में थे। इन पर शिवाजी की ग्राँख लगी हुई थी ताकि वे पुर्तगालियों का निरोध कर सकें ग्रौर जंजीरा के सिद्दी पर भी नियन्त्रण रख सकें। ग्रपने ग्रभिषेक के तुरन्त बाद ग्रपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए शिवाजी ने ग्रानाजी दत्तो को भेजा कि वह बीजापुरियों से पोंडा को हस्तगत करने का प्रयत्न करे। ग्रगस्त १६७४ ई० में ग्रानाजी ग्रपने काम पर रवाना हुग्रा ग्रौर वहाँ घेरा डाल दिया। बीजापुरी रक्षक मुहम्मदखाँ ने वीरतापूर्वक इसकी रक्षा की। चूँकि ग्रानाजी को प्रयास में ग्रसफलता प्रतीत हुई ग्रतः शिवाजी उसकी सहायता के लिए चल पड़े। वे २२ मार्च, १६७५ को राजापुर पहुँच गये ग्रौर वहाँ से युद्ध-सामग्री से लदे हुए ४० पोत भेजे ताकि पोंडा के विरुद्ध उनका उपयोग किया जाये। शिवाजी ने स्वयं स्थल-मार्ग से उस स्थान की ग्रोर प्रयाण किया ग्रौर ८ ग्रप्रेल को उस पर घेरा डाल दिया। बहलोलखाँ पोंडा की सहायता के लिए शीघ्र ही चल दिया किन्तु शिवाजी के सैनिकों ने उसको मार्ग में ही रोक लिया। मुहम्मदखाँ को शीघ्र पता चल गया कि वह ग्रपनी स्थिति को संभाल नहीं सकेगा ग्रौर ६ मई, १६७५ को उसने पोंडा का समर्पण कर दिया। शिवाजी ने उस स्थान के रक्षा-साधनों को तुरन्त ही सुदृढ़ वनाया ग्रौर उसकी भावी सुरक्षा के लिए प्रबल ग्रौर चुना हुग्रा रक्षक-दल नियुक्त कर दिया। इस प्रकार उन्होंने गोग्रा के विरुद्ध यहाँ ग्रपनी विरोधी शक्ति स्थापित कर दी। उनकी कुशल दूर-दृष्टि की प्रशंसा हो ही नहीं सकती। इसके बाद वे दक्षिण की ग्रोर ग्रागे बढ़े ग्रौर समुद्री गढ़ सदाशिवगढ़ सहित कारवार पर ग्रधिकार कर लिया। सोंधा के पड़ोसी राज्य को भी उन्होंने ग्रपने राज्य के ग्रन्तर्गत कर लिया। दक्षिण में इस प्रगति से शिवाजी का उत्तरदायित्व बढ़ गया क्योंकि इनके लिए ग्रब सतर्क रक्षा की ग्रावश्यकता थी। उन्होंने

एक प्रदेशीय विभाग का निर्माण किया और एक निपुण अधिकारी धर्माजी नागनाथ को उसका मुख्य शासक नियुक्त कर दिया—ठीक उसी प्रकार जैसे रावजी सोमनाथ राजापुर से मलवन तक के जिले का प्रबन्ध कर रहा था। गोग्रा के पुर्तगालियों पर ये दो चतुर राज्यपाल प्रभावशाली नियन्त्रक सिद्ध हुए।

जब शिवाजी इस क्षेत्र में थे तो बेदनूर की रानी ने उनसे सहायता की याचना की। उसने अपने विद्रोही सेनापति तिमन्ना को, जिसने उसके अधिकार का अनादर किया था, नियन्त्रण में लाने की प्रार्थना की। शिवाजी ने तुरन्त इस कार्य को स्वीकार कर लिया और अपना चौथ का नियम रानी के अधिकार-क्षेत्र पर लागू कर दिया। वह शिवाजी को चौथ देने के लिए तैयार हो गई और इस प्रकार उसने अपनी सुरक्षा प्राप्त कर ली। इस कार्य के लिए उन्होंने उमाजी पण्डित को बेदनूर में नियुक्त कर प्रबन्ध पूरा कर दिया। उमाजी काफी समय तक सम्भाजी का अभिभावक रहा था। शिवाजी १२ जून, १६७५ को राजापुर वापस आ गये। उत्तर में रामनगर (दमन के पास) से दक्षिण में बसरूर तक (बेदनूर का बन्दर) पश्चिम घाट पर उन्होंने एक ही बार में अपनी सत्ता को सुदृढ़ कर लिया। इसके बाद शीघ्र ही वे रायगढ़ आ गये।

सतारा का गढ़ भी बीजापुर के अधिकार में था। शिवाजी ने ११ नवम्बर, १६७५ को इस पर अधिकार कर लिया। यह स्थान उन्हें बहुत पसन्द आया और वे वहाँ रहने लगे। समीपस्थ पार्ली के बन्दर को उन्होंने अपने गुरु रामदास को समर्पित कर दिया। इस समय गुरु के प्रति वह उच्चतम श्रद्धा रखते थे। अपनी चिन्ताओं में उन्हें उनसे शान्ति और सान्त्वना प्राप्त होती थी। अब समीप हो जाने से उन दोनों में पारस्परिक पत्र-व्यवहार और मिलना-जुलना प्राय: हुआ करता था। इस प्रकार अपने अभिषेक के वर्ष भर के अन्दर ही शिवाजी ने बीजापुर के समस्त पश्चिमी प्रदेश को अधिकृत कर लिया और इसके साथ ही साथ मुगल सेनापति बहादुर-खाँ को, जैसा ऊपर कहा गया है, ललकारते रहे।

१६७५ ई० के अन्त के समीप जब शिवाजी सतारा में निवास कर रहे थे, वे अकस्मात् इतने अधिक बीमार पड़ गये कि उनकी मृत्यु का झूठा समाचार फैल गया। उनका चित्त अकस्मात् चिन्ता-ग्रस्त हो गया। सम्भवतया इसका कारण उनके पुत्र सम्भाजी का असद् व्यवहार था। "सम्भाजी पर अब उनकी कृपा न रही और उमाजी पण्डित के पास वह बन्दी कर दिया गया ताकि शृङ्गारपुर में उसकी पढ़ाई होती रहे।"[13] इसके बाद कुछ समय के लिए सम्भाजी रामदास की देख-रेख में भी रखा गया। परन्तु उसमें कोई सुधार नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि १६७६ ई० के आरम्भ में शिवाजी को स्वास्थ्य-लाभ हो गया और कुछ समय के लिए वे पन्हाला में ठहरे। २० अक्टूबर, १६७६ का एक लेख है :—"उन्होंने खटाव पर आक्रमण किया, उसके पुराने रक्षा-प्राचीरों को गिरा दिया और नये बनवा दिये।[14]

---

१३ देखो प्रभात शकावली, लेख ५८, पृ० २९ (प्रभात बखर)।
१४ पेशवा दफ्तर सिलैक्शन्स, जिल्द ४५, पृ० २०।

तिथिक्रम

अध्याय १०

२१ अप्रेल, १६७२	अब्दुल्ला कुतुबशाह की मृत्यु।
२४ नवम्बर, १६७२	अली आदिलशाह द्वितीय की मृत्यु।
१७ मार्च, १६७५	तंजौर में एकोजी का अभिषेक।
१६७६	कर्नाटक अभियान का शिवाजी का निश्चय।
जनवरी १६७७	शिवाजी की सेना का कोपबल के विरुद्ध प्रयाण।
जनवरी १६७७	शिवाजी का हैदराबाद जाना।
मार्च १६७७	मियाना बन्धुओं का मान-मर्दन।
मार्च १६७७	शिवाजी भागानगर में।
अप्रेल १६७७	शिवाजी का श्री शैल को जाना।
मई १६७७	शिवाजी का जिंजी को हस्तगत करना।
२३ मई, १६७७	शिवाजी का वेल्लोर पर घेरा डालना।
५ जुलाई, १६७७	शिवाजी का शेरखाँ लोदी का मान-मर्दन करना।
जुलाई का तीसरा सप्ताह	शिवाजी का कोलेरून पर शिविर डालना, चोकनाथ नायक से कर प्राप्त करना और उनके भाई एकोजी का मिलने आना।
२७ जुलाई, १६७७	शिवाजी का तंजौर प्रान्त से चल देना।
१६ नवम्बर, १६७७	वलीगुण्डापुरम् पर एकोजी परास्त।
१६ नवम्बर, १६७७	शिवाजी का गदग पहुँचना।
फरवरी १६७८	शेरखाँ लोदी के पुत्र का मुक्ति-धन देना और छोड़ दिया जाना।
१ मार्च, १६७८	एकोजी को शिवाजी का पत्र।
१६७८	दोनों भाइयों में शान्ति-सन्धि।
२२ जुलाई, १६७८	वेल्लोर पर शिवाजी की सेना का अधिकार।
१६७९	दीपाबाई और रघुनाथ पन्त को शिवाजी के पत्र।
जनवरी, १६८०	शिवाजी का अपने भाई को अन्तिम पत्र।

अध्याय १०

दक्षिण-विजय

[१६७७–१६७८]

१. दक्षिण में प्रसार; आवश्यकता और अवसर।
२. कोपबल पर अधिकार।
३. भागानगर में भव्य आगमन।
४. बीजापुरी कर्नाटक पर अधिकार।
५. दोनों भाई और उनकी पैतृक सम्पत्ति।
६. पैतृक सम्पत्ति का सम्मत विभाजन।

१. दक्षिण में प्रसार; आवश्यकता और अवसर—अभिषेक के समस्त गौरव और पूर्ण राजत्व की उच्च उपाधियों के ग्रहण करने के बावजूद शिवाजी का अधिकृत प्रदेश वास्तव में २०० मील के लगभग लम्बा और उससे बहुत कम चौड़ा था। समस्त मराठा देश भी उसके अन्तर्गत नहीं था। पश्चिम तट पर सिद्दी और पुर्तगाली उनके समीपवर्ती विरोधी थे। पूर्व की ओर बीजापुर और गोलकुण्डा से राज्य को निरन्तर भय था। यद्यपि वे स्वयं घातक न थे, परन्तु मुगलों के हाथ में पड़कर वे उन पर आक्रमण करने के सुलभ साधन बन सकते थे। उत्तर से मुगल दबाव नित्य उनकी सीमाओं के पास पहुँच रहा था। उनका अपना भाई भी इस समय अभिषिक्त राजा था और उनके समान ही राजत्व का अधिकारी था। अतएव परिस्थिति के कारण दिग्विजय आवश्यक हो गई। समय के अनुसार सम्मानित परम्परा के अनुकूल यह नितान्त आवश्यक थी।

यद्यपि शिवाजी अपने साधनों में सभी सम्भव प्रयत्नों से वृद्धि करने के लिए सतर्क थे—लोक-हितकारी प्रशासन के द्वारा, कृषि और व्यापार में वृद्धि तथा यदा-कदा लूट-मार करके भी, फिर भी उनका कोष रिक्त हो गया था। अभिषेक, गढ़ों, नाविक योजना

और विशाल सेनाओं के निर्माण पर जो उनकी महत्वाकांक्षी योजनाओं के लिए आवश्यक थे, विशाल धन-राशि व्यय हो चुकी थी। फलत: धन की उन्हें तुरन्त आवश्यकता थी।

चूँकि उत्तर में मुगलों ने उनके मार्ग को दृढ़ता से रुद्ध कर दिया था, शिवाजी ने १६७६ ई० में निश्चय किया कि अपनी सत्ता का प्रसार दक्षिण में करें। प्रारम्भिक कार्यवाही को व्यवस्थित कर सुविधाजनक अवसर पर अभियान के लिए शिवाजी तैयार हो गये। पश्चिमी तट पर उनका अधिकार पहले ही से सुरक्षित था और केवल पूर्वी तट प्रदेश में निर्गम द्वार रह गये थे। वेल्लोर, जिंजी, तंजौर समृद्ध स्थान थे जो उनके विचारानुसार उनके हिन्दू-राज्य में सुविधापूर्वक मिलाये जा सकते थे। इस कार्य के लिए गोलकुण्डा के कार्यदक्ष मन्त्री मादन्ना के द्वारा उन्हें बहाना भी मिल गया।

मदन पन्त या मादन्ना एक आदरणीय हिन्दू राजनीतिज्ञ था, जिसने हाल ही में कुतुबशाही राज्य के बल और साधनों का सन्तोषप्रद संगठन किया था। पूर्वीय तट प्रदेशों की उर्वरता, उसकी प्रसिद्ध हीरों की खानों की समृद्धि, अनेक नदियों द्वारा सिंचित उसकी उर्वर समतल भूमि——इन कारणों से यह स्वाभाविक ही था कि शिवाजी का ध्यान प्रायद्वीप के पूर्वीय क्षेत्र की ओर आकृष्ट हो जाता। मुसलमानों ने पिछले समय में इस कोमल हिन्दू भूमि को विनष्ट कर दिया था। प्राचीन विजयनगर राजवंश के अन्तिम राजा श्रीरंगराय ने प्राचीन हिन्दू राज्य की रक्षा के लिए दीर्घकाल तक कष्ट उठाये, पर सफल न हुआ। देश के इस भाग में सुशासन स्थापित करने की दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति न हुई। वह क्या कर सकते हैं, यह देखने का शिवाजी ने निश्चय किया। यह कार्य हिन्दू-पुनरुत्थान के समान था, जिसे शिवाजी ने बहुत पहले से ले रक्खा था। इस कार्य में अब उन्हें गोलकुण्डा के मदनपन्त और तंजौर के रघुनाथ नारायण हनुमन्ते की सहायता प्राप्त हो गई।

वारंगल जिले में हनुमकोण्डा के एक ब्राह्मण वंश में एकनाथ और उसका छोटा भाई मदन दो पण्डित थे। इतिहास में वे आकन्ना

श्रौर मादन्ना के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रारम्भ में वे मीरजुमला को सेवा में अपनी जन्मजात योग्यता के कारण उच्च पद को प्राप्त हुए। मीरजुमला कुतुबशाह का प्रसिद्ध मन्त्री था, वह इतना धनी और शक्तिशाली हो गया कि अब अपने स्वामी की आज्ञा-पालन में असमर्थ था। विद्रोही का दमन करने के लिए शाह को मादन्ना की सेवाएँ मूल्यवान् सिद्ध हुईं; इसके बाद उसने मादन्ना को अपने प्रशासन में सुधार का कार्य दे दिया। योग्यता, स्वामिभक्ति और लगन के साथ बहुत वर्षों तक मादन्ना अपने स्वामी की सेवा करता रहा। चूँकि दक्षिण की भाषाओं और समस्याओं का वह धुरन्धर विद्वान था और संस्कृत व फारसी की भी उसे अच्छी जानकारी थी, फलतः वह उस समय की बदलती हुई राजनीति में कुतुबशाही राज्य का बहुत योग्यता से प्रबन्ध करने में समर्थ हुआ।

१६७२ ई० का वर्ष बीजापुर और गोलकुण्डा दोनों के लिए संकटपूर्ण सिद्ध हुआ। गोलकुण्डा के शासक अब्दुल्ला का देहान्त २१ अप्रेल को हो गया और बीजापुर के अली आदिलशाह का आगामी २४ नवम्बर को। इस प्रकार मुगलों और मराठों को हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हो गया। दोनों स्थानों पर षड्यन्त्र और अव्यवस्था से परिस्थिति इतनी बिगड़ गई कि दोनों राज्यों की गड़बड़ियों का तब तक यथार्थ विश्लेषण नहीं हो सकता, जब तक तेजी से बदलते हुए तत्वों को ठीक-ठीक समझ न लिया जाये। अब्दुल्ला कुतुबशाह के कोई पुत्र न था, किन्तु उसके ज्येष्ठ जामाता सैयद अहमद ने राजगद्दी पर अपना अधिकार जमाने का यत्न किया। राज्य की सेना के मुख्य सेनापति सैयद मुजफ्फर ने शाह के छोटे जामाता अबुलहसन को गद्दी प्राप्त करने में सहायता दी और शासन के पूर्ण अधिकार स्वयं हस्तगत कर लिये। परन्तु मदनपन्त की सहायता से अबुलहसन ने शीघ्र ही अपना अधिकार जमा लिया और मनमानी करने वाले सैयद मुजफ्फर का तख्ता उलट दिया और मदनपन्त को प्रधान मन्त्री के आसन पर बैठा दिया। शाह ने उसे "सूर्य-प्रकाश" की उपाधि प्रदान की। इससे राज्य में दो दल उत्पन्न हो गये—हिन्दू

ग्रौर मुस्लिम । परन्तु मादन्ना लगभग दस वर्ष तक ग्रत्यन्त बुद्धिमता ग्रौर चातुर्य से प्रशासन का संचालन सफलता ग्रौर सन्तोष के साथ करता रहा। ग्रन्त में, मदनपन्त की हत्या करके ग्रौरंगजेब ने सदा के लिए राज्य का ग्रन्त कर दिया।

गोलकुराडा ग्रौर बीजापुर के ग्रन्तिम दिनों के सम्बन्ध में तत्कालीन योरोपीय यात्रियों ने ग्रपने विचार लिखे हैं, जिनमें मदनपन्त को मधुर प्रकृति का प्रतिभाशाली व्यक्ति बतलाया गया है ग्रौर उसके बड़े भाई ग्राकन्ना को सनकी ग्रौर क्रोधी कहा है। ग्राकन्ना कुतुबशाही राज्य के कर्नाटक प्रदेश के प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया गया था, परन्तु जब मादन्ना मुख्य मन्त्री हुग्रा तो उसने कुछ समय के लिए बीजापुर दरबार में ग्राकन्ना को राजदूत नियुक्त कर दिया। बाद में उसे मुख्य सैनिक-व्यवस्थापक बना दिया गया। दोनों का भाई-भतीजों का बड़ा परिवार था, जिनको मादन्ना ने राज्य के विभिन्न पदों पर नियुक्त कर दिया। उसको ऐसे स्वामिभक्त ग्रधीनस्थ सेवकों की ग्रावश्यकता थी जो उसके द्वारा प्रचलित सुधारों को वफादारी से कार्यान्वित करें। इस नीति का स्वाभाविक परिणाम यह हुग्रा कि गोलकुराडा के प्रशासन में हिन्दुग्रों की प्रचुरता हुई, जिससे मुस्लिम जाति की ईर्ष्या जाग्रत हो गई। ये किसी कानून का पालन न करते थे ग्रौर इन्होंने ग्रब षड्यन्त्र ग्रौर छल-कपट ग्रारम्भ कर दिये। इस स्थिति से ग्रौरंगजेब को उसका नाश करने के लिए उपयोगी ग्रवसर मिल गया।

इस प्रकार जब गोलकुराडा ग्रपनी हीन ग्रवस्था से गुजर रहा था, ग्रपनी प्रसार-नीति को कार्यान्वित करने के लिए शिवाजी ने कदम ग्रागे बढ़ाया। इस पराक्रम में ग्रपने ही सौतेले भाई एकोजी से उन्हें भुगतना पड़ा, जिसने हाल में तंजौर को हस्तगत कर लिया था ग्रौर १७ मार्च, १६७५ को ग्रपना ग्रभिषेक किया था (राक्षस संवत्सर शक १५९७ का हिन्दू नववर्ष दिवस)। सम्भवतया यह महाराष्ट्र में शिवाजी के कार्य की नकल थी। इस स्थिति के सम्बन्ध में कुछ ग्रधिक स्पष्टीकरण ग्रावश्यक है। इसके लिये

हमें पहले उन सम्बन्धों का अध्ययन करना होगा जो एकोजी और हनुमन्ते परिवार में उस समय थे। इस परिवार ने कर्नाटक में शाहजी की दीर्घकाल तक भक्तिपूर्वक सेवा की थी।

महाराष्ट्र में दादाजी कोंडदेव की भाँति नारो त्रिमल हनुमन्ते पहले निजामशाह के अधीन शाहजी की सेवा में रहा था और बाद में उसके साथ बंगलौर चला गया था। इसके बाद शीघ्र ही नारोपन्त का देहान्त हो गया। उसने अपने पीछे दो योग्य पुत्र छोड़े—जनार्दन और रघुनाथ। इन्होंने अपने समय में शाहजी की भक्ति-पूर्वक सेवा की। जनार्दन पन्त का स्थानान्तर शिवाजी के पास कर दिया गया था और रघुनाथ पन्त कर्नाटक में शाहजी के हितों की देख-भाल करता रहा। शाहजी के देहान्त के बाद रघुनाथ पन्त ने एकोजी की सेवा समान उत्साह और योग्यता से की। तंजौर का राज्य बीजापुर के आधीन था। रघुनाथ पण्डित की सलाह और नेतृत्व में एकोजी ने १६७५ ई० में इस पर अधिकार कर लिया। उसके अभिषेक का अर्थ बीजापुर से सम्बन्ध-विच्छेद करना था या नहीं, यह विवादग्रस्त प्रश्न है। यहाँ इतना ही जानना पर्याप्त है कि रघुनाथ पन्त के चतुर नेतृत्व में एकोजी का प्रशासन प्रजा के लिए हितकारी सिद्ध हुआ। ईसाई-प्रचारक जेसूइट १६७६ ई० में लिखता है :—

"व्यंकोजी प्रजा का प्रिय बनने में समर्थ हुआ। उसकी सरकार के न्याय और बुद्धिमत्ता से पूर्व-शासन के घाव भरने लगे और देश के प्राकृतिक साधन उन्नत होने लगे। नहरों और तालाबों की मरम्मत कर उसने विस्तृत भूमि को उर्वरता प्रदान की जो बहुत वर्षों से बिना खेती की पड़ी हुई थी। अन्तिम उपज (१६७६ ई० की) सब फसलों से अच्छी है।"[1]

परन्तु एकोजी और उसके मन्त्री में शीघ्र मतभेद उत्पन्न हो गया जिसका कारण स्पष्ट नहीं है। एकोजी को अवश्य ही शिवाजी की सफलताओं के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो गई होगी। वह अपने व्यक्तित्व

१ सरकार द्वारा लिखित 'हाउस ऑफ शिवाजी', पृ० ३३।

को अपने भाई के प्रयोग में विलीन करना न चाहता था, भले ही सर्वसाधारण के लिए यह बात कितनी ही उचित और आकर्षक क्यों न लगती हो। कुछ भी हो, दोनों का मतभेद चरम सीमा पर पहुँच गया। यद्यपि पण्डित बहुत बुद्धिमान था, किन्तु एकोजी उसकी मनमानी को सहन न कर सका। पण्डित ने अपने स्वामी को त्यागपत्र देने की धमकी देते हुए कहा कि उसमें इतनी योग्यता है कि वह अपने लिए अन्यत्र कार्य के लिए उपयोगी क्षेत्र ढूँढ़ निकालेगा। एकोजी ने तुरन्त ही जाने की विधिवत् आज्ञा दे दी। अपने समस्त परिवार सहित उसने तंजौर छोड़ दिया और प्रसिद्ध किया कि वह अपना जीवन-यापन करने बनारस जा रहा है। उत्तर की यात्रा में उसने कार्य की एक निपुण और विशाल योजना बनाली। गोलकुण्डा, बीजापुर और रायगढ़ की वस्तुस्थिति से वह भली-भाँति परिचित था। उसे मदनपन्त के इस प्रस्ताव का पता लग गया कि वह गोलकुण्डा के पक्ष में शिवाजी का समर्थन चाहता है। इस बात की किसी को कल्पना भी न थी कि हिन्दुओं का महान् उद्धारक अकाल-मृत्यु को प्राप्त होने वाला है, उसने यही सोचा कि वह दक्षिण में मराठा-प्रसार की योजनाओं में उस वीर की सहायता कर सकता है। शिवाजी की अकाल-मृत्यु और औरंगजेब के दक्षिण पर तदनन्तर होने वाले आक्रमण के कारण हमें उस कार्य-प्रणाली की सामर्थ्य को कम न आँकना चाहिए जो शिवाजी ने अपनी अकाल-मृत्यु के तीन वर्ष पहले निश्चित की थी। अपने मन में एक दृढ़ योजना बनाकर रघुनाथ पन्त पहले बीजापुर गया, उस राज्य की स्थिति का मनन किया और तब वह भागानगर में मदनपन्त से मिला। उसे अपने विचारानुकूल बनाने में उसे कोई कठिनाई न हुई। एकान्त में उन दोनों ने बहुत देर तक विचार-विमर्श किया और हिन्दू-पुनरुज्जीवन की योजनाएँ सुनिश्चित कीं। अन्त में उन्होंने अपने साथ कुतुबशाह को ले लिया और उसे अपनी सुरक्षा के लिये दक्षिण की सम्मिलित विजय में उन्हें सहयोग देने के लिए राजी कर लिया। शाह शिवाजी से स्वयं मिलने के लिए तैयार हो गया और यथासम्भव

शीघ्र इसका प्रबन्ध करने के लिए पण्डित से आग्रह किया। अतः हनुमन्ते तुरन्त शिवाजी के निवास-स्थान पर पहुँचा और दक्षिण में हिन्दू-प्रसार की विशाल योजनाओं पर प्रकाश डालते हुए इस कार्य के परिणाम एवं दुष्परिणामों पर विचार-विमर्श किया।

बहुत समय तक शिवाजी भारी हिचकिचाहट में डूबे रहे और अपने अन्तःकरण को बल देने के लिए उन्होंने आवश्यक समझा कि कुछ ईश्वर-भक्त सन्तों का आशीर्वाद प्राप्त करें, जैसा कि ऐसे अवसरों पर वे सदैव करते थे। बाबा याक़ूत नामक एक मुस्लिम फकीर दिपोली के पास केलसी में रहता था। अनेक संकटग्रस्त लोग उसकी कृपा के इच्छुक रहते थे। बाबा याक़ूत की समाधि का अब भी सम्मान होता है। सरकार से इसकी मरम्मत और वार्षिक उत्सव (उर्स) के निमित्त अनुदान प्राप्त होता है। यह शिवाजी के समय से प्रचलित है। एक मौनी बाबा नामक सन्त भी था जो आधुनिक कोल्हापुर राज्य के अन्तर्गत रंगना के गढ़ के समीप पटगाँव में रहता था। वह मौन रहता था और कभी एक शब्द न बोलता था। शिवाजी इन दोनों सन्तों से मिले और जोखिम के जिस कार्य को वे करने जा रहे थे, उसके लिए उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।[२]

१६७६ ई० के अन्त तक समस्त तैयारियाँ पूरी हो गयीं और नियमित योजनानुसार कार्य आरम्भ हुआ। यह प्रसिद्ध किया गया कि शिवाजी दक्षिण में अपने सौतेले भाई से पैतृक सम्पत्ति और एकत्रित धन-राशि में अपना उचित हिस्सा जिसका अपहरण उसने बहुत दिनों से कर रखा है, माँगने जा रहे हैं।

२. **कोपबल पर अधिकार**—मुसलमानों द्वारा दीर्घकाल से पीड़ित दक्षिण के हिन्दुओं ने शिवाजी के अभियान का हृदय से स्वागत किया। वे इस बात के लिए उत्सुक थे कि यदि शिवाजी उन्हें अपने संरक्षण में ले लें, तो वे उनकी अधीनता स्वीकार

---

२ इस मौनी बाबा को अनुदान देने की सनद पर, जो शिवाजी से उसको मिली, ३ मई, १६७८ का दिनाङ्क लगा हुआ है, अर्थात् कर्नाटक-अभियान से वापसी के ठीक बाद।

करलें। कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच का बीजापुरी अधिकृत प्रदेश कोपबल के गढ़ के आधीन था। बीजापुर की सेवा में नियुक्त दो अफगान अधिकारी हुसैनखाँ मियाना और उसका भाई अब्दुलरहीमखाँ इस गढ़ के रक्षक थे। सभासद इसको 'दक्षिण का द्वार' कहता है। कर्नाटक पर शिवाजी के अधिकार के लिए इसका सैनिक-महत्व था। तुंगभद्रा प्रदेश के हिन्दुओं ने शिवाजी को मियाना-बन्धुओं के अत्याचार का दमन करने के लिए करुणाजनक प्रार्थनाएँ भेजी थीं। अतएव शिवाजी ने गोलकुण्डा जाने का निश्चय करते हुए यह भी आवश्यक समझा कि इन दोनों अफगान सरदारों का दमन करें ताकि वे कोपबल से उन्हें पीछे से हानि न पहुँचा सकें। जनवरी १६७७ ई० के आरम्भ में उन्होंने अपनी दक्षिण की यात्रा की व्यवस्था की और एक सबल सेना दो भागों में हम्बीरराव मोहिते और धानाजी जाधव की अधीनता में इन मियाना पठानों का दमन करने और कोपबल पर अधिकार करने के लिए भेजी। प्रबल प्रतिरोध के बाद मराठे अफगानों को पराजित करने में सफल हुए। अब्दुलरहीमखाँ मारा गया और उसका भाई हुसैनखाँ मियाना जीवित पकड़ लिया गया। उसने कोपबल का गढ़ हम्बीरराव को अर्पित कर दिया। उसे मनचाही जगह जाने की आज्ञा दे दी गई। मार्च के महीने में हम्बीरराव और धानाजी दोनों भागानगर में शिवाजी से जा मिले। पूर्वी कर्नाटक के द्वार पर सुदृढ़ अधिकार हो गया और इस अधिकार से शिवाजी के जीवन के अन्तिम स्मरणीय दौर का आरम्भ हुआ।

माघ मास में (जनवरी १६७७ ई० का अन्त) एक शुभ दिन शिवाजी ने रायगढ़ से प्रस्थान किया। उन्होंने दक्षिण का शासन मोरोपन्त पिंगले और आनाजी दत्तो के अधिकार में सौंप दिया ताकि यदि उनकी अनुपस्थिति में मुगल कुछ हानि करना चाहें तो वे उनका या अन्य शत्रुओं का ध्यान रखें। रघुनाथ पन्त, नीराजी रावजी और उसका पुत्र प्रह्लाद नीराजी पहले से भागानगर को रवाना हो गये ताकि शिवाजी के आगमन पर उनके स्वागत की पूरी व्यवस्था कर दें

और गोलकुण्डा के अधिकारियों के मन में पूर्ण विश्वास तथा प्रेम उत्पन्न करें जो अपने मध्य में अफजलखाँ के कातिल के आगमन से स्वभावत: शंकित हो रहे थे।[३]

३. भागानगर में भव्य आगमन—रायगढ़ से शिवाजी सम्भवतया मौनी बाबा से मिलने बिंगुर्ला गये और उसका आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद २५ हजार सैनिकों का सुसज्जित दल लेकर भागानगर की ओर रवाना हुए। नेताजी पाल्कर, हम्बीरराव मोहिते, आनन्दराव मकाजी, मानाजी मोरे, सूर्याजी मालुसरे, येसाजी कंक, दत्ताजी वाकेनवीस, पिंगले-बंधु, नीलाप्रभु पारसनिस, बालाजी आवजी, शिवाजी नायक पुण्डे तथा अन्य विश्वस्त और सुयोग्य सहकारी उनके साथ थे। समस्त मराठा सैनिकों को कड़ा निर्देश था और इस बात का कठोरता से पालन हुआ कि कुतुबशाही प्रदेश पर कोई अत्याचार न किया जाये और न उसकी प्रजा की कोई हानि हो। इस विषय में शिवाजी का अनुशासन विकट था। वह उदाहरण-स्वरूप कठोर दण्ड भी देते थे। हैदराबाद के निकट पहुँचने पर मदनपन्त ने राजधानी के बाहर उनका स्वागत किया और एक भव्य जुलूस के साथ उन्होंने नगर में प्रवेश किया। उनके सैनिक और अधिकारी भड़कीले वस्त्र धारण किये हुए थे। भागानगर विशेष रूप से अलंकृत किया गया था। शिवाजी और उनके सिपाहियों को देखने के लिए नागरिकों की भीड़ घरों से बाहर आ गई।

जब शिवाजी कुतुबशाह के दादमहल पर पहुँचे तो उन्होंने अपना रक्षादल बाहर रोक दिया और केवल पाँच साथियों के साथ महल में प्रवेश किया। मण्डप के द्वार पर शाह आया, बराबरी के दर्जे से उसने शिवाजी का स्वागत किया और शाही फर्श पर अपने पास ही उन्हें बिठाया। मन्त्री मादन्ना उनके पास ही बैठा और अन्य दरबारी खड़े रहे। शिवाजी और उनके मित्रों का वीर स्वरूप बहुत प्रभावशाली

---

३ इस कर्नाटक काण्ड पर 'शिवदिग्विजय बखर' में विशद विवरण है। भागानगर हैदराबाद का प्राचीन नाम है।

था। वस्त्रों और आभूषणों के उपहार द्वारा अतिथियों का सम्मान किया गया। प्रथम मिलन इस प्रकार विधिवत् सम्पन्न हुआ।

इसके बाद दोनों शासक अनेक बार व्यक्तिगत रूप से मिले, जिसमें उन्होंने खुलकर भूतकालीन घटनाओं एवं भविष्य की योजनाओं पर वार्तालाप किया। यदि शिवाजी की उपस्थिति से शाह को कोई भय था तो उसका निराकरण उन खुली बातचीतों से हो गया जो उन दोनों के पारस्परिक लाभ और समझौते के लिए हुई। इस बीच में मदनपन्त ने शिवाजी को अपने घर पर भोज दिया, जहाँ मन्त्री की माता ने अपने हाथ का बनाया भोजन शिवाजी को परोसा। दोनों भाई मादन्ना और आकन्ना भोजन के समय शिवाजी के पास बैठे और विभिन्न विषयों पर बातचीत और स्पष्टीकरण के द्वारा उनका मन बहलाते रहे।

लम्बे विचार-विनिमय और सम्मेलनों के बाद पूर्वीय तट के दक्षिण क्षेत्रों की संयुक्त विजय के लिए उनमें एक गुप्त समझौता हो गया। इस सन्धि-पत्र के मुख्य अनुवाक्य ये थे—कुतुबशाह ३ हजार होन दैनिक मराठा दल के व्यय के निमित्त दें, मिर्जा मुहम्मद अमीन के नेतृत्व में ५ हजार भागानगर के सैनिक मराठों का साथ दें, विजित प्रदेश दोनों बराबर-बराबर बाँट लें, उन दोनों में से किसी के विरुद्ध मुगलों का हमला होने पर वे मिलकर प्रतिरोध करें, और, अंत में, शर्तों को उचित रूप से कार्यान्वित करने के लिए शिवाजी का एक प्रतिनिधि स्थायी रूप से भागानगर में रहे। इसके अतिरिक्त शाह को ६ लाख होन वार्षिक कर देने पर शिवाजी सहमत हो गये। इसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि बातचीत कई दिन तक चलती रही और इस दौरान में कुतुबशाही राजधानी में पारस्परिक आतिथ्य-सत्कार और मनोरंजन के कार्यक्रम बड़ी उत्तमता से चलते रहे। तुरन्त ही एक विशाल अभियान दक्षिण-युद्ध के निमित्त भेजा गया, जिसमें शिवाजी ने अपने दो सेनानायक बाजी सरजेराव जेधे और येसाजी कंक को नियुक्त किया।

शिवाजी के कार्य, इस कार्य में उनके उद्देश्य और समकालीन

राजनीति में उनकी साधारण स्थिति का यथार्थ वृत्तान्त सौभाग्य से उन्हीं के एक पत्र में सुरक्षित है, जो मार्च १६७७ ई० में भागानगर से उन्होंने मुधोल के मालोजी घोरपड़े को लिखा था। वह इस प्रकार है[४]——

"आप जानते हैं कि मेरे स्वर्गीय पिता ने किस प्रकार निजामशाही राज्य को छोड़ा और इब्राहीम आदिलशाह के राजत्वकाल में बीजापुर की नौकरी स्वीकार कर ली और कैसा विश्वासपूर्ण पिता के प्रति शाह का व्यवहार था। उस समय मेरे पिता का सर्वोच्च विचार यह था कि जो कुछ भी शक्ति उनके पास है उसका उपयोग उन मराठा जागीरदारों की स्थिति को उन्नत करने में करें जो आजीविका की खोज में भटक रहे थे। उनका उद्देश्य था कि राज्य-कार्य-संचालन में वे विशेषज्ञता और विश्वास प्राप्त कर लें। इस उद्देश्य से मेरे पिता आपके पिता बाजी घोरपड़े को आदिलशाह से मिलाने ले गये और उनको शाही सेनानायक के पद पर पहुँचा दिया। मैं जानता हूँ कि आपके पिता और आपने तीन शासन-कालों में क्या-क्या बड़े कार्य किये हैं। यह मेरे लिए नितान्त दुःख का विषय है कि आपके पिता ने मेरे पिता द्वारा की गई सारी भलाई को भूलकर मेरे पिता को पकड़ने में मुस्तफाखाँ का साथ दिया। यह आपके पिता बाजी घोरपड़े ही थे जिन्होंने संकटयुक्त इस साहसिक कार्य को स्वीकार कर लिया और मेरे पिता को मुस्तफाखाँ के हाथों में बन्दी बना दिया। इसके कारण वर्षों तक आपके परिवार और मेरे परिवार में घोर शत्रुता रही, जिसका परिणाम अन्त में हुआ खुला युद्ध और दोनों ओर से रक्तपात। एक युद्ध में मेरे लोगों ने आपके पिता को मार डाला। इस प्रकार शत्रुता कुछ वर्षों तक चलती रही, परन्तु अब समय आ गया है कि भूतकालीन भूलें सुधार ली जायें और इसी विचार से मैं इस समय आपको यह पत्र लिख रहा हूँ कि वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए

---

४ 'शिवाजी सॉवेनिर', पृ० १४६।

आपको सलाह दूँ कि परस्पर लाभ के विचार से किस प्रकार आप इसका उपयोग करें।

"आपको ज्ञात है कि दक्षिण में तीन मुस्लिम-राज्य हुए हैं— निजामशाही, आदिलशाही और कुतुबशाही। जब प्रथम राज्य का मुगलों ने नाश कर दिया, उसके बड़े-बड़े सामन्त व्यक्तिगत विचार-विमर्श और सम्मेलनों के बाद आदिलशाह की सेवा में आ गये। अब आदिलशाही राज्य पर इस समय पठान बहलोलखाँ का राज्य है। आदिलशाह अल्पवयस्क है। वह नाममात्र का राजा है और वास्तव में पठान के अंकुश में है। बीजापुर की गद्दी, छत्र और गढ़ पठान के हाथों में हैं जो दक्षिण के हित के लिए अशुभ हैं। यदि पठान को शक्तिशाली होने दिया गया तो वह अवश्य ही समस्त दक्षिणी सामन्तों का नाश कर देगा। इसकी रोकथाम करने के लिए मैंने कुतुबशाह से मित्रता कर ली है, इसके साथ जानबूझ कर आरम्भ से ही मैंने मित्रता का सम्बन्ध रखा है। उसने हाल ही में मुझे व्यक्तिगत रूप से मिलने के लिए आमन्त्रित किया। उसने अपने हस्ताक्षरों से पत्र भेजा, जिस पर उसकी हथेली की छाप थी। मैंने उसके आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया और उससे मिल लिया हूँ। यह जानकर कि मैंने अपने को स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया है, उसने मुझे प्रचलित मुस्लिम प्रथा से मुक्त माना, जिसे वह सब पर लागू करता है अर्थात् उसके सम्मुख पृथ्वी को सिर से छूना। कुतुबशाह और मैं दोनों समानता के आधार पर मिले तथा दोनों मिलने के लिए आधी दूर तक आगे बढ़े। उसने बहुत सम्मान से और हार्दिक शुभकामना से मेरा स्वागत किया। उसने मुझे अपने हाथ से पकड़कर अपने पास बिठा लिया और सम्मान प्रकट किया, जिससे पारस्परिक मित्रता दृढ़ हो गई। प्रथानुसारी कृत्यों के बाद हमने राजनीतिक विषयों पर स्वतन्त्रता से वार्तालाप किया, जिसमें कुतुबशाह के मन्त्री मदनपन्त और मैंने सम्मिलित रूप से कुछ प्रस्ताव रखे, जिनसे कुतुब-शाह हृदय से सहमत हो गया। वह मुझ में इतना विश्वास रखता है कि मैं उस अनुकूल स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ जिसका उपयोग मैं

मराठों के हितों को उन्नत करने और बीजापुर के पठानों की शक्ति को नष्ट करने में कर सकता हूँ।

"जैसे ही दोनों पक्षों में समझौता हो गया, मैं इस बात के लिए उत्सुक हो उठा कि महान् मराठा सामन्तों को विश्वास में लूँ, उनको कुतुबशाह से मिलाऊँ, उनके सामने नौकरी की नवीन आशाएँ प्रस्तुत करूँ और उनकी सहायता से शाह के और मराठों के अधिकृत प्रदेशों का प्रसार करूँ। आप जानते हैं कि बिखरे हुए तत्वों को संयुक्त कार्य के लिए एकत्रित कर मराठा-शक्ति के संगठन के लिए मैं कितना उत्सुक रहा हूँ। इन उद्देश्यों से प्रेरित होकर मैंने कुतुबशाह से यह तय कर लिया है कि वह आपको अपनी नौकरी में रख ले। इसके लिए हमको अपनी वंशगत शत्रुता को तुरन्त छोड़ देना होगा। मेरे प्रति आप अपने सब सन्देहों को त्याग दें। मेरी प्रतिज्ञा पर विश्वास रखें कि मुझे आपके हितों को उन्नत करने की चिन्ता है। कुतुबशाह ने मेरी मार्फत आपको जो निमन्त्रण-पत्र लिखा है, उसे भेज रहा हूँ, ताकि आप उस पर अमल करें। आप उच्च वंश के हैं। आप मुझ पर विश्वास करें और पत्र पाते ही तुरन्त आप पठान की नौकरी छोड़कर यहाँ चले आयें और भागानगर में मुझ से मिलें। इस महान् अवसर को न खोयें। समय का तुरन्त उपयोग करें, अपना विश्वासपात्र एक दूत तुरन्त मेरे पास भेज दें ताकि आपके आगमन से कम से कम चार दिन पहले साक्षात् भेंट की सब तैयारियाँ हो जायें। आपके हितों की वृद्धि के लिए मैं इस समय ऐसी अनुकूल स्थिति में हूँ कि मुझे विश्वास है कि केवल आप ही नहीं वरन् आपके वंशज भी साभार मेरी सेवा को सदैव याद रखेंगे। इस दुर्लभ अवसर से आप कुतुबशाह से लाभ उठा सकते हैं। आने में या आदिलशाह के प्रति अपनी राजभक्ति को छोड़ने में आगा-पीछा न करें, और न मेरे प्रति किसी अविश्वास को आप अपने हृदय में आने दें। वास्तव में अब बीजापुर राज्य है कहाँ? खवासखाँ के वध के साथ इसका अन्त तभी हो गया जब पठान ने नगर और गढ़ पर अधिकार कर लिया और बालक राजा को कारागार में डाल दिया। आदिलशाही राज्य का

अब अस्तित्व नहीं है और उसकी सेवा करने का आपका कोई औचित्य भी नहीं है। आप उसे अब अपना नहीं कह सकते। पठान आपको प्रलोभन देगा, जिससे आप मेरे सुझाये हुए कदम को उठाने में रुक सकते हैं। परन्तु याद रखें कि पठान आपकी कुछ भी परवाह नहीं करेगा और इस बीच कुतुबशाह, मराठा सामन्त और मैं पठान को निगल जायेंगे। आप मराठा लोग मेरी हड्डी और मांस हैं। आपका हित मुझे प्यारा है। इसी कारण मैं इतना स्पष्ट आपको लिख रहा हूँ। कुतुबशाह और मैं आपको उसका दुगना दे सकते हैं जो पठान देने को कहे। इतना ही नहीं, जो कुछ और भी सम्भव हुआ वह भी आपकी सेवा के बदले निश्चय ही अर्पित किया जायगा। मैंने अपने मन से आपके प्रति सारे सन्देह हटा दिये हैं। इसकी शपथ मैं अपनी इष्टदेवी भवानी को साक्षी बनाकर ग्रहण करता हूँ। अपने वचन को पालन करने से मैं नहीं डिगूँगा। मेरे प्रति सभी सन्देहों को निकाल फेंके, तुरन्त मेरे पास चले आयें और अपने विश्वस्त दूत को पहिले से भेज दें, अपने इष्टदेव को साक्षी कर यह शपथ लें कि आप अपनी ओर से भी मेरे समान ही सत्य व्यवहार करेंगे। अतः अपने दूत के साथ अपनी पवित्र शपथ भी भेज दें। आपके हितों को उन्नत करने में कभी चूक न होगी। और अधिक क्या कहूँ।"

शिवाजी ने आजीवन जो कार्य किया, उसके मुख्य उद्देश्य की व्याख्या जितनी अच्छी तरह इस पत्र से होती है और किसी चीज से नहीं हो सकती। इसका उद्देश्य था समस्त प्रमुख मराठों के हार्दिक सहयोग के आधार पर मराठा स्वातन्त्र्य की स्थापना करना। शिवाजी मुस्लिम धर्म के विरोधी नहीं थे, क्योंकि शाह द्वारा हिन्दू-हितों की रक्षा करने का आश्वासन पाकर उन्होंने कुतुबशाह का समर्थन करना हृदय से अङ्गीकार कर लिया था। उन्हें अपने घोरपड़े भाइयों से कोई विद्वेष न था, यदि वे उनके राष्ट्रीय कार्य में सम्मिलित हो जायें और उनका साथ दें। चूँकि बीजापुर राज्य का प्रत्यक्ष ही अन्त हो रहा था, अतः वे नहीं चाहते थे कि मुगल इसे हड़प लें। उनकी योजना

कुतुबशाह से हिस्सा बटाने की थी। वे स्वयं वास्तविक मराठा प्रदेश पर अधिकार करके तेलगु प्रदेश कुतुबशाह के लिए छोड़ देने के पक्ष में थे। तंजौर में अपने भाई के विरुद्ध शिवाजी ने जो कदम उठाया, उसके कारण का भी पता इससे लगता है।

४. **बीजापुरी कर्नाटक पर अधिकार**—बीजापुरी प्रदेशों पर अधिकार करने के दृढ़ संकल्प से मार्च के अन्त के लगभग शिवाजी ने भागानगर से प्रस्थान किया और दक्षिण की ओर बढ़े, जहाँ उनकी सेनाएँ उनसे पहले पहुँच गई थीं। मार्ग में तीर्थस्थानों और प्रसिद्ध मन्दिरों को देखने का उन्हें अवसर मिल गया। उन्होंने निवृत्ति नाम के प्रसिद्ध कृष्णा और तुंगभद्रा के संगम को देखा और दान-दक्षिणा दी। इसी बीच में उनके सैनिकों ने कुर्नूल से ५ लाख होन चौथ में संग्रह कर लिये और अनन्तपुर की ओर चल दिये। वह स्वयं श्री मल्लिकार्जुन को गये जो कृष्णा की गहरी घाटी में प्रसिद्ध मन्दिर था। यह दुर्लभ एकान्त स्थान में था जिसे प्रकृति ने सम्पन्न बनाया था। इस स्थल पर उनकी भक्तिमयी भावना इतनी मोहित हो गई कि बड़ी कठिनाई से उनका ध्यान हटाया जा सका। उनका मन वशीभूत हो गया था और दस दिन तक तल्लीन बना रहा। अप्रेल के प्रथम सप्ताह में अनन्तपुर पहुँचकर वे अपने मुख्य दल के साथ हो गये।

इसके बाद नन्दयाल; कडप्पा, तिरुपति और कलहस्ती के मार्ग से यात्रा करते हुए वे मद्रास के समीप पहुँच गये। उन्होंने ५ हजार सैनिकों के जत्थे को जिंजी को हस्तगत करने के लिए भेजा। यह बीजापुर का गढ़ था और इसकी रक्षा का भार इसके अधिकारी नसीर मुहम्मदखाँ पर था। ५० हजार रुपये वार्षिक की जागीर प्राप्त कर खान ने गढ़ को शिवाजी को अर्पित कर दिया। शिवाजी स्वयं जिंजी गये, इसकी पुरानी किलेबन्दी को गिरा दिया और स्थायी रक्षा के लिए इसका पुनः निर्माण किया। रायाजी नलगे को गढ़ का अधिकारी बना दिया और विट्ठल पिल्देव अत्रे को समस्त क्षेत्र के राजस्व की देखभाल के लिए नियुक्त किया। उन्होंने राजस्व

ग्रौर लेखा की मराठा शैली को भी प्रचलित कराया जो उनकी मवाल की जागीर में सफल सिद्ध हुई थी। वास्तव में शिवाजी ने अपने कर्नाटकीय शासन का केन्द्र-स्थान जिंजी को बना दिया। अपने नागरिक और सैनिक प्रशासकों के लिए उन्होंने वहाँ कार्यालय और निवास के लिए भवनों का निर्माण कराया। आज जो कुछ वहाँ पर हमें मिलता है, वह शिवाजी के निर्माण का अवशेष है। बीजापुर के शासन के समस्त चिह्न हटा दिये गये।

इन पूर्वीय तट प्रदेशों पर बीजापुर का शासन ढीला-ढाला था। यह पहले बताया जा चुका है कि जिंजी को वीजापुर के लिए वजीर खान मुहम्मद ने अधिकार में किया था। उस वजीर के पुत्र नसीर मुहम्मद ने अब उसे शिवाजी को समर्पित कर दिया। बीजापुर का एक पठान सामन्त शेरखाँ लोदी, जो त्रिचनापल्ली के समीप वलीगण्डापुरम् में निवास करता था, बहुत से प्रदेश पर स्वतन्त्र अधिकार किये हुए था। एक अन्य बीजापुरी अधिकारी अब्दुल्लाखाँ वेल्लोर में रहता था। शेरखाँ लोदी महत्वाकांक्षी परन्तु अकर्मण्य था। उसने शिवाजी के आगमन का विरोध करने के लिए पांडुचेरी के फ्रांसीसियों की सहायता प्राप्त कर ली। इस दौरान में शिवाजी ने जिंजी पर अधिकार कर लिया और वहाँ से २३ मई को वेल्लोर की ओर रवाना हुए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने इस दृढ़ और प्रसिद्ध स्थान पर घेरा डाल दिया, परन्तु इसे जीतना आसान न था। दो समीपस्थ पहाड़ियाँ थीं, जिन पर शिवाजी ने अधिकार कर लिया और वहाँ से उन्होंने मुख्य गढ़ पर अग्नि-वर्षा प्रारम्भ कर दी। यह ज्ञात होने पर कि वेल्लोर का घेरा बहुत दिनों तक चलेगा, शिवाजी ने इस कार्य को दूसरों के सुपुर्द कर दिया और स्वयं दक्षिण की ओर शेरखाँ लोदी के विरुद्ध आगे बढ़े। एक वर्ष बाद २२ जुलाई, १६७८ ई० को वेल्लोर हस्तगत हो गया। शिवाजी तब तक दक्षिण-विजय के पश्चात् घर वापस आ गये थे।

शिवाजी के दक्षिण की ओर बढ़ने पर शेरखाँ ने अपने सम्पूर्ण बल से तिरुवडी के समीप उनका मुकाबला किया। कई छोटी-मोटी

लड़ाइयों के बाद शेरखाँ को यह ज्ञात हो गया कि वह शिवाजी का प्रतिरोध न कर सकेगा और उसने आत्म-समर्पण का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। वह स्वयं मिलने आया और ५ जुलाई, १६७७ ई० को उसने भेंट की, तथा २० हजार होन व्यय के दिये और शेष मुक्ति-धन के लिए अपने पुत्र को बंधक रूप में रख दिया। इस प्रकार अपनी मुक्ति के लिए उसने समस्त देश शिवाजी को दे दिया। यह मुक्ति-धन फरवरी १६७८ ई० में चुका दिया गया और उसके पुत्र को अपने पिता के पास जाने की अनुमति प्राप्त हो गई। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कैसे कर्नाटक का समस्त तटवर्ती प्रदेश तुंगभद्रा से कावेरी तक शिवाजी के अधिकार में आ गया और किस प्रकार आदिलशाही शासन तेजी से बिखरने लगा। राजस्व और सैनिक सेवा के लिए महाराष्ट्र से २० हजार व्यक्तियों को बुलाकर शिवाजी ने रक्षा और प्रशासन की व्यवस्था को देखते-देखते संगठित कर दिया।[५]

इन सुदूरस्थ तामिल और कर्नाटक प्रदेशों में जो मराठा तत्व आज भी दृष्टिगोचर होते हैं, उनका प्रारम्भ शिवाजी द्वारा किये गये इन व्यवस्थित प्रयासों से होता है जो उन्होंने साम्राज्य में नई आबादी बसाने के लिए किये। मराठा पद्धति के चिह्न आज भी मिलते हैं।

५. दोनों भाइयों के बीच पैतृक-सम्पत्ति का प्रश्न—शेरखाँ लोदी से निपटकर शिवाजी तंजौर की ओर बढ़े ताकि अपने सौतेले भाई एकोजो से मिलें और उसके साथ अपने सम्बन्ध ठीक कर लें। कोलेरून नदी पर स्थित तिरुमलवाड़ी पर शिवाजी ने अपना डेरा डाला। यह स्थान तंजौर से करीब १० मील उत्तर में था, जहाँ पर आशा थी एकोजी उनसे मिलने आयेगा। जब वे यहाँ थे मदुरा के

---

५ शिवाजी की दक्षिण में प्रगति के लिए सेन की 'विदेशीय जीवनियों' में मार्टिन का वृत्तान्त देखिए। मार्टिन का व्यक्तिगत दूत शिवाजी से मिला और उसने अपना वृत्तान्त लिखा। इस मराठा आक्रमण का वह सर्वोत्तम प्राप्य समकालीन वर्णन है।

चोकनाथ नायक ने अपने प्रतिनिधियों को शिवाजी के लिए उपहार सहित भेजा। उससे शिवाजी ने भारी कर माँगा था। बहुत सोच-विचार के बाद चोकनाथ ने रघुनाथ पण्डित की मध्यस्थता से ६ लाख होन शिवाजी को देना स्वीकार कर लिया और यह मामला निबट गया।

इस बीच में आदर प्रदर्शित करने के लिए एकोजी शिवाजी के शिविर पर आया। उसके साथ उसका पेशवा जगन्नाथ पन्त और सैनिकों की एक छोटी-सी टुकड़ी भी थी। श्रावण के शुक्ल पक्ष में (जुलाई का तृतीय सप्ताह) दोनों भाइयों ने एक सप्ताह साथ-साथ व्यतीत किया। प्रथम औपचारिक मिलन एक शिव-मन्दिर में हुआ। इस बीच में उनमें कई बार वार्तालाप हुआ और उन्होंने साथ-साथ भोजन भी किया। ये कार्य प्रगट रूप से और एकान्त में दोनों प्रकार से हुए। परन्तु प्रगट रूप में प्रेमपूर्ण और स्पष्ट व्यवहार रखने पर भी एकोजी अपने आचरण में अद्भुत रूप से संयत बना रहा। उसने यह स्पष्ट नहीं होने दिया कि अपने भाई के प्रति क्या रुख बरतने का उसका इरादा है। शिवाजी ने उसे अपनी योजनाओं और दृष्टिकोणों से अवगत कराया। एकोजी केवल सुनता रहा और अपनी सहमति अथवा असहमति का लेशमात्र भी आभास न होने दिया। स्पष्टतया वह शिवाजी की अद्भुत प्रतिभा और प्रभावशाली व्यक्तित्व से हक्काबक्का रह गया। सौतेले भाइयों में यदाकदा ही प्रेम होता है। उनकी माता आजीवन अजनवी और ईर्ष्यालु बनी रही। कई बार बीजापुर की ओर से एकोजी शिवाजी के विरुद्ध लड़ने भी गया। इस प्रकार इस समय वह अपने भाई की संगति में व्याकुल हो उठा। जेधे शकावली में वर्णन है—"श्रावण मास में दोनों भ्राता परस्पर मिले। पारस्परिक सन्देह के कारण बिगाड़ हो गया। शिवाजी से बिना अनुमति प्राप्त किये एकोजी तंजौर को भाग गया। अतः उन्होंने जगदेवगढ़, चिदम्बरम् और वृद्धाचलम् के उसके जिलों पर अधिकार कर लिया और कोलार पर घेरा डाल दिया।"

दोनों भाइयों के बीच के मामलों की वास्तविक स्थिति का कहीं

भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है। शिवाजी अपने भाई से वास्तव में क्या चाहते थे, इसका अनुमान उनके लम्बे परन्तु कूटनीतिक पत्रों से और बखरों में तथा अन्यत्र प्राप्त अल्प उल्लेखों से किया जा सकता है। शिवाजी के कहने का तात्पर्य यह था—

"हमें अपने पूर्वजों की सम्पत्ति में बराबर का भाग ले लेना चाहिए। पिता की मृत्यु के बाद तुमने समस्त सम्पत्ति का बिना मुझ से एक बार भी पूछे उपभोग किया है। जो तुमने स्वयं अपने प्रयास से प्राप्त किया है मैं उसमें हिस्सा नहीं माँगता। जो तुम प्राप्त कर सकते हो, करो, और उसके लिए ईश्वर तुम्हें शक्ति दे। परन्तु जो हमारे पिता ने छोड़ा है उसमें मुझे हिस्सा लेना है। इसके लिए तुम्हें ऐसे लिखित प्रमाण उपस्थित करने हैं जिनके आधार पर हमारे स्वत्व का निर्णय हो सके। मैं तुम्हें सहायता देने को तैयार हूँ जब कभी तुम्हें उसकी आवश्यकता हो। तुम्हें बेझिझक बिना कुछ छिपाये हुए मुझे अपनी स्थिति बता देनी चाहिए।" इसका एकमात्र उत्तर जो एकोजी ने दिया, वह अस्पष्ट था—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

इस प्रकार वे एक सप्ताह तक साथ-साथ रहे और बातचीत करते रहे। इसके अन्त में एकोजी बहुत चिढ़कर, सम्भवतया उस दबाव पर जो शिवाजी शनैः-शनैः उस पर डाल रहे थे, एक रात को चुपके से कोलेरून को पारकर लट्ठों को जोड़कर बनाई हुई नाव में बैठ कर भाग गया और वापस तंजौर आ गया। मार्टिन का दूत आँखों देखा हाल लिखता है—"अपने पिता की सम्पत्ति में शिवाजी ने अपना हिस्सा माँगा। उसने कई बार एकोजी को लिखा था कि उससे आकर मिल ले। एकोजी टालता रहा। अन्त में उसने कोलेरून को पार किया और शिवाजी से मिलने आया। पहले वार्तालाप में प्रेम और नम्रता का संचार रहा, परन्तु जब समझौते की बातचीत आई तो एकोजी को ज्ञात हुआ कि उसका भाई उसे तब तक नहीं छोड़ेगा जब तक वह अपने स्वत्व पर सन्तुष्ट न कर दिया जाये। ऐसी स्थिति में जब वह एक मित्र की भाँति बातचीत कर रहा था, वह इस कष्ट से अपने को बचाने के उपाय भी सोच रहा था। इसमें वह

एक रात्रि को सफल हो गया। आवश्यकता का बहाना बताकर उसने नदी पर लट्ठों को जोड़कर बनाई हुई एक नाव तैयार रखी। वह नदी-तट पर आया और उस नौका में बैठकर दूसरी ओर चला गया। इस सूचना को पाकर शिवाजी ने एकोजी के आदमियों को जो कि शिविर में थे, पकड़ लिया। उनमें एक ब्राह्मण जगन्नाथ पण्डित था जो एकोजी का सेनापति था और साहसी योग्य पुरुष था। दोनों भाई फिर कभी नहीं मिले।"

इस पर शिवाजी ने तीन चतुर दूत एकोजी से मिलने भेजे और उनके साथ एक निजी पत्र भी भेजा जिसमें बदला लेने की धमकी के साथ अपने पिता की सम्पत्ति के आधे भाग की माँग की। शिवाजी ने पत्र में यह स्पष्ट कर दिया कि टालमटोल से काम नहीं चलेगा। साथ ही, यदि वह बात मान जायेगा तो वास्तविक धन के निर्णय में एकोजी की इच्छा का ख्याल रहेगा। इसका उत्तर एकोजी ने यह दिया—

"जो कुछ हमारे पिता शाहजी राजे ने प्राप्त किया वह बीजापुर राज्य की सेवा में प्राप्त किया, जिसके प्रति शिवाजी राजे सदैव विरोधी और राजद्रोही रहे और इस प्रकार उन्होंने पिता को चोट पहुँचाई। उस सेवा द्वारा प्राप्त की गई सम्पत्ति के अलावा और कोई पैतृक-सम्पत्ति नहीं है। अब भी मैं बीजापुर के शाह का राजभक्त सेवक हूँ और इस नाते उसकी आज्ञाओं से बँधा हूँ।"

इस प्रकार शिवाजी से मैत्री करने के स्थान पर एकोजी ने निश्चय किया कि यदि कलह का परिणाम युद्ध भी हुआ तो वह शिवाजी का दमन करेगा और इस प्रयोजन से उसने मदुरा और मैसूर से सहायता माँगी। इसके साथ ही इस काण्ड का वृत्तान्त उसने बीजापुर भेज दिया, परन्तु वहाँ के अधिकारियों से उसे कोई उत्तर प्राप्त न हुआ। इस परिस्थिति में चूँकि शिवाजी और अधिक समय दक्षिण में ठहर नहीं सकते थे, उन्होंने स्वयं लौट जाने का निश्चय किया। बहिरराव मोहिते, हम्बीरराव और रघुनाथ पन्त को उन्होंने सेना के अधिकांश भाग सहित वहाँ छोड़ दिया ताकि एकोजी

से यथोचित शर्तें तय कर लें। २७ जुलाई को कोलेरून के तट से शिवाजी ने अपनी वापस-यात्रा प्रारम्भ की। वापसी में उन्होंने एकोजी के समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया जो कावेरी नदी के उत्तर में था और जिसमें अर्नी, कोलार, होस्कोटे, बंगलौर, बालापुर और शीरा के जिले सम्मिलित थे। उन्होंने अपने अधिकारी नियुक्त कर दिये जो वहाँ का शासन करें और किसी शत्रु के आक्रमण से उसकी रक्षा करें। जब नवम्बर में शिवाजी गदग पहुँचे तो उन्हें एक युद्ध होने का समाचार मिला। वलीगण्डापुरम् पर १६ नवम्बर को एकोजी ने हम्बीरराव मोहिते पर आक्रमण किया और बुरी तरह मात खाई। उसके अवैध भाई प्रतापजी, भीवजी और उसका अधिकारी शिवाजी दबीर पकड़ लिये गये। जब शिवाजी महाराष्ट्र पहुँचे तो उन्हें सब हाल मालूम हुआ। उन्होंने पुनः मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने के विचार से चेतावनी देते हुए एक लम्बा पत्र एकोजी को लिखा। इस पत्र का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे शिवाजी के उद्देश्य और नीति पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। यह पत्र पूर्ण और विश्वसनीय है और इसकी नकल बालाजी आवजी की हस्तलिपि में लिखी हुई मुद्रित है। इस पर १ मार्च, १६७८ ई० का दिनांक है। इस पत्र में अपने भाई से अपने पिता की सम्पत्ति में अपना पूरा हिस्सा माँगते हुए उन्होंने कठोर बदले की धमकी दी है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि अपने भाई की इच्छानुकूल वे मामला निपटाने के लिए पूरी तरह तैयार हैं, किन्तु भाग को टालने न देंगे। शिवाजी को जिस बात पर अत्यधिक क्रोध आया, वह यह थी कि एकोजी बीजापुर के तुर्कों और पठानों का मित्र बन जाये जो हिन्दुओं के प्रत्यक्ष शत्रु रहे थे और जिनका मान-मर्दन करना शिवाजी के जीवन का उद्देश्य था।

वे कहते हैं—"देवी और देवताओं की मुझ पर कृपा है। उनकी कृपा से मैं तुर्कों को पराजित करने में सफल हुआ हूँ। इन तुर्कों की सहायता से तुम मुझ से जीतने की आशा कैसे कर सकते हो। तुम्हें यहाँ तक न बढ़ जाना चाहिए कि मेरी सेनाओं का प्रत्यक्ष विरोध

करो। दुर्योधन की भाँति तुम्हारा अभिप्राय दुष्ट है, जिसके कारण अनावश्यक रक्तपात हुआ। परन्तु जो हो गया, उसका उपचार नहीं हो सकता। जो घटना घट चुकी है, उससे तुम्हें शिक्षा लेनी चाहिए और अपनी हठधर्मी छोड़ देनी चाहिए। तुमने तेरह वर्ष से पिता की समस्त सम्पत्ति का अपहरण कर रखा है और अब बाहुबल से मैंने अपना भाग छीन लिया है। महरबानी करके अर्नी, बंगलौर, कोलार होस्कोटे, शिरालकोट (शीरा) और तंजौर सहित अन्य छोटे-छोटे जिले मेरे अधिकारियों के सुपुर्द कर दो, नकद, गहनों, घोड़ों, हाथियों और अन्य सम्पत्ति का आधा भाग दे दो और मुझ से सुलह कर लो। मैं तुम्हें तुंगभद्रा और पन्हाला के बीच ३ लाख होन की वार्षिक आय के जिलों की जागीर दे दूँगा अथवा यदि तुम इसको भेंट-स्वरूप में मुझ से न लेना चाहो, तो मैं कुतुबशाह से प्रार्थना करूँगा कि अपने राज्य में तुम्हें वैसी ही जागीर दे दे। इस प्रकार तुम्हारे सामने दो विकल्प हैं, जो चाहो अपना लो। अपनी हठ छोड़ दो और इस पारिवारिक कलह को समाप्त कर दो। उद्विग्न होना व्यर्थ है। तुम से बड़ा होने के नाते मैंने तुम्हारे साथ सदा प्रेम का व्यवहार किया है और फिर भी उसी भावना से तुम्हारी कुशल की कामना करता हूँ। यदि तुम सुबुद्धि से मेरे परामर्श को स्वीकार कर लो तो मुझे निश्चय है कि तुम सुखी और आराम से रहोगे। यदि ऐसा न किया तो तुम स्वयं अपने कष्टों की वृद्धि करोगे और फिर तुम्हें बचाना मेरे वश की बात न होगी।"

इससे यह स्पष्ट है कि शिवाजी जो पहले से ही बीजापुर राज्य के अस्तित्व की उपेक्षा कर चुके थे, चाहते थे कि उनका भाई भी तिलांजलि दे दे और उसकी सेवा त्याग दे। परन्तु एकोजी के हृदय को इस पत्र से शान्ति न मिली। इससे उसको और भी दुःख हुआ। परन्तु उसकी चतुर वधू दीपाबाई ने उसका उद्धार किया। उसने उसके अधीर मन को उचित परामर्श दिया और अनिवार्य के लिये उसे उद्यत कर दिया। उसने एकोजी के बुरे मुसलमान सलाहकारों को निकाल दिया और उससे आग्रह किया कि रघुनाथ पण्डित की

सलाह माने । इस पर एकोजी ने रघुनाथ पण्डित को सादर एक पत्र लिखा और पारस्परिक वार्त्तालाप के लिए जिंजी से बुला लिया । उचित समय पर पण्डित आ गया और उसका हार्दिक स्वागत हुआ । तब दोनों भाइयों के बीच समाधान की शर्तें पण्डित ने निश्चित कर दीं । समस्त आवश्यक प्रमाण-पत्र और पत्रक तैयार किये गये और शिवाजी की स्वीकृति और पुष्टि के लिए भेज दिये गये ।

दीर्घकालीन कलह के इस मधुर समाधान पर शिवाजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सारी सन्धि को प्रमाणित कर दिया । एकोजी और अपनी भ्रातृ-वधू दीपाबाई को उन्होंने स्नेहपूर्ण पत्र लिखे, जिसने इतनी चतुरता से गम्भीर समस्याओं को हल कर दिया था । उन्होंने रघुनाथ पण्डित को लिखा—"मैं अपनी भ्रातृ-वधू दीपाबाई की बुद्धि और अग्र-दृष्टि की प्रशंसा करने में असमर्थ हूँ जिसने असाधारण उत्साह और चातुर्य से अपने पति को मुझ से सन्धि कर लेने पर राजी कर लिया और इस प्रकार उसने एक जटिल प्रश्न को हल कर दिया । इस सुखद परिणाम पर मैं बहुत ही प्रफुल्लित हूँ । वास्तव में मुझ को सदैव चिन्ता थी कि अपने भाई के यथार्थ हित की रक्षा करूँ । मैंने आधा हिस्सा माँगा क्योंकि हृदय से मैं उसकी स्थायी कुशलता चाहता था । तुच्छ लाभ मेरा उद्देश्य न था । उच्च उद्देश्यों के लिए मुझ को कठोर माँग करनी पड़ी थी । हमें अपने सेवकों और अधीनों के प्रति सादर व्यवहार करना चाहिए और राज्य के चिरशुभ की कामना करनी चाहिए, जिसकी अपनी पूरी सामर्थ्य से सेवा करना हम दोनों को अभीष्ट है ।" इन अन्तिम पंक्तियों से स्पष्ट सिद्ध है कि मराठा राज्य को वैभव और स्वातन्त्र्य के शिखर तक पहुँचाने की शिवाजी को कितनी चिन्ता थी । एकोजी के मार्गदर्शक केवल मुसलमान परामर्शदाता ही थे जो एकोजी को माध्यम बनाकर शिवाजी के जीवन-कार्य को नष्ट करने का छलपूर्ण प्रयास कर रहे थे । ये मुसलमान परामर्शदाता अलग कर दिये गये और रघुनाथ पन्त संरक्षक की अपनी पुरानी जगह पर पुनः आसीन हुआ । इसका

परिणाम यह हुआ कि कर्नाटक से शिवाजी के पुनरागमन के एक वर्ष के अन्दर ही कलह के समस्त कारण समाप्त हो गये।

६. **पैतृक-सम्पत्ति का सम्मत विभाजन**—इस समझौते में १९ धाराएँ थीं। प्रथम दस मराठा राज्य की नैतिक और आत्मिक उन्नति की योजना पर प्रकाश डालती हैं। छठी धारा में लिखा है—"किसी ऐसे व्यक्ति को राज्य में वास की आज्ञा न मिलनी चाहिए जो दुष्ट हो अथवा हिन्दू धर्म का शत्रु हो। इन व्यक्तियों को ऐसी शक्ति प्राप्त ही नहीं होनी चाहिए कि वे हानि पहुँचा सकें।" भाइयों की पारस्परिक कलह और उसकी समाप्ति से निश्चयपूर्वक प्रकट होता है कि कर्नाटक अभियान में शिवाजी का उच्चतम उद्देश्य मराठा राज्य का प्रसार करना और उसको शक्तिशाली बनाना था। वे चाहते थे कि हिन्दुओं के लिये स्थायी सुरक्षित स्थान की स्थापना करें, जो शताब्दियों के अत्याचार से बिल्कुल असहाय हो गये थे।

१२वीं धारा का राजनैतिक महत्व है। भाइयों की पारस्परिक कलह से मुख्यतया इसका सम्बन्ध है। इसमें लिखा है—"जब अपने पिता की मध्यस्थता से (१६६२ ई० में) हम दोनों में (शिवाजी और आदिलशाह) शान्ति की सन्धि हुई; उसकी लिखित स्पष्ट शर्त थी कि हम दोनों में से (शिवाजी और एकोजी) कोई भी उस राज्य (बीजापुर) की सेवा न करे। आवश्यकता पड़ने पर हम उसकी सहायता करें—सेवकों की भाँति नहीं, किन्तु शुभचिन्तकों की भाँति। इस समझौते का भविष्य में हमको पूरा पालन करना चाहिए। अतः एकोजी को अपने आपको उस राज्य का सेवक न मानना चाहिए। निमन्त्रण प्राप्त होने पर ५ हजार सिपाहियों के दल से वह उस राज्य की सहायता कर सकता है। उसे समस्त विजित पोलीगरों और अन्य शासकों पर अपने आधिपत्य को लागू करना चाहिए।

इस धारा से इस सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि शिवाजी ने एकोजी पर क्यों आक्रमण किया। जब शिवाजी ने अपने को स्वतन्त्र एकाधिपति घोषित किया, उनको यह बात बिल्कुल

अच्छी न लगी कि स्वयं उनका भाई बीजापुर के पक्ष में केवल मुसलमान चाटुकारों के निर्देश पर उनका विरोध करे और उस मुस्लिम राज्य का अपने आपको जन्मजात प्रतिज्ञाबद्ध सेवक माने, जिसको उन्होंने स्वयं लगभग जीत लिया है। अपनी राज्यनीति के इस अंग को बल देने के लिए शिवाजी ने १५वीं धारा में लेखबद्ध किया—"हमने पहले ही दो लाख होन की वार्षिक आय के बंगलौर, होस्कोटे और शिरालकोट (शीरा) के जिले जीत लिये हैं। सुप्रबन्ध पर उनकी आय शीघ्र ही ५ लाख हो जायेगी। हम स्वेच्छा से अपने भाई एकोजी की वधू को ये जिले पुरस्कार रूप में देते हैं। एकोजी इन जिलों के प्रबन्ध की देख-रेख कर सकता है, परन्तु इन पर उसका कोई अधिकार न होगा। दीपाबाई की मृत्यु पर वे उसकी पुत्री को मिलेंगे या किसी अन्य व्यक्ति को जिसको वह दे दे।" इसमें शिवाजी ने एकोजी के लगभग सारे जिले मुस्लिम अधिकार से निकालकर वापिस दे दिये। अपने जीवन के अन्तिम पराक्रम में शिवाजी के उद्देश्य की यह अन्तिम घोषणा जितनी स्पष्ट है इससे अधिक और हो नहीं सकती।

धारा १६ में लिखा है—"हमने ७ लाख होन की आय के एकोजी के तंजौर और समीपस्थ जिले जीत लिये हैं। ये हम अपनी इच्छा से एकोजी को देते हैं। इन पर उसका अपना अलग अधिकार होगा।" धारा १७ में कहा गया है—"रघुनाथ पन्त को हम एक लाख का प्रदेश वंश-परम्परागत अधिकार सहित प्रदान करते हैं।" धारा १९ में लिखा है—"एकोजी को हमारे पिता शाहजी राजे की समाधि की देख-भाल कर सुरक्षित रखना है।" स्पष्ट है कि यह पैतृक कर्तव्य एकोजी को दिया गया।[६]

इन धाराओं से दोनों भाइयों के बीच कलह के स्वरूप पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है और इस दक्षिण अभियान में शिवाजी का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है। बीजापुर की मुस्लिम सत्ता की अधीनता से वे एकोजी को मुक्त कराना चाहते थे। सन्धि-पत्र को

---

६ "शिवदिग्विजय बखर" में समस्त सन्धि-पत्र उद्धृत है।

प्रेषित करते समय शिवाजी ने अपने भाई को एक और प्रेमपूर्ण पत्र लिखा जिसमें अपनी उस भावना को व्यक्त किया जिससे शिवाजी ने अपनी स्वराज्य की योजना का निर्माण किया था। यद्यपि ऊपर से कलह का अन्त हो गया था किन्तु एकोजी के हृदय में अपनी स्वाधीनता का अपहरण खटक रहा था, इसीलिये एकोजी ने उस पत्र का उत्तर नहीं दिया। उसको इसका बहुत दुःख हुआ कि शिवाजी के अधिकारियों ने उसकी समस्त सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया और बिना उससे पूछे हुए उस पर प्रशासन करने लगे। अपने सारे आमोद-प्रमोद उसने त्याग दिये। जब समयान्तर में शिवाजी को यह वृत्तान्त प्राप्त हुआ, तब जनवरी १६८० ई० के लगभग उन्होंने सहानुभूति और करुणापूर्ण सन्देश-पत्र लिखा। इसके बाद तीन मास में शिवाजी का देहान्त हो गया।

शिवाजी की मृत्यु तथा इसके कारण दक्षिण की राजनीति में हुए शीघ्रकारी परिवर्तनों से तंजौर और मराठा दोनों राज्यों का सम्बन्ध है। यद्यपि शिवाजी की मृत्यु के बाद एकोजी ५ वर्ष तक जीवित रहा किन्तु इस काल में तंजौर के राजा के क्या उद्देश्य और कार्य रहे, इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से जानने के लिए कोई पत्र या लेख उपलब्ध नहीं है। जहाँ तक तंजौर का सम्बन्ध है, एकोजी बुद्धिमान और विचारशील शासक सिद्ध हुआ। उसने स्वस्थ आधार पर तंजौर में अपना राज्य स्थापित किया और उसकी रक्षा के साधन भी जुटा दिये। इंग्ले परिवार की कन्या दीपाबाई उसकी पत्नी थी, जो जीजाबाई के समान बुद्धिमान और प्रभावशाली भी थी। उसके तीन सुयोग्य पुत्र हुए—शाहजी, शरफोजी और तुकोजी, जिन्होंने एक दूसरे के बाद तंजौर पर शासन किया और अपनी प्रजा के हित के साथ-साथ कला और साहित्य की उन्नति की।[७]

---

७ रघुनाथ भट्ट लिखित नवशस्त।

"तीन पुरुषार्थ तिघे भूप। जियेचे पुत्र कुलदीप। दीपांबिका यथार्थ-रूप। नाम म्हणौनि शोभतसे ॥

"उसके तीन पुत्र राजा हैं, मनुष्यों की कामनाओं के केन्द्र हैं, अपने राजवंश की ज्योति हैं, उसका नाम सत्य ही दीपांबिका है, वह दीप के समान प्रकाशित है। (गोड़े की खोज)

राजनीति और समाज के क्षेत्रों में जो कुछ भी उन्नति शाहजी और उनके पुत्र एकोजी ने की, हनुमन्ते परिवार को उसका समान श्रेय है, विशेषकर रघुनाथ पन्त को जिसके विषय में शिवाजी ने लिखा है—"मैंने प्रयत्न किया है कि मैं अपने अनेक सहकारी और सहायक उत्पन्न करूँ, परन्तु आप भिन्न श्रेणी के हैं। आपने हमारे पिता की सेवा की है और उन्हीं की भाँति आपको अधिकार है कि हमको सन्मार्ग पर रखें और जहाँ हम अपना मार्ग निश्चय न कर सकें वहाँ हमारा मार्ग-प्रदर्शन करें। हमारे मामलों में और कोई इतना प्रभाव नहीं डाल सकता। हम आपको अपने पूज्य पिता के स्थान पर समझते हैं और आपकी सेवाओं की जितनी प्रशंसा करें, वह कम है।" शिवाजी के उत्कृष्ट उद्देश्यों में रघुनाथ पन्त ने हाथ बँटाया और उनको उन्नत करने का यथासामर्थ्य प्रयत्न किया। यह अनुदार और ऐतिहासिक रूप से असत्य बात है कि उस पर यह अपराध लगाया जाये कि उसने स्वार्थ और दूषित उद्देश्य से कर्नाटक अभियान के लिए शिवाजी को प्रेरित किया। निस्सन्देह इसमें उसका निजी पद या धन का लोभ न था। रघुनाथ का भाई जनार्दन पन्त भी योग्य शासक था। वह दक्षिण में शिवाजी के अधीन कार्य करता रहा जैसे कि उसका भाई कर्नाटक में एकोजी के अधीन करता था।[८]

---

८ 'राजव्यवहार कोष' के प्रारम्भिक और अन्तिम भाग में हनुमन्ते परिवार की महान् सेवाओं का विशद विवरण है।

तिथिक्रम

अध्याय ११

५ सितम्बर, १६५९	सम्भाजी की माता सईबाई का देहान्त।
२६ जनवरी, १६७१	सम्भाजी को प्रशासकीय कर्तव्यों की दीक्षा।
१८ जनवरी, १६७६	खवासखाँ का मारा जाना।
जून १६७६	बीजापुर के समीप बहादुरखाँ की पराजय।
अगस्त १६७७	बहादुरखाँ का पदत्याग; दिलेरखाँ मुख्य सेनापति।
सितम्बर १६७७	गोलकुण्डा पर दिलेरखाँ का आक्रमण।
दिसम्बर १६७७	सावित्रीबाई देसाई को हराना।
२३ दिसम्बर, १६७७	बहलोलखाँ की मृत्यु; सिद्दी मसऊद का कार्य-भार संभालना।
अप्रेल १६७८	कर्नाटक से शिवाजी की पन्हाला को वापसी; दिलेर खाँ का बीजापुर पर आक्रमण।
१८ सितम्बर, १६७८	दक्षिण के शासन पर मुअज्जम की नियुक्ति।
१३ दिसम्बर, १६७८	पन्हाला से सम्भाजी का भाग निकलना।
२५ फरवरी, १६७९	मुअज्जम का औरंगाबाद पहुँचना।
२ अप्रेल, १६७९	दिलेरखाँ का भूपालगढ़ पर अधिकार।
३ अप्रेल, १६७९	जजिया पुनः लागू; औरंगजेब को शिवाजी का विरोध-पत्र।
१८ अगस्त, १६७९	सम्भाजी और दिलेरखाँ का बीजापुर पर घेरा।
१५ नवम्बर, १६७९	दिलेरखाँ का बीजापुर से घेरा हटा लेना।
नवम्बर १६७९	बीजापुर से शिवाजी की मैत्री-सन्धि।
२० नवम्बर, १६७९	सम्भाजी द्वारा दिलेरखाँ के शिविर का त्याग।
४ दिसम्बर, १६७९	सम्भाजी का पन्हाला पहुँचना; वहाँ पर बन्दी।
३१ दिसम्बर, १६७९	शिवाजी का रामदास से अन्तिम मिलन।
४ फरवरी, १६८०	शिवाजी का रामदास से विदा लेकर रायगढ़ को प्रस्थान।
७ मार्च, १६८०	राजाराम का प्रतापराव गूजर की कन्या से विवाह।
३ अप्रेल, १६८०	शिवाजी की मृत्यु।

अध्याय ११

चन्द्रास्त

[१६७८–१६८०]

१. कर्नाटक अभियान के परिणाम। २. औरंगजेब की असहनशीलता का सार्वजनिक विरोध। ३. सम्भाजी द्वारा पक्ष-त्याग। ४. सम्भाजी के उद्धार के प्रयास विफल। ५. मृत्यु। ६. परिवार और धर्मगुरु।

१. कर्नाटक अभियान के परिणाम—नेताजी पालकर के पक्ष-त्याग से दिलेरखाँ की कामनाओं और सम्राट् की आशाओं पर भारी आघात हुआ। बीजापुर राज्य का प्रबन्ध अब पठान मन्त्री बहलोलखाँ के हाथ में था, जिससे दिलेरखाँ की घनिष्ठ मित्रता हो गई। दोनों ने मिलकर शिवाजी और कुतुबशाह के दमन की नयी योजनाएँ बनायीं। शिवाजी को इस पठान से बहुत घृणा थी, जो बीजापुर के प्राचीन राज्य को नष्ट कर रहा था। १८ जनवरी, १६७६ को बहलोलखाँ ने अपने सिद्दी प्रतियोगी खवासखाँ का वध करा दिया। यह बीजापुर में खुले गृह-युद्ध के आरम्भ का संकेत सिद्ध हुआ। दिलेरखाँ ने इसे बीजापुर को पराजित करने का उपयुक्त अवसर समझा और दल-बल सहित तुरन्त वहाँ पहुँच गया। परन्तु उसका प्रबल विरोध हुआ और बीजापुर के समीप जून १६७६ ई० में कई गम्भीर युद्धों में वह हार गया। फलस्वरूप सम्राट् की निगाह में बहादुरखाँ सदा के लिये गिर गया क्योंकि दिलेरखाँ ने यह सूचना भेज दी थी कि दक्षिण की स्थिति का सामना करने में बहादुरखाँ नितान्त अयोग्य है। सम्राट् ने बहादुरखाँ को वापस बुला लिया और दिलेरखाँ को मुख्य सेनापति नियुक्त किया। अगस्त १६७७ ई० में

बहादुरखाँ ने अपना पद त्याग दिया और सितम्बर में दिलेरखाँ ने कुतुबशाह को शिवाजी से मैत्री करने का दण्ड देने के लिए गोलकुण्डा पर आक्रमण किया।

दक्षिण में शिवाजी की प्रगति मुगल-सम्राट् के विजय-स्वप्नों पर एक प्रबल परोक्ष आघात था। जब औरंगजेब और दिलेरखाँ बीजापुर और गोलकुण्डा को सदैव के लिए नष्ट करने की अपनी योजना बना रहे थे, शिवाजी का आगमन हुआ और उन्होंने सुदूर दक्षिण के प्रदेशों पर लगभग अधिकार कर लिया। गोलकुण्डा से उनका मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना उनकी निपुण चाल सिद्ध हुआ, जिसके कारण दिलेरखाँ अनुमान से भी अधिक घबड़ा उठा। यह मालूम करके कि कुतुबशाह और शिवाजी के सम्मिलित दल दक्षिण में फँसे हुए हैं, दिलेरखाँ गोलकुण्डा की ओर झपटा परन्तु मादन्ना उसका प्रतिरोध करने के लिए वहाँ पूर्णतया तैयार था। इसने उसे पीछे लौटा दिया। इस समाचार से और अपने विरुद्ध अविलम्ब कार्यवाही के लिए सम्राट् के नवीन प्रयत्नों के कारण शिवाजी कर्नाटक विजय का कार्य औरों के हाथ में छोड़कर घर लौटने के लिए विवश हो गये। वापसी में पन्हाला से तंजौर तक शिवाजी ने प्रतिरक्षा चौकियों की एक सुदृढ़ शृङ्खला स्थापित करदी। जब १६७७ ई० के अन्त के लगभग वह अपने घर की ओर वापस आ रहे थे, उन्हें बेलगाम के समीप बेलवाड़ी पर वहाँ के थानेदार देसाई और उसकी वीर पत्नी सावित्रीबाई की ओर से कुछ विरोध का सामना करना पड़ा। दादाजी रघुनाथ प्रभु नदकर के साहसिक प्रयास से एक मास के आक्रमण के बाद बेलवाड़ी पर अधिकार हो गया। शिवाजी ने उस दुखित और विनीत महिला को अपने संरक्षण में ले लिया।[1] लगभग १४ मास की अनुपस्थिति के बाद अप्रेल १६७८ ई० में वे पन्हाला पहुँचे। इस बीच में उन्होंने अपने राज्य में २० लाख होन की आय और सौ गढ़ का एक और प्रदेश सम्मिलित कर लिया।

शिवाजी के अन्तिम पराक्रम में हमें उनकी जन्मजात विलक्षण

---

१ 'प्रभुरत्नमाला' के पृ० ८२ पर इस स्मरणीय घटना का वर्णन है।

बुद्धि का पूर्ण चमत्कार दिखाई देता है। मराठा राज्य ने एक वास्तविक सुसंगठित इकाई का रूप धारण कर लिया। इसके अपर्याप्त साधन सुदृढ़ हो गये। उत्साही नवयुवकों के एक जत्थे को सैनिक और नागरिक प्रशासन की शिक्षा दी गई ताकि उनकी सफलताओं को स्थायित्व प्राप्त हो जाये। सन्ताजी भोसले, हम्बीरराव मोहिते, सन्ताजी घोरपड़े, जर्नादन पन्त हनुमन्ते, केशव त्रिमल पिंगले, हरजी महादिक, धनाजी जाधव और अनेक अन्य युवा शक्तिशाली सैनिक-राजनीतिज्ञों का शिक्षण कर्नाटक-अभियान-काल में हुआ। इन व्यक्तियों ने बाद के इतिहास में महत्वपूर्ण कार्य किये। योग्यता की पूरी परीक्षा ली जाती थी और पर्याप्त पुरस्कार दिये जाते थे। शिवाजी इस नियम को खूब समझते थे कि राज्य की सर्वोत्तम शक्ति निपुण प्रशासन में निहित है। उनके निर्देश से सब को प्रेरणा मिलती थी कि वह अपने कर्तव्य का पालन करे और राज्य के हित में अपना सर्वस्व निछावर कर दे। इस प्रकार राज्य की सेवा करने और राजा से सम्मान प्राप्त करने के लिये स्वस्थ प्रतियोगिता का जन्म हुआ। इस दयालु नीति ने कर्नाटक के विद्रोही पोलीगरों और देशमुखों के हृदयों को जीत लिया। उन पर परोक्ष रूप से शिवाजी के जनहितकारी तरीकों का प्रभाव पड़ा। ये तरीके पूर्वकालीन मुस्लिम नीति के सर्वथा विपरीत थे। इसी के कारण उन्होंने शिवाजी के शासन को शीघ्र स्वीकार कर लिया। इस स्वस्थ परिवर्तन की वास्तविक परीक्षा भी सम्भाजी और राजाराम के कठिन समय में हो गई, जब दक्षिण की जनता के हार्दिक सहयोग के कारण मराठों ने सम्राट् के विरुद्ध अद्भुत सफलताएँ प्राप्त कीं।

कर्नाटक में शिवाजी की अनुपस्थिति में बीजापुर के पठान बहलोलखाँ की मृत्यु २३ दिसम्बर, १६७७ को हो गई और उस शासन का नियन्त्रण सिद्दी मसऊद के हाथ आ गया। दिलेरखाँ ने तुरन्त बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। घोर विपत्ति में पड़ने पर सिद्दी मसऊद ने एक करुण पत्र के द्वारा शिवाजी से सहायता की प्रार्थना की। पत्र इस प्रकार था, "एक ही थाली में खाने वाले

हम पड़ोसी हैं। निस्सन्देह इस राज्य के बनाये रखने में आपका उतना ही हित है जितना कि मेरा। हम एक दूसरे का साथ दें और पारस्परिक सहयोग से अपने समान शत्रु मुगलों का नाश कर दें।" इस विनती पर शिवाजी को दया आ गई और वे मुगलों पर तुरन्त आक्रमण करने को तैयार हो गये। इस प्रकार यह समझ में आ सकता है कि किस प्रकार मुस्लिम राज्य शिवाजी के पंजे में लगभग फँस गये थे और यदि उनकी आकस्मिक मृत्यु से घटनाक्रम परिवर्तित न हो जाता तो वे उनको सुविधापूर्वक आत्मसात् कर लेते।

२. औरंगजेब की असहनशीलता का सार्वजनिक विरोध— शिवाजी के अपनी जन्म-भूमि को वापस आने के साथ दुर्भाग्यवश उनके जीवन का अन्तिम अध्याय आरम्भ हो गया। दिलेरखाँ को रोकने के विचार से उन्होंने अपने कुछ अधिकारियों को गोदावरी के उत्तर में औरंगाबाद तक मुगल प्रदेश को लूटने के लिए भेज दिया और अपने जन्म-स्थान शिवनेर को पुनः हस्तगत करने का उन्होंने असफल प्रयत्न किया। शिवाजी की उदीयमान सफलताओं पर औरंगजेब अत्यधिक चिन्तित हुआ और उन्हें पराजित करने के साधनों के लिए उद्विग्न हो गया। उनके विरुद्ध वह अपने सर्वोत्तम सेनापतियों और समस्त साधनों से काम ले चुका था। एक बार फिर उसने अपने पुत्र मुअज्जम को १८ सितम्बर, १६७८ को दक्षिण का शासन सुपुर्द किया। आगामी वर्ष (१६७९ ई०) २५ फरवरी को शाहजादा औरंगाबाद पहुँच गया। उसे पूर्णतया दिलेरखाँ के निरीक्षण में कार्य करने का आदेश था।

इस समय जजिया के पुनः लगाये जाने से देश में बहुत हलचल थी। जजिया बहुत दिनों से प्रचलित नहीं था। ३ अप्रेल, १६७९ की नवीन आज्ञा से सम्राट् ने इसको पुनः लागू कर दिया। इस आदेश के विरुद्ध शिवाजी ने तुरन्त ही सम्राट् को एक तर्कयुक्त और भावपूर्ण पत्र लिखा जिसका रूप प्रभावशाली फारसी भाषा में नीलाप्रभु ने तैयार किया था। यह प्रसिद्ध पत्र सरकार ने अपने "शिवाजी के जीवन" में उद्धृत किया है। इससे औरंगजेब की अविवेकपूर्ण

पूर्ण नीति का भंडाफोड़ हो गया। शिवाजी कहते हैं—"न्याय की दृष्टि से जजिया सर्वथा अवैधानिक है। यदि आपका यह ख्याल है कि हिन्दुओं को पददलित और भयभीत करना धर्म है तो आपको पहले यह कर राजसिंह पर लगाना चाहिए जो हिन्दुओं का नेता है। परन्तु चींटियों और मक्खियों को मारना न तो वीरता है न उत्साह ही। यदि आपको कुरान में विश्वास है तो ईश्वर मनुष्य मात्र का स्वामी है, न केवल मुसलमानों का। मनुष्य वंश का चित्र बनाने के लिए इस्लाम और हिन्दू धर्म का उपयोग ईश्वर ने भिन्न-भिन्न रंगों के रूप में किया है। किसी मनुष्य के धर्म और आचरण के प्रति धर्मान्धता प्रकट करना पवित्र धर्म-पुस्तक के शब्दों में परिवर्तन करना है। आपके कर्मचारी वस्तु-स्थिति के बताने में उपेक्षा करते हैं और सूखी घास से जलती हुई अग्नि को ढक रहे हैं।" प्रार्थना बिल्कुल अनसुनी कर दी गई। सम्राट् दुराग्रही बना रहा। ठीक इसी अवसर पर उसने राजपूतों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और अनेक विपत्तियों और कठिनाइयों में जा फँसा, जो अन्त में उसको हड़प गईं और जिन्होंने साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

जब शिवाजी राजा दक्षिण में व्यस्त थे, आनाजी दत्तो और मोरोपन्त पिंगले ने मराठा राज्य का प्रसार पश्चिम तट पर उत्तर और दक्षिण दोनों ओर कर लिया। वे सूरत से भी आगे बढ़ गये और भड़ौंच को लूट लिया। परन्तु सहसा सम्भाजी द्वारा मुगलों के पक्ष में चले जाने से भारी आघात पहुँचा, जिसने एक प्रकार से इन सफलताओं पर पानी फेर दिया। यह चतुर दिलेरखाँ की कारगुजारी थी। इस घोर संकट से शिवाजी के हृदय पर ऐसी चोट लगी कि, सम्भव है, इसी के कारण उनकी मृत्यु शीघ्र हो गई।

३. **सम्भाजी द्वारा पक्ष-त्याग**—सम्भाजी का जन्म १६५७ ई० में हुआ। जब वह दो वर्ष का ही था, उसकी माता का देहान्त हो गया। वीर पुरुषोचित सम्भाजी की आकृति शायद अपने पिता से भी अधिक प्रभावशाली थी। नौ वर्ष की आयु में वह अपने पिता के साथ आगरा गया था और वापस आने पर कुछ समय तक औरंगाबाद ठहरा,

जहाँ मुगल सेवा में मराठा दल का वह अध्यक्ष था। यहाँ पर वह मुगल सामन्तों के पतित जीवन के निकट सम्पर्क में आया। इसी समय उसमें विषय-भोग की प्रवृत्ति पैदा हो गई होगी, जो उसके पिता के चारों ओर के कठोर जीवन के सर्वथा विपरीत थी। मुअज्जम के साथ शिकार खेलने में वह खुलकर भाग लेता था। पढ़ने, लिखने, लेखा और खेलने-कूदने की परम्परागत शिक्षा उसे मिली थी। इसके अतिरिक्त वह संस्कृत भी अच्छी तरह जानता था, इसमें केशवभट्ट पुरोहित और कवि कलश उसके शिक्षक थे। २६ जनवरी, १६७१ को सम्भाजी को प्रशासकीय कार्यों की शिक्षा दी गई। यह शिवपुर तिथि-सूची में शि० च० प्र०, पृष्ठ ५२ पर लिखा है। १६७४ ई० के अभिषेक संस्कार के बाद ही शिवाजी के पास अपने पुत्र की कुप्रवृत्तियों की शिकायतें पहुँचीं। शिवाजी ने १६७६ ई० में शृंगारपुर में उसे निगरानी में रख दिया जहाँ उमाजी पण्डित उसके संरक्षक थे।[२] कुछ समय तक वह रामदास के पास भी रखा गया। परन्तु उसकी आदतों में कोई सुधार न हुआ।

१६७८ ई० में कर्नाटक के अभियान से वापस आने पर शिवाजी ने अपने पुत्र में और भी अधिक कुचेष्टाओं की ओर रुझान देखा। फलतः उसे पन्हाला में लगभग बन्दी अवस्था में डाल दिया। इस कठोर व्यवहार के विरुद्ध सम्भाजी की आत्मा ने विद्रोह कर दिया और एक कुघड़ी में गुप्तचरों द्वारा भेजे हुए दिलेरखाँ के मोहक प्रस्ताव के सम्मुख वह झुक गया। १३ दिसम्बर, १६७८ की रात्रि में राजकुमार अपनी पत्नी येसुबाई को साथ लेकर पन्हाला से चुपचाप भाग निकला और दिलेरखाँ से मिलने बहादुरगढ़-स्थित मुगल शिविर की ओर चल दिया। उसने दिलेरखाँ को अपने इरादे की पूर्व-सूचना भेज दी थी। अपनी चाल की सफलता पर खान बहुत प्रसन्न हुआ और करकम पर मार्ग ही में उसने सम्भाजी का स्वागत किया। खान ने तुरन्त ही इस काण्ड की सूचना सम्राट् को भेजी और सम्भाजी का सम्मान सहित सत्कार करने की आज्ञा माँगी।

---

२ प्रभात बखर अनुच्छेद ५८, पृष्ठ २६, राजवाड़े पुस्तक ६।

निश्चय ही इस समाचार से सम्राट् बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु उसने दिलेरखाँ के सम्मुख गम्भीर सन्देह प्रकट किया कि हो सकता है कि शिवाजी की ओर से उनको हानि पहुँचाने की यह एक चाल हो, और उसे चेतावनी दी कि वह सतर्क रहे। तत्पश्चात् दिलेरखाँ और सम्भाजी ने बीजापुर के विरुद्ध प्रयाण की योजना बनाई और मार्ग में उन्होंने भूपालगढ़ पर आक्रमण किया, जहाँ पर सम्भाजी ने उसे बहुत बड़े कोष का पता दिया। यहाँ यह कोष और सम्मानित मराठा सामन्तों के परिवार सुरक्षा के निमित्त फिरंगोजी नरसाल के विश्वस्त नेतृत्व में रखे गये थे। आक्रमणकारियों के विरुद्ध फिरंगोजी अपनी तोपें चला सकता था, परन्तु अपने स्वामी के उत्तराधिकारी पुत्र को बचाने के उद्देश्य से रुक गया। कठिन हाथोंहाथ लड़ाई के बाद २ अप्रेल, १६७९ को दिलेरखाँ ने गढ़ पर अधिकार कर लिया और बहुत से निवासियों का वध करा दिया। जब शिवाजी को भूपालगढ़ के पतन का समाचार प्राप्त हुआ तो उन्होंने फिरंगोजी को जैसे पापी पर गोली चलाकर मार न डालने का उपालम्भ दिया। मराठा प्रदेश को नष्ट कर दिलेरखाँ और सम्भाजी ने १८ अगस्त को धूलखेड़ के स्थान पर भीमा को पार किया और बीजापुर क्षेत्र की ओर प्रयाण किया, जहाँ पर सिद्दी मसऊद का अधिकार था। इसने विपत्ति में शिवाजी से सहायता की याचना की। शिवाजी तुरन्त सहमत हो गये और बीजापुर की रक्षा के निमित्त दो दल लेकर अविलम्ब प्रस्थान कर दिया। इस बीच दिलेरखाँ ने बीजापुर पर घेरा डाल दिया और दो मास तक उसने उस स्थान पर अधिकार करने का यथाशक्ति प्रयास किया। परन्तु शिवाजी ने हमलावरों की कड़ी खबर ली और वे चतुरता से रक्षकों को आवश्यक वस्तुएँ और सामग्री भेजते रहे। अन्त में दिलेरखाँ घेरा उठाने के लिए विवश हो गया और अपनी सेना को विनाश से बचाने के लिए १४ नवम्बर को वह पीछे हट गया। इस समय मुधोल के मालोजी घोरपड़े ने शिवाजी को पूर्ण सहयोग देते हुए वीरतापूर्वक बीजापुर की रक्षा की।

इस प्रकार बीजापुर के सम्मुख सम्मिलित पराजय के बाद दिलेरखाँ और सम्भाजी पश्चिम की ओर मुड़े ताकि पन्हाला पर अधिकार कर लें। समय पर सहायता देने के निमित्त सिद्दी मसऊद ने शिवाजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और बहुमूल्य उपहारों एवं वस्त्रों द्वारा उनका सम्मान कर उन्हें लौट जाने दिया। इस समय शिवाजी और बीजापुर के शासन के बीच एक समझौता हुआ जिसके द्वारा शासन ने तंजौर राज्य से स्वत्व त्याग दिया और कोपबल तथा जिंजी के बीच के उस प्रदेश को स्थायी रूप दे दिया जिस पर शिवाजी ने अधिकार कर लिया था।

कुछ भी हो, सम्भाजी के पक्ष-त्याग से खान को अधिक लाभ न हुआ। पन्हाला की ओर अपने प्रयाण में दिलेरखाँ ने मार्ग में अनेक स्थानों की निरपराध जनता पर नृशंस अत्याचार किये। तिकोटा में बहुत से साहूकार और धनी भद्र पुरुष अपना संचित धन लेकर शरण के लिए एकत्रित हो गये थे। दिलेरखाँ की लोलुपता जाग्रत हो उठी। उसने भद्र पुरुषों को अकारण ही लूट लिया और निरपराध स्त्रियों और बच्चों को वर्णनातीत कष्ट दिये। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। इनमें से अनेक ने अपनी इज्जत बचाने के लिए कुओं में कूदकर जान दे दी। इनमें से कई हजार अभागे बन्दी बना लिये गये और उनसे भारी मुक्ति-धन माँगा गया। इस बर्बर आचरण के कारण दिलेरखाँ के प्रति सम्भाजी का उत्साह ठण्डा हो गया, यहाँ तक कि उसने इसका प्रबल विरोध किया। तिकोटा से वे अठनी की ओर बढ़े, जहाँ खान को आशा थी कि बहुत सा लूट का माल मिलेगा। यहाँ पर उसने केवल हिन्दुओं पर अत्याचार किये, जिन्होंने सम्भाजी से उसके पिता के नाम की दुहाई देकर करुण प्रार्थना की कि वह उनके जीवन और सम्मान की रक्षा के लिए बीच में पड़े। अब सम्भाजी की अन्तरात्मा इतनी तेजी से जागृत हुई कि उन दोनों में पूर्ण वैमनस्य हो गया। दिलेरखाँ ने सम्भाजी पर यह व्यंग किया, "मैं स्वयं अपना स्वामी हूँ, मुझे सत्याचरण का सबक देने की आपको जरूरत नहीं है।"

इन समस्त महीनों में शिवाजी ने गुप्तचरों द्वारा अनेक साधनों का उपयोग किया था ताकि सम्भाजी को इस दुष्ट संगति से छुड़ा लें। बीजापुर के सम्मुख उनकी सम्मिलित पराजय की सूचना सम्राट् को भेजी गई। उसने दिलेरखाँ की भर्त्सना की और आज्ञा दी कि सम्भाजी को तुरन्त पकड़ लिया जाये और बन्दी बनाकर दिल्ली लाया जाये। उसने दिलेरखाँ को दक्षिण के शासन से हटाकर बहादुरखाँ को नियुक्त कर दिया। सम्भाजी की गैर-जानकारी में ये घटनाएँ गुप्त रूप से घट रही थीं परन्तु उसको इनकी गन्ध मिल गई और वह अपनी सुरक्षा के लिए व्यग्र हो उठा। महादजी निम्बालकर जिसको सम्भाजी की बहिन ब्याही थी, उस समय दिलेरखाँ के अधीन सम्राट् की सेवा में सामन्त था। उसने सम्भाजी को उस आपद्ग्रस्त परिस्थिति से सचेत किया, जिसमें वह फँस गया था। इस स्थिति से सम्भाजी के नेत्र खुल गये और २० नवम्बर, १६७६ की रात्रि में येसुबाई को पुरुष-वेष में साथ लेकर वह अठनी-स्थित दिलेरखाँ के शिविर से चुपके से भाग निकला। उसके साथ केवल दस अनुचर थे। उसने बीजापुर के मसऊदखाँ से शरण की प्रार्थना की। यह जानकर कि सम्भाजी भागकर बीजापुर पहुँच गया है, दिलेरखाँ ने अपने एक प्रतिनिधि को मसऊदखाँ के पास भेजा और सम्भाजी को सुपुर्द करने के बदले में उसको भारी रिश्वत देने का प्रस्ताव किया। इन आकस्मिक घटनाओं से अति भयभीत होकर ३० नवम्बर की रात्रि को सम्भाजी गुप्त रूप से बीजापुर से चल दिया। वह सैनिकों के उस दल में सम्मिलित हो गया जिसे शिवाजी ने विशेष रूप से सम्भाजी के आवागमन पर निगाह रखने के लिए नियुक्त किया हुआ था। लम्बी और कठिन यात्रा के बाद १४ दिसम्बर को वह पन्हाला पहुँच गया। वह करीब एक वर्ष तक बाहर रहा था।

अपनी माता के देहान्त के कारण शिवाजी का व्यक्तिगत जीवन चिन्ता और दुख से आच्छादित हो गया था। प्रथम वधू सईबाई, जो नम्र और स्नेहशील महिला थी, बहुत पहले मर चुकी थी और रिक्त स्थान की उचित पूर्ति न हुई थी। सईबाई का पुत्र सम्भाजी कामुक और

लापरवाह हो रहा था, उसे अपने पिता का नियन्त्रण पसन्द न था। दूसरी रानी सोयराबाई के चरित्र में विनम्रता न थी। कहा जाता है कि उसकी योजना सम्भाजी का स्थान अपने पुत्र राजाराम को दिलाने की थी। अपने निरन्तर आग्रहों और षड्यन्त्रों के कारण उसने शिवाजी को चैन न लेने दिया, विशेषकर उस समय जब सम्भाजी दिलेरखाँ के साथ था। इस प्रयोजन से सोयराबाई ने राज-महल का वातावरण विक्षुब्ध बना दिया और शिवाजी व सम्भाजी के सम्बन्ध और भी कटु हो गये। सिंह-हृदय राजा में इस नाजुक पारिवारिक परिस्थिति को संभालने की शक्ति न थी।[3]

४. **सम्भाजी के उद्धार के प्रयास विफल**--जब दिलेरखाँ के विरुद्ध बीजापुर के समीप शिवाजी युद्ध कर रहे थे, उन्होंने खान के पृष्ठ-भाग को बिखेरने की एक कुशल योजना की कल्पना की। उन्होंने अपने दल को दो भागों में विभाजित कर दिया, एक का नेतृत्व स्वयं ग्रहण किया और दूसरे को आनन्दराव मकाजी के नेतृत्व में भेजा। उन्होंने औरंगाबाद के समीप मुगल प्रदेश पर आकस्मिक वार किया और जलनापुर को लूट कर नष्ट कर दिया और लूट में बहुत-सा धन प्राप्त किया। नगर के अनेक धनी नागरिकों ने एक मुसलमान सन्त सैयद जान मुहम्मद की दरगाह में शरण ले ली थी। जब शिवाजी को इस छिपे हुए धन का समाचार मिला तो उन्होंने दरगाह को लूट लिया और उसका समस्त संचित धन उठा ले गये। ख़फीखाँ का कथन है कि उनके इस कार्य पर सन्त ने शिवाजी को शाप दिया और परिणामस्वरूप इसके शीघ्र बाद ही राजा का देहान्त हो गया।

मुगल शीघ्र ही शिवाजी के पीछे लग गये। जब वह जलनापुर की लूट से वापस आ रहे थे, प्रबल मुगल सेनाओं ने संगमनेर के समीप

३ हाल ही में प्रकाशित परमानन्द काव्य में (पृष्ठ ६४) कवि ने सम्भाजी और दिलेरखाँ के बीच हुए वार्तालाप का उल्लेख किया है, जिससे सम्भाजी की अपने पिता, सौतेली माँ सोयराबाई और मन्त्रीगणों के प्रति कटुता का स्पष्ट ज्ञान होता है। इसके अध्ययन से पाठकों को शिवाजी की पारिवारिक परिस्थितियों और उनके अन्तिम समय की आन्तरिक दशा का ज्ञान हो जाता है।

उनका मुकाबला किया। सिधोजी निम्बालकर और सन्ताजी घोरपड़े ने मुगलों का सामना किया, उनकी गति को अवरुद्ध कर दिया, जिससे शिवाजी को लूट-सहित पट्टा के गढ़ को भाग जाने का समय मिल गया। संगमनेर के समीप हुए युद्ध में सिधोजी मारा गया और सन्ताजी हार कर भाग निकला। कुछ लूट का माल भी वहाँ छोड़ना पड़ा और शिवाजी दिसम्बर के आरम्भ में रायगढ़ वापस आ गये।

जैसे ही शिवाजी को मालूम हुआ कि सम्भाजी वापस आ गया है, उन्होंने पन्हाला की रक्षा के अविलम्ब उपाय कर दिये कि कहीं दिलेरखाँ वहाँ पहुँच न जाये और आक्रमण न कर दे। परन्तु खान ने पन्हाला पर आक्रमण करना दुस्साध्य कार्य समझा और दक्षिण में कोपबल की ओर मुड़ गया, जहाँ पर जर्नादन पन्त हनुमन्ते से उसने करारी हार खाई।

शिवाजी शीघ्र ही पन्हाला आकर सम्भाजी से मिले और अपने पुत्र के साथ करीब एक मास तक रहे। वे यह प्रयत्न करते रहे कि सम्भाजी को अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व का बोध कराकर सन्मार्ग पर लगा दें। परन्तु राजकुमार ने अपने रंग-ढंग में किसी प्रकार का पश्चात्ताप या सुधार प्रदर्शित न किया।

चूँकि दिलेरखाँ के शिविर में सम्भाजी को जीवन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो गया था फलतः शिवाजी ने जान-बूझकर कोई कठोर उपाय न बरते अपितु उसके साथ उदारता और स्नेहशीलता का बर्ताव रखा। उन्होंने मराठा राज्य की सम्पत्ति की पूर्ण और ब्यौरे-वार सूचियाँ तैयार करने के लिए अधिकारियों का एक बड़ा दल नौकर रख लिया। यह सम्पत्ति उनके समस्त जीवन के घोर परिश्रम और सफलताओं का प्रतिफल थी। इस प्रकार परोक्ष रूप से वे सम्भाजी को बताना चाहते थे कि एक अकेला व्यक्ति क्या-क्या कर सकता है और उत्तराधिकार में उसके कन्धों पर कितनी बड़ी जिम्मेदारी आने वाली है। ये सूचियाँ बहुत विस्तृत और पूर्ण हैं। इनमें प्रत्येक वस्तु सम्मिलत है चाहे वह तुच्छ हो या बहुमूल्य। नकद

आभूषण, बहुमूल्य पदार्थ, खाद्य-सामग्री, रसद, अस्त्र-शस्त्र, गढ़ और प्रत्येक प्रकार की सम्पत्ति का इनमें विवरण है।[४]

पन्हाला में पिता-पुत्र लगभग एक मास तक साथ-साथ रहे। दोनों अपने हृदय में बहुत दुखी थे। यदि केवल शाब्दिक उपदेश या विरोध से मानुषी चित्त सन्मार्ग पर लाये जा सकें तो यह संसार सर्वथा भिन्न स्थान हो जाये। सभासद कहता है, "सम्भाजी ने कोई प्रायश्चित्त न किया, उनमें कोई परिवर्तन न हुआ।" शिवाजी पर एक कठिन रोग का आक्रमण हुआ। उन्हें अपना भविष्य अन्धकार-मय प्रतीत होने लगा, उनके स्वास्थ्य ने जवाब दे दिया। यह पिता की सहनशक्ति के बाहर की बात थी कि उसी का पुत्र उसके शत्रुओं से मिल जाये। उन्होंने शीघ्र ही आज्ञा दी कि सम्भाजी को पन्हाला के कारागार में डाल दिया जाये और हीरोजी फर्जन्द, सोमजी नायक बंकी और विट्ठल त्रिम्बक (मुरार बाजी का पोता और गढ़ का रक्षक) को उन्होंने उस पर कड़ी निगाह रखने के लिए नियुक्त किया। उन्होंने जर्नादन पन्त से भी कहा कि कोपबल से कोल्हापुर चला जाये, सम्भाजी पर सख्त देख-रेख रखे और उसे कोई अन्य उपद्रव न करने दे। शिवाजी निराश होकर सन्त रामदास के समीप शान्ति-प्राप्ति के लिए सज्जनगढ़ चले गये।

५. मृत्यु—इस समय शिवाजी के मन की घोर वेदना की केवल कल्पना ही की जा सकती है। सम्राट् के विरुद्ध निरन्तर युद्ध करना और खुले विरोध-पत्र में उसकी कठोर भर्त्सना करना—सब कुछ ठीक था। परन्तु उनकी अनुपस्थिति में इस महान् कार्य को कौन करेगा? जो आगरा से पलायन के साधन चमत्कारिक ढंग से खोज सकते थे, वे अब अपने पुत्र के सम्मुख अशक्त थे। उनको प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि उनका अन्त समीप है। मराठा राज्य के भविष्य की चिन्ता उनके वक्षस्थल पर भारी बोझ हो गई थी। शिवाजी का दूसरा पुत्र ठीक दस वर्ष का था। उसकी माता पटरानी

४ देखो, शिवाजी की विरासत—सरकार कृत 'हाउस ऑफ शिवाजी' पृ० १६५-१७२। सभासद और अन्य बखरों में भी पूरी सूचियाँ छपी हैं।

सोयराबाई समझदार महिला न थी। शिवाजी का मन्त्रिमण्डल एक समाङ्ग या संयुक्त मण्डल न था। दो शक्तिशाली मन्त्री मोरोपन्त पिंगले और आनाजी दत्तो एक दूसरे के विरोधी थे। शिवाजी को भय था कि उन पर नियन्त्रण करने के लिए एक योग्य स्वामी के अभाव में केवल मन्त्रि-गण राज्य को सुचारु रूप से चलाने में समर्थ न होंगे। पन्हाला में सम्भाजी से विदा लेते हुए शिवाजी ने उससे कहा—"अब हम रायगढ़ जाते हैं जहाँ राजाराम के विवाह में हमारी उपस्थिति आवश्यक है। तत्पश्चात् हम यहाँ शीघ्र वापस आयेंगे और भविष्य की योजनाओं पर विचार-विमर्श करेंगे। तुम हमारे ज्येष्ठ पुत्र हो और हमें स्वभावतया तुम पर पूरा विश्वास है।" वाकेनवीस की रामदास पर टिप्पणी है, "महाराजा (रामदास से) मिलने के लिए पौष शुक्ला ९ को आये (३१ दिसम्बर) और माघ शुक्ला १५ (४ फरवरी) तक ठहरे। प्रत्येक दिन पूजा-पाठ और ध्यान में व्यतीत हुआ। समर्थ ने राज्य के विषयों और जीवन-दर्शन की पूरी व्याख्या की। महाराजा तीन दिन तक गम्भीर मनन में बेसुध रहे। समर्थ ने परिणाम निकाला कि उनका अन्त समीप है।" शिवाजी ने ४ फरवरी को रायगढ़ के लिए प्रस्थान किया, जहाँ राजाराम का यज्ञोपवीत-संस्कार ७ मार्च, १६८० को हुआ और एक सप्ताह बाद १५ मार्च को राजाराम का विवाह प्रतापराव गूजर की कन्या जानकीबाई से हो गया। एक सप्ताह बाद २३ मार्च को शिवाजी को ज्वर आ गया, जो प्राणघातक सिद्ध हुआ। कुछ राजकर्मचारी पलंग के पास बुलाये गये। जब उनके जीवन की कोई आशा न रही तब पन्हाला में सम्भाजी के पास सन्देशवाहक भेजे गये और यह प्रस्ताव किया गया कि राज्य दोनों पुत्रों में बाँट दिया जाये। सम्भाजी ने इसे स्वीकार करने से इंकार कर दिया। रायगढ़ के समस्त निवासी शोक से विह्वल हो उठे। गंगा का पवित्र जल मरते हुए राजा को पिलाया गया। इस प्रकार शनिवार, चैत्र शुक्ला १५, शक संवत १६०२, रौद्र वर्ष, (३ अप्रेल, १६८०) को मध्याह्न समय शिवाजी ने प्राण-त्याग किया। उस समय राम-

चन्द्र नीलकण्ठ, प्रह्लाद नीराजी और बालाजी आवजी उपस्थित थे। पेशवा मोरोपन्त और सचिव अनाजी दत्तो वहाँ न थे।

६. **परिवार और धर्मगुरु**—शिवाजी के गुरुओं में अन्य व्यक्तियों के साथ इनका वर्णन है जिनका आशीर्वाद वे सदैव प्राप्त करते थे—

(१) तुकाराम बाबा। (२) समर्थ रामदास। (३) केलसी का बाबा याकूत। (४) पटगाँव का मौनी बाबा। (५) निश्चलपुरी गोसावी। (६) पोलादपुर का परमानन्द बाबा। (७) वड़गाँव का जयराम स्वामी। (८) चिंचवाड़ का नारायणदेव। (९) निगड़ी का रंगनाथ स्वामी। (१०) उसका भाई विट्ठल स्वामी। (११) एकनाथ का वंशज भानुदास बाबा। (१२) ब्रह्मनाल का आनन्द-मूर्ति। (१३) धामन गाँव का बोधले बाबा। (१४) बारामती का त्र्यम्बक नारायण।

पत्नियाँ और सन्तान

१. सईबाई निम्बालकर—विवाह १७ अप्रेल, १६४०; मृत्यु ५ सितम्बर, १६५९; एक पुत्र और तीन कन्याएँ : सम्भाजी, जन्म १४ मई, १६५७; सकवारबाई उर्फ सखूबाई, महादजी निम्बालकर को ब्याही गई; रनुबाई जाधव परिवार में ब्याही गई; अम्बिकाबाई तार्ले के हरजी राजे महादिक को ब्याही गई।

२. सगुनाबाई शिर्के—विवाह १६४१ ई०; एक कन्या नानाबाई, उपनाम राजकुँवर, जानोजी शर्के मलेकर को ब्याही गई।

३. सोयराबाई शिर्के—विवाह लगभग १६६० ई०; मृत्यु १६८१ ई०; एक पुत्र राजाराम, जन्म १४ फरवरी, १६७०, एक कन्या बालाबाई, उपनाम दीपाबाई, विसाजीराव को ब्याही गई।

४. पुतलाबाई मोहिते—विवाह १६५३ ई०, सती हो गई।

५. लक्ष्मीबाई विचारे—विवाह १६५६ ई० के पूर्व।

६. सकवारबाई गायकवाड़—विवाह जनवरी १६५७ ई०, एक पुत्री कमलजाबाई, जानोजी पालकर को ब्याही गई।

७. काशीबाई जाधव—विवाह ८ अप्रेल, १६५७।

८. गुणवन्ताबाई इंगले—विवाह १५ अप्रेल, १६५७।

इस प्रकार शिवाजी के आठ पत्नियाँ थीं और आठ बच्चे हुए—२ पुत्र और ६ कन्याएँ। इनके अतिरिक्त दो अवैध स्त्रियों का भी वर्णन है। उनकी मृत्यु के समय इनमें से केवल तीन पत्नियाँ जीवित थीं। पुतलाबाई सती हो गई, सोयराबाई का सम्भाजी ने वध करवा दिया और सकवारबाई बहुत समय तक येसुबाई और शाहू के साथ दक्षिण में औरंगजेब के शिविर में कैद रही।

———

तिथिक्रम

अध्याय १२

१६५६	जंजीरा के सिद्दी खैरियत पर विजय।
अप्रेल १६७२	रामदास से परामर्श करने के लिए शिवाजी का प्रथम आगमन।
१६७२	अँग्रेज राजदूत अस्टिक का शिवाजी से मिलना।
१६७३	अँग्रेज राजदूत निकोल्स का शिवाजी से मिलना।
१६७४	अँग्रेज राजदूत आक्सेण्डन का शिवाजी से मिलना।
१६७५	अँग्रेज राजदूत आस्टेन का शिवाजी से मिलना।

——————

अध्याय १२

शिवाजी का चरित्र और कार्य*

१. अमात्य द्वारा प्रशंसा।
२. शिवाजी और रामदास।
३. शिवाजी और हिन्दू-साम्राज्य।
४. अष्ट-प्रधान और प्रशासन।
५. स्थल और समुद्र के दुर्ग।
६. सैन्य-संगठन।
७. नौ-सेना और जंजीरा का सिद्दी।
८. अँग्रेजों के शिवाजी से सम्बन्ध।
९. क्या शिवाजी डाकू मात्र थे ?
१०. विचारकों और लेखकों द्वारा शिवाजी का मूल्यांकन।
११. निष्कर्ष।

१. अमात्य द्वारा प्रशंसा—किसी विशाल वृक्ष के नीचे खड़े होकर हम उसकी पूरी ऊँचाई नहीं देख सकते। इसी प्रकार वीर नायक की वास्तविक महत्ता का पता काफी समय बीत जाने पर ही होता है। अतः यह आश्चर्य की बात है कि शिवाजी के चरित्र, उनकी नीति और उनके द्वारा सम्पादित कार्यों की इतनी सही समालोचना उन्हीं के एक मन्त्री रामचन्द्र नीलकण्ठ ने कैसे की। यह व्यक्ति १० वर्ष तक उनका अमात्य (महा लेखापालक) रहा। तत्पश्चात् उसने राष्ट्रीय सुरक्षा का सफल प्रबन्ध करके अपनी अद्भुत योग्यता का परिचय दिया। उसने, सम्भाजी की दुःखद मृत्यु और जन्मभूमि से राजाराम के पलायन के बाद, मुगल साम्राज्य

---

* संत् बोलतात,

राजे भ्रष्ट यवन जाले, ठायीं ठायीं दोष घड़ले
मग यांहीं अवतार घेतले, कलिपाप हरावया ॥

अर्थात् सन्तों ने कहा है—

भ्रष्ट मुसलमान हमारे राजा हो गये हैं, सर्वत्र दुष्टाचरण फैल रहा है, तब इस कलियुग के पापों का हरण करने के लिए उसने अवतार धारण किया।

के विरुद्ध चलने वाले महाराष्ट्र के जीवन और मृत्यु संघर्ष में बिखरे हुए तत्वों को एक सूत्र में आबद्ध कर दिया। आगे होने वाले राजाओं के मार्ग-प्रदर्शन के लिए उसने एक प्रकार की राजनीतिक संहिता का निर्माण किया जिसे आज्ञा-पत्र कहते हैं।[1]

पहले मैं शिवाजी के चरित्र और उद्देश्यों के इस आश्चर्यकारी सूक्ष्म विश्लेषण के कुछ उद्धरण दूँगा—

"युग-प्रवर्त्तक छत्रपति प्रारम्भ में एक मुसलमान के अधीन थे, परन्तु १५ वर्ष की आयु से उन्होंने पूना की अपनी छोटी जागीर को स्वतन्त्र करने का कार्य आरम्भ कर दिया। इसी लघु-आरम्भ को उन्होंने अपनी भावी महत्ता का आधार बनाया। उन्हें अपने ही प्रयास और उपक्रम का पूरा भरोसा था।

"वे लोगों की सामर्थ्य परख लेते थे और उनको महान् कार्य करने में समर्थ बनाकर अपना सहायक और सेवक बना लेते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वे उस कार्य में भी सफल हो गये जो आरम्भ में असम्भव प्रतीत होता था। अपनी जनता के बिखरे हुए तत्वों को एकत्र कर उन्होंने एक संगठित दल बना लिया और उसकी सहायता से अपने मुख्य उद्देश्य को सिद्ध कर लिया। पहले वे तीन शक्तिशाली राज्यों से घिरे हुए थे—आदिलशाही, कुतुबशाही और निजामशाही। इनके अतिरिक्त मुगल साम्राज्य के भी सूबे थे जिनमें से प्रत्येक में एक लाख सिपाही थे। इनके अतिरिक्त सिद्दी, फ्रेञ्च, अँग्रेज और डच लोग भी थे, जिनके छोटे-छोटे राज्य थे—जैसे रामनगर, सोंधा, बेदनूर, मैसूर, त्रिचनापल्ली। विभिन्न वंशों—जैसे मोरे, शिर्के, सावन्त, निम्बालकर, घाटगे आदि—के अतिरिक्त अनेक स्थानीय पोलीगर थे।

"अपने चातुर्य के प्रभाव से उन्होंने इन सब को घेर लिया। उन्होंने प्रत्येक शत्रु को पराजित किया—कुछ पर उन्होंने खुला

१ बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो० एस० वी० पुन्ताम्बेकर ने हाल ही में मूल मराठी से अँग्रेजी में इसका अनुवाद किया है।

आक्रमण किया, कुछ को उन्होंने लड़ने पर विवश कर दिया, कुछ को उन्होंने अपने कुशल प्रवन्ध से चकित कर दिया, कुछ को पारस्परिक कलह में फँसाकर निर्बल कर दिया, कभी उन्होंने चुपचाप झगड़े खड़े कर दिये। शिविरों और निवास-स्थानों पर आकस्मिक धावों द्वारा कुछ को उन्होंने हतबुद्ध कर दिया, कुछ का उन्होंने खुले युद्ध में सामना किया, कुछ को उन्होंने मोहक प्रस्तावों द्वारा अपने साथ मिला लिया, कुछ से वे साहस के साथ स्वयं जाकर मिले और कुछ को युक्तिपूर्वक छल-बल से तितर-बितर कर दिया।

"शत्रु के अधिकृत प्रदेश में उन्होंने निर्भयता से अपने गढ़ और सुरक्षा-स्थान निर्मित किये। कुछ लोग पहले से अपने नाविक अड्डों में सुरक्षित थे, उन्होंने उनके मुकाबिले में समुद्रीय गढ़ खड़े कर दिये। उनकी नौ-सेना ने कुछ अगम्य बन्दरगाहों में बलात् प्रवेश किया। इस प्रकार भिन्न विरोधियों से विभिन्न प्रकार से व्यवहार करके उन्होंने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया, जो पश्चिम खानदेश में साल्हेर और अहिवन्त से कावेरी पर तंजौर तक फैला हुआ था। इसमें उनका निर्विरोध आधिपत्य था। इसकी रक्षार्थ उन्होंने सैकड़ों गढ़ और अनेक नाविक अड्डे निर्मित किये, जिनमें बड़े-बड़े बाजार थे। उन्होंने ४० हजार नियमित वेतन-भोगी सैनिकों का अपना दल निर्माण किया। इनके अतिरिक्त ७० हजार शिलेदार या दैनिक वेतन पर सिपाही थे। उनके पास करीब २ लाख पैदल सिपाही थे और उनके कोष की गिनती करोड़ों में हो सकती थी। इसमें बहुमूल्य आभूषण और प्रत्येक आवश्यक सामग्री सम्मिलित थी। इस प्रकार उन्होंने मराठा राष्ट्र को जिसमें ९६ जातियाँ थीं, अश्रुतपूर्व वैभव तक पहुँचा दिया। उन्होंने उच्च सिंहासन पर आसीन होकर और छत्रपति की उपाधि धारण करके अपनी समस्त सफलताओं को पूर्ण कर लिया। उन्होंने यह सब कुछ अपने धर्म के रक्षार्थ किया ताकि देवताओं और ब्राह्मणों के कृत्य बिना विघ्न-बाधा के सम्पन्न हो सकें। शिवाजी के शासन में डकैती और अन्याय का लोप हो गया। उनकी आज्ञाओं का सभी पूर्ण रूप से पालन करते थे।

उन्होंने शक्तिशाली मुगल सम्राट् औरंगजेब को दुःख-सागर में निमग्न कर दिया। वास्तव में शिवाजी के माध्यम से सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने ही यह चमत्कार दिखाया था।"

यह उनका समकालीन सब से उत्तम मूल्यांकन है। हम कह सकते हैं कि शिवाजी की मुख्य सेवा यह है कि उन्होंने मराठा लोगों की स्वाभाविक अराजकता को अपने अनुपम नेतृत्व से राष्ट्रीय सुदृढ़ता में परिणत कर दिया और उन्हें इस योग्य बना दिया कि वे भारत की विभिन्न जातियों में सर्वाग्र स्थान प्राप्त कर लें। हम भली-भाँति जानते हैं कि शिवाजी के उदय के पूर्व पश्चिमी पहाड़ियों के मराठा-परिवार शताब्दियों तक किस प्रकार का कलहपूर्ण, उपद्रवी और उच्छृङ्खल जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे पारस्परिक कलह में अपनी शक्ति का ह्रास कर रहे थे, न किसी नियम का पालन करते थे और न किसी सत्ता का मान करते थे। वे देश में जीवन और सम्पत्ति को सर्वथा अरक्ष्य बनाये हुए थे। शिवाजी ने परिस्थिति को ठीक-ठीक समझ लिया। पहले वे इसी अनियन्त्रित समूह में प्रसन्नता-पूर्वक सम्मिलित हो गये और शीघ्र ही उनका विश्वास प्राप्त कर उनकी युद्धप्रिय परन्तु वीर आत्माओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्होंने उनकी आज्ञा का स्वाभाविक पालन करना सीख लिया और उनके नेतृत्व में अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा में संयुक्त राष्ट्रीय प्रयास प्रारम्भ कर दिया। भ्रमणशील, अनुशासन-हीन जत्थों को सहज भ्रातृत्व का मूल्य ज्ञात हो गया और वे सुख-दुख में अपने नेता का अनुसरण करने लगे। केवल अपनी ही स्वाधीनता को स्थापित करने में शिवाजी सफल न हुए थे, अपितु वे अपनी जन्मभूमि के बिखरे हुए युद्धप्रिय लोगों में आवश्यक एकता स्थापित करने में भी सफल रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि मराठे राष्ट्र के रूप में परिणत हुए और भारतीय राजनीति में सर्व-प्रथम श्रेणी की शक्ति बन गये। उन्होंने राष्ट्र के सम्मुख स्वराज्य का अर्थात् उनके देश को शताब्दियों से दासता की जो शृङ्खला जकड़े हुए थी, उससे राजनीतिक उद्धार का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया।

सह्याद्रि पर्वतमाला की अर्द्ध-सभ्य पहाड़ी जातियों, देशस्थ सामान्य कृषक-वर्ग तथा विदेशी सुल्तानों के जागीर-भोक्ता सैनिक सामन्तों को एक में मिलाकर उन्होंने शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्य का निर्माण किया, जिसने मुगल साम्राज्य की शक्ति को सफल चुनौती दी। स्पष्ट है कि शिवाजी अत्यन्त गुण-सम्पन्न व्यक्ति थे, जो सदैव विपत्ति का सामना करने को तैयार रहते थे। उनमें असीम आत्म-विश्वास था, वे कठोर और दयालु दोनों ही थे। दिलीप के प्रसिद्ध वर्णन में कालिदास ने आदर्श राजा का जो वर्णन किया है, शिवाजी उसी के अनुरूप थे।[2]

२. **शिवाजी और रामदास**—वर्तमान समय की घोर भौतिकता ने हमें इतना असमर्थ बना दिया है कि बिना विशेष प्रयास के और शिवाजी के समकालीन वातावरण के मुख्य तत्वों के विशेष अध्ययन के हम इसका यथार्थ अनुमान नहीं लगा सकते कि उनके विचार क्या थे, विश्वास क्या थे और सम्पादित कृत्य क्या थे। जीवन में उनका उद्देश्य राजनीतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक अधिक था। हिन्दुओं के धार्मिक कृत्यों में मुसलमानों द्वारा हस्तक्षेप करने के वे कट्टर विरोधी थे और उन्होंने प्रयत्न किया कि उनका देश प्रत्येक सम्प्रदाय के सच्चे विश्वासियों के लिए सुरक्षित रहे। क्योंकि बिना राजनीतिक सत्ता के यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता था, अतः उनके लिए राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना आवश्यक हो गया।

उनके काल के बहुत से पत्र अभी हाल में प्रकाशित हुए हैं जिनसे शिवाजी के अध्यवसाय के इस अंग पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है। जैसा कि इन पत्रों से प्रकट होता है, उनके मन में ये शब्द सदैव उपस्थित रहते थे—देवी-देवता, ब्राह्मण, सन्त और देवालय। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि शिवाजी चाहे जहाँ गये, भले ही वह स्थान आगरा हो या कारवार या तंजौर अथवा कोई और, उनका प्रथम कार्य यह होता था कि समीपस्थ प्रदेश के प्रसिद्ध मन्दिरों और उन स्थानों पर एकत्रित होने वाले साधु-चरित्र व विद्वान व्यक्तियों का पता लगाएँ। वे

---

२ अधृष्यश्चाभिगम्यश्च। रघुवंश, सर्ग १, श्लोक १६ तथा अन्य।

समुद्र-मार्ग से बसरूर गये और कारवार के गोकर्ण महाबलेश्वर के भक्ति-भाव से दर्शन किये। बाद में जब वे भागानगर गये और वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़े तो उन्होंने श्रीशैल मल्लिकार्जुन पर काफी समय बिताया। वहाँ जब उनकी समाधि लग जाती थी, तो उन्हें होश में लाना कठिन हो जाता था। उन दिनों सन्त और पवित्र स्थान ज्ञान, विद्या, धर्म और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जानकारी के सुरक्षित आगार थे। शिवाजी प्राय: अपना उद्देश्य भूल जाते और असाधारण आध्यात्मिक शक्ति की आत्माओं से भेंट करने पर सहसा रहस्यात्मक चिन्तनशील मन:स्थिति में लिप्त हो जाते थे। अपने गुरुओं से पूर्व-परामर्श किये बिना उन्होंने कभी कोई बड़ा कार्य प्रारम्भ नहीं किया। इस विषय में हिन्दू और मुसलमान सन्तों में शिवाजी कोई भेद-भाव न रखते थे। वे सब का समान आदर-सम्मान करते थे। अपनी राजधानी रायगढ़ में अपने राजमहल के सम्मुख मुसलमान भक्तों के लिए उन्होंने एक विशेष मस्जिद का निर्माण ठीक उसी प्रकार कराया जैसे कि अपनी दैनिक पूजा के लिए उन्होंने जगदीश्वर का मन्दिर बनवाया था।

प्रसिद्ध सन्त रामदास शिवाजी के गुरु थे, जिन्होंने उन्हें विधिपूर्वक दीक्षा दी। उन्होंने सन्त रामदास की समाधि के लिए भूमि के कई अनुदान दिये, जिनका उल्लेख एक सनद में है। इस सनद में शिवाजी की अपनी श्रद्धा और भक्ति की भावनाओं का पूर्ण व्यक्तीकरण है। रामदास के साथ शिवाजी के सम्बन्ध के प्रश्न पर दो परस्पर-विरोधी विचार हैं। लेखकों के एक पक्ष का विचार है कि वे सन्त शिवाजी के राजनीतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में एकमात्र प्रेरक हैं। दूसरी विचारधारा है कि राजा के रूप में शिवाजी द्वारा किये गये रचनात्मक कार्य में रामदास का बहुत कम हाथ था। जब दादाजी कोंडदेव और शिवाजी ने सिंहगढ़ पर अधिकार प्राप्त कर लिया (१६४४ ई०), ठीक उसी समय सतारा के प्रदेश में रामदास प्रकट हुए। तब से तीस वर्ष तक उन दोनों व्यक्तियों ने महाराष्ट्र को अपने कार्य का मुख्य क्षेत्र बना लिया।

उन्होंने एक दूसरे के कार्य का विवरण अवश्य सुना होगा और दोनों एक दूसरे के प्रति सम्मान का भाव रखते होंगे। "दासबोध" में रामदास ने उत्तम पुरुष का वर्णन किया है, मुझे ऐसा मालूम होता है कि इसका गूढ़ अर्थ शिवाजी द्वारा अफजलखाँ के दमन की घटना है जिसका विवरण उन्होंने अपनी ग्रन्थ-रचना के पहिले सुना होगा। अतएव यह धारणा न्यायसंगत है कि अपने राजनीतिक आदर्शों में शिवाजी को रामदास से प्रेरणा मिलने के बजाय रामदास को अपने आदर्शों और शिक्षा में परिवर्तन करना पड़ा, जब उन्हें शिवाजी के व्यक्तित्व में एक वीर नायक का स्पष्ट प्रमाण मिल गया। इसके अनन्तर रामदास को अनुभव होने लगा कि कोई धर्म तब तक नहीं ठहर सकता और न उन्नति कर सकता है जब तक कोई शक्ति-शाली नेता आगे बढ़कर उसकी रक्षा न करे। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि धार्मिक स्वाधीनता को बनाये रखने के लिए राजनीतिक शक्ति आवश्यक है। यह सत्य प्रतीत होता है। प्रारम्भ में रामदास ने अपनी शिक्षा को समाज के आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन के क्षेत्र तक सीमित रखा, यद्यपि उसमें जीवन को सफल बनाने के व्यावहारिक संकेत अवश्य थे। उन्होंने समस्त देश में मठों की एक शृङ्खला स्थापित कर दी, जहाँ पर शारीरिक शिक्षा दी जाती थी और शारीरिक बल तथा चरित्र के निर्माण का विशेष ध्यान रखा जाता था। इन मठों के इष्टदेव बलिष्ठ हनुमान थे। परन्तु इन मठों को शिवाजी की राजनीतिक प्रवृत्ति के गुप्त शिक्षण-केन्द्र समझना अथवा उन्हें सहायता देने के लिए इनको राजनीतिक जासूसी की संस्थाएँ मानना २०वीं शताब्दी की भारतीय राजनीति की कल्पना मात्र होगी।

शिवाजी और रामदास सर्वप्रथम कब मिले? महाराष्ट्र दोनों का कार्य-क्षेत्र था। व्यक्तिगत भेंट के पहले ही दोनों एक दूसरे के बारे में सुनते-जानते रहे होंगे। ऐसी भेंट के सम्बन्ध में यह सहज धारणा बन जाती है कि दोनों ने परस्पर घनिष्ठता का परिचय दिया होगा। उनमें दीर्घकालीन शान्त वार्तालाप और वाद-विवाद

हुआ होगा ताकि दोनों एक दूसरे की योजनाओं पर प्रभाव डाल सकें। इसका कोई प्रमाण नहीं है और न इसकी सम्भावना ही है कि शिवाजी और रामदास में अप्रेल १६७२ ई० के पहले (शक १५९४ का चैत्र) परामर्श के लिये कोई सोद्देश्य सम्मिलन हुआ हो। भेंट का उल्लेख दिवाकर गोसावी ने अपने पत्र में किया है। इस प्रथम सम्मिलन के बाद ही उनका सम्पर्क घनिष्ठ होने लगा और शिवाजी ने गुरु से व्यवस्थित रूप से उपदेश प्राप्त किया। १६७२ ई० के बाद वे बहुधा मिलते रहे और एक दूसरे से परामर्श करते रहे। मृत्यु-पर्यन्त इन दोनों का पारस्परिक सम्मान बढ़ता ही गया। शिवाजी को गुरु की संगति में निस्सन्देह बड़ी शान्ति मिली।

शिवाजी के जीवन के अन्तिम दुःखद दिनों में उनकी अन्तर्ज्योति कई कारणों से अत्यधिक धुँधली हो गई, इसलिए वे अपने गुरु से परामर्श करने गये और सज्जनगढ़ में उनके साथ एक मास व्यतीत किया। यह स्पष्ट था कि शिवाजी मृत्यु के द्वार पर पहुँच रहे थे। ऐसे समय में यह विचारणीय था कि मराठा राज्य का कार्यभार कौन सँभालेगा क्योंकि सम्भाजी ने अपने आपको नितान्त अयोग्य सिद्ध कर दिया था। इस परिस्थिति पर यदि हम शान्त-चित्त से गौर करें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रामदास राजनीतिक मामलों को हाथ में लेने के पक्ष में न थे। यदि उनका ऐसा सम्मान होता तो जिस समय शिवाजी उनके पास पहुँचे थे, उसी समय प्रमुख अधिकारियों को बुला लेते और उनके द्वारा अमल करने के लिए उत्तराधिकार के सम्बन्ध में किसी निश्चित योजना की सार्वजनिक घोषणा कर देते। इस तरीके से वह संकटकारी परिस्थिति उत्पन्न न होती जो शिवाजी के उत्तराधिकारी की वैधानिक घोषणा न होने के कारण पैदा हो गयी। इसके विपरीत शिवाजी के आगमन पर रामदास ने शिवाजी की सफलताओं पर केवल औपचारिक सन्तोष के भाव व्यक्त किये। ये भाव "आनन्द वन भुवन" नामक श्रेष्ठ काव्य में व्यक्त हैं जिसमें नायक के जीवन-कार्य का संक्षिप्त वर्णन है।

शिवाजी के अन्य गुरुओं का उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

३. शिवाजी और हिन्दू-साम्राज्य—यह जानना आवश्यक है कि क्या कभी शिवाजी की यह इच्छा थी कि सम्पूर्ण भारत के लिए हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना की जाय। यह जानना कठिन है कि यदि शिवाजी की आयु उनके प्रतिद्वन्द्वी औरंगजेब की आयु के समान दीर्घ होती अथवा वे कम से कम दस वर्ष और अधिक जीवित रहते तो क्या होता? उनके दक्षिण के मराठा राज्य के विस्तृत प्रसार के भार को सहन करने के लिये उनकी नींव काफी चौड़ी थी। गोदावरी नदी के दक्षिण के प्रदेशों को उन्होंने पूर्णतया अपने अधीन कर लिया था। उनका मुख्य उद्देश्य धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना था, प्रदेश प्राप्त करना नहीं। सम्पूर्ण भारत में हिन्दू धर्म की रक्षार्थ वे निस्सन्देह अग्रगण्य थे। अपने एक पत्र में (दादाजी नरस प्रभु को १६४५ ई० में लिखा गया) अपनी राष्ट्रीय योजना के लिए उन्होंने 'हिन्दवी स्वराज्य' शीर्षक का उपयोग किया था। इसका अर्थ है कि वे समस्त देश में हिन्दू धर्म के स्वायत्त शासन के लिए प्रयत्नशील थे। सम्भाजी ने दान-पत्र में उन्हें 'हैन्दवधर्मोद्धारक' कहा है। यही भाव औरंगजेब को लिखे गये शिवाजी के एक पत्र से प्रकट होता है। यद्यपि समय से पहले उनकी मृत्यु हो गई किन्तु उनके आदर्श उनके पश्चात् एक शताब्दी से भी अधिक समय तक उनके उत्तराधिकारियों को प्रेरणा देते रहे, विशेषकर पेशवाओं को महादजी शिन्दे के समय तक उनसे प्रेरणा मिली। महादजी शिन्दे ने उत्तर भारत के पवित्र हिन्दू तीर्थ-स्थानों को मुस्लिम शासन से मुक्त कराने की चेष्टा की। उसने सम्राट् शाहआलम से फर्मान प्राप्त कर लिया, जिसके द्वारा समस्त देश में गोवध निषिद्ध कर दिया गया। अपने एक पत्र में पेशवा बालाजी राव गर्व से कहता है कि वह शिवाजी का सच्चा शिष्य था। उसका तात्पर्य है कि वह उनके आदर्शों का अनुकरण करता है। शिवाजी द्वारा चौथ और सरदेशमुखी कर लगाने की कल्पना अखिल भारतीय विस्तार की भावना से की गई थी। मिर्जा राजा जयसिंह के दरबार का एक कवि अपने आश्रयदाता को यह गौरव देता है कि उसने

असाध्य कार्य किया कि "शिवाजी ऐसे राजाओं को अधीनस्थ कर लिया, जो दिल्ली का राजसिंहासन प्राप्त करना चाहते थे।"[३]

शिवाजी ने स्वेच्छा से औरंगजेब के दरबार की यात्रा की जो सङ्कटपूर्ण कार्य था। इससे ज्ञात होता है कि वे स्वयं देखना चाहते थे कि कई शताब्दियों के सतत् मुस्लिम शासन के बाद उत्तर भारत हिन्दू-साम्राज्य के पुन:स्थापन के लिए कहाँ तक तैयार है। ऊपर उद्धृत की गई पंक्ति से स्पष्ट होता है कि जनता की यह इच्छा थी कि औरंगजेब को सिंहासन-च्युत किया जाये क्योंकि वह हिन्दू धर्म का शत्रु था। जिस क्षण शिवाजी सम्राट् की कैद से बच निकले, हिन्दू-भारत ने ईश्वर-प्रदत्त धर्मोद्धारक की भाँति उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् उत्तर भारत के विद्वान कवि, पुरोहित और सामन्त-गण शिवाजी के दरबार में एकत्रित होने लगे। कवि भूषण[४] और छत्रसाल बुन्देला राष्ट्र-व्यापी चेतना के उदाहरण हैं। गागाभट्ट भी अभिषेक-संस्कार में मुख्य पुरोहित का कार्य करने के लिए तैयार हो गये, क्योंकि समस्त उत्तर भारत में शिवाजी के असाधारण व्यक्तित्व के प्रति सद्भावना व्याप्त हो गई थी।

शिवाजी ने अपने राज्य की रक्षा के लिए स्थल और समुद्री दुर्गों की व्यवस्था की। इस पद्धति की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। इस कार्य के लिए उन्होंने चार चट्टानी नौ-सेना अड्डों का निर्माण किया जो महाराष्ट्रीय स्वातन्त्र्य का मेरुदण्ड बन गये। इसकी कल्पना महान मुगल सम्राट् भी न कर सके थे। इन सब नाविक अड्डों पर उन्होंने नौका-गृह स्थापित किये, जहाँ युद्ध और व्यापारी पोतों का निर्माण हो सकता था और उनकी मरम्मत की जा सकती थी।

---

३ येन श्रीजयसिंहेन दिल्लीन्द्रपदलिप्सव:
शिवप्रभृति भूपाला वशंनीता स्वतेजसा।
(जयसिंहप्रशस्ति, राजवाड़े, सं० ले०)

४ अब लोगों का मत है कि भूषण शाहू से मिले थे शिवाजी से नहीं। परन्तु शिवाजी से सम्बन्धित प्रचलित भावना को उन्होंने अपनी रचनाओं में अवश्य व्यक्त किया।

यहाँ पर तोपों के कारखाने भी थे, जिनकी हम आज भी प्रशंसा करते हैं। व्यापार-प्रसार और शत्रु के आक्रमणों से सुरक्षा के ये पूर्वोपाय थे जिनका शिवाजी की मृत्यु के ५० वर्ष बाद तक कान्होजी अंग्रिया और उसके परिवार ने पूर्ण लाभ उठाया। ऐबे कारे का कथन है कि विशेष रूप से तैयार किये गये भूचित्रों की सहायता से शिवाजी ने भूगोल का गूढ़ अध्ययन किया था। शिवाजी के जलपोतों द्वारा अरब और बाहरी देशों के साथ नवीन व्यापार प्रारम्भ हो गया जो आय का अच्छा साधन था। संकुचित दृष्टि के कारण उस समय के लोग इसका ध्यान नहीं करते थे। हिन्दुओं द्वारा समुद्र-यात्रा पर लगे हुए प्रतिबन्ध को उन्होंने दूर कर दिया। प्रचलित रूढ़ि के विरुद्ध उन्होंने नव-मुसलमानों को हिन्दू-समाज में पुनः प्रविष्ट किया। बालाजी निम्बालकर और नेताजी पाल्कर इसके उदाहरण हैं। यह नवीन प्रथा थी जिसे तत्कालीन हिन्दू-समाज स्वीकार नहीं करता था। फारसी उस समय दासता का स्पष्ट चिन्ह थी। इसकी जगह शिवाजी के नवीन राज्य के लिए एक नवीन राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता थी। अतः इस कार्य के लिए उन्होंने मराठी को चुना। 'राजव्यवहार कोष' नामक एक संस्कृत कोष तैयार किया गया जिसमें राज्य-व्यवहार के लिये नव-निर्मित शब्द थे।*

शिवाजी का राज्याभिषेक-संस्कार विशाल पैमाने पर हुआ था और उसके हेतु अनेक प्रबन्ध किये गये थे। इस प्रथा को इसलिए पुनर्जीवित किया गया था ताकि सर्वसाधारण के हृदय पर प्रभाव पड़े और प्राचीन साम्राज्यों की परम्परा का उसे स्मरण हो आये। राजाओं की यह परम्परा दस शताब्दियों से भी अधिक समय पूर्व के प्राचीन गुप्तों और हर्षवर्धन के बाद से लुप्त हो गई थी।

एक बात स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म की रक्षा करते हुए भी शिवाजी के मन में मुसलमानों के धर्म के प्रति या सम्प्रदाय विशेष के रूप में उनके प्रति किसी प्रकार की घृणा न थी। उनके राज्य का आदर्श

---

* देखो अध्याय ९ का फुटनोट १०।

और व्यवहार सब के लिए पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता थी। केल्सी के बाबा याकूत सदृश मुसलमान सन्तों का वे सम्मान करते थे। उसकी समाधि को उन्होंने जो अनुदान दिया उसका उपभोग आज भी होता है। उनके पास बहुत से मुसलमान स्वामिभक्त-सेवक और अनुचर थे जो पूरी तरह अपना सहयोग उन्हें देते थे। उनकी नौ-सेना के मुख्य कमाण्डर दौलतखाँ और सिद्दी मिस्री मुसलमान थे। उनका सेवक मदारी मेहतर एक फर्राश था जो सदा उनके पास रहता था और उसी ने आगरा से शिवाजी के पलायन में सहायता दी थी। शिवाजी का विश्वासपात्र परराष्ट्र सचिव (मुंशी) मुल्ला हैदर था, जो उनका फारसी पत्र-व्यवहार करता था। इसे दक्षिण में मुगल शासक बहादुरखाँ के पास प्रतिनिधि के रूप में एक बार शान्ति-वार्ता करने भेजा गया था।[५] शिवाजी की प्रजा का एक बड़ा भाग मुसलमान था और वे हिन्दू प्रजा की भाँति ही सन्तुष्ट और स्वतन्त्र रहते थे।

४. **अष्ट-प्रधान**—आर्य राजनीतिशास्त्र में विस्तृत योजनाएँ वर्णित हैं, जिनमें से शिवाजी ने राजकार्य को आठ मन्त्रियों में बाँटने की पद्धति को अपनाया। उस समय की आवश्यकतानुसार यह पद्धति अत्यन्त उपयुक्त थी, जो सम्पूर्ण संसार में आज भी दीख पड़ती है। इन मन्त्रियों के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों की परिभाषाएँ शिवाजी ने स्पष्ट रूप से दे दी हैं। शिवाजी द्वारा प्रचलित पद्धति में मन्त्रियों में कार्य का विभागीय विभाजन अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। राजनीति सम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित प्राचीन हिन्दू परम्परा से शिवाजी ने इस पद्धति को अपनाया था। मुस्लिम शासन में केवल दो मुख्याधिकारी होते थे—एक दीवान या राजस्व मन्त्री, दूसरा बख्शी या सैनिक संस्थान का अध्यक्ष। प्रान्तीय अध्यक्ष या सूबेदार को पूर्ण नागरिक या सैनिक अधिकार प्राप्त थे। परन्तु इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि शिवाजी के आठ विभागों के मन्त्रिमण्डल

---

५ मुल्ला हैदर ने शिवाजी की मृत्युपर्यन्त सेवा की, तत्पश्चात् सम्भाजी से मतभेद होने पर वह मुगल सम्राट् की सेवा में चला गया। १७०० ई० में वह दिल्ली का मुख्य काज़ी नियुक्त हुआ।

की तुलना वर्तमान मन्त्रिमण्डलों से किसी प्रकार नहीं हो सकती जो गणतन्त्रीय शासन या उत्तरदायी शासन के अधीन होते हैं। अपने मन्त्रियों को शिवाजी ने पृथक या स्वतन्त्र अधिकार नहीं दिये थे। उनकी पद्धति प्रशासकीय कार्य का सुविधाजनक विभाजन करने के ही लिए थी। उनके आठ मन्त्रियों में से छः को आवश्यकतानुसार आदेश प्राप्त होने पर अपने निश्चित कार्यों के साथ-साथ फौजी कार्यवाहियों का संचालन भी करना पड़ता था। संसदों के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डलों द्वारा नियन्त्रित आधुनिक समय के शासनों से शिवाजी द्वारा स्थापित कार्य-विभागों की तुलना करना भ्रामक होगा। आधुनिक मन्त्रिमण्डलों के स्वतन्त्र अधिकार होते हैं और वे बहुधा राजा के विरुद्ध आज्ञा दे देते हैं। परन्तु शिवाजी पूर्ण स्वतन्त्र राजा थे। यद्यपि वे अपने मन्त्रियों से खुलकर परामर्श करते थे किन्तु प्रायः वे उनकी सम्मति की उपेक्षा कर देते और स्वयं के निष्कर्षानुसार आदेश देते थे। आठ मन्त्रियों में से पेशवा या प्रधान मन्त्री दूसरों के कार्य की देखभाल करता था और स्वामी की अनुपस्थिति में शासन का संचालन करता था। प्रधान मन्त्री का वेतन १५ हजार होन वार्षिक था, जिसका विनिमय-मूल्य लगभग ३।।) रु० की दर से ४३७५) रु० मासिक होता है। यह वेतन अच्छा-खासा था, विशेषकर इस कारण कि उस समय धन की क्रय-शक्ति अधिक थी। अन्य मन्त्री ये थे—(२) अमात्य (राजस्व पर), (३) सचिव (अर्थ-विभाग पर), (४) सेनापति, (५) मन्त्री (व्यक्तिगत परामर्शदाता) और (६) सुमन्त (पर-राष्ट्र मन्त्री)। अमात्य का वेतन १२ हजार होन वार्षिक या ३५००) रु० मासिक था। दो शेष मन्त्रियों (७) न्यायाधीश और (८) पण्डित राव (दान और धर्म-मन्त्री) का कार्य फौजी हमलों में बाहर जाना नहीं था। उनके स्थायी कार्यालय राजधानी में थे। अन्तिम छः मन्त्रियों के वेतन १० हजार होन वार्षिक या लगभग ३०००) रु० मासिक थे।

शिवाजी एक कुशल व्यावहारिक प्रशासक थे, उन्होंने सेवा के बदले में भूमि देने की हानि को भली-भाँति समझ लिया था। अपने

मन्त्रियों तथा अन्य सेवकों को वे सदैव नकद वेतन देते थे। रामचन्द्र पन्त अमात्य ने शासन के अधीन सैनिक या अन्य सेवा के बदले में भूमि दान देने के सङ्कटों और हानियों का विशद वर्णन किया है। राज्य के हित में शिवाजी जागीर-प्रथा को हानिकर समझते थे। उन्होंने पूर्व-शासनों के "वतनों" को जो भूमि के रूप में थे, निष्ठुरता से जब्त कर लिया और शासन एवं कृषकों के बीच में जमीदारों के रूप में बिचौलियों को नहीं रखा। अमात्य लिखता है—"राजा समस्त भूमि का सर्वोपरि स्वामी है। उसके प्रति जमींदार उचित राजभक्ति नहीं रखते और न वे अपनी सम्पत्ति से सन्तुष्ट होते हैं। कृषकों के प्रति वे अन्यायशील होते हैं। वे स्वतन्त्र गढ़ बना लेते हैं, स्वामी की अवहेलना करते हैं, जो वस्तु उनकी नहीं है उस पर अधिकार कर लेते हैं, बाहर जाकर डाके डालते हैं। यदि एक बार उनकी स्थिति सँभल जाती है तो वे उससे अधिक प्रसरण का काम लेते हैं (क्या शिवाजी ने भी ऐसा ही नहीं किया ?)। यदि कोई विदेशी शत्रु देश पर आक्रमण करता है तो ये जमींदार प्रायः खुल्लम-खुल्ला उसका साथ देते हैं, वे महत्वपूर्ण सूचनाएँ गुप्त रूप से उसके पास पहुँचा देते हैं। इस प्रकार वे राज्य को निर्बल करने का जबर्दस्त कारण बन जाते हैं। जागीरदार बिरला ही ईमानदार होता है।"

मन्त्रिगत विभागों की सृष्टि शनैः-शनैः हुई; जैसे-जैसे शिवाजी का कार्य प्रगति करता गया, उनका विकास होता गया। उनके राज्याभिषेक के समय उन सब का निर्माण नहीं हुआ था, यद्यपि उस संस्कार के समय उन विशेष कर्तव्यों की घोषणा और विधिवत् पुष्टि करदी गई थी।

प्रशासन—शिवाजी का समस्त राज्य अस्थिर और क्षेत्रफल में अनिश्चित था, क्योंकि अपने राज्य के निर्माण और प्रसार में वे सदा व्यस्त रहते थे। उन्होंने उसे तीन मुख्य प्रान्तों में विभाजित किया—उत्तरी प्रान्त साल्हेर से पूना तक जो उत्तर कोंकण सहित उनके पेशवा मोरोपन्त पिंगले के अधीन था, दक्षिण कोंकण उत्तर कनारा तक आनाजी दत्तो के अधीन था, और दक्षिण के देश जिले जो मोटे

रूप से सतारा से धारवाड़ और कोपबल तक फैले हुए थे, दत्ताजी पन्त वकनीस के अधीन थे। तुंगभद्रा के दक्षिण में नये जीते हुए जिले अर्थात् अर्नी, वेल्लोर, जिंजी आदि का प्रशासन शिवाजी के जामाता हरजी महादिक के हाथों में था। बहुत से इधर-उधर फैले हुए बाहर के जिले भी थे, जहाँ समय-समय पर विशेष रूप से विश्वस्त और योग्य प्रतिनिधि नियुक्त किये जाते थे। मुगल प्रदेश पर चौथ कर का लगाना आवश्यक था। इस समस्त प्रदेश में, पुराने और नये को मिलाकर जैसा कि समकालीन पत्रों और लेखों से मालूम होता है, २४० गढ़ थे जिनमें से १११ को उन्होंने हाल ही में बनवाया था। उनकी वार्षिक आय हिसाब से सात करोड़ रुपये होती है, परन्तु सम्भव है कि इससे बहुत कम धन वसूल होता हो। उन्होंने बहुत बड़े कोष और अन्य मूल्यवान वस्तुओं का संग्रह किया, जिसका आधुनिक सिक्के में मोटे तौर पर भी हिसाब लगाना असम्भव है। इस राजस्व के अतिरिक्त स्थानीय स्थिति के अनुसार कुछ उप-कर भी लगते थे।[६]

शिवाजी के शासन का विश्लेषण करने पर कुछ मोटे सिद्धान्तों का सहज पता चल जाता है, जिनका उन्होंने स्वराज्य के निर्माण-कार्य में चतुरता से व्यवहार किया। वे ये हैं—

(१) शत्रुओं से देश की रक्षा मोर्चाबन्दी-युक्त गढ़ों के द्वारा की थी।

(२) सेवाओं का पुरस्कार नकद दिया जाता था, भूमिदान द्वारा नहीं।

(३) सेवकों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर होती थी, वंश-परम्परा के अनुसार नहीं।

(४) लगान परखे हुए प्रशासकीय कार्यकर्त्ताओं द्वारा एकत्रित किया जाता था, जमींदारों और बीच के व्यक्तियों द्वारा नहीं।

---

६ देखिए का० सं० प० या० ले० २; भा० व० २; मराठी दफ्तर; इ० सं० पे० द० मा०; ऐ० वि० वि० १, पृ० २१।

(५) भूमि को ठेके पर देने की प्रथा बन्द कर दी गई अर्थात् भूमि-कर का नीलाम कभी नहीं होता था।

(६) समस्त शासन-कार्य सुनिश्चित पृथक् विभागों में विभक्त था।

(७) सब जातियों को सरकारी नौकरी में समान अवसर मिलता था।

(८) व्यय का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाता था कि प्रति वर्ष कुछ बचत हो जाये।

यह बात स्पष्ट है कि आधुनिक समय की समस्त सुनियमित सरकारों ने अपने प्रशासन में इन सिद्धान्तों को अंगीकृत कर लिया है। इस शैली की आधारशिला दादाजी कोंडदेव ने रखी थी, जिसने अपने समय में मलिक अम्बर का अनुकरण किया था। शिवाजी ने समस्त पूर्व-शैलियों के उत्तम अंशों का संग्रह कर लिया था। न्याय का कार्य अधिकतर ग्राम-पंचायतों के सुपुर्द कर दिया गया, अतः देश में पुलिस रखने का कार्य स्वतः ही सरल हो गया था।

सुरक्षा को शिवाजी ने सदैव उतना ही महत्व दिया जितना प्राप्ति को। सैनिक-अभियानों में कार्य करने वाले मन्त्रियों को कुछ लाभ थे, जो उन मन्त्रियों को प्राप्त नहीं थे जो राजधानी में रहकर नागरिक कार्य करते थे। जब एक बार यह शिकायत शिवाजी के पास पहुँची तो उन्होंने एक महत्वपूर्ण निर्णय किया और घोषणा कर दी कि राज्य को सुरक्षित रखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना नवीन क्षेत्र प्राप्त करना। जो मन्त्री देश में कार्य करते हैं, उन्हें भी वही पुरस्कार मिलना चाहिए, जो उनको मिलता है जो बाहर सैनिक-सेवा करते हैं।[७]

मैं यहाँ एक लिखित उदाहरण उद्धृत करता हूँ कि सरकारी प्रदेश सुरक्षित रखने में शिवाजी कितने दृढ़ और निष्पक्ष थे। उनकी पुत्री राजकुँवर के पति पिलाजी शिर्के ने कुदाल के सावन्त लखम और शिवाजी में मैत्री स्थापित कराकर प्रशंसनीय सेवा की थी।

---

७ राजवाड़े ८।१०। योगक्षेम, प्राप्ति और सुरक्षा।

अपने सुकार्य के पुरस्कार में पिलाजी शिर्के ने दभोल की देशमुखी वतन अनुदान के रूप में माँगी। शिवाजी ने दृढ़ किन्तु मधुर भाषा में शिर्के को लिखा, "हमारी मराठा सरकार किसी को भी भूमि का अनुदान नहीं देती। परन्तु राज्य के प्रति आपकी सुसेवा को मान्यता देते हुए और आपके परिवार और हम में जो पारिवारिक सम्बन्ध है, उसका ध्यान रखते हुए हम दभोल की देशमुखी को अपनी प्यारी पुत्री राजकुँवर के पुत्र को, जब उसका जन्म हो, देने का विचार करेंगे।"[८]

केवल नवीन व्यक्तिगत अनुदानों की शिवाजी आज्ञा न देते थे। परन्तु उन्होंने प्राचीन धार्मिक अनुदानों को उदारतापूर्वक जारी रखा और हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों के धार्मिक स्थानों को वह दान देते रहे।

शिवाजी अपने लिये गढ़ों का निर्माण करते रहे, परन्तु अपने अधीन किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से अपने गढ़ बनाने की आज्ञा उन्होंने कभी नहीं दी। उन्होंने जान-बूझकर कुछ प्राचीन व्यक्तिगत गढ़ भी गिरा दिये, जिनसे उनकी स्थिति को संकट उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती थी। इस सम्बन्ध में अमात्य लिखता है—"शत्रु द्वारा भर्त्सना पाकर जमींदार प्रायः उससे मिल जाते हैं और राज्य को हानि पहुँचाते हैं। इन पक्ष-त्यागियों का पता लगाना चाहिए। उनको पकड़ लेना चाहिए और दण्ड देना चाहिए, और यदि उनका पकड़ा जाना असम्भव हो, तो उनके पुत्रों और रिश्तेदारों को पकड़ लेना चाहिए तथा उनकी स्त्रियों को दासी बना लेना चाहिए। इन राजद्रोहियों को ऐसा दण्ड देना चाहिए जिससे दूसरे शिक्षा लें। इन अपराधियों को विष देने की प्रथा का भी उपयोग किया जा सकता है।"

५. भूमि और समुद्र के दुर्ग—रक्षा के समस्त उपायों में सर्वप्रधान उनकी दुर्ग-शैली थी, जिसका उन्हीं ने आविष्कार किया था और जिसको उन्होंने सतत् उन्नत किया। ये गुरिल्ला युद्ध-प्रणाली के

---

८ पत्र—"शिवचरित्र साहित्य", ३ . ४३८।

आवश्यक अंग हो गये जिसे उन्होंने अपने पिता से सीखकर विकसित किया था। इन दुर्गों की तीन विशेष पंक्तियाँ हैं जो आजकल भी पहिचानी जा सकती हैं, यद्यपि ब्रिटिश शासन-काल में ये सब दुर्ग या तो जान-बूझकर गिरा दिये गये अथवा उपेक्षा के कारण टूट-फूट गये, क्योंकि युद्ध और सुरक्षा की शैली में अब पूर्ण परिवर्तन हो गया है। सह्याद्रि पर्वतमाला की चोटियों पर ये मुख्य दुर्ग हैं। उनकी दो और पंक्तियाँ हैं—एक उसी पर्वतमाला की पश्चिमी शाखा पर और दूसरी पूर्वी शाखा पर। इनके अतिरिक्त समुद्र-तट पर कठोर चट्टानों के ऊपर भी उनके बनाये हुए कुछ दुर्ग हैं। शिवाजी के बहुत पहिले से कुछ मैदानी नगरों जैसे अहमदनगर और शोलापुर में भी कुछ दृढ़ दुर्ग हैं। मलवन का सिन्धुदुर्ग, विजयदुर्ग, सुवर्णदुर्ग और कोलाबा मुख्य नाविक दुर्ग थे, जो आज तक शिवाजी के चातुर्य को प्रकट करते हैं। इन सब दुर्गों में रायगढ़, जो उनकी राजधानी था, उस महा महत्व को प्रकट करता है जो शिवाजी इन दुर्गों को देते थे और पता लगता है कि वे इनके निर्माण पर कितना मुक्त-हस्त व्यय करते थे। लगभग सर्वप्रथम गढ़ जिसका उन्होंने निर्माण किया, प्रतापगढ़ था। इसे उन्होंने देवी भवानी का स्थान बनाने के अभिप्राय से बनाया था और यहीं उसकी स्थापना हुई। इन गढ़ों के द्वारा देश-रक्षा के प्रति शिवाजी कितने सजग थे, इसका अनुमान वास्तव में तभी किया जा सकता है जब उनमें से कुछ को वहाँ जाकर देखा जाये। समस्त भारत और विदेशों से पूना आने वाले यात्री इसके समीप स्थित पुरन्दर और सिंहगढ़ को देखने अवश्य जाते हैं।

इन गढ़ों का निर्माण उल्लेखनीय है। परकोटे के बीच में एक कठिन मार्ग होता है जिसका आसानी से पता नहीं लग सकता। जब मुख्य-द्वार अच्छी तरह बन्द कर दिया जाये और रक्षा का प्रबन्ध हो, तो अन्दर कोई शत्रु घुस नहीं सकता। तोपें, गोला-बारूद, अन्न और अन्य आवश्यक वस्तुएँ अन्दर इकट्ठी कर ली जाती थीं ताकि गढ़ के रक्षक अनिश्चित समय तक शत्रु का सामना कर सकें। रायगढ़ अन्दर से इतना बड़ा है कि सहस्रों पशुओं और मनुष्यों को

निरन्तर अनेक वर्षों तक जीवनोपयोगी समस्त सामग्री उपलब्ध हो सकती थी। उनके निर्माण में सबसे पहली आवश्यकता रहती थी गढ़ों के अन्दर जल का प्रचुर संचय। अनेक पहाड़ियों पर प्राकृतिक झरने थे और अन्य पहाड़ियों पर विशेष जलाशयों का निर्माण किया गया था। आक्रमण या घेरे की दशा में रक्षा और रक्षक सेना के आचरण के लिए शिवाजी ने सूक्ष्म नियमोपनियम तैयार किये और उनको प्रसारित कर दिया। इन गढ़ों को जो सुन्दर और कर्णप्रिय नाम दिये गये, उनके लिए शिवाजी के पंडितों के कौशल की प्रशंसा करनी पड़ती है। यह नामकरण ४ सितम्बर, १६५६ ई० को आरम्भ किया गया था। इसका उल्लेख शि० च० प्र० में पृष्ठ ५० पर है।

इन गढ़ों में से अधिकांश की अपनी कहानी और अपने विचित्र संस्मरण हैं जो स्थानीय किंवदन्तियों में प्रचलित हो गये हैं। ये नवागन्तुक के समक्ष उन प्राचीन दिनों का चित्र खींच देती हैं। शिवाजी ने स्वयं इन गढ़ों के निर्माण की ओर जो ध्यान दिया, उसका बोध निम्नाङ्कित उद्धरण से हो सकता है, जो मलवन के गढ़ के एक प्राचीन वर्णन से उद्धृत किया जाता है। इस गढ़ का नाम शिवाजी ने सिंधुदुर्ग रखा था : "सिन्धुदुर्ग आकाश का एक नक्षत्र है। यह महाराज के राज्य का एक अभिमानजनक भूषण है, जैसे कि प्रत्येक हिन्दू के घर के सामने शोभा के लिये तुलसी का चबूतरा होता है। देवताओं को केवल १४ रत्न प्राप्त हुए थे। उनकी संख्या में यह १५वाँ रत्न शिवाजी ने जोड़ा है। जब वे पहले पहल राजापुर आये, उन्होंने उन विभिन्न चट्टानों का सूक्ष्म निरीक्षण किया जो जल में मग्न पश्चिमी तट पर स्थित थीं। मलवन के सम्मुख स्थित छोटे से चट्टानी टापू की स्थिति से वे प्रभावित हुए। उन्होंने वहाँ के मछुओं को तुरन्त बुलाया और उस भयानक जलदानव (चट्टान) के विषय में सब जानकारी प्राप्त की। उस तक सीधे पहुँचना कठिन था। एक सर्पाकार कुटिल जल-मार्ग अवश्य था, जिसमें से केवल एक छोटी सी मछली पकड़ने वाली नौका निकल सकती थी। बड़े जहाज उस तक न पहुँच सकते थे। शिवाजी ने कोलियों को उदारता से

पुरस्कृत किया और साहसी नाविकों के रूप में तुरन्त उन्हें अपनी सेवा में रख लिया। उन्होंने ज्योतिषियों से परामर्श किया और नींव रखने का एक शुभ दिन निश्चित कर लिया। उन्होंने ५०० पत्थर गढ़ने वाले और २०० लुहार बुलाये, १०० टन लोहा मोल लिया और निर्माण-कार्य आरम्भ कर दिया। विशाल समारम्भ संस्कार हुआ, मिठाई बाँटी गयी, बड़े-बड़े भोज दिये गये जिनमें सङ्गीत और आमोद-प्रमोद का भी प्रबन्ध था। समुद्र की देवी को प्रसन्न करने के लिए १०० होन दान में बाँट दिये गये और नारियल, वस्त्र तथा अन्य वस्तुएँ इनके अतिरिक्त बाँटी गयीं। तीन हजार चतुर कारीगर जिनमें से कुछ गोआ की पुर्तगाली सरकार से प्राप्त किये गये थे, भिन्न-भिन्न स्थानों पर नियुक्त किये गये। ५ हजार मावलों का रक्षा-दल भी नियुक्त किया गया। एक करोड़ होन का बजट स्वीकृत हुआ। लहरों से हानि या शत्रु की ओर के सङ्कट से बचाव के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय किया गया। गोविन्द विश्वनाथ प्रभु को शिवाजी ने इस कार्य का मुख्य अधीक्षक नियुक्त किया और स्वयं रायगढ़ वापस चले गये। तीन वर्ष में एक निर्जन स्थान दुर्ग के रूप में प्रगट हो गया और तब महाराजा ने विधिपूर्वक उसमें प्रवेश किया। तोपों की सलामी दी गयी। उन्होंने इसका नाम सिंधुदुर्ग रख दिया।[९]

६. **सैनिक संगठन**—शिवाजी की सेना के सम्बन्ध में बहुत अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। ये गढ़ उनकी मुख्य लड़ाकू शक्ति के अंग थे। सेना की दो शाखाएँ थीं—सवार और पैदल, जो अधिकांश में गढ़ों पर नियुक्त थे। शिवाजी प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति से निर्द्वन्द्व मिलते थे। उनके चरित्र और योग्यता को परखने का उनमें

---

९ चित्रगुप्त बखर, पृ० १३२-१३४। शिवाजी के गढ़ों के ये नाम पाठकों को आकर्षक प्रतीत होंगे—प्रचंडगढ़, प्रकाशगढ़, प्रचितगढ़, प्रबलगढ़, प्रवालगढ़, प्रसन्नगढ़, प्रसिद्धगढ़, भूधरगढ़, भूपालगढ़, भूमंडगढ़, भूषणगढ़, महिपतगढ़, महिमंडनगढ़, वल्लभगढ़, वर्धनगढ़, वसंतगढ़, वंदनगढ़, विशालगढ़, विश्रामगढ़। "अमात्य राजनीति" के ७वें अध्याय में गढ़ों का वर्णन है। "शिवाजी संस्मरण" में शिवाजी के सभी गढ़ों का विवरण है।

जन्मजात गुण था। अपने अधिकांश सैनिकों का या तो उन्होंने स्वयं निर्वाचन किया था अथवा उन लोगों की गारण्टी पर लिया था जो उनके साथी एवं विश्वासपात्र थे। छोटी-छोटी तोड़ेदार बन्दूकें, तलवार और ढालें या छोटी कटारें और भाले उस समय के अधिकतर प्रचलित हथियार थे। सवारों के दो मुख्य वर्ग थे—सिलेदार और बारगीर। सिलेदार कुछ ऊँचे प्रकार के सैनिक थे; जो अपने घोड़े और हथियार लाते थे तथा अधिक वेतन पाते थे, और बारगीर प्रत्यक्ष सेवक थे जिन्हें आवश्यक सामान शासन की ओर से मिलता था। उपयुक्त स्थानों पर सैनिकों के बड़े-बड़े आगार थे जहाँ सहस्रों घोड़े, अस्त्र-शस्त्र तथा खाद्य-सामग्री के भंडार थे। शिवाजी को घोड़ों का शौक था और वे अरबी, काठियावाड़ी तथा अन्य जातियों के चुने हुए घोड़े रखते थे। प्रत्येक सैन्य-दल के साथ गुप्तचरों के जत्थे होते थे। सैन्य-दलों के अधिकारी गुप्तचरों द्वारा प्राप्त सूचना के अनुसार सैनिकों की गतिविधि का प्रबन्ध करते थे। ये गुप्तचर शिवाजी की सेना की अति निपुण शाखा थे। सेना के कार्यों का नियमन शिवाजी किस सूक्ष्मता से करते थे, इसका अनुमान निम्न-लिखित पत्र से हो सकता है, जो स्थायी आज्ञा के रूप में सभी राजस्व और सैनिक अधिकारियों को प्रसारित किया गया था।

"१६ अप्रेल, १६७३। चिपलूण में नियुक्त सेना की देखरेख करने वाले जुमलेदारों, हवलदारों और कारकुनों को—एक अश्वारोही दल के ठहरने का प्रबन्ध मैंने चिपलूण में कर दिया है क्योंकि इस ऋतु में अब सम्भव नहीं है कि वह उत्तर को लौट सके। चूँकि इस दल को चिपलूण में रहना है, वह समस्त अन्न और आवश्यक वस्तुएँ, जो दभोल के सूबे में वर्षा ऋतु के लिए एकत्रित कर दी गई थीं, लगभग पूर्णतया समाप्त हो गई हैं, जिसके कारण उस जिले के लोगों को बहुत कष्ट हुआ है क्योंकि अन्न, चारा और प्रत्येक अन्य वस्तु सेना के उपयोग के लिए ले ली गई है। गरम बसाख मास के २० दिन अभी और व्यतीत करने हैं।[१०] ऋतु की कठोरता के कारण शिविर-

---

१० अतः पत्र बैसाख सुदी १०=१६ अप्रेल, १६७३ ई० को लिखा गया है।

स्थान में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है। चूँकि खाद्य-पदार्थों की अत्यन्त आवश्यकता है, मैंने अधिकारियों को आज्ञा दे दी है कि विभिन्न गढ़ों से जो कुछ भी अन्न प्राप्त हो सके, उसको इकट्ठा कर लें और इस प्रकार मनुष्यों और घोड़ों के खाने-पीने का प्रबन्ध कर दें। अब आप अन्न और घास की विशाल सामग्री माँगेंगे और जब तक सामग्री मिलती जायगी बिना विचार के खा-पी डालेंगे और जब वर्षा ऋतु के बीच में सामग्री समाप्त हो जायेगी, आपको कुछ नहीं मिलेगा। अतः वर्तमान सामग्री को वर्षा ऋतु के अन्त तक चलाना है। अतः आपको बिना शिकायत के जो कुछ कारकुन दे स्वीकार कर लेना चाहिए और कुछ भी अधिक न माँगना चाहिए। परिणाम यह होगा कि सब को पर्याप्त मात्रा में भोजन मिल जायेगा तथा मनुष्य और घोड़े भूखे मरने से बच जायेंगे। अतः आपको बड़-बड़ाना नहीं चाहिए और न अधिकारियों से झगड़ना चाहिए अथवा उनको प्रत्येक तुच्छ आवश्यकता के लिए कष्ट न देना चाहिए। गोदामों में किसी को प्रवेश न करना चाहिए और न उनमें रखी हुई सामग्री का निस्संकोच उपयोग करना चाहिए। सिपाहियों और घोड़ों के लिए उन्हें जो मिले, लेते रहना चाहिए और काम चलाना चाहिए। कुछ लोग चाहेंगे कि जहाँ सूखी घास के ढेर हैं वहाँ खाना पकाने के लिए आग जला लें। कुछ की इच्छा होगी कि हुक्का पीने के लिए कोयले जला लें और इस प्रकार असावधानी से घास के ढेरों में आग लगा दें। यदि एक छप्पर में आग लग जायेगी तो वह सारे शिविर में शीघ्र फैल जायगी और अपरिमित हानि कर देगी। यदि ऐसी कोई दुर्घटना हो गई तो हानि की पूर्ति अधिकारियों और कृषकों पर किसी भी दण्ड के द्वारा न हो सकेगी। तब छप्पर डालने के लिए लकड़ी का एक टुकड़ा भी न मिलेगा और एक क्षण में कोई छप्पर तैयार नहीं हो सकता। परिस्थिति का ध्यान सब को रखना चाहिए। शिविर पर पहरा रखो और जब लोग खाना पकाते हों या घास जलाते हों तो देखो कि कोई अनिष्ट न होने पाये। यदि आप रात में रोशनी जलती रखेंगे, तो चूहे जलती हुई बत्ती उठा ले जा सकते

हैं और हानि पहुँचा सकते हैं। हमें सावधानी के लिए ऐसी दुर्घटनाओं से बचना है। आपको इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि आग न लगने पाये। घास और छप्परों के बचाने के लिए प्रत्येक सावधानी रखनी चाहिए। तभी लम्बी वर्षा ऋतु में घोड़े जीवित रह सकते हैं। यदि आप असावधान रहे तो घोड़े, अस्तबल और अन्न समाप्त हो जायेंगे। तब आप लोगों को लूटने लगेंगे; कुछ तो दरिद्र कृषकों का अन्न छीन लेंगे, कुछ उनकी रोटी छीन लेंगे, कुछ घास और लकड़ी, कुछ उनकी शाक-भाजी और भोज्य-सामग्री उठा ले जायेंगे। जब आपका आचरण ऐसा हो जायेगा, दरिद्र कृषकों का जीवन असम्भव हो जायेगा और वे भाग जायेंगे तथा कुछ भूखे मर जायेंगे। तब वे सोचेंगे कि आप मुगलों से भी बुरे हैं जो देश को लूट लेते हैं। इस प्रकार कृषकों और घोड़ों का शाप आपको लगेगा। इसको आप भली-भाँति समझ लें; चाहे आप सवार हों, चाहे पैदल, आचरण ठीक रखें। आप में से कुछ विभिन्न गाँवों में सरकारी अस्तबलों में ठहरे होंगे या अन्यत्र। रैय्यत को क्लेश पहुँचाना आपका काम नहीं है। अपने स्थान से बाहर भ्रमण करना आपका काम नहीं है। सरकार ने कोष से आपको आपका भाग दे दिया है। जो कुछ आपको चाहिए—अन्न, शाक, जलाने की लकड़ी या पशुओं के लिए घास—यदि वह बिकने आये तो उसको मोल लेना चाहिए अथवा आप खुले बाजार में जायें और मोल लें। आप किसी को विवश न करें और न किसी से झगड़ा करें। सरकारी अस्तबलों को जो रसद पहुँचा दी गयी है, वह समस्त वर्षा ऋतु के लिए पर्याप्त है। कारकुनों को यह आज्ञा दे दी गई है कि बचत को ध्यान में रखकर आपको खाद्य-सामग्री दें। जो कुछ आपको मिले आप ले लें, आप कभी भूखे नहीं मरेंगे। आपको प्रतिदिन भोजन अवश्य मिलेगा और घोड़े भी तगड़े हो जायेंगे। आप कारकुनों से बिगड़ें नहीं और कोठारों में घुसें नहीं और न जबरदस्ती चीजों को हस्तगत करें। अस्तबलों के लोग आग जलायेंगे, कुछ चूल्हे सुलगायेंगे और गलत जगहों पर खाना पकायेंगे और कुछ लोग बिना यह देखे कि सूखी घास पास ही में

पड़ी है, अपनी चिलमें जलाने लगेंगे। इस प्रकार अकस्मात् दुर्घटना हो सकती है। यदि एक कमरे में आग लग जायेगी, तो सारा स्थान जल जायेगा। अतः सब को उचित चेतावनी दे दें। अधिकारियों को चाहिए कि यह देखने के लिए कि सब हाल ठीक है, वे चक्कर काटा करें। इसी कारण मैं आपको इतने ब्यौरे से यह पत्र लिख रहा हूँ। समस्त जुमलेदारों, हवलदारों और कारकुनों को यह पत्र किसी से पढ़वाकर सुनाना चाहिए और उनको इसके अनुसार कार्य करना चाहिए। हम ध्यान रखेंगे कि हमको बहुधा, नहीं प्रतिदिन, समाचार मिलते रहें और हम उनको दण्ड देंगे जो आज्ञा का उल्लंघन करेंगे। जो कोई भी इस आज्ञा के विपरीत आचरण करेगा, कठोर दण्ड पायेगा और अपदस्थ किया जायेगा।"[11]

अपनी आज्ञा पर अटल रहना, निर्विवाद आज्ञा-पालन और कठोरतम अनुशासन, ये नियम हैं जो शिवाजी की विशेषता थे और जो उनको अपने समय के अन्य शासकों की अपेक्षा प्रगतिशील बनाये हुए थे। यह उनके उस ढंग से स्पष्ट होता है जिससे कि विजय-अभियान के समय या लूट में अपने सैनिकों के आचरण को वे नियन्त्रण में रखते थे। "दशहरे के दिन बड़ा दरबार होता था जब समस्त सिपाहियों, उनके घोड़ों और साज-सज्जा की सूक्ष्म परीक्षा होती थी और नियमों की स्पष्ट व्याख्या की जाती थी। युद्ध-काल में स्त्रियों, बच्चों, ब्राह्मणों, कृषकों और गायों के प्रति दुर्व्यवहार का निषेध था। मुख्य स्थान पर लौट आने पर लूट का समस्त माल जमा करा देना पड़ता था। उस समय धन, वस्त्र और उपाधियों के रूप में अच्छे काम के लिए पुरस्कार दिये जाते थे और उन अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था जो पीछे रहते थे अथवा लूट का माल हड़प लेते थे। लूट के अभियान से वापस आने पर वे इसका ध्यान रखते थे कि प्रत्येक वस्तु जो सैनिक लूट में लाये हों, अपने अधिकारी को दे दें। कूच पर चलते समय प्रत्येक सैनिक को उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति की सूची दे दी जाती थी और वापस होने पर इस

---

११ मराठा इतिहास के मूल स्रोत, पृ० ११७। शिवाजी संस्मरण, पृ० १५०।

मूल सूची से जो भी अधिक माल उसके पास होता, वह उसको देना पड़ता था। ईमानदारी का अच्छा पुरस्कार मिलता था और न्यूनतम अवज्ञा पर कठोर-दण्ड मिलता था।" प्रत्येक सैनिक को सेना में भरती होने के पहले सदाचार के लिये दो जमानतें देनी पड़ती थीं। जो सेवा में या कर्तव्य-पालन में मारे जाते, उनके सम्बन्धियों को मुआवज़ा मिलता था। जब शिवाजी किसी नगर पर आक्रमण करते तो वे चतुरता से गुप्त धन-राशि का पता लगा लेते थे। इसके परिणामस्वरूप लोगों को विश्वास हो गया कि उनमें अलौकिक शक्तियाँ थीं। फ्रेञ्च राजदूत जर्मेन ने उनके सरल जीवन की अत्यधिक प्रशंसा की है। यह जुलाई १६७७ ई० में तिरुवाड़ी के स्थान पर शिवाजी से मिला था। वह लिखता है—"शिवाजी के डेरे में तड़क-भड़क न थी, उसमें स्त्रियाँ न थीं, उसमें सामान न था। केवल दो तम्बू थे जो सादे, मोटे और सस्ते कपड़े के थे। एक उसका था और दूसरा उसके प्रधान मन्त्री का।"[१२]

७. नौ-सेना और जंजीरा का सिद्दी—अपने जीवन के आरम्भ में ही शिवाजी ने अनुभव किया कि अपनी सुरक्षा के लिए और विदेशी व्यापार के द्वारा अपनी सम्पत्ति की वृद्धि के लिए उनके पास अपनी ही प्रबल और स्वतन्त्र नौ-सेना का होना आवश्यक है। शिवाजी से १०० वर्ष से भी अधिक पहिले अहमदनगर के निजामशाह ने जंजीरा में अपनी नौ-सेना की स्थापना की थी और उसका अधिकार एक वीर हब्शी सिद्दी याक़ूतखाँ को दिया था जो नाविक-कला में निपुण था (१४९० ई०)। उसके दो कार्य थे–एक, तटीय व्यापार की देखभाल; और दूसरा, मुस्लिम यात्रियों को कुशलतापूर्वक मक्का पहुँचाना और वापस लाना। इस प्रकार जंजीरा का छोटा-सा राज्य स्थापित हो गया, जो शताब्दियों के राजनीतिक परिवर्तनों में भी सुरक्षित रहा।[१३]

---

१२ "फौरिन बायग्राफी", पृ० ३०९।

१३ अरबी शब्द जज़ीरा का अपभ्रंश जंजीरा है। इसका अर्थ है—टापू। यह राजपुरी बंक के मुहाने पर है। जंजीरा के सिद्दी सामन्त की पितृगत उपाधि याक़ूतखाँ पड़ गयी।

जब शिवाजी ने कल्याण पर आक्रमण किया और उत्तरी कोंकण के बीजापुरी भाग को हस्तगत कर लिया, तो इस सिद्दी सरदार ने अपने वीर नाविकों के विशाल दल द्वारा उनका डटकर सामना किया। अतः शिवाजी के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपनी नौ-सेना का निर्माण करें, ताकि सिद्दी के कार्यों को रोक सकें और पश्चिमी तट पर अपनी सत्ता को प्रबल बना सकें। इस प्रकार समस्त मराठा-काल में इन दोनों शक्तियों में परस्पर विरोध और युद्ध का स्थायी कारण उत्पन्न हुआ।

सिद्दी से शिवाजी का युद्ध १६५७ ई० में आरम्भ हुआ और उनकी मृत्यु-पर्यन्त जारी रहा। बीच-बीच में कुछ भारी लड़ाइयाँ भी होती रहीं। १६५९ ई० से उन्होंने अपने पेशवा मोरोपन्त पिंगले और व्यंकोजी दत्तो (आनाजी[14] का भाई) को प्रबल नौ-सेना के साथ सिद्दी का दमन करने के लिये भेजा। सिद्दी खैरियत पराजित हुआ और उसको शर्तें माननी पड़ीं जिनके द्वारा केवल जंजीरा (टापू) के किले को छोड़कर सिद्दियों के समस्त प्रदेशों को उसे शिवाजी को समर्पित करना पड़ा। जबकि पश्चिमी तट पर ये सैनिक कार्यवाहियाँ हो रही थीं, शिवाजी पर अफजलखाँ ने आक्रमण किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सिद्दी शिवाजी के पंजे से छूट गया। जब मिर्जा राजा जयसिंह घटना-स्थल पर प्रगट हुआ, सिद्दी ने मुगल सम्राट् के प्रति वफादारी प्रकट की और जयसिंह के समर्थन से अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसने अब एक दूसरा अड्डा सूरत में बना लिया। शिवाजी ने इसी बीच में अपनी नौ-सेना में वृद्धि कर ली थी और सिन्धदुर्ग, विजयदुर्ग, सुवर्णदुर्ग और अन्त में कोलाबा सहित चार शक्तिशाली दुर्गों का निर्माण करके वे सिद्दी के साथ संघर्ष को पुनः आरम्भ करने के लिए तैयार हो गये थे। शिवाजी के प्रत्येक गढ़ में पर्याप्त नाविक साज-सज्जा थी। इब्राहीमखाँ और मैनक भण्डारी उनके विश्वासपात्र नौ-सेना कमाण्डर

---

१४ आनाजी, व्यंकोजी तथा सोमाजी तीन भाई थे जिन्होंने वफादारी से शिवाजी की सेवा विभिन्न पदों पर रह कर की थी। आनाजी और सोमाजी सम्भाजी द्वारा मरवा दिये गये थे।

थे। गोआ के पुर्तगालियों सहित पश्चिमी तट की विभिन्न शक्तियों पर इन्होंने कल्यान से कारवार तक कुछ समय तक अपना सफल नियन्त्रण स्थापित कर लिया। पुर्तगालियों को शिवाजी से मित्रता रखने में ही बुद्धिमता जँची। उन्होंने स्वीकार कर लिया कि वे आवश्यकतानुसार उनको पश्चिम की बनी हुई तोपें और गोला-बारूद आदि सामग्री पहुँचाते रहेंगे।

मुगलों की सहायता और उनके प्रोत्साहन से सिद्दी की शक्ति निरन्तर बढ़ती गई। फलतः उसमें और शिवाजी में सतत् युद्ध होता रहा। यहाँ इसका पूरा वर्णन देना सम्भव नहीं है।[१५]

८. **शिवाजी का अँग्रेजों से सम्बन्ध**—जहाँ तक राजापुर के व्यापारियों का सम्बन्ध है, इस विषय की विवेचना पहले हो चुकी है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इन व्यापारियों और शिवाजी के स्वार्थों में वास्तव में कोई संघर्ष न था। पुर्तगालियों के विरुद्ध डच और अँग्रेजों का भारत में भूमि प्राप्त करने का इरादा न था। वे अपनी प्रवृत्तियों को व्यापार तक सीमित रखते थे, जिससे उनको उतना ही लाभ होता था जितना भारतीय राजाओं को। ठीक इसी समय अँग्रेजों ने अपने पुर्तगाली पड़ोसियों से बम्बई टापू को प्राप्त किया था। चूँकि सूरत पर सदैव शिवाजी के आक्रमण का भय रहता था, अँग्रेज यह योजना बना रहे थे कि अपना केन्द्र सूरत से हटाकर बम्बई ले आयें। यद्यपि कोई जोरदार टक्कर नहीं हुई थी तथापि राजापुर की घटना उनके हृदय में खटक रही थी। आगरा से बचकर भाग आने के बाद शिवाजी की शक्ति अत्यधिक बढ़ गई और अँग्रेज इस बात के लिए चिन्तित थे कि उनकी सद्‌भावना प्राप्त कर लें, ताकि उनके व्यापार को किसी प्रकार की हानि न हो।[१६] इस उद्देश्य से

---

१५ विद्यार्थी शिवाजी के १९ जनवरी, १६७५ ई० के पत्र को देखें, जो उन्होंने प्रभावली के अपने अधिकारी को नाविक साज-सज्जा के बारे में लिखा था—राजवाड़े, ८. ३१।

१६ शिवाजी और इंगलैण्ड के चार्ल्स द्वितीय के बीच जनवरी २५ से अगस्त २, १६६८ ई० में हुए पत्र-व्यवहार को देखिये। पूना मंडल क्वार्टर्ली, दिसम्बर १९४८, पृ० ८२।

सूरत के अध्यक्ष ने समय-समय पर शिवाजी के पास अपने दूत भेजे— अस्टिक १६७२ ई० में, निकलस् १६७३ ई० में, हेनरी आक्सेण्डेन १६७४ ई० में और आस्टिन १६७५ ई० में। इनमें से रायगढ़ में शिवाजी के अभिषेक के अवसर पर आक्सेराडेन के आगमन का ऐतिहासिक महत्व है। इस अँग्रेज ने शिवाजी के जीवन की इस महत्वशाली घटना का यथार्थ और पूर्ण वर्णन लिखा है। आक्सेराडेन शिवाजी के लिए बधाई सहित उपहार लाया था। तत्पश्चात् उनके बीच पारस्परिक व्यापार और मैत्री का सन्धि-पत्र लिखा गया। शिवाजी के जीवन-काल में उनके पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे।

६. क्या शिवाजी केवल लुटेरे ही थे ?—शिवाजी को प्रायः लुटेरा और विद्रोही कहा जाता है। इस आरोप का वास्तव में क्या अर्थ है, इसका निर्णय करने के लिए शिवाजी के जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण करना होगा। प्रत्येक देशभक्त तत्कालीन विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह करने पर विवश हो गया है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मुस्लिम लेखकों ने शिवाजी को विद्रोही कहकर सम्बोधित किया। मराठा लेखक भी उनको प्रशंसा के साथ पुराड (विद्रोही) कहते हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी जन्मभूमि को विदेशी पंजे से छुड़ाया। जैसे ही उन्होंने अभीष्ट शक्ति प्राप्त कर ली, वैसे ही उन्होंने नियमित शासन की स्थापना की और शासित प्रजा के हितों को उन्नत किया। परन्तु उन पर अभियोग नहीं लगाया जा सकता कि वे निर्दयी निर्द्वन्द्व डाकू थे। युद्ध के दौरान में उन्होंने वैधानिक रूप में शत्रु के प्रदेश और नगरों को लूटा। इसका कोई उदाहरण नहीं है कि उन्होंने निरपराध जनता को या उन राजाओं को लूटा जिनसे उनकी लड़ाई नहीं थी। मुस्लिम इतिहासकार खफीखाँ भी उनको इस अभियोग से मुक्त समझता है। उन्होंने धार्मिक स्थानों, मस्जिदों आदि को कभी अपवित्र नहीं किया। उन्हें जब भी धर्म-पुस्तक कुरान लूट में मिलती थी, वे उसका सम्मान करते थे और उचित आदर के साथ उसे वापस कर देते थे। उनकी सेना का यह कठोर नियम था कि हमले में स्त्रियों, बच्चों और धार्मिक पुरुषों को कोई कष्ट न पहुँचाया

जाये। युद्ध-बन्दियों के साथ सद्व्यवहार होता था और वे उचित मरहम-पट्टी के बाद मुक्त कर दिये जाते थे।

जब वे किसी नगर के निकट पहुँचते तो उनका साधारण व्यवहार यह था कि वे वहाँ के धनी और प्रभावशाली व्यापारियों को उनके युद्ध-व्यय में आवश्यक सहायता देने के लिए आमन्त्रित करते थे। यदि स्वेच्छा से धन दे दिया जाता, तो वे कभी बल का प्रयोग न करते थे। परन्तु जब उनकी माँग ठुकरा दी जाती थी तो जो कुछ हो सकता बलपूर्वक इकट्ठा करते थे। अधिकांश अवसरों पर शिवाजी की लूट केवल युद्ध-कर के रूप में होती थी। यह उसी प्रकार का कर था जैसे संसार की वर्तमान सरकारें बलपूर्वक लगाती हैं। शिवाजी इसका ध्यान रखते थे कि दरिद्र निरपराध कृषकों के जीवन-साधनों का अपहरण करके उन्हें हानि न पहुँचाई जाय। वह समृद्ध व्यापारियों पर बड़े-बड़े जुर्माने कर देते और उनके गुप्त संचित धन को लूट लेते थे अथवा मार्ग में जाते हुए शत्रु के धन-कोष को लूट लेते थे। जब शत्रु पराजित हो जाता तो वे उसके शिविर को लूट लेते थे और उसके डेरों, पशुओं, सामान या जो कुछ भी हाथ लग जाये उठा ले जाते थे। शिवाजी की इस बुद्धिमत्तापूर्ण और विवेकपूर्ण प्रणाली का मराठा-शासन के उत्तम दिनों में निरन्तर पालन होता रहा। अपने निपुण गुप्तचरों द्वारा अपने कार्यों के विषय में सही समाचार प्राप्त करने के लिए शिवाजी घोर प्रयत्न करते थे और वे उस सूचना के अनुसार इस प्रकार कार्य करते थे कि दूसरों को कम से कम हानि पहुँचे।

१०. विचारकों और लेखकों द्वारा शिवाजी का मूल्याङ्कन— अपने राष्ट्र-नायक के प्रति एक मराठे की सम्मति पर हम यह सन्देह कर सकते हैं कि वह अन्धश्रद्धा या राष्ट्रीय गर्व से प्रभावित है। अतः मैं शिवाजी के जीवन के सम्बन्ध में उन विदेशियों का मत उद्धृत करूँगा जिनमें से अधिकांश उस जाति के हैं जिसे शिवाजी के उत्तराधिकारियों से भारत का आधिपत्य छीनने के लिए चार घोर संग्राम लड़ने पड़े थे।

(१) एल्फिस्टन अपने इतिहास में शिवाजी का चरित्र संक्षेप में और सुन्दर रूप में इस प्रकार देता है—"एक शक्तिशाली सामन्त के पुत्र शिवाजी ने अपना जीवन लुटेरों के साहसी और चतुर कप्तान की भाँति प्रारम्भ किया और उन्नति कर निपुण सेनापति और सुयोग्य राजनीतिज्ञ हो गया। उसने चरित्र का वह आदर्श उपस्थित किया जिसकी समता उस समय से आज तक उसके देशवासियों में से कोई नहीं कर सका, और न उसके समीप ही पहुँच सका है। धर्म के प्रति उत्साह को जाग्रत कर उसके द्वारा मराठों की राष्ट्रीय भावना को उभाड़कर औरंगजेब की गलतियों से लाभ उठाने के लिए उसी के समान विलक्षण पुरुष की आवश्यकता थी। इन्हीं भावनाओं के बल पर दुर्बल हाथों में पड़ने पर भी उसका शासन बना रहा। यद्यपि आन्तरिक अव्यवस्था बहुत अधिक थी और यह अव्यवस्था बढ़ती गई, फिर भी उसके शासन ने भारत के अधिकांश भाग पर प्रभुता स्थापित कर ली।"

(२) अपनी पुस्तक 'पूर्वीय अनुभव' में सर रिचर्ड टेम्पिल लिखता है—"अपने पिता के बुद्धिसंगत सुझाव के अनुसार शिवाजी ने मराठा गढ़ों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और अन्तिम रायगढ़ पर अधिकार कर लिया। वहाँ पर पश्चिम भारत के शासक के रूप में शिवाजी ने आसन जमाया। यहीं से शिवाजी शासन करता था और यहीं उसका देहान्त हुआ। वह तीस वर्ष तक विद्रोह करता रहा था, लूटता था, युद्ध करता था और शासन करता था। इस गढ़ में उसने आधे भारत का धन एकत्रित कर लिया था। यह धन स्पेनी डालरों, सेक्विनों और दक्षिण योरुप और समस्त एशिया की मुद्राओं में था।

"शिवाजी केवल वीर पुरुष ही नहीं था, उसमें यह अद्भुत शक्ति थी कि दूसरे व्यक्तियों में उत्साह जाग्रत कर सके। उसी ने एक हीन जाति को निकृष्टतम दशा से उठाकर साम्राज्य के पद तक पहुँचा दिया। इसके अतिरिक्त शिवाजी महान् प्रशासक था। उसने बहुत सी संस्थाएँ स्थापित कीं जो उसके बाद एक शताब्दी से भी अधिक समय तक जीवित रहीं।"

(३) ऐकवर्थ कहता है—"जिस शक्ति से वह कार्य करता था उसका मापन उसकी देश-विजयों से करना सर्वथा अपूर्ण ही रहेगा। तत्कालीन किसी व्यक्ति को अपनी शक्ति और अपने विरोधियों की निर्बलता का शायद इतना सूक्ष्म और सही ज्ञान न था। अपने देशवासियों में केवल वही दोनों पक्षों की विकास-दिशा और उनके साधनों को भली-भाँति समझता था। उसने जान लिया था कि समय आ गया है जब मराठा जाति का पुनर्निर्माण हो सकता है, और उसने यह करके भी दिखाया। उसने देखा कि अत्यधिक गर्वशीलता, विशाल सम्पदा और प्रजा-जन की संख्या अधिक होते हुए भी अब मुस्लिम राज्यों में प्राचीन बल और सामर्थ्य का केवल नाम शेष रह गया है। एकाधिकारी शासन के दोषों और ईर्ष्याओं ने उसके हृदय को खोखला कर दिया है। आरम्भ से ही शिवाजी ने अपनी दृष्टि हिन्दू पुनरुत्थान की विशाल योजना पर लगा रखी थी। युद्ध-नेता और राजनीतिज्ञ दोनों विचारों से, जिनमें से प्रत्येक में वह सर्वोपरि था, उसका आचरण सिद्ध करता है कि कार्य और प्रशासन के कुछ मुख्य सिद्धान्तों के प्रति वह अटल रहा। इन सिद्धान्तों को उसने सफलता के लिए आवश्यक साधनों के रूप में प्रतिपादित किया था।

"१९वीं शताब्दी की आचार-नीति के अनुसार शिवाजी की महत्ता की विवेचना नहीं होनी चाहिए। अपने उद्देश्य की प्राप्ति में यद्यपि वह निर्द्वन्द्व था किन्तु वह अकारण बर्बरता के घृणित विकार से और क्रोध की शान्ति के लिए क्रूरता में आसक्त होने से सर्वथा मुक्त था।

"शिवाजी का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष और प्रयास से पूर्ण था। उसके लिए यह आवश्यक था कि वह अपनी योजनाओं को गुप्त रूप से बिना आडम्बर के इस प्रकार सफल बनाये कि यथासम्भव न्यूनतम लोग उसकी ओर ध्यान दे सकें। उसके शक्ति-सम्पन्न शत्रु औरंगजेब की अपेक्षा शिवाजी का चरित्र बहुत ही उच्च है। धर्म दोनों का सर्वोपरि अंग था। औरंगजेब में वह पतित होकर तुच्छतम, संकीर्णतम और अतिविद्वेषी धर्मान्धता को प्राप्त हो गया

था। औरंगजेब अपने पिता को कारागार में डालने वाला, अपने भाइयों की हत्या करने वाला, अपने पुत्रों पर सन्देह करने वाला निरंकुश शासक था। उसमें जन्मजात द्रोह-भाव इतना अधिक था कि वह दूसरों में विश्वास न रखता था। राजनीतिज्ञता केवल धूर्तता थी, उसकी शक्ति क्लर्क के अथक परिश्रम के समान थी। इसके विरोध में ऐसी राष्ट्रीय और धार्मिक क्रान्ति उपस्थित हुई जिसका भारत के इतिहास में उदाहरण नहीं और जिसका नेतृत्व ऐसे मेधावी पुरुष के हाथ में था जिसकी बुद्धि उतनी ही व्यापक और गम्भीर थी जितनी कि उसकी (औरंगजेब) सीमित और खोखली थी। औरंगजेब का जन्म केवल विनाश का कारण बनने के लिए हुआ था। यदि शिवाजी ईश्वर का अवतार हो जो हिन्दू-विजय और राज्य-स्थापना के निमित्त हुआ हो, तो ऐसा मालूम होता है कि औरंगजेब का जन्म केवल इसलिये हुआ कि मुस्लिम-साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दे।

"यद्यपि युद्ध-नायक के रूप में शिवाजी की विलक्षण बुद्धि को सभी स्वीकार करते हैं, परन्तु उसकी रचनात्मक और प्रशासकीय योग्यताओं एवम् विजय तथा शासन के सम्बन्ध में उसके विचारों की स्थिरता के प्रति कोई न्याय नहीं किया जाता।"[१७]

(४) एस० एम० एडवर्डस् लिखता है—"जातिगत पक्षपात को दूर करने में ज्ञानेश्वर से श्रीधर तक (१३००–१७००) मराठी कवियों और सन्तों की सफलता आंशिक और अस्थायी थी। परन्तु शिवाजी का अभ्युदय और उसका अपने राजनीतिक और सैनिक कार्यों में बहुत से लोगों को जिनमें अधिकांश ब्राह्मण नहीं थे, अपने साथ ले लेना, अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ। जब प्रभु लोग उसके नागरिक और सैनिक अधिकारियों का कार्य करने लगे, जब मराठे और भण्डारी उसकी स्थल और समुद्रीय सेनाओं का मुख्य भाग बन गये, जब कोली और रामोशी लोग सङ्कटग्रस्त उद्योगों में उसके साथी हो गये, और जब महार और माँग लोग उसके पर्वतीय

---

१७ "बैलैड्स ऑफ द मराठाज़" की भूमिका, अध्याय २०।

गढ़ों के रक्षक नियुक्त हो गये, तब जन-समुदाय को अवश्य ही समान राष्ट्रीयता का व्यावहारिक अनुभव स्पष्ट रूप से हो गया और परस्पर बहिष्कार करने वाली जातीय प्रथा की बुराइयों का ज्ञान हो गया, जो तुकाराम या नामदेव या एकनाथ या रामदास की शिक्षाओं के सार्वजनिक कथन से कभी नहीं हो सकता था, क्योंकि जनता सर्वथा निरक्षर थी।"

(५) बर्नियर (१६६६ ई० में) कहता है—"यह पुरुष शिवाजी स्वतन्त्र राजा के सम्पूर्ण प्रभुत्व से कार्य कर रहा है। वह मुगल और बीजापुर के सुल्तान की भर्त्सनाओं पर हँसता है, वह बारबार धावे बोलता है और सूरत से गोआ की सीमाओं तक प्रत्येक दिशा में देश को लूट लेता है। अपने साहसी और सतत् उद्योग से वह औरंगजेब का ध्यान अपनी ओर खींचता है और भारतीय सेनाओं को इतना व्यस्त कर देता है कि मुगलों को बीजापुर को पराजित करने का अवसर ही नहीं मिलता। उसके लिए (औरंगजेब) यह महत्वपूर्ण विषय हो गया है कि शिवाजी का किस प्रकार दमन किया जाए।

(६) सूरत के समकालीन अँग्रेज व्यापारी लिखते हैं–"शिवाजी सच्चा मित्र है, श्रेष्ठ शत्रु है और अत्यन्त चतुर राजा है।"

"वह आश्चर्य की सीमा तक सदैव विजयी होता रहेगा।"

"राजा शिवाजी ने, जिसकी कामना है प्रबल विजेता की ख्याति प्राप्त करना, कर्नाटक में प्रवेश किया और स्पेन में कैसर की सफलता के समान, वह आया, उसने देखा और विजय किया। उसने दो शक्तिशाली गढ़ों (जिंजी और वेल्लोर) पर अधिकार कर लिया है। वह इस कार्य में महान् सिकन्दर से कम निपुण नहीं है और वह बीजापुर का स्वामी हो गया है। उसने अपने ईश्वर के समक्ष यह प्रतिज्ञा की है कि जब तक वह दिल्ली नहीं पहुँच जाता और औरंगजेब को बन्दी नहीं बना लेता, वह अपनी तलवार को म्यान में नहीं रखेगा। यह प्रसिद्ध है कि शिवाजी द्वितीय सरटोरियस है और अपनी चतुर सैनिक चालों में हैनीबाल से कम नहीं है। वह अपने देश से प्रेम करता है, परन्तु

किसी के प्रति पक्षपाती नहीं है। उसकी सेवा में बहुत से मुसलमान हैं तथा उसकी जल-सेना का मुख्य अधिकारी मुसलमान है। परन्तु वह अपने हिन्दू भाइयों का इस्लाम या ईसाई मत में धर्म-परिवर्तन सहन नहीं कर सकता। औरंगजेब के प्रति प्रतिशोध की भावना का मुख्य अन्तर्निहित कारण उस सम्राट् की धर्म-नीति है।

(७) खफीखाँ कहता है—"शिवाजी ने सदैव अपने प्रदेश की जनता के सम्मान को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। विद्रोह के मार्ग में, यात्री-दलों के लूटने में और मनुष्य मात्र को कष्ट पहुँचाने में वह बराबर लगा रहा, परन्तु अन्य लज्जाजनक कार्यों से वह सदैव दूर रहा और हाथ में पड़ने पर मुसलमान स्त्रियों के सतीत्व को और बच्चों को सुरक्षित रखने में सदैव सतर्क रहा। इस विषय में उसके कठोर आदेश थे और जो कोई भी उनका पालन न करता था दण्ड पाता था।"

(८) शिवाजी के घोर शत्रु औरंगजेब ने उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर इस प्रकार लिखा था—"शिवाजी एक महान् सेनानायक था और वही एक ऐसा था जिसने नवीन राज्य-निर्माण की महत्ता प्रदर्शित की, जबकि मैं भारत के प्राचीन राज्यों को नष्ट करने का प्रयत्न करता रहा हूँ। मेरी सेनाओं का प्रयोग उसके विरुद्ध उन्नीस वर्ष तक होता रहा है (१६६०-१६७९) तो भी उसका राज्य बढ़ता रहा है।"—आर० सी० मजूमदार द्वारा लिखित 'एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑव इण्डिया', पृ० ४४८।

(९) १९२८ ई० में मद्रास में शिवाजी के जन्मोत्सव पर सर यदुनाथ सरकार ने कहा—"शिवाजी के राजनीतिक आदर्श ऐसे थे कि आज भी बिना किसी परिवर्तन के हम उन्हें स्वीकार कर सकते हैं। उनका उद्देश्य था—अपनी प्रजा को शान्ति देना, व्यापक सहनशीलता, समस्त जातियों और सम्प्रदायों को समान अवसर देना, प्रशासन की हितकर, सक्रिय और शुद्ध प्रणाली, व्यापार की उन्नति के लिए जल-सेना, और जन्म-भूमि की रक्षा के हेतु प्रशिक्षित नागरिक दल।

सर्वोपरि बात तो यह थी कि केवल विचार में नहीं, प्रत्युत कर्म द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय विकास का प्रयास किया। केवल महाराष्ट्र के निवासियों को ही नहीं वरन् भारत के ग्रन्य प्रान्तों के नवागतों को भी पूर्ण विश्वास था कि उन्हें कोई न कोई कार्य मिल ही जायेगा जिससे उनकी वास्तविक योग्यता प्रकाश में ग्रा जायेगी ग्रौर जिसके द्वारा राज्य के हितों की सेवा करते हुए ग्रपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। शिवाजी के शासन के कार्य ग्रनेक दिशाग्रों में फैले हुए थे, जिससे उनकी प्रजा पूर्ण ग्रौर ग्रनेकाङ्की विकास को प्राप्त कर सकी। समस्त ग्राधुनिक सभ्य राज्यों का भी यही उद्देश्य है।

"एक व्यक्ति की मूल शक्ति से इस समस्त राष्ट्रीय प्रसरण का उदय हुग्रा। शिवाजी नवीन महाराष्ट्र के केन्द्रीय शक्ति-स्रोत थे। प्रत्येक मनुष्य के चरित्र ग्रौर उसकी योग्यता को शीघ्र जाँच लेने तथा प्रत्येक कार्य के लिए उत्तम व्यक्ति का निर्वाचन करने की उनमें सर्वोपरि सामर्थ्य थी। वे स्वयं-शिक्षित थे। उन्होंने कभी किसी बड़ी राजधानी, शिविर या दरबार का दर्शन नहीं किया था। उनकी प्रशासकीय ग्रौर सैनिक प्रणालियाँ उनके देश ग्रौर काल के लिए पूर्णरूपेण उपयुक्त थीं ग्रौर वे स्वयं उनके द्वारा निर्मित हुई थीं। उन्हीं के हृदय ग्रौर मस्तिष्क से प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हुई थी। ग्रत: शिवाजी के इतिहासकारों को ग्राठ विभिन्न भाषाग्रों में उपलब्ध सामग्री का सावधानी के साथ ग्रध्ययन करने के बाद यह स्वीकार करना पड़ता है कि वे केवल मराठा जाति के निर्माता ही नहीं थे ग्रपितु मध्यकालीन भारत में महत्तम निर्माणकारी प्रतिभा के पुरुष थे। राज्यों का पतन हो जाता है, साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, राजवंश लुप्त हो जाते हैं, परन्तु शिवाजी सदृश राजा के रूप में वीर नायक की स्मृति मनुष्य मात्र के लिए ग्रमिट ऐतिहासिक विरासत के रूप में, जो जनता की ग्राशा का स्तम्भ ग्रौर संसार की कामना का केन्द्र है, हृदय को गति देने के लिए, कल्पना को जाग्रत करने के लिए ग्रौर उच्चतम प्रयासों के निमित्त उत्तर-कालों के मस्तिष्क

को प्रेरणा देने के लिए शेष रह जाती है, जैसा कि सन्त रामदास ने ठीक ही कहा है।[१८]

११. निष्कर्ष—शिवाजी अपने समय से बहुत आगे एक विलक्षण बुद्धि के पुरुष थे। हमारे समय के सभ्य राज्यों में जो सुधार और कार्य किये जा रहे हैं उनकी कल्पना उन्होंने स्वयं की और उन्हें कार्यान्वित किया। स्वतन्त्र मराठा राष्ट्र से सम्बन्धित उनकी राजनीतिक प्रवृत्तियों का ज्ञान जन-साधारण को है, परन्तु पूर्ण राष्ट्रीय जीवन को दृष्टि में रखते हुए सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक क्षेत्रों में उनके सुधारों का बहुत कम मूल्यांकन किया गया है। वे हिन्दुत्व के पक्षपाती अवश्य थे, परन्तु धर्मान्ध न थे। सब धर्मों का वे समान आदर करते थे। अपने राज्याभिषेक पर जिन सार्थक उपाधियों को विचारपूर्वक उन्होंने ग्रहण किया, वे उनकी आधुनिक भावना का सुन्दर उदाहरण हैं। उन्होंने प्रशस्त क्षत्रियवंशावतंस की उपाधि धारण की, जिससे उन्होंने तत्कालीन इस शास्त्रीय विचार को पूर्णतया असत्य सिद्ध कर दिया कि कलियुग में केवल दो उच्चतम और नीचतम जातियाँ--ब्राह्मण और शूद्र—शेष रह गई हैं।* एक अन्य उपाधि जो उन्होंने ग्रहण की, उसके द्वारा उन्हें यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वे दिल्ली और बीजापुर के राजाओं से और प्राचीनवंशीय राजपूत राजाओं से समान स्तर पर व्यवहार कर सकें। मराठा जाति का प्रत्येक सामन्त राजा की भाँति सम्बोधित किये जाने के लिए उनका उपयोग करता था; परन्तु शिवाजी ने अपने आधिपत्य को सिद्ध करने लिए महाराजा छत्रपति की उपाधि धारण की, जो प्राचीन वैदिक विचार के अनुकूल थी।

---

१८ शिवचरित आठवावें। कीर्तिरूपें ॥

शिवराजाचें आठवावें रूप। शिवराजाचा आठवावा प्रताप।
शिवराजाचा आठवावा साक्षेप। भूमंडलीं।

* कलावाद्ययन्तोः स्थितिः। शिवाजी ने जो उपाधियाँ धारण कीं वे हैं—क्षत्रियकुलावतंस, सिंहासनाधीश्वर, महाराज छत्रपति।

कठोरतम मापदण्ड स्थिर करने पर भी शिवाजी का व्यक्तित्व निस्सन्देह अद्‌भुत सिद्ध होता है—केवल उस समय में ही नहीं बल्कि आधुनिक समय में भी। उस समय व्याप्त अन्धकार में वे उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति प्रकाशमान हैं। शिवाजी के समय के भारत की तुलना पश्चिम की वैज्ञानिक विद्या और राजनीतिक प्रगति से नहीं हो सकती। योरुप का ठीक उसी समय मध्यकाल के अन्धकार से उदय हुआ था और वह व्यावहारिक विज्ञान में तीव्र उन्नति कर रहा था। बारूद के प्रादुर्भाव से, नाविकों के कुतुबनुमा के उपयोग से तथा मुद्रण-कला के आविष्कार से योरुप को लौकिक सत्ता और समृद्धि में नेतृत्व और बाह्य जगत की पिछड़ी हुई जातियों पर प्रभुत्व प्राप्त हो रहा था। कुस्तुन्तुनिया का पतन हो चुका था, अमेरिका की खोज हो गई थी, बेकन ने पराम्परागत पांडित्य को आविष्कार और प्रयोग की नवीन धाराओं में परिवर्तित कर दिया था। अन्वेषक किसी वस्तु को महापवित्र या अस्पृश्य नहीं मानता था। योरुप ने मृतप्राय भूतकाल से अपना मुँह फेर लिया था और आशामय प्रसन्नता से आगे बढ़ रहा था, जब कि पूर्वीय देशों में प्रकाश की किरणें मन्द होकर अन्त में लुप्त हो गयीं और मिथ्याविश्वास, अज्ञान और निरन्तर निराशा के दलदल में वह अधिकाधिक डूबता गया।

इस अन्धकार को शिवाजी के आकस्मिक आगमन ने दूर कर दिया और राष्ट्रीय उद्धार के नवीन मार्ग की ओर संकेत किया। इसके लिए शिवाजी को और भी अधिक श्रेय है क्योंकि अपने ही उपक्रम से उन्होंने यह सब कुछ किया। भारत में कोई बेकन प्रकट नहीं हुआ था जो मानवी उन्नति का नवीन मार्ग प्रदर्शित करता। इस नवीन मार्ग का स्वप्न उनके गुरु रामदास ने भी नहीं देखा था। शिवाजी ने बहुसंख्यक अनुचरों को एकत्रित किया और उनको शिक्षित किया जो योग्य थे, यद्यपि उनकी समता न कर सकते थे, जो उनके कार्य को उनकी मृत्यु के बाद ऐसे संकल्प से करते रहे कि वह मराठा-इतिहास में रोमांचकारी सिद्ध हुआ है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि वे मराठा-राष्ट्र के निर्माता हैं, या जैसा कि

सर यदुनाथ सरकार ने सुन्दर शब्दों में कहा है, "शिवाजी अन्तिम महान् निर्माणकारी विलक्षण बुद्धि वाले राष्ट्र-निर्माता थे, जो हिन्दू जाति में उत्पन्न हुए। उन्होंने मराठा जाति में नवीन जीवन फूँक दिया। उन्होंने मराठों को स्वतन्त्र आत्म-विश्वासी बना दिया, जो अपनी एकता और सौभाग्य का ज्ञान रखते थे और उनकी सबसे अमूल्य विरासत वह भावना थी जो उन्होंने अपनी जाति में फूँक दी। उन्होंने अपने उदाहरण से सिद्ध कर दिया कि हिन्दू जाति राष्ट्र का निर्माण कर सकती है, वह राज्य की स्थापना कर सकती है और शत्रुओं को पराजित कर सकती है। वे अपनी सुरक्षा का भार वहन कर सकते हैं, वे साहित्य, कला, वाणिज्य और उद्योग की रक्षा कर सकते हैं और उनको उन्नत कर सकते हैं। वे अपनी निजी नौ-सेनाएँ रख सकते हैं और विदेशियों से मुकाबले के समुद्री-युद्ध भी लड़ सकते,हैं। आधुनिक हिन्दुओं को उन्होंने यह शिक्षा दी कि वे अपनी उन्नति के पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हों। शिवाजी ने यह स्पष्ट कर दिया कि वास्तव में हिन्दुत्व का वृक्ष सूख नहीं गया है। शताब्दियों की राजनीतिक दासता के भार के नीचे से उसका उदय हो सकता है। इसमें नई पंक्तियाँ और शाखाएँ फूट सकती हैं। यह पुनः अपना सिर आकाश तक ऊँचा कर सकता है।

तिथिक्रम

अध्याय १३

२४ फरवरी, १६७०	राजाराम का जन्म।
अप्रेल १६८०	छत्रपति के आसन पर राजाराम का आसीन होना।
१८ जून, १६८०	सम्भाजी को रायगढ़ का अधिकार प्राप्त।
२० जुलाई, १६८०	सम्भाजी का राजाराम को बन्दी बनाना और छत्रपति होना।
२३ अगस्त, १६८०	सम्भाजी के दान-पत्र का प्रकाशन।
अक्टूबर १६८०	मोरोपन्त पिंगले की मृत्यु; उसका पुत्र पेशवा नियुक्त।
नवम्बर १६८०	मुगलों के विरुद्ध सम्भाजी का अभियान प्रारम्भ।
१६ जनवरी, १६८१	सम्भाजी का अभिषेक।
१६ जनवरी, १६८१	राजकुमार अकबर का अपने को सम्राट् घोषित करना।
अप्रेल १६८१	अजमेर के समीप राजकुमार अकबर की पराजय और पलायन।
९ मई, १६८१	दक्षिण के लिए राजकुमार अकबर का नर्मदा पार करना।
२० मई, १६८१	राजकुमार अकबर द्वारा अपनी योजनाओं की सूचना सम्भाजी को भेजना।
१ जून, १६८१	राजकुमार अकबर का पाली (पादशाहपुर) पहुँचना।
१ जून, १६८१	आजमशाह द्वारा अकबर का पीछा करना।
अगस्त १६६१	शम्भाजी को विष देने का प्रयास।
८ सितम्बर, १६८१	औरंगजेब का अजमेर से दक्षिण को प्रयाण।
अक्टूबर १६८१	सम्भाजी द्वारा आनाजी दत्तो और उसके भाई सोमाजी को प्राणदण्ड; बालाजी आवजी, सोयराबाई आदि को प्राण-दण्ड।
१३ नवम्बर, १६८१	औरंगजेब का बुरहानपुर पहुँचना।
१३ नवम्बर, १६८१	पाली में अकबर से सम्भाजी की भेंट।
दिसम्बर १६८१	जंजीरा के सिद्दी का मराठा प्रदेश पर आक्रमण।

आरम्भिक मास, १६८२	सिद्दी और दादाजी रघुनाथ के बीच जंजीरा में भयानक युद्ध ।
२२ मार्च, १६८२	औरंगजेब का औरंगाबाद पहुँचना ।
अप्रेल १६८२	औरंगजेब द्वारा शहाबुद्दीन खाँ और दलपत बुन्देला का सम्भाजी के विरुद्ध नासिक भेजा जाना ।
२२ मई, १६८२	औरंगजेब को सिंहासन-च्युत करने की योजना के सम्बन्ध में सम्भाजी का रामसिंह को पत्र लिखना ।
दिसम्बर, १६८२	रायगढ़ में ब्रिटिश दूतों का सम्भाजी से मिलना ।
१६८३	सम्भाजी का चौल और गोआ में पुर्तगालियों पर आक्रमण करना ।
फरवरी १६८३	अकबर का सैन्य-संग्रह करना ।
शरत् १६८३	औरंगजेब हताश; उसका अपने सेनापतियों का सम्मेलन बुलाना ।
अक्टूबर १६८३	पुर्तगालियों पर सम्भाजी की विजय ।
नवम्बर १६८३	सम्भाजी की गोआ से वापसी ।
फरवरी १६८४	औरंगजेब के विरुद्ध अकबर और कवि कलश के सम्मिलित प्रयास ।
२७ जुलाई, १६८४	आजमशाह के दूत का कवि कलश से मिलना ।
२० अगस्त, १६८४	अकबर द्वारा अपने भाई के शान्ति-प्रस्ताव की अस्वीकृति ।
दिसम्बर १६८४	परस्पर विचार-विनिमय के लिए अकबर और कवि कलश की भेंट ।
जनवरी १६८५	सम्भाजी द्वारा बरार, खानदेश और भड़ौच की बरबादी ।
२७ मार्च, १६८५	औरंगजेब का बीजापुर को घेर लेना ।
१२ सितम्बर, १६८६	औरंगजेब का बीजापुर को जीत लेना ।
२८ जनवरी, १६८७	औरंगजेब का गोलकुण्डा पर घेरा डालना ।
फरवरी १६८७	अकबर का फारस को और दुर्गादास का राजपूताना को प्रस्थान ।
अक्टूबर १६८७	वाई का युद्ध; हम्बीरराव मोहिते की मृत्यु ।
१ अक्टूबर, १६८७	औरंगजेब का गोलकुण्डा को हस्तगत करना ।
जनवरी १६८८	अकबर का ईरान में इस्पहान पहुँच जाना ।
अन्तिम मास, १६८८	कवि कलश का शिर्के परिवार से युद्ध और उसका विशालगढ़ भाग जाना ।

जनवरी १६८९	सम्भाजी और कवि कलश का विशालगढ़ से प्रस्थान और संगमेश्वर पर रुकना।
१ फरवरी, १६८९	सम्भाजी और कलश का पकड़ा जाना।
११ मार्च, १६८९	सम्भाजी और कलश को प्राणदण्ड।
१६९६	अकबर की कन्या के साथ दुर्गादास की औरंगजेब से ब्रह्मपुरी में भेंट।
१७०४	ईरान में अकबर की मृत्यु।

अध्याय १३

उग्र सम्भाजी

[१६८०–१६८९]

१. राज्यारोहण।
२. सम्भाजी के पास अकबर का भागकर आना।
३. औरंगजेब का दक्षिण में आगमन।
४. सम्भाजी के राज्यकाल का रक्तमय आरम्भ।
५. विशाल योजनाएँ।
६. औरंगजेब का पराभव।
७. सम्भाजी द्वारा पुर्तगाली आतंकित।
८. अकबर का दुःखद अन्त।
९. वीर दुर्गादास।
१०. सम्भाजी का पकड़ा जाना।
११. दुःखद मृत्यु।

१. राज्यारोहण––महान् शिवाजी ने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किये बिना ही प्राण-त्याग किया था। उनके दो पुत्र थे––बड़ा सम्भाजी था जो उस समय २२ वर्ष का था। वह वीर और साहसी था, परन्तु उसने दुर्व्यवहार किया था। इस कारण उसके पिता का विश्वास उस पर नहीं था। वह पन्हाला के गढ़ में बन्दी था। छोटा पुत्र राजाराम उस समय ठीक दस वर्ष का था, उसका जन्म २४ फरवरी, १६७० ई० को हुआ था। उसके पिता की मृत्यु का शोक-समय व्यतीत हो जाने पर उसकी माता सोयराबाई ने रायगढ़ में उसको राजगद्दी पर बैठा दिया। वह अत्यन्त महत्वाकांक्षिणी महिला थी, परन्तु उसमें राज्य-कार्य की योग्यता न थी। शिवाजी का विश्वासपात्र मंत्री बालाजी आवजी उसका समर्थक था। उसने स्वयं अपने हाथ से पन्हाला के किलेदार को पत्र लिखा, जिसमें उसने अपने कार्य की व्याख्या की थी और उसको आदेश दिया था कि सम्भाजी पर सख्त पहरा रखे। परन्तु शिवाजी की मृत्यु का समाचार

बहुत दिनों तक सम्भाजी से गुप्त न रखा जा सका। उसने किलेदार को मार डाला, पन्हाला पर अधिकार कर लिया और रायगढ़ की ओर प्रयाण के लिए तैयार हो गया। मंत्री सेनापति हम्बीरराव मोहिते उस समय करहाड़ के समीप था जो पन्हाला से दूर नहीं है। उसको सोयराबाई की योजनाओं की कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई थी। वह सम्भाजी से मिल गया। इस बीच में शिवाजी के दो प्रमुख मंत्री--मोरोपन्त पिंगले और आनाजी दत्तो--जिन्होंने सोयराबाई की योजनाओं का समर्थन किया था, उसकी आज्ञा से सम्भाजी को अहित करने से रोकने के लिए पन्हाला की ओर प्रयाण कर रहे थे। वे सम्भाजी की उक्त कार्यवाही की सूचना पाकर हतबुद्ध हो गये। सम्भाजी उन्हें पकड़ने में समर्थ हो गया और उसने इन दोनों को कठोर पहरे में पन्हाला में कैद कर दिया। सोयराबाई और उसके समर्थकों का दमन करने के दृढ़ निश्चय से सम्भाजी ने २० हजार सेना सहित रायगढ़ की ओर प्रयाण किया और बिना किसी प्रतिरोध के १८ जून को राजधानी पर अधिकार कर लिया। राजाराम और सोयराबाई को कठोर कारागार में डालकर वह २० जुलाई को विधिवत् राजसिंहासन पर बैठ गया। इस सहज सफलता की खुशी में उसने अपनी कुलदेवी भवानी को १० हजार स्वर्ण होन वार्षिक[1] का तुरन्त अनुदान कर दिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि कार्य निर्विघ्न रूप से चल रहा है। अक्टूबर में मोरोपन्त पिंगले का देहान्त हो गया और सम्भाजी ने उसके पुत्र नीलोपन्त को पेशवा नियुक्त कर दिया। राज्याभिषेक-संस्कार विधिपूर्वक १० जनवरी, १६८१ ई०, तदनुसार माघ सुदी ७, को सम्पादित हुआ। महाराष्ट्र के क्षुब्ध वातावरण में शीघ्र ही यथापूर्व शान्ति स्थापित हो गई।

२. सम्भाजी के पास अकबर का भागकर आना—१६७९ ई०

---

१ यह एक अप्रकाशित संस्कृत लेख है, जिसमें स्पष्ट २३ अगस्त, १६८० ई० तारीख अङ्कित है और सम्भाजी तथा उसके मंत्रियों के हस्ताक्षर हैं। इसमें सम्भाजी और उसके वंशजों के जीवन की उपयोगी बातें दी गई हैं।

में औरंगजेब ने राजस्थान के राजाओं के विरुद्ध अकारण युद्ध प्रारम्भ किया था। इसकी तीव्र निन्दा एक खुले पत्र में शिवाजी ने की थी। उसका फल विचित्र ढंग से सम्भाजी के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। औरंगजेब का पुत्र अकबर अपने पिता के निरीक्षण में युद्ध का संचालन कर रहा था। प्रबल राजपूत-संघ के विरुद्ध उसका परिश्रम व्यर्थ रहा। औरंगजेब के कई पुत्रों में राजकुमार अकबर उसका सर्वाधिक प्रिय पुत्र था। क्योंकि उसकी माता का देहान्त उसकी शैशवावस्था ही में हो गया था, अतः स्वयं उसके पिता ने बहुत सावधानी और प्रेम से उसका पालन-पोषण किया था। बड़ा होने पर अपने सब भाइयों में वह सर्वाधिक चतुर और योग्य सिद्ध हुआ। जहाँ पर दृढ़ता और विचारपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता पड़ती थी उसका पिता प्रायः उसी को नियुक्त करता था। औरंगजेब राठौर-विद्रोह का दमन करना चाहता था, उसने अपनी सेनाओं का संचालन अकबर के सुपुर्द किया और स्वयं उसको निर्देश दिये कि वह किस प्रकार युद्ध करे। यह युद्ध घातक सिद्ध हुआ, छूत की तरह चारों ओर फैल गया और इसने राजपूताने की रियासतों को एक सम्मिलित विरोध के लिए संगठित कर दिया। अकबर ने एक वर्ष व्यर्थ नष्ट कर दिया। वह प्रबल शत्रु से संघर्ष करता रहा। उसने जंगली ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में भयानक हानि उठाई। अन्त में उसने राजपूतों से शान्ति के लिए वार्तालाप प्रारम्भ कर दिया और अपने पिता से प्रस्ताव किया कि सम्मानपूर्ण शर्तों पर, जिनको राजपूत स्वीकार करने को तैयार थे, युद्ध समाप्त कर दिया जाये। वीर राठौर नेता दुर्गादास से उसका विचार-विमर्श हुआ, जिसने निम्न शब्दों में अकबर की उदारता के प्रति करुण प्रार्थना की—

"हम से सम्राट् इतने रुष्ट क्यों हैं? हम उनके स्वामिभक्त सेवक हैं और यदि अकबर महान् की नीति का अनुसरण करके हमें शान्ति से रहने दिया गया तो हम सम्राट् के अधीन मैत्री-सम्बन्ध कायम रखते हुए स्वामिभक्त बने रहेंगे। परन्तु यदि हम से निरन्तर युद्ध किया गया तो हम कभी भी पीछे नहीं हटेंगे,

जब तक कि हमारी नसों में राजपूत रक्त की अन्तिम बूँद भी शेष है।" अकबर स्थिति को ठीक-ठीक समझ गया। उसने अपने पिता को युद्ध समाप्त करने की सलाह दी, परन्तु औरंगजेब को यह विवेकपूर्ण नीति ग्राह्य न थी। उसने कटु शब्दों में अकबर की भर्त्सना की। अकबर इसका का बुरा मान गया और दुर्गादास तथा उसके वीर साथियों की प्रेरणा से उसने अपने पिता के विरुद्ध खुला विद्रोह कर दिया और ठीक उसी समय जनवरी १६८१ ई० में जब रायगढ़ में सम्भाजी अपना राज्याभिषेक कर रहा था, उसने स्वयं अपने आप को सम्राट् घोषित कर दिया। इस प्रकार औरंगजेब को विकट स्थिति का सामना करना पड़ा। उस समय वह अजमेर में था और घटनाक्रम को सावधानी से देख रहा था। राजपूतों ने अकबर के नेतृत्व में उसके विरुद्ध प्रयाण किया। औरङ्गजेब की स्थिति तब इतनी नाजुक हो गई थी कि वह यह न विचार सका कि अपने पिता की जो दशा उसने कर दी थी उससे स्वयं अपने आप को वह किस प्रकार बचाये? चतुर सम्राट् ने अपने पुत्र के हाथों में बन्दी बनने से अपने को बचाने के लिए जो चाल चली, उसका विस्तृत विवरण देना यहाँ सम्भव नहीं है। वह बड़ी चतुराई से अपने शत्रुओं को पराजित करने में सफल हुआ और, परिणामस्वरूप, अकबर और दुर्गादास दोनों को अपने प्राणों की रक्षा के लिए दक्षिण की ओर भागकर राजा सम्भाजी की शरण में आना पड़ा, जब कि अन्य सभी दिशाओं में उनके पलायन का मार्ग बन्द हो गया था। पीछा करने वाली सेनाओं से वे बच निकले और ९ मई को उन्होंने नर्मदा पार की, जहाँ से दो दिन बाद अकबर ने सम्भाजी को निम्न पत्र लिखे—

"राजगद्दी पर बैठते ही मेरे पिता सम्राट् औरंगजेब ने हिन्दुओं का दमन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। राजपूतों के विरुद्ध उनके युद्ध का एकमात्र यही कारण है। ईश्वर के लिए सब मनुष्य समान रूप से उसके बालक हैं और अपने शासक से निष्पक्ष सुरक्षा प्राप्त करने के अधिकारी हैं। मुझे विश्वास हो गया है कि अपनी इस कटु नीति से मेरे पिता देश पर अपने अधिकार को खो देंगे

अौर मैंने निश्चय किया है कि उनके इस विनाशकारी प्रयास में मैं उनका विरोध करूँ। अतः मित्र की भाँति मैं आपके पास आ रहा हूँ क्योंकि आपका राज्य सम्राट् की पहुँच के बाहर है। वीर दुर्गादास राठौर मेरे साथ हैं। मेरे इरादे पर आप कृपया मिथ्या सन्देह न करें। यदि ईश्वर की कृपा से अपने पिता को राजच्युत करने में मैं सफल हो गया तो मैं केवल नाममात्र का स्वामी रहूँगा और समस्त सत्ता का उपभोग आपके हाथों में रहेगा। सम्राट् के दमन में हमारा पूरा सहयोग होगा। आगे की बातचीत जब हम मिलेंगे तब होगी।"

२० मई को अकबर ने फिर लिखा, "अत्यधिक सम्भव है कि मेरा पत्र आपको न पहुँचा हो अन्यथा आप मुझे उत्तर अवश्य भेजते। उचित यही है कि आप मुझे पत्र लिखने में न चूकें। आप से मिलने की इच्छा के अतिरिक्त अधिक क्या ?" इसके बाद अकबर के दीवान ने इसी आशय के पत्र सम्भाजी को लिखे।[२]

इस पत्र के बाद अकबर स्वयं रवाना हुआ और नासिक और त्रिम्बक के मार्ग से खानदेश और बागलान में होकर उत्तर कोंकण में यात्रा करता हुआ वह १ जून को रायगढ़ से २५ मील उत्तर नागोथना के समीप पाली पहुँच गया। यहाँ सम्भाजी के प्रतिनिधि उससे मिले और उसका आतिथ्य-सत्कार किया। शाहजादे का निवास-स्थान होने के कारण पाली गाँव का नाम आगे चलकर पादशाहपुर पड़ गया। उस स्थान पर उसके पहुँचते ही पश्चिमी वर्षा सदा की भाँति आरम्भ हो गई और उसके कारण उस छोटी सी झोंपड़ी की असुविधाएँ और भी अधिक बढ़ गईं, जिस पर फूस का छप्पर पड़ा हुआ था, जिसकी दीवारें मिट्टी की थीं, जिस पर गोबर लिपा हुआ था और जो सफेद कपड़े से ढकी हुई थी। यहाँ पर मुगल राजकुमार को ठहरना पड़ा, जिनका पालन-पोषण दिल्ली के भव्य राजभवनों में हुआ था, जहाँ पर कालीन बिछा हुआ संगमरमर का फर्श भी उसके पैरों के लिए अधिक कोमल न था। एक मुक्ता-माला, एक कलगी और एक हजार मुहरों की भेंट सहित हीरोजी फर्जन्द और नेताजी पालकर

२ सर यदुनाथ सरकार लिखित "हाउस ऑफ शिवाजी", पृ० १८०।

को सम्भाजी ने उसकी सेवा के लिए भेजा। वे उसके लिए अति साधारण निवास और भोजन का प्रबन्ध ही कर सके। नेताजी पाल्कर एकमात्र वृद्ध पुरुष था जिसको राजसी जीवन और उत्तर के आचार-व्यवहार की जानकारी थी। उसको आज्ञा दी गई कि वह अकबर के पास रहे और उसकी सुविधा का प्रत्येक सम्भव ध्यान रखना उसका कर्तव्य था। राजा को इस घटना का वृत्तान्त देने के लिये हीरोजी रायगढ़ वापस आ गया।

उस परिस्थिति में यह आशा नहीं की जा सकती थी कि इन दो विचित्र व्यक्तियों—सम्भाजी और अकबर—के सम्पर्क से उनमें से किसी को लाभ पहुँचेगा, यद्यपि उन दोनों की हार्दिक इच्छा थी कि सम्राट् के दमनार्थ अपने सहप्रयत्न में वे एक दूसरे का समर्थन करें। परन्तु अपने पिता के घोरतम शत्रु के प्रिय पुत्र की बातों में सम्भाजी निःशंक विश्वास कैसे कर सकता था। क्या यह सम्भव न था कि वह विशेष गुप्तचर हो जिसका कार्य मराठा राज्य को भुलावे में डालकर इस नव-स्थापित मराठा राज्य का सर्वनाश करना हो, विशेषकर ऐसे समय में जब महान् शिवाजी जीवित न थे? सम्भाजी की घरेलू परिस्थिति पहले से ही पर्याप्त कष्टकारक और निराशाजनक थी, वह ऐसी न थी कि दूसरों के प्रति विश्वास हो सके—विशेषकर अकबर सदृश राजकीय अतिथि के प्रति। सम्भाजी का ऐसा कोई मित्र या विश्वासपात्र भी न था जो राज्य-कार्य में उसको परामर्श दे सके और उसका मार्ग-प्रदर्शन कर सके। वह भली-भाँति जानता था कि उसके पिता के समय से ही वह किसी को प्रिय न था। वह केवल तलवार की धार पर ही अपनी आज्ञा का पालन करा सकता था। इसके विपरीत, बिना किसी पूर्व-सूचना या आशा के इस कष्टप्रद ऋतु में अकबर का महाराष्ट्र में आगमन सम्भाजी के लिए इतना भारी भार हो गया कि वह अपने सम्पन्न अतिथि की सुविधा और सत्कार का उचित प्रबन्ध न कर सका। ऐसा भी हो सकता है कि एक दूसरे की भाषा से अपरिचित होने के कारण वे सुविधापूर्वक अपने भावों को व्यक्त न कर सकते हों। उनका एक-

मात्र माध्यम सम्भाजी का मन्त्री कवि कलश था। प्रारम्भिक वार्तालाप में वर्षा ऋतु के चार मास नष्ट हो गये, तब सम्भाजी और अकबर का प्रथम विधिवत् सम्मिलन १३ नवम्बर, १६८१ ई० को हुआ।

इन दो नवयुवक राजकुमारों में अन्त में मतभेद हो गया, इसका वास्तव में चाहे जो कारण रहा हो किन्तु वे दोनों ६ वर्षों तक (जून १६८१ से फरवरी १६८७ ई० तक) एक दूसरे को यथाशक्ति समर्थन देने का सतत प्रयास करते रहे। दुर्भाग्य से उनके प्रयास सफल नहीं हुए।

३. औरंगजेब का दक्षिण में आगमन—औरंगजेब का यह इच्छित स्वप्न था कि सम्पूर्ण भारतीय महाद्वीप को पूर्णतया अपने अधीन कर ले। इस कार्य के असफल प्रयत्न उसके योग्य पूर्वजों ने किये थे, और अब शिवाजी का देहान्त हो जाने से दक्षिण की विजय उसको अपेक्षाकृत सरल प्रतीत हुई। जब जून १६८१ ई० में अजमेर में उसे यह ज्ञात हुआ कि अकबर सम्भाजी के पास शरणार्थ भाग गया है, तब उसको परिस्थिति की गम्भीरता पूर्णतया ज्ञात हुई और उसने तुरन्त अपने द्वितीय पुत्र आजमशाह को उसका पीछा करने के लिए भेज दिया। अपने उत्तरी साम्राज्य की रक्षा का प्रबन्ध पूरा करके वह स्वयं भी सितम्बर में उसके पीछे चल दिया। उसके अधिकांश अनुभवी सेनापति और पुत्र एवं पौत्र उसके साथ थे। सर्वोत्तम अस्त्र-शस्त्र और अधिकाधिक धन उसके अधिकार में था। १३ नवम्बर, १६८१ ई० को औरंगजेब बुरहानपुर पहुँचा। कुछ और दक्षिण की ओर बढ़कर २२ मार्च, १६८२ ई० को उसने औरंगाबाद में डेरा डाल दिया।

हीरोजी फर्जन्द और अन्य विचारवान व्यक्तियों को अकबर और दुर्गादास से पाली में मिलने के बाद यह स्पष्ट हो गया कि सम्भाजी के लिए यह उपयुक्त अवसर है कि वह मुगल नियन्त्रण से अपनी मातृ-भूमि को मुक्त करने के अपने पिता के कार्य को सम्पादित करे और औरंगजेब के आक्रमण के विरुद्ध प्रबल प्रतिरोध का संगठन कर सके। परन्तु सम्भाजी की ओर से उनको अतीव निराशा हुई; उसमें न तो

वह चरित्र था और न वह सामर्थ्य जो इस विशाल कार्य के लिए और इस परीक्षा-काल में राष्ट्र के नेतृत्व के लिए आवश्यक थी। प्राप्त अवसर से पूर्ण लाभ उठाने में शिवाजी निपुण थे, किन्तु सम्भाजी में यह विशेषता न थी। उसे अपने अफसरों और सहायकों में, अपने अधीर और सशंक स्वभाव के कारण, विश्वासघात और विद्रोह की बू आया करती थी। सम्भाजी और अकबर दोनों की प्रत्येक गति-विधि से सम्राट् परिचित रहता था, क्योंकि उसके गुप्तचरों का जाल बिछा हुआ था और वह इससे पूर्ण लाभ उठाता था। उसने सम्भाजी के अनुचरों को प्रलोभन दिये और उनमें राजद्रोह के बीज बो दिये। उस समय रायगढ़ में सम्भाजी अपनी पारिवारिक एवं शासकीय कलह में ग्रस्त था और इस प्रकार उसकी स्थिति बहुत कुछ निर्बल हो गई थी।

४. सम्भाजी के शासन का रक्तमय आरम्भ—सम्भाजी की वर्तमान स्थिति को समझने में अँग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारियों द्वारा प्रेषित वृत्तान्त अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं, और इस सूत्र से प्राप्त कुछ बातें यहाँ दी जाती हैं। बिना अधिक प्रयास के रायगढ़ पर अधिकार कर लेने का सम्भाजी का आरम्भिक कार्य ठीक रहा। २० अगस्त, १६८० ई० का वृत्तान्त है, "सम्भाजी राजा मुगल सूबेदार बहादुरखाँ से खुले मैदान में लड़ना चाहता है और उसने उसके पास ऐसा सन्देश भी भेजा है।"

१० नवम्बर, १६८० ई०। "हमको भय है कि मराठी सेनाएँ चक्कर लगा रही हैं। खबर है कि एक घुड़सवार और पैदल दल सूरत की ओर बढ़ रहा है, दूसरा बुरहानपुर की ओर और एक तीसरा बहादुरखाँ को व्यस्त रखने के लिए।"[३]

नवम्बर १६८० ई०। "यद्यपि कर्नाटक के अधिकारियों ने सम्भाजी राजा को अपना अधिपति स्वीकार कर लिया था, तब भी यह समाचार पाकर वे भयाकुल हो उठे कि दिवंगत शिवाजी के मुख्य

---

३ सर यदुनाथ सरकार लिखित "हाउस ऑफ शिवाजी", पृष्ठ १७६–२१४ पर सम्भाजी के सम्बन्ध में और सामग्री मिलती है।

अधिकारियों में से अनेक ब्राह्मणों को उसने बन्दी बना लिया है और उनके बेड़ियाँ डाल दी हैं, जिनमें जर्नादन पण्डित भी है। ऐसे महत्व-पूर्ण और अनुभवी अधिकारियों को बन्दी करने के कारण सम्भाजी के शासन के भविष्य के सम्बन्ध में कोई अच्छी आशा नहीं है। सम्भाजी राजा ने जिंजी के किलेदार और अनेक प्रमुख अधिकारियों को आज्ञा भेज दी है कि रघुनाथ पण्डित को बन्दी बना लें। परन्तु इस सम्बन्ध में अभी तक आगे कोई कार्यवाही नहीं हुई है।"

२१ जून, १६८१ ई०। "सुल्तान अकबर पाली में है। वह लगभग २५ वर्षीय मंझले कद का गौरवर्ण व्यक्ति है। फूस से छाये हुए एक बड़े मकान में वह ठहरा हुआ है। इस पर सफेद मारकीन का कपड़ा तना हुआ है और इसमें साधारण दरियाँ बिछी हुई हैं। वह बाहर बैठता है, उसके साथ केवल एक प्रसिद्ध व्यक्ति दुर्गादास रहता है—वह राजपूत है और उसका स्वामी उसका बहुत सम्मान करता है। उसके पास लगभग ५०० सवार हैं परन्तु ऊँट केवल ५० हैं। सम्भाजी राजा के सिपाही पहरा देते हैं। चार या पाँच दिन हुए कि राजा सम्भाजी के यहाँ से एक प्रसिद्ध व्यक्ति हीरोजी फर्जन्द एक पत्र और उपहार लेकर आया था।"

१६ जुलाई, १६८१ ई०। "अकबर की सेना नित्य बढ़ती जा रही है। अब उसके पास डेढ़ हजार सवार हैं और त्रिम्बक में ५ या ६ हजार और हैं। प्रतिदिन आशा की जा रही है कि सम्भाजी उससे आकर मिलेगा और उसको बुरहानपुर ले जायगा। वहाँ से उनका विचार दिल्ली प्रयाण करने का है।"

३० अगस्त, १६८१ ई०। "सम्भाजी को भारी प्राण-संकट हो चुका है। इस बात की सम्भावना थी कि मछली में विष देकर उसको मार डाला जाता। परन्तु एक सेवक बालक ने, जो इस रहस्य को जानता था, उसे उस मछली को खाने से रोक दिया। उसे उसके एक नौकर और कुत्ते को दे दिया गया। दोनों कुछ ही घण्टों में मर गये। उसके विरुद्ध आनाजी पण्डित, केशव पण्डित, प्रह्लाद पण्डित आदि ने षड़यन्त्र किया था, अब उन सब के बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं।"

८ सितम्बर, १६८१ ई० । "सम्भाजी के विरुद्ध षड़यन्त्रकारी आनाजी पण्डित, रामराजा की माता और हीरोजी फर्जन्द चाहते थे कि सुलतान अकबर उनमें सम्मिलित हो जाये, परन्तु वह तैयार न हुआ। उसने एक संदेशवाहक द्वारा तुरन्त सम्भाजी को इसकी सूचना दे दी।"

१२ अक्टूबर, १६८१ ई० । "सम्भाजी रायरी में नहीं है। अपने प्राणों के विरुद्ध षड़यन्त्र करने के लिए उसने आनाजी पण्डित, हीरोजी फर्जन्द, बालाजी प्रभु, सोमाजी दत्तो और पाँच अन्य व्यक्तियों को मृत्यु-दण्ड दे दिया है। वे बाँधकर हाथी के पैरों के नीचे डाल दिये गये थे। बीस और व्यक्तियों को प्राण-दण्ड मिलने वाला है। कुछ दिनों में राजा अकबर के साथ बुरहानपुर जायेगा।"

२७ अक्टूबर, १६८१ ई० । "कहते हैं कि सम्भाजी के षड़यन्त्र से रामराजा की माता को विष देकर मार दिया गया है।"

इससे सम्भाजी की स्थिति स्पष्ट है। अपने प्राणों के विरुद्ध षड़यन्त्र का पता लगते ही उसने उन सब को पकड़ लिया और जिन पर इस षड़यन्त्र में सम्मिलित होने का उसे सन्देह था उनका वध करा दिया। इनमें उसकी सौतेली माँ सोयराबाई भी थी। वह शिर्के परिवार की थी। उस महिला के समर्थक होने के नाते शिर्के परिवार पर सम्भाजी का कोप हुआ। उनमें से कई व्यक्तियों का निर्दयता-पूर्वक वध कर दिया गया। अगस्त से अक्टूबर १६८१ ई० तक तीन महीनों में ये भीषण घटनाएँ घटित हुईं। चूँकि सम्भाजी इस षड़यन्त्र के अन्वेषण में व्यस्त था, फलतः वह शाहजादे के आगमन पर तुरन्त उससे न मिल सका। उसने अपराधियों को जो कठोर दण्ड दिया था उसके कारण उसके अधिकांश सेवक उसके विरुद्ध हो गये। चतुर्दिक वातावरण उसके प्रति सन्देह और घृणा से व्याप्त हो गया और उसकी मृत्युपर्यन्त वैसा ही बना रहा। मानाजी मोरे, गंगाधर पन्त, वासुदेव पन्त, रावजी सोमनाथ, प्रह्लाद नीराजी और कुछ अन्य व्यक्तियों को कठोर यातनाएँ दी गईं और अलग-अलग समय में वे कारागार में बन्दी किये गये।

चूँकि सम्भाजी को अपने पिता के भक्त सेवकों पर कुछ भी विश्वास न रह गया था, उसके समीप कोई ऐसा व्यक्ति न था जिस पर वह विश्वासपूर्वक अपने कार्य का बोझ डाल सकता। अतः उसने एक नितान्त परदेशी कान्यकुब्ज ब्राह्मण प्रसिद्ध कवि कलश को अपने परामर्शदाता के रूप में नियुक्त किया। कवि कलश प्रयाग में बहुत समय से भोसले परिवार का पुरोहित था। सम्भाजी से उसका परिचय सम्भवतया १६६६ ई० में उस समय हुआ था जब सम्भाजी आगरा से अपने कारागार-वास के बाद अपने घर की ओर वापस आ रहा था। कवि कलश एक उपाधि है जिसका अर्थ है कवियों में श्रेष्ठ। वह वास्तव में प्रगाढ़ विद्वान् था और उच्च कोटि का कवि भी। उसने संस्कृत तथा हिन्दी में कई ग्रन्थों की रचना की थी और जनसाधारण में 'कविजी या कावजी' के नाम से विख्यात था। यदि उसके पूर्व नहीं तो शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर अवश्य ही वह दक्षिण में आया होगा। सम्भाजी को संस्कृत तथा पुराणों के पढ़ाने का कार्य उसे दिया गया था। उसके कुछ ग्रन्थ अब भी वर्तमान हैं। कवि कलश का नाम बिगड़कर कलुष पड़ गया, जिसका अब महाराष्ट्र में सामान्य अर्थ है—'झगड़ा भड़काने वाला'। एक प्राचीन इतिहास-ग्रन्थ में लिखा है कि केशवभट्ट कावजी नामक एक उत्तर भारत के ब्राह्मण को जो जादू-टोना में निपुण था, सम्भाजी के हृदय पर अधिकार प्राप्त था। यह केशवभट्ट अवश्य कवि कलुष ही है। उसकी वाणी मधुर और प्रभावशाली थी। हिन्दुस्तानी पर उसका अधिकार और उसका परदेशी होना सम्भाजी की दृष्टि में सम्भवतया उसके विशेष गुण थे, जिनके कारण क्रोध और अविश्वास के समय में वह सम्भाजी का विश्वास-पात्र बन गया। आधुनिक अन्वेषण से यह सिद्ध हो गया है कि सम्भाजी को तांत्रिक विद्या से प्रेम था। इसका अर्थ है कुछ विशेष मन्त्रों द्वारा कुछ लक्ष्यों की सिद्धि। इसका उस समय बहुत प्रचार था। अपने पिता के उच्च आत्म-विश्वास और साधन-शीलता के अभाव में सम्भाजी ने अपने कठिन घरेलू और बाह्य संकटों को पार करने के लिए ऐसे निरर्थक उपायों का अवलम्बन

किया। साधारणतया निर्बल और उद्विग्न मनुष्य इन्हें अपनाते हैं। वास्तव में यही उसके सर्वनाश का कारण सिद्ध हुए। यह निश्चय करने के साधन नहीं हैं कि कलुष कहाँ तक इसका उत्तरदायी है कि उसने सम्भाजी को बुराइयों और मादक वस्तुओं की लत लगा दी। वृत्तान्तों में तो उसी पर आरोप है। सम्भाजी ऐसे दुष्प्रकृति और क्रोधी स्वभाव के मनुष्य में इन कुचेष्टाओं को उत्पन्न करने के लिए बाह्य साधनों की कोई आवश्यकता भी नहीं थी। कलुष की सरकारी उपाधि थी—छन्दोगामात्य अर्थात् वेदज्ञ मंत्री।

सम्भाजी की अपनी मुद्रा पर और कलुष द्वारा अपनायी गई मुद्रा पर अंकित शब्द उनकी मानसिक प्रवृत्ति और जीवन के प्रति उनके विचारों के परिचायक हैं। उन मुद्राओं की आडम्बरपूर्ण ध्वनि स्पष्ट है।*

महाराष्ट्र में प्रचलित जनश्रुति में कलुष पर यह दोष लगाया गया है कि वह सम्राट् का गुप्तचर था जो सम्भाजी का नाश करने का कुशल प्रयत्न कर रहा था। इस आरोप की पुष्टि के लिए कोई भी प्रमाण नहीं है। अपने पिता की आठ मन्त्रियों की सभा को सम्भाजी ने नाममात्र के लिए बनाये रखा, परन्तु व्यवहार में अपने

---

* श्री शंभोः शिव जातस्य मुद्रा द्यौरिव राजते।
यदंक सेविनो लेखा वर्तते कस्य नोपरि॥

"शिवाजी के पुत्र सम्भाजी की यह मुद्रा आकाश की भाँति प्रकाशमान है। उसके प्रिय किस कठिनाई को जीत नहीं सकते?" (जिस पर लिखे हुए अक्षर किसके ऊपर नहीं विराजते—अक्षरार्थ)

कलुष की मुद्रा पर लिखा है :—
विधिरर्थिमनीषाणामवधिर्नयवर्त्मनां
शेवधिः सर्व सिद्धीनां मुद्रा कलशहस्तगा।

"कलुष के हाथ से अंकित यह मुद्रा दीनजनों की इच्छाओं को पूर्ण करती है, मनीषियों को शुभ अवसर प्रदान करती है और समस्त सफल योजनाओं का उद्गम-स्थान है।" इस मुद्रा के साथ बहुत से पत्रों का पता चला है जिनमें कलुष के प्रति प्रयुक्त ऐसे ही वाक्यांश हैं, जिनका धार्मिक महत्व है और जो राज्य-व्यवहार के लिए उपयुक्त हैं। उदाहरणार्थ—आज्ञा-पत्र धर्माभिमान, कर्मकाण्डपरायण, दैवतैकनिष्ठाग्राहिताभिमान, सत्य संध, समस्तराज्य-कार्यधुरंधर, विश्वासनिधि, कविकलश छंदोगामात्य।"
परमानन्द काव्य में सम्भाजी के क्रिया-कलापों का स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन है।

विश्वासपात्र कलुष पर प्रशासन का समस्त भार उसने छोड़ दिया, जिसके लिए उसने 'छन्दोगामात्य' का एक नया पद निर्माण किया।

५. विशाल योजनाएँ—कुछ संस्कृत कविताएँ प्राप्त हुई हैं जिनका रचयिता निस्सन्देह सम्भाजी है। इनसे ज्ञात होता है कि अपने पिता की देखरेख में वह प्राचीन संस्कृत विद्या में निपुण हो गया था। संस्कृत दान-पत्र पर, जिसका पहले उल्लेख हो चुका है, उसी का अपना संस्कृत में संपुष्टि लेख है। इसमें वह लिखता है कि उसी के उपक्रम पर वह तैयार किया गया था। अभी हाल में जयपुर के ग्रन्थरक्षागारों में संस्कृत पत्रों का पता चला है, जिन्हें सम्भाजी और कवि कलश दोनों ने आमेर के राजा रामसिंह को लिखा था, और जिनमें अकबर और दुर्गादास के सहयोग से सम्राट् औरंगजेब को सिंहासनाच्युत करने की विशाल योजना स्पष्ट की गयी है। इन पत्रों को सम्भाजी ने अपने विशेष प्रतिनिधि प्रतापसिंह के साथ भेजा था, जिसको अधिकार दिया गया था कि विस्तृत बातें वह स्वयं निश्चित कर ले। सम्भाजी ने प्रस्ताव किया कि वह विशाल सुसज्जित दल लेकर गुजरात में होता हुआ उत्तर भारत पर चढ़ाई कर देगा। रामसिंह से कहा गया था कि वह अपने राजपूत सैनिकों की उतनी ही बड़ी सेना लेकर उससे आ मिले ताकि दोनों मिलकर दिल्ली पर धावा बोल दें और अकबर के हित में उसको हस्तगत कर लें। इस प्रकार वे सम्राट् की अनुपस्थिति से जो उस समय दक्षिण में था, लाभ उठाना चाहते थे। सम्भाजी कहता है—"हिन्दू जाति और धर्म पर जो अत्याचार यह दुष्ट सम्राट् कर रहा है, उसे अब हम सहन नहीं कर सकते और उसका दमन करने के प्रयास में हम सब कुछ—अपना कोष, अपना देश, अपने गढ़ और अपने प्राणों का भी—बलिदान करने को तैयार हैं। इसी निश्चय से इन दो वर्षों से अपने दरबार में हम अपने सम्मानित अतिथियों—अकबर और दुर्गादास—को ठहराये हुए हैं और औरंगजेब से सतत युद्ध कर रहे हैं। हमने उसके अनेक वीर सेनानायकों को मौत के घाट उतार दिया है, कुछ को बन्दी बना रखा है, कुछ को भारी मुक्ति-धन वसूल कर लेने पर या दया

करके छोड़ दिया है। बहुत से तो रिश्वत देकर भाग गये। अब समय आ गया है, जब हम स्वयं सम्राट् को बन्दी बना सकते हैं, ताकि हम अपने धार्मिक कृत्य निर्विघ्न रूप से कर सकें। यदि आप साहस कर सकें और हमें अपना सहयोग दें, तो कोई कारण नहीं है कि हम अपने प्रयास में सफल न हों। आपको भली-भाँति याद है कि आप ही के अल्पवयस्क पुत्र कृष्णसिंह का सम्राट् ने किस प्रकार विश्वास-घात करके वध करा दिया। आपको तो अपने ही पिता पूज्य मिर्जा राजा जयसिंह के पद-चिन्हों का अनुसरण करना है, जिन्होंने दिल्ली की राजगद्दी प्राप्त करने में औरंगजेब को उसके ज्येष्ठ भ्राता दारा-शिकोह के विरुद्ध सहायता दी थी।''

सम्भाजी के संस्कृत के इस पत्र में दिनांक के अभाव की पूर्ति उसके समान एक अन्य पत्र से की जा सकती है जिसे अकबर ने २२ मई, १६८२ ई० को जयपुर के उसी राजा रामसिंह को लिखा था। इसके अनुसार—''हिन्दुओं के विरुद्ध औरंगजेब का व्यवहार स्पष्ट हो गया है और आपको इसका ज्ञान है। उदाहरणार्थ कुमार कृष्णसिंह के काण्ड में, यद्यपि यह घटना लड़कपन के कारण हुई तथापि यह आलमगीर की कट्टरता का वह चिह्न है जिसका प्रदर्शन वह हर तरह से उस जाति के विरुद्ध करता है। अतः अपने राजवंश के पैतृक सेवकों के प्रति सद्भाव से प्रेरित होकर, जिनके साथ मेरे महामहिम राजवंश का पीढ़ी दर पीढ़ी दयालुता का व्यवहार रहा है, मैं आपको उच्च-पदासीन करता हूँ और आपको आप के पिता की मिर्जा राजा की उपाधि, उनका मनसब और नकद पुरस्कार देता हूँ और आपके पुत्र विष्णुसिंह को वह मनसब देता हूँ जो आप का था, जब आप कुमार के पद पर थे।

''आप आशा रखें कि मुझ सम्राट् की ओर से आपके प्रति कृपाएँ नित्य बढ़ती ही जायेंगीं। मेरे आगमन का समाचार सुनने के लिए सचेत कानों से तैयार रहें। जब मैं अपनी विजयी सेना लेकर हिन्दुस्तान की ओर प्रयाण करूँ, आप मेरे अनुचरों में सम्मिलित हो जायें और मेरी शाही सेवा में पूर्ण प्रयास करें। इससे आप दरबार में

कृपा और सम्मान प्राप्त करने के अधिकारी हो जायेंगे। मार्गों के सुरक्षित न होने के कारण नियमानुसार रत्न और सम्मान-वस्त्र नहीं भेजे जा रहे हैं।[४]

ये दो संस्कृत और फारसी के पत्र स्वतन्त्र और अद्वितीय रूप से एक दूसरे का समर्थन करते हैं। इन दो साहसी नवयुवकों की योजना में कोई कमजोरी न थी। इनमें से एक अपने को सम्राट् कहता था और दूसरा छत्रपति। इस योजना को सम्पादित करने के लिए शिवाजी के सदृश विलक्षण बुद्धि की आवश्यकता थी। दुर्गादास और अकबर योग्य व्यक्ति थे, और सम्भाजी की अपूर्व वीरता का योग था, अतएव सफलता की पूर्ण आशा थी। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं—"दक्षिण में अपने आगमन के एक वर्ष से अधिक काल तक सम्राट् कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त न कर सका यद्यपि उसके पास विशाल साधन थे। वास्तव में इस समय उसके सम्मुख एक पारिवारिक और मानसिक संकट उपस्थित था, जिसको दरबार के फारसी इतिहासकारों ने सर्वथा गुप्त रखा है। अकबर उसे अपने पुत्रों में सर्वाधिक प्रिय था, यह बात उसने ईश्वर को साक्षी करके एक पत्र में कही है। उसके असम्भावित विद्रोह से उसे अपने समस्त परिवार पर कोई विश्वास न रह गया था। अब उसके लिए यह कठिन था कि वह किसका विश्वास करे और किस स्थान को सुरक्षित माने। दक्षिण में उसके आगमन से कुछ समय बाद तक उसकी नीति दुविधापूर्ण, सन्देहग्रस्त, सतर्क और बाह्य रूप से अव्यवस्थित या परस्पर विरोधी थी।[५]

यह जानकर कि सम्भाजी और उसका विद्रोही पुत्र उत्तरी कोंकण और गुजरात के मार्ग से उत्तर भारत की ओर प्रयाण करेंगे, औरंगजेब ने शिहाबुद्दीनखाँ को दलपत बुन्देला के साथ भेजा ताकि नासिक के समीप मराठों के कुछ गढ़ों पर अधिकार कर ले और

---

४ सर यदुनाथ सरकार कृत "हाउस ऑफ शिवाजी", पृष्ठ १८४। संस्कृत पत्र के लिए पी० वी० काने का स्मृति-ग्रन्थ देखिये।

५ औरंगजेब का इतिहास, जिल्द ४, पृ० ३०४।

इस प्रकार इस दिशा में विद्रोहियों का मार्ग अवरुद्ध कर दे। अप्रैल १६८२ ई० में शिहाबुद्दीन ने नासिक के उत्तर में ७ मील दूर रामसेज नामक गढ़ को घेर लिया। मराठा किलेदार ने इस वीरता से प्रतिरोध किया कि मुगल उस पर कोई प्रभाव न डाल सके और खान यह जानकर कि रूपाजी भोसले और मानाजी मोरे सहायक सेना सहित वेग से उनकी ओर बढ़ रहे हैं, भारी क्षति सहन कर रामसेज से पीछे हट गया। दलपत बुन्देला पत्थर से घायल हो गया। इस भारी असफलता पर औरंगजेब को इतना क्षोभ हुआ कि उसने अपनी पगड़ी उतार फेंकी और प्रतिज्ञा की कि शत्रु को देश से बाहर निकालकर ही इसे पहनेगा।

६. **औरंगजेब का पराभव**—जैसा कि अकबर बराबर सुझाव दे रहा था, सम्राट् के मुख्य स्थान पर यकायक आक्रमण करने के लिए या गुजरात के मार्ग से राजपूताना में आकस्मिक प्रवेश के लिए १६८२-८३ ई० का मौसम अति उपयुक्त अवसर था। यह कार्य क्यों नहीं किया गया, यह जानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। परन्तु औरंगजेब के आक्रमण के प्रथम वर्ष में उसकी स्थिति वास्तव में अत्यधिक डाँवाडोल थी और वह इतना भयभीत हो गया था कि १६८३ ई० की शरद ऋतु में उसने अपने समस्त सेनानायकों को अपने पास बुलाया ताकि व्यक्तिगत रूप से विचार-विमर्श हो सके और शीघ्र-विजय-प्राप्ति के लिए योजना निश्चित हो सके। सम्राट् बहुत व्याकुल था, अपने ज्येष्ठ पुत्र शाहआलम की राजनिष्ठा पर भी उसे सन्देह था, उसके बारे में कहा गया था कि उसका भी अकबर से सम्पर्क है। उस "शैतान" शिवाजी और उसके दानव साथियों के इस देश में उसे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि अब उसके प्राण भी संकटग्रस्त होने वाले हैं। प्रत्येक मुगल सैनिक को यह आशंका रहती थी कि उनके मुख्य शिविर पर सहसा मराठा आक्रमण होने वाला है, जिसका परिणाम धन-जन का भयानक विनाश होगा। ऊपरलिखित सेनानायकों के सम्मेलन से सम्राट् को ज्ञात हुआ कि वे सब मराठों का सामना करने से डरते थे। तब उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को

सम्भाजी के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व करने के लिए आमन्त्रित किया। पुत्र ने उत्तर दिया—"यह कार्य मैं कर सकता हूँ, यदि आप अफगानिस्तान से अमीरखाँ को वापस बुला लें और उसको मेरा सहायक नियुक्त कर दें।" परन्तु उस व्यक्ति को उत्तर-पश्चिमी सीमा से हटाने का अर्थ साम्राज्य के उस अंग की क्षति होता। योरोपीय व्यापारियों के समकालीन लेखों से सम्राट् की गम्भीर दशा का ज्ञान होता है। १९ जून, १६८३ ई० के सूरत के एक पत्र में यह वृत्तान्त है–"मुगल पागल हो गया है। उसका निश्चय प्रति क्षण बदलता रहता है। बहुत सम्भव है कि अब वह अधिक दिन जीवित न रहे। सुल्तान अकबर को अधिकांश मनुष्यों का सद्भाव प्राप्त है।" "सम्राट् बहुत ही विकल और चिड़चिड़ा हो गया है और इसका कारण है सुल्तान अकबर। सुल्तान आजम, बेगम जहाँजेब बानू और दिलेरखाँ पदच्युत कर दिये गये हैं क्योंकि सन्देह है कि वे अकबर के प्रति दयालु हैं।" शाहजादा आजम पर भी सम्राट् को सन्देह हुआ। उसने शाहजादे और दिलेरखाँ को अपने सम्मुख बुलाया। इन्होंने आने में देर की। दिलेरखाँ को सम्राट् ने दण्ड दिया।[६] सम्राट् के क्रोध से बचने के लिए उसने विष खा लिया। औरंगजेब के सेनापतियों में दिलेरखाँ उसका सर्वाधिक विश्वासपात्र था और २० वर्ष से अधिक समय तक दक्षिण में उसने उसकी वफादारी से सेवा की थी। ऐसे स्वामिभक्त सेवक को आत्महत्या करनी पड़ी, इससे प्रकट है कि उस समय सम्राट् कितना जिद्दी हो गया था।

युद्ध के विभिन्न क्षेत्रों में वस्तु-स्थिति का पूर्ण अन्वेषण करके और अपने विभिन्न सेनानायकों और अधिकारियों से सही वृत्तान्त प्राप्त कर औरंगजेब ने सम्भाजी के अधिकृत प्रदेशों के विरुद्ध अभियान की एक नवीन योजना बनाई और प्रत्येक सेनापति के विशेष कर्तव्य निश्चित कर दिये। पुर्तगालियों पर (क्योंकि उसे बताया गया था कि वे अकबर को शरण दे रहे थे) और सम्भाजी पर एक साथ आक्रमण करने का कार्य औरंगजेब के ज्येष्ठ पुत्र शाहआलम के

---

६ देखिए सरकार लिखित "औरंगजेब", जिल्द ४, पृ० ३०५-३०७।

सुपुर्द किया गया; और उसने इस कार्य में पहले कुछ सफलता भी प्राप्त की। परन्तु इस अभियान में शाहआलम को असह्यनीय कष्ट हुए जिनके कारण सम्राट् ने अकबर और सम्भाजी के विरुद्ध अपने प्रयास को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया और अपना ध्यान बीजापुर और गोलकुंडा को आधीन करने की ओर लगा दिया। ये दो मुस्लिम राज्य थे, जिनसे सम्भाजी को भी कभी-कभी सहायता प्राप्त हो जाती थी। ये दोनों शिया थे इसलिए बहुत दिनों से धर्मान्ध सुन्नी सम्राट् की आँखों में खटक रहे थे। १६८५ ई० के आरम्भ में उसने अपनी सेनाओं को दक्षिण की ओर बढ़ाया, २७ मार्च को बीजापुर पर घेरा डाल दिया और १२ सितम्बर, १६८६ ई० को जबर्दस्त मुकाबले के बाद हस्तगत कर लिया। इसी प्रकार २८ जनवरी, १६८७ ई० को गोलकुंडा पर घेरा डाला गया और उसी वर्ष की प्रथम अक्टूबर को उसने आत्म-समर्पण कर दिया। अतः इन तीन वर्षों में उसका ध्यान मुख्यतया मराठा प्रदेश से दूर ही रहा। गोलकुंडा के राजा अबुलहसन तानाशाह को दौलताबाद के कारागार में डाल दिया गया।

७. सम्भाजी द्वारा पुर्तगाली आतंकित—अब हमें पश्चिम तट पर सम्भाजी के कृत्यों को देखना चाहिए। उसके प्रतिशोधात्मक क्रोध के प्रथम विस्फोट के बाद रायगढ़ में शान्ति स्थापित हो गई। उसने बाहर निकलकर जंजीरा के सिद्दी और चौल के पुर्तगालियों की ओर ध्यान दिया। सम्भाजी के इन पड़ोसियों को सम्राट् की ओर से आह्वान था कि वे मराठा राजा के विरुद्ध उसका साथ दें। सिद्दी सम्राट् का नौ-सेनापति था और सम्भाजी पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन पाकर १६८१ ई० के अन्त के करीब उसने रायगढ़ के नीचे तक मराठा प्रदेश पर भयंकर धावा किया। सम्भाजी ने तुरन्त चुनौती को स्वीकार कर लिया और करीब १५० युद्ध-पोतों और ५ हजार निपुण नाविकों की अपनी नौ-सेना को उसने जंजीरा के विरुद्ध अग्रसर कर उस स्थान पर जल और स्थल-मार्ग से घेरा डाल दिया। सम्भाजी

के वीर सेनानी दादजी रघुनाथ प्रभु महदकर[७] ने १६८२ ई० के आरम्भिक मासों में सिद्दी को जबर्दस्त नुकसान पहुँचाया। सिद्दी कासिम ने अपूर्व वीरता से अपने स्थान की रक्षा की। ठीक इसी समय दक्षिण में सम्राट् का आगमन हुआ, फलतः सम्भाजी को जंजीरा का घेरा उठाना पड़ा, ताकि वह उन भयानक आक्रमणों का सामना कर सके जो अन्य दिशाओं से मुगल सेनाओं द्वारा किये जा रहे थे।

पुर्तगालियों को भी सम्राट् ने आह्वान किया कि वे सम्भाजी से युद्ध करें। मुगल-शक्ति का इस समय विशेष ध्येय कोंकण में सम्भाजी के अधिकृत प्रदेश को हस्तगत करना था क्योंकि यहीं से सम्भाजी और अकबर दोनों सम्राट् के विरुद्ध अपने वार करते थे। फलतः पुर्तगालियों को साहस न था कि वे मराठों से मित्रता बनाये रख सकें। औरंगजेब ने अपने पुत्रों, पौत्रों और सर्वोत्तम सेनापतियों को उत्तर कोंकण के गढ़ों और घाटियों पर अधिकार प्राप्त करने का कार्य सौंपा। उसका आदेश था कि उसके विद्रोही पुत्र और मराठा राजा को सभी सम्भव उपायों से बन्दी बना लें। सूरत और बम्बई में अँग्रेजों के व्यापारिक स्थान, वेंगुर्ला में डच कारखाना, पश्चिमी तट पर पुर्तगाली गढ़, सब ने भयभीत होकर सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर ली, जिसके कारण सम्भाजी की परिस्थिति और भी अनिश्चित हो गई। यद्यपि वह सब ओर से शत्रुओं द्वारा घेर लिया गया तो भी सम्भाजी वीरतापूर्वक लड़ता रहा और युद्ध का संचालन करता रहा। कुछ समय तक उसने औरंगजेब के योग्यतम सेनापतियों को स्तब्ध कर दिया और अहमदनगर तथा औरंगाबाद के आधार-स्थानों को भी आतंकित कर दिया।

---

७ दादजी रघुनाथ प्रभु महदकर वही व्यक्ति है, जिसने दिसम्बर १६७७ ई० में वेलवाड़ी की थानेदारिन सावित्रीबाई को अधीन किया था। १६८२ ई० में जंजीरा के सिद्दी के विरुद्ध युद्ध में उसने सम्मान प्राप्त किया था। नीलकण्ठ त्र्यम्बक प्रभु महदकर जो १७२७ ई० में कोल्हापुर के सम्भाजी राजा का पेशवा था, उसी वंश का था।

बम्बई के अँग्रेजों को सम्राट् और राजा सम्भाजी दोनों ने बुलावा भेजा कि उनसे मिल जायें, परन्तु अपनी निष्पक्षता को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने दोनों के पास अपने दूत भेजे और इस प्रकार संघर्ष में आने से वे चतुरतापूर्वक बच गये।

१६८३ ई० में सम्भाजी ने स्वयं चौल और गोआ के पुर्तगालियों पर आक्रमण किया। मुगल 'दैत्य' और मराठा 'राक्षस' के बीच में फँस जाने पर पुर्तगाली राज्यपाल टैवोरा को भय हुआ और उसे अपनी स्थिति निराशामय दीखने लगी। इटली-निवासी मनुची, जो उस समय गोआ में था, इस परिस्थिति का विशद वर्णन करता है। १६८३ ई० के अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में पोंडा के सामने सम्भाजी और पुर्तगालियों में घोर संग्राम हुआ। सम्भाजी द्वारा गढ़ पर अधिकार प्राप्त करने से गोआ की रक्षा करने की राज्यपाल की आशाओं पर तुषारपात हो गया। इस संकट में उसने अपने महान् संरक्षक सन्त ज़ैवियर की कब्र खोली, पुरोहितों और जनता की उपस्थिति में उसने प्रार्थना-सभा का आयोजन किया और समस्त रात्रि उसने अपने राष्ट्र की हित-रक्षा के निमित्त प्रार्थना की। सन्त ने वास्तव में चमत्कार किया। जब गोआ आत्म-समर्पण करने वाला ही था, सम्भाजी अकस्मात् पीछे हट गया, क्योंकि उसको सूचना मिली कि उसके पृष्ठ-भाग पर एक मुगल सेना आक्रमण करने वाली है, जिसका नेता सम्राट् का ज्येष्ठ पुत्र शाहआलम अपने पिता के आग्रह से सम्भाजी का पीछा कर रहा है। मराठा राजा को शीघ्र ही पीछे हटना पड़ा ताकि स्वयं को अपनी सेना सहित बन्दी होने से बचा सके। यह घटना १६८३ ई० के अन्त के लगभग घटित हुई। इस प्रकार गोआ की रक्षा चमत्कारपूर्वक हो गई और इस घटना से मराठा राजा के भाग्य का पतन आरम्भ हुआ। गोआ के निकट वाड़ी के सामन्त को भी सम्राट् ने उकसाया कि वह सम्भाजी का विरोध करे और साथ ही उसे यह धमकी भी दी कि इन्कार करने पर उसका अस्तित्व मिटा दिया जायेगा।

ये महत्वपूर्ण घटनाएँ वास्तव में मराठा इतिहास का एक रोमांच-

कारी अध्याय हैं। सम्भाजी और शाहजादा अकबर में जो मतभेद सतत रूप से वर्तमान रहा और जिसने सम्राट् के विरुद्ध उनके संयुक्त मोर्चे की योजनाओं को अन्त में अस्त-व्यस्त कर दिया, उसके पर्याप्त विवरण पुर्तगाली और फारसी भाषाओं में उपलब्ध हैं। इन दो उग्र नवयुवकों के साधारण प्रयास औरंगजेब के विशाल साधनों के सम्मुख निष्फल सिद्ध हुए। कोंकण का छोटा-सा प्रान्त किस प्रकार मुग़ल-साम्राज्य का सामना कर सकता था, जिसका विशाल भारतीय महाद्वीप पर नियन्त्रण था। वे कुछ वर्षों तक डटे रहे और उन्होंने औरंगजेब के हृदय को भयभीत कर दिया, यही एक बड़े गौरव की बात है। सम्राट् के केन्द्रीय शिविर पर आकस्मिक धावा बोलने और उसकी शक्तिशाली सेनाओं को पूर्णरूप से पराजित करने की आवश्यकता पर अकबर बार-बार सम्भाजी पर जोर देता रहा, परन्तु इस साहसिक कार्य को करने के लिए शिवाजी के सदृश विलक्षण बुद्धि की आवश्यकता थी। यद्यपि सम्भाजी स्वयं सिंह के समान वीर था, किन्तु उसमें धीर एवं गंभीर विचार-शक्ति का अभाव था, जो इतने व्यापक और बड़े पैमाने के कार्य की सफलता के लिए आवश्यक थी।

८. अकबर का दुःखद अन्त—लिखित प्रमाण के अभाव में हम यह जानने में असमर्थ हैं कि उन तीन वर्षों में जब सम्राट् बीजापुर और गोलकुंडा की विजय में व्यस्त था, सम्भाजी और उसका मित्र अकबर क्या करते रहे और उन्होंने इस अवसर का उपयोग अपने लाभ के लिए क्यों नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध-संचालन सम्बन्धी कई विषयों पर उनमें घोर मतभेद था। महाराष्ट्र में थोड़े से वर्षों के निवास में प्राप्त निकट अनुभव के पश्चात् अकबर को सम्भवतया यह ज्ञान हुआ कि सम्भाजी में उसके पिता के महान् गुणों का अभाव है और वह उस गंभीर परिस्थिति को सँभाल सकने में अयोग्य है जो उनके सम्मुख उपस्थित थी। वह उन अवसरों का उचित उपयोग नहीं कर सकता जो प्रायः आते रहते हैं। अकबर को उचित ही प्रतीत हुआ कि उसके चारों ओर बिछे जाल को उसका पिता तंग

करता जा रहा है और वह अपने जीवन के प्रति शंकित हो गया है। इस बात की पूरी सम्भावना थी कि सहस्रों गुप्तचर जो देश में पर्यटन कर रहे थे, उसका पता लगाकर उसे बन्दी बना लें। उसकी बहिन जीनतुन्निसा बेगम, जो अपने पिता के परिवार को सँभाले हुए थी, यथाशक्ति पिता और पुत्र में समझौता कराने का प्रयास कर रही थी। परन्तु अकबर यह भली-भाँति जानता था कि अपने पिता के पास जाने पर उसकी क्या दशा होगी। उसको विश्वास हो गया था कि यदि वह अपनी प्राण-रक्षा करना चाहता है तो सम्भाजी के साथ समय नष्ट करना व्यर्थ है। राजस्थान के राजाओं ने बार-बार उससे आग्रह किया था कि शरण प्राप्त करने के लिए वह उनके पास चला आये ताकि वे मिलकर सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह कर दें और दिल्ली पर अधिकार कर लें। परन्तु अकबर साधनहीन था; उसके पास न द्रव्य था, न सैनिक। सम्भाजी भी कष्ट में होने के कारण उसकी कोई सहायता न कर सकता था। इसके अतिरिक्त गुजरात और खानदेश, दोनों ओर से होकर राजस्थान को जाने वाले मार्ग पूरी तरह बन्द कर दिये गये थे।

सम्भाजी के दूषित और असंयत स्वभाव से भी शाहजादे को अवश्य घृणा उत्पन्न हो गई होगी और परिणामतः उन दोनों में जबर्दस्त वैमनस्य पैदा हो गया। बिना किसी उज्ज्वल आशा के असुविधाजनक प्रदेश में एक भगोड़े का हीन जीवन व्यतीत करने से अकबर तंग आ गया था। लगातार तीन वर्षों तक इस बात की अफवाह रही कि सम्भाजी और अकबर सूरत पर धावा करने वाले हैं, इससे गुजरात के लोगों में भय व्याप्त हो गया था। कलुष और अकबर बराबर कोल्हापुर, राजपुर, वेंगुर्ला और संगमेश्वर के बीच में घूमते रहे क्योंकि ये स्थान बार-बार उन दिनों के पत्रों में आते हैं। औरंगजेब के कुछ अप्रसन्न सेवक और सेनानायक गुप्त रूप से अकबर की सहायता करते रहे। अकबर के जीवन की कुछ झलक सर यदुनाथ सरकार की पुस्तक 'शिवाजी का राजवंश' में उपलब्ध है। १७ फरवरी, १६८३ ई० को अपने गुप्तचरों द्वारा निम्नलिखित समाचार सम्राट्

को प्राप्त हुआ--"विद्रोही (अकबर) ने २ हजार सवार और २ हजार पैदल सेना भरती कर ली है। उनका वेतन वह 'नीच' (सम्भाजी) देता है। विद्रोही ने एक हिन्दू नर्तकी को मुसलमान बनाकर अपने अन्तःपुर में रख लिया और है उसको मुक्ता-माला और अन्य वस्तुएँ भेंट में दी हैं जो उसको मराठा राजा ने दी थीं। जब यह समाचार उस नीच के पास पहुँचा तो उसने विद्रोही को कहला भेजा, 'मैंने मुक्तामाला और अन्य वस्तुएँ आपके उपयोग के लिए दी थीं।' विद्रोही ने उत्तर दिया, 'मैं सम्राट् का पुत्र हूँ और अपनी इच्छानुसार आचरण करूँगा।' इस पर नीच ने सन्देश भेजा कि उस सेना को वह वापस भेज दे, जो उसके पास थी। इस प्रकार 'विद्रोही' ने अपने को असहाय देखकर अपने घर में आग लगा ली, फकीर का वेष धारण कर लिया और गोआ को प्रस्थान कर दिया। इस पर 'नीच' ने पुर्तगालियों को लिखा कि वे अपने देश में विद्रोही को प्रवेश न करने दें। इस कारण उन्होंने उसे बाहर रखा। अतः विद्रोही वापस आ गया है और उस स्थान पर ही रहने लगा है जहाँ पहले रहता था।"

अकबर ने कवि कलश को लिखा (२० फरवरी, १६८४ ई०)—"इसको पाते ही तुरन्त मुझ से मिलने चले आइये। ईश्वर न करे कि विलम्ब के कारण परिस्थिति अन्य रूप धारण कर ले। यह समझ लें कि विषय बहुत आवश्यक है।" फिर २७ जुलाई, १६८४ ई० को उसने लिखा—"आपका पत्र प्राप्त हुआ। मुहम्मद आजम के दूत के विषय में, जो वहाँ पहुँच गया है, मैं नहीं जानता कि वह क्यों आया है और उससे आपने क्या तय किया है। यदि आपके लिए आवश्यक हो तो आप शान्ति स्थापित कर सकते हैं। शान्ति की ओर मेरा झुकाव बहुत ही कम है। शान्ति पर विश्वास करके असावधान न हो जायें, आप भली-भाँति जानते हैं कि भविष्य में आपको किससे लाभ है।" २० अगस्त, १६८४ ई० को अकबर कवि कलश को लिखता है—"शान्ति का प्रश्न सर्वथा आपके और राजा के विवेक पर निर्भर है। फिरंगियों के साथ शान्ति के विषय में जिसमें आपने मध्यस्थ के रूप

में मुझे घसीट लिया है, मैं नहीं जानता कि इस मामले का क्या निपटारा हुआ। मुझे सूचित करें कि मुहम्मद आजम के दूत से क्या तय हुआ है। बीजापुर के कार्य की क्या दशा है ?"

नवम्बर १६८४ ई०। "आपके दो पत्र प्राप्त हुए। आपने हम से मिलने के लिए ३० नवम्बर का दिन निश्चित किया है। परन्तु यह अशरे के दिन हैं (मुहर्रम के १० पवित्र दिन)। मुझ से मिलने के लिए इसी मास की ११ या १२ तारीख निश्चित कर मुझे सूचना दें। उसी दिन मेरी सेनाएँ सखरपेन से कूच कर देंगी और मलकापुर पहुँच जायेंगी। आपको उस दिन आकर मुझ से मिलना चाहिए। इसके बाद आप कोल्हापुर जायें।" दिसम्बर १६८४ ई० में अकबर लिखता है—"बहुत अच्छा हुआ कि आप आ गये हैं। मैं भी मलकापुर आ गया हूँ। यह उचित ही है कि हम और आप शीघ्र मिल लें और अपना कार्य समाप्त कर लें। और अधिक क्या, आपसे मिलने की इच्छा है।"

१८ जनवरी, १६८५ ई० को अकबर सम्भाजी को लिखता है—"तेजस्वी राजाधिराज, महामहिम राजपति, भक्तानुचर, छत्रपति राजा सम्भाजी। आपको ज्ञात हो कि मुगलों की पराजय और कवि कलश के वीर प्रतिरोध के समाचार मुझ तक पहुँच गये हैं। कवि कलश आपका बहुत अच्छा और सच्चा सेवक है। ईश्वर न करे कि ईर्ष्या के कारण उसका नाश हो जाये। उसकी रक्षा का प्रत्येक उपाय आपको करना चाहिए। यह ठीक है कि मुगल चले गये हैं और खेलना की ओर आपने प्रयाण कर दिया है। यदि आपकी इच्छा हो तो मैं भी चल दूँ और अभियान में आपके साथ हो जाऊँ।"

इस पत्र-व्यवहार से प्रकट होता है कि अकबर और सम्भाजी किसी विशाल योजना पर गम्भीर विचार कर रहे थे। १६८५ ई० के आरम्भ में सम्भाजी ने वास्तव में भड़ौंच पर आक्रमण किया और गुजरात से बहुत-सा लूट का माल ले गया। उसने सम्राट् की उन सेनाओं को काट डाला जो नासिक के समीप उसकी वापसी पर उससे लड़ने आयीं। परन्तु इस एकमात्र कार्य से अकबर के भविष्य

पर कोई गहरा प्रभाव न पड़ा। अन्त में केवल निराशा के कारण उसने एक अँग्रेजी भारवाहक पोत को किराये पर लेने का प्रबन्ध किया और फरवरी १६८७ ई० में राजापुर के स्थान पर इसमें सवार होकर वेंगुर्ला के मार्ग से मस्कत तक गया। लगभग एक वर्ष की यात्रा के बाद जनवरी १६८८ ई० में वह ईरान में इस्पहान पहुँच गया। यहाँ पर उसने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। वह स्वदेश से दूर भटकता रहा और उसके पिता के उत्तरी प्रान्तों को सदैव उससे भय रहा। औरंगजेब के भाग्य से अकबर का फारस में दीर्घकालीन निवास उसकी महत्वाकांक्षाओं के लिए उतना ही निष्फल सिद्ध हुआ, जितना कि महाराष्ट्र में उसका ६ वर्ष का निवास। मनुची एक लम्बे और शिक्षाप्रद पत्र को उद्धृत करता है,[८] जो अकबर ने अपने पिता को १७०४ ई० में अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व लिखा था। उसका देहान्त उस वर्ष के नवम्बर में हो गया। वह भग्न-मनोरथ परन्तु वीर आत्मा थी, जिसको मुगल राजकुमार के अभिशापमय जीवन का अनुभव करना था। पिता और पुत्र में प्राय: पत्र-व्यवहार होता रहता था। व्यक्तिगत प्रतिनिधियों द्वारा बहुत समय तक दोनों के बीच समाचारों का आदान-प्रदान होता रहा। सम्राट् की ओर से क्षमा करने के लिये वायदे और उसके वापस लौटने की प्रार्थनाएँ सदैव जारी रहीं। परन्तु मृत्युपर्यन्त अकबर ने इन प्रार्थनाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, जो उसके पिता, बहिन या मित्रों द्वारा भेजी जाती रहीं।

९. **वीर दुर्गादास**—यहाँ पर यह आवश्यक है कि दुर्गादास की भी कहानी पूरी कर दी जाये, क्योंकि इससे औरंगजेब की योजनाओं और उसके कार्यों पर बहुत प्रभाव पड़ा। फरवरी १६८७ ई० में राजापुर में अकबर से विदा लेकर दुर्गादास जोधपुर वापस चला गया और आजीवन राजपूत जातियों के संगठन में व्यस्त रहा, ताकि मारवाड़ को सम्राट् के नियन्त्रण से मुक्त करा सके। अकबर का पुत्र बुलन्दअख्तर और उसकी पुत्री सफीअतुन्निसा उसके पास थे।

---

८ स्टोरिआ डो मोगोर, जिल्द ४, पृ० १७१–१७७।

उनके शिक्षण और आराम का ध्यान रखते हुए बड़ी सावधानी से मारवाड़ में दुर्गादास ने उनका पालन-पोषण किया। दुर्गादास ने एक मुसलमान मौलवी को नौकर रखा जिसने उनको उनके धर्म की शिक्षा दी। जब औरंगजेब को यह समाचार ज्ञात हुआ कि अकबर ईरान भाग गया है तो उसने अपने विश्वासपात्र प्रतिनिधि ईश्वरदास नागर[९] को दुर्गादास के पास भेजा और उससे समझौता कर लिया। १६९६ ई० में ब्रह्मपुरी नामक स्थान पर औरंगजेब से मिलने के लिए दुर्गादास अकबर की पुत्री को लेकर आया। इस समय उसकी आयु १६ वर्ष थी। पितामह और पौत्री के बीच हुआ निम्नलिखित स्मरणीय वार्तालाप इतिहास में सुरक्षित है—

औरंगजेब—चूँकि तुमने अपना सारा जीवन गैर-मुस्लिमों में व्यतीत किया है, तुमको धर्म का बिल्कुल ज्ञान न होगा। अतः तुम कुरान का अध्ययन तुरन्त आरम्भ कर दो।

सफीअत—बाबा, ऐसी बात नहीं है। पूज्य दुर्गादास ने केवल शारीरिक सुविधाओं का ही प्रबन्ध नहीं किया बल्कि मुझे कुरान पढ़ाने के लिए एक मुसलमान महिला को भी नियुक्त कर दिया था। मुझे सारा कुरान कंठस्थ है।

औरंगजेब—अहा, दुर्गादास कितना अच्छा आदमी है! तुम्हारी राय में इन तमाम सेवाओं का मैं उसे क्या पुरस्कार दूँ?

सफीअत—ईश्वरदास से इसके विषय में पूछें। वह बतायेगा।

तब सम्राट् ने दुर्गादास को छोटी सी जागीर दी और वह जोधपुर वापस चला गया। अकबर का पुत्र बुलन्दअख्तर अब भी राजस्थान में था। उसको दुर्गादास ने अपने हाथ में बन्धक के रूप में रखा ताकि जोधपुर राज्य के हितों के प्रतिकूल सम्राट् कोई कदम न उठा सके। जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उत्पन्न पुत्र अजीतसिंह अब वयस्क हो गया था और उसने अपने पैतृक राज्य की माँग भी उपस्थित की, किन्तु सम्राट् ने अभी तक उसे मान्यता प्रदान नहीं की

---

९ महाराष्ट्र में औरंगजेब के जीवन का पूरा इतिहास ईश्वरदास ने लिखा है, जो उस काल की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

थी। दुर्गादास ने सम्राट् को सूचित किया कि यदि अजीतसिंह को उसके पिता का राज्य वापस दे दिया जाये तो वह बुलन्दअख्तर को वापस भेज देगा। यह बात मान ली गई, और जब सम्राट् ने अपना वायदा पूरा कर दिया तभी उसे अपना पौत्र प्राप्त हुआ। १६८६ ई० में जागीर के रूप में कुछ परगनों सहित अजीतसिंह को सम्राट् की सेना में मनसब दिया गया। अधिकार-पत्र प्राप्त कर और अपने को दिए हुए प्रदेश पर अपना अधिकार प्राप्त कर दुर्गादास बुलन्दअख्तर को साथ लेकर अहमदाबाद और सूरत के मार्ग से औरंगजेब के पास आया। बाद को अजीतसिंह शक्तिशाली राजपूत शासक सिद्ध हुआ। औरंगजेब के बाद मुगलों के पतन-काल में उसकी पर्याप्त शक्ति और प्रभाव था। परन्तु यह दुर्गादास की विलक्षण बुद्धि थी जिसने विरोधी राजपूत दल का संगठन किया, जिसका सामना औरंगजेब को उसके मराठा शत्रुओं के समान ही करना पड़ा। औरंगजेब की मृत्यु के बहुत दिन बाद दुर्गादास की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारियों ने उसका विशेष सम्मान किया। दुर्गादास को 'राजपूत वीर शिरोमणि' कहा जाता है। राजपूत माताएँ ईश्वर से प्रार्थना करती हैं कि उनके दुर्गादास सदृश वीर पुत्र हो।[१०]

१०. सम्भाजी का पकड़ा जाना—सम्राट् ने शिहाबुद्दीन फीरोजजंग और उसके पुत्र चिनकिलीच खाँ (भविष्य का निजाम-उल-मुल्क आसफजाह प्रथम) को यह कार्य सौंपा कि वे उत्तर कोंकण और बागलान में सम्भाजी के अधिकृत प्रदेश में गड़बड़ करें। वे सम्भाजी के कुछ प्रमुख अनुयायियों को फोड़ने में सफल हो गये। उसने भी उतनी ही शक्ति से उत्तर दिया। १६८५ ई० के आरम्भ में सम्भाजी की सेनाओं ने औरंगाबाद से बुरहानपुर तक के मुगल प्रदेश को जीत लिया और बहुत सा माल ले गये, जो विशेष हाटों में बेचा गया और जिसकी पहले से ही सूचना दे दी गई थी। ऐसा

---

१० ए माता पूत ऐसा जन जेसा दुर्गादास। यदुनाथ सरकार ने "औरंगजेब" जिल्द ३ और ५, पृ० २८४-२६२ में सविस्तार रोचक वृत्तान्त दिया है, जिसको जिज्ञासु पाठक देख सकते हैं।

वर्णन है कि सम्भाजी के इन धावों में कम से कम १७ नगर पूर्णतया लूट लिये गये। जब सम्राट् बीजापुर और गोलकुण्डा के विरुद्ध अपने युद्ध में व्यस्त था, सम्भाजी पन्हाला में निवास करता था ताकि सम्राट् की गतिविधि पर निगाह रख सके।

दक्षिण के दो शेष मुस्लिम राज्यों की विजय से सम्राट् की प्रतिष्ठा और साधन बहुत बढ़ गये। उसको संचित धन के विशाल कोष, शिक्षित सैनिकों के दल, युद्ध-सामग्री और अस्त्र-शस्त्र के आगार प्राप्त हुए जो उन दो राजधानियों में बहुत समय से एकत्र थे। औरंगजेब इन सब का उपयोग सम्भाजी के विरुद्ध कर सकता था, जिसके पास धन बराबर घटता जा रहा था। सम्भाजी ने अपने पिता के समस्त कोष को समाप्त कर दिया था और अपने ७ वर्ष के कुशासन और युद्ध में इसकी कुछ भी वृद्धि नहीं की थी। जब अकबर ने उसका साथ छोड़ दिया, तो उसका कोई साथी न रहा, जो इस दुर्भाग्य में उसका अब साथ दे। औरंगजेब बीजापुर से वापस आ गया और पंढरपुर के समीप भीमा नदी पर अकलुज में अपना शिविर स्थापित कर दिया[11] ताकि वह मन्द-भाग्य सम्भाजी के विरुद्ध अपनी सारी शक्ति और सत्ता को केन्द्रित कर सके। शर्जाखाँ नामक एक चतुर और जागरूक बीज़ापुरी सेनापति ने, जो आन्तरिक मराठा प्रदेश से सुपरिचित था, सतारा जिले पर आक्रमण किया। सम्भाजी का सेनापति हम्बीरराव मोहिते उसका सामना करने आगे आया। १६८७ ई० के अन्त के करीब वाई के समीप उनमें युद्ध हुआ, जिसमें हम्बीरराव रण-स्थल पर मारा गया। वह सम्भाजी का अन्तिम समर्थक था और उसकी मृत्यु से राजा का भाग्य-सूर्य अस्त हो गया। उसे चारों ओर से घेरने के लिए सभी दिशाओं से उसके विरुद्ध चढ़ाई शुरू हो गई। सम्भाजी का पक्ष उसके अधिकांश अनुचरों ने त्याग दिया था और मुगल टोलियों के झुण्ड उसको घेरे हुए थे। उन्होंने दुर्गम घाटियों पर अधिकार कर लिया और पन्हाला

---

११ ब्रह्मपुरी से करीब ५० मील ऊपर।

तथा रायगढ़ के बीच में संवादवाहन बन्द कर दिया जहाँ सम्भाजी की उपस्थिति की सम्भावना थी।

कोल्हापुर और सतारा के बीच में सह्याद्रि पर्वतमाला के नीचे का पहाड़ी प्रदेश बहुत समय से शिर्के परिवार के अधीन था। ये बहुत समय से सम्भाजी के प्राणघातक शत्रु थे और प्रतिरोध की भावना से सम्भाजी का पक्ष त्याग कर सम्राट् की ओर हो गये थे। उन्होंने अब अपना खेल खेला। वे सम्भाजी की गति-विधि को ध्यान से देखते रहे और मुगल अधिकारियों को इसकी सूचना देते रहे। हम्बीरराव की मृत्यु से लगभग १ वर्ष बाद तक सम्भाजी और कवि कलश यथा-सामर्थ्य संघर्ष करते रहे। १६८८ ई० में कवि कलश का शिर्के लोगों ने तेजी से पीछा किया। उसने भागकर विशालगढ़ में शरण लेकर अपनी प्राण-रक्षा की। जब रायगढ़ में सम्भाजी को यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसने तुरन्त आक्रमण किया, संगमेश्वर के समीप शिर्के परिवार को परास्त किया और विशालगढ़ में कवि कलश के पास पहुँच गया। परन्तु उनकी स्थिति शीघ्र ही चिन्ताजनक हो गई क्योंकि उनके अधिकांश अनुचर लालच के शिकार हो चुके थे। शिर्के लोग सम्भाजी और कवि कलश की गुप्त गति-विधि का वृत्तान्त सम्राट् के गुप्तचरों को दे देते थे। शेख निजाम पहले गोलकुंडा की नौकरी में था, उसे कोल्हापुर में यह आदेश देकर नियुक्त किया गया था कि एक क्षण की भी सूचना पाकर सम्भाजी पर आक्रमण कर दे। उसे सम्भाजी की गति-विधि का समाचार मिल गया। जनवरी १६८९ ई० में सम्भाजी और कवि कलश ने अपने दल का संगठन किया और विशालगढ़ से अम्बाघाट के मार्ग से रायगढ़ के लिए प्रस्थान किया। शेख निजाम यह सूचना पाकर कि सम्भाजी और कवि कलश संगमेश्वर पर ठहरे हुए हैं, १ फरवरी, १६८९ ई० को अकस्मात् उन पर टूट पड़ा और थोड़ी सी मुठभेड़ के बाद उनको उनके कुछ अनुचरों सहित बन्दी बना लिया। इस मुठभेड़ में सम्भाजी के सैनिक मारे गये और कुछ रायगढ़ को भाग गये। सम्भाजी और कवि कलश ने संगमेश्वर पर विलम्ब क्यों किया,

यह कहना कठिन है। उनके पास तेज घोड़े थे जो शायद उनके पीछा करने वालों के घोड़ों से अच्छे थे और वे आसानी से रायगढ़ को भाग सकते थे, यद्यपि उनके पकड़ने वाले वहाँ भी पहुँच गये थे। अपने स्वामी की प्राण-रक्षा के लिए मालोजी घोरपड़े ने प्राण निछावर कर दिये। इसने सम्भाजी की आजीवन भक्तिपूर्वक सेवा की थी, यद्यपि शिवाजी ने उसके पिता का वध करा दिया था। शेख निजाम ने सम्भाजी को अपने ही हाथी पर बैठा लिया और अन्य बन्दियों को घोड़ों और ऊँटों पर जगह दी। सब लोग तुरन्त ही अम्बाघाट के मार्ग से सम्राट् के शिविर के लिए संगमेश्वर से चल पड़े।

११. दुःखद मृत्यु—सम्राट् को सम्भाजी के बन्दी होने का समाचार अकलुज में प्राप्त हुआ। वहाँ अनियन्त्रित आमोद-प्रमोद मनाया गया। साम्राज्य-पोषकों के हृदय से भयानक भय दूर हो गया। सम्राट् को अनुभव हुआ कि इस सफलता ने बीजापुर और गोलकुंडा की हाल की विजयों में चार चाँद लगा दिये हैं और अब काम समाप्त कर दिल्ली लौटने का चिरअपेक्षित हर्ष उसे प्राप्त हुआ। उसने तुरन्त अकलुज से प्रस्थान किया और बहादुरगढ़ को चल पड़ा, जहाँ पर हमीदुद्दीनखाँ के संरक्षण में बन्दी लाये गये। सम्राट् की आज्ञा से बन्दी मराठा राजा की सार्वजनिक रूप में खिल्ली उड़ाई गई। शिविर से ४ मील बाहर सम्भाजी और कवि कलश को विदूषकों के वस्त्र पहनाये गये, उनके सिरों पर मसखरों की टोपियाँ रख दी गई, जिनमें घुंघरू टँके हुए थे। उनको ऊँटों पर बैठाया गया और उनके सामने ढोल पीटे गये और तुरही बजाई गई। वे इस प्रकार बहादुरगढ़ लाये गये। हजारों दर्शक सड़कों के किनारे खड़े हुए थे जो इन मन्द-भाग्य बन्दियों की ओर इस प्रकार देख रहे थे मानो वे कोई जंगली जानवर या दैत्य हों। इस प्रकार अपमानित दशा में उन्हें समस्त शिविर में घुमाया गया, जो कई मील लम्बा था। अन्त में वे सम्राट् के सामने लाये गये, जो इस अवसर के लिए पूरा दरबार लगाये बैठा था। बन्दियों को देखते ही औरंगजेब

सिंहासन से नीचे उतरा और दरी पर झुककर अपने सिर को भूमि पर टेक दिया। इस प्रकार दो वार इस उत्कृष्ट विजय दिलाने वाले परमातमा के प्रति उसने कृतज्ञता प्रकट की। जब उसने शान्तिपूर्वक बन्दियों को देख लिया तो वे अपनी कोठरियों में ले जाये जाने के लिए हटा दिये गये।

दूसरे दिन सम्राट् ने अपने निजी सेवक रुहुल्लाखाँ को सम्भाजी के पास भेजा कि निम्नलिखित शर्तों पर उसकी प्राण-रक्षा का प्रस्ताव करे—(१) वह अपने सब गढ़ों को अर्पित कर दे। (२) अपने समस्त गुप्त कोषों को बता दे। (३) उन मुगल अधिकारियों के नाम वता दे जो उससे मिले हुए थे। अपने सार्वजनिक अपमान पर कटु-अन्तःकरण से प्रेरित होकर और निराशा में डूबकर बड़े आवेश से सम्भाजी ने प्रस्ताव को ठुकरा दिया, अपनी जवान खोली और सम्राट् और उसके पैगम्बर को गालियाँ दीं, मुस्लिम धर्म के विरुद्ध अपने बहुत दिनों से दबे हुए भावों को खुलकर व्यक्त किया और गर्व के साथ कहा कि उसकी मित्रता का मूल्य सम्राट् की एक कन्या होगी। दूत को साहस न हुआ कि जो कटु भाषा उसने सुनी थी, वह सम्राट् को सुनाये; उसने उसके तात्पर्य का केवल संकेत कर दिया। महान् शिवाजी की मर्यादा के अनुकूल सम्भाजी ने अपने जीवन में प्रथम बार आचरण किया और अपने आजीवन पापों का अपनी मृत्यु के ढंग से पूर्ण प्रायश्चित्त कर लिया।

औरंगजेब में ग्रीक सम्राट् सिकन्दर की सी महानता न थी। उसमें यह सामर्थ्य न थी कि वह घोरतम शत्रु के खुले अपमान को सहन कर जाये, क्योंकि उसके विचारानुसार उसका पाप क्षमा की पहुँच के वाहर था। उसी रात सम्भाजी की आँखें निकाल ली गईं और दूसरे दिन कवि कलश की जिह्वा काट ली गई। गुप्त भेद जानने के लिए बल प्रयोग किया गया और शारीरिक यातनाएँ दी गईं, किन्तु सम्भाजी ने दृढ़ता से उन्हें बर्दाश्त किया। १५ दिनों के अपमान और यातनाओं के बाद बन्दी सम्राट् के शिविर के साथ बहादुरगढ़ से भीमा दीन पर कोड़ेगाँव लाये गये। यहाँ पर ११ मार्च, १६८९ ई०,

फाल्गुन की अमावस्या को निर्दयतापूर्वक अति कष्ट देते हुए उनका वध कर दिया गया। उनका एक-एक अंग काटा गया और माँस कुत्तों को डाल दिया गया। उनके कटे हुए सिरों में भुस भर दिया गया और दक्षिण के मुख्य-मुख्य नगरों में ढोल और बाजे बजाते हुए उनका प्रदर्शन किया गया। बाद में वाडुगाँव में एक कटीली झाड़ी के नीचे इन सिरों का पता लग गया और कुछ दयालु लोगों ने तुलापुर में उस स्थान पर इनका दाह-संस्कार कर दिया, जहाँ भीमा और इन्द्रयानी दो नदियों का संगम है।

रानाडे ने लिखा है—"दक्षिण में उसके निवास के ६ वर्ष के अन्दर ही औरंगजेब का आजीवन कल्पित स्वप्न चरितार्थ हो गया। नर्मदा से तुंगभद्रा तक सम्पूर्ण देश उसके चरणों में था। ऐसा प्रतीत होता था कि शिवाजी और उसके साथ लड़ने वाले विजयशील पुरुषों के जीवन-बलिदान व्यर्थ ही रहे। वह भयंकर बाढ़ जिसके विरुद्ध साठ वर्ष से भी अधिक समय तक शाहजी और शिवाजी ने अपने देश की रक्षा करने का घोर प्रयास किया था, अब देश में फैल गई थी और अपने प्रवाह में सब कुछ बहा ले गई। किसी सम्भव प्रतिरोध का कोई लक्षण शेष न रहा।"

इस प्रकार द्वितीय मराठा छत्रपति का अन्त हुआ, जिसने अपनी मृत्यु द्वारा, जैसा कि आगे स्पष्ट होगा, औरंगजेब की आशाओं और विजयों को नष्ट करने का कार्य सम्पादित कर दिया, जिसका असफल प्रयास उसने अपने अल्प-जीवन में किया था। उसके निर्भय आत्म-बलिदान से मराठा राष्ट्र संगठित और सशक्त हो गया, जैसा कि और किसी प्रकार सम्भव न था। मराठों को वह सामर्थ्य और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ कि वे अपने राजा की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए कटिबद्ध हो गये।

———

तिथिक्रम

अध्याय १४

९ फरवरी, १६८९	राजाराम राजा उद्घोषित ।
२५ मार्च, १६८९	जुल्फ़िकारखाँ का रायगढ़ पर घेरा ।
५ अप्रेल, १६८९	राजाराम का रायगढ़ से पलायन ।
१६८९	मातबरखाँ का उत्तर कोंकण को पददलित करना ।
अगस्त १६८९	कोड़ेगाँव में सम्राट् के शिविर पर सन्ताजी का धावा ।
सितम्बर १६८९	राजाराम का पन्हाला से जिंजी को जाना ।
३ नवम्बर, १६८९	साहू और येसुबाई सहित रायगढ़ मुगलों के हाथों में ।
१५ नवम्बर, १६८९	राजाराम का जिंजी पहुँचना और दरबार लगाना ।
३० नवम्बर, १६८९	जुल्फिकारखाँ का जिंजी की ओर प्रस्थान ।
१८ दिसंम्बर, १६८९	औरंगजेब का कोड़ेगाँव से बीजापुर को प्रस्थान ।
१६९०	सम्राट् के शिविर का गलगले में पहुँचना ।
२ मार्च, १६९०	बाजी सरजाराव और अन्य लोगों के प्रति राजाराम की स्फूर्तिदायक प्रार्थना ।
जून १६९०	जुलिफकारखाँ का जिंजी के निकट आना और घेरा डालना ।
१६९१	जिंजी के निकट जुलिफकारखाँ बहुत कष्ट में ।
४ अक्टूबर, १६९१	जुलिफकारखाँ की सहायतार्थ औरंगजेब द्वारा असदखाँ और कामबख्श का भेजा जाना ।
१६ दिसम्बर, १६९१	असदखाँ और कामबख्श का जिंजी के निकट पहुँचना ।
१३ दिसम्बर, १६९२	काँची के समीप सन्ताजी घोरपड़े द्वारा अलीमर्दानखाँ का पराजित और बन्दी होना ।
दिसम्बर १६९२	असदखाँ द्वारा कामबख्श की गिरफ्तारी ।
१ जनवरी, १६९३	धनाजी जाधव द्वारा इस्माइलखाँ मक पराजित ।
५ जनवरी, १६९३	देसूर में जुलिफकारखाँ के शिविर पर सन्ताजी का धावा ।
२३ जनवरी, १६९३	जिंजी से मुगल सेनाओं का वाण्डीवाश वापस आना ।
१६९४	राजाराम की रानियों का जिंजी में उसके पास आ जाना ।

१६९४	जिंजी में प्रह्लाद नीराजी की मृत्यु ।
मई १६९५	औरंगजेब द्वारा शिविर को हटाकर ब्रह्मपुरी ले जाना ।
अक्टूबर १६९५	रामचन्द्र पन्त द्वारा विशालगढ़ में सम्मेलन का आयोजन और आक्रमण की योजना बनाना ।
नवम्बर १६९५	कर्नाटक में मराठों के दमनार्थ औरंगजेब का खानाजादखाँ को भेजना ।
२० नवम्बर, १६९५	दुदेरी में कासिमखाँ की मृत्यु; धन देकर खानाजादखाँ का मुक्ति प्राप्त करना ।
२० जनवरी, १६९६	सन्ताजी घोरपड़े द्वारा हिम्मतखाँ और उसके पुत्र का युद्ध में मारा जाना ।
२६ फरवरी, १६९६	सन्ताजी द्वारा हमीदुद्दीनखाँ पराजित ।
अप्रेल १६९६	सन्ताजी का अपनी सेवाओं का पुरस्कार माँगना ।
९ जून १६९६	ताराबाई के पुत्र शिवाजी का जन्म ।
जून १६९६	सेनापति पद से सन्ताजी वंचित ।
जून १६९६	सन्ताजी का अयवरगुडी पर धनाजी को परास्त करना और अमृतराव निम्बालकर को मार डालना ।
मार्च १६९७	सन्ताजी की बीजापुर के समीप और पुनः दहीगाँव के समीप पराजय ।
जून १६९७	नागोजी माने द्वारा सन्ताजी की हत्या ।
दिसम्बर १६९७	जिंजी से राजाराम का पलायन ।
७ फरवरी, १६९८	जुल्फिकारखाँ का जिंजी पर अधिकार ।
२२ फ़रवरी, १६९८	राजाराम का विशालगढ़ पहुँचना ।
२३ मई, १६९८	(राजाराम के द्वितीय पुत्र) सम्भाजी का जन्म ।
अक्टूबर १६९८	राजाराम द्वारा सतारा में अपनी राजधानी स्थापित करना ।
१६९९	तलनेर की लड़ाई; हुसैनअलीखाँ का मराठों द्वारा पकड़ा जाना ।
३१ अक्टूबर, १६९९	राजाराम द्वारा मुगल-प्रदेश के विध्वंस का आरम्भ ।
२२ दिसम्बर, १६९९	ब्रह्मपुरी में सम्राट् के शिविर पर मराठों का धावा ।
२ मार्च, १७००	सिंहगढ़ में राजाराम की मृत्यु ।

अध्याय १४

स्थिर-बुद्धि राजाराम

[१६८९–१७००]

१. दो देदीप्यमान तारे—शिवाजी का छोटा पुत्र राजाराम सम्भाजी की मृत्यु के समय १९ वर्ष का था। उसका जन्म २४ फरवरी, १६७० ई० को हुआ था। सम्भाजी के बन्दी हो जाने के समाचार को रायगढ़ पहुँचने में देर न लगी। राजाराम उस समय गढ़ में ही नाम-मात्र के कारावास में था। गढ़ के सरदार ने अनुभवी वीर येसाजी कंक के परामर्श से राजा को मुक्त कर दिया और ९ फरवरी को, अर्थात् सम्भाजी के बन्दी बनाये जाने के एक सप्ताह बाद, उसे राजा घोषित कर दिया। इस कार्यवाही से सम्राट् का भ्रम दूर हो गया और यह सिद्ध हो गया कि मराठा राज्य का अभी अन्त नहीं हुआ है। प्रह्लाद नीराजी, मानाजी मोरे और उन व्यक्तियों को, जिन्हें सम्भाजी ने अकारण कारागार में डाल रखा था, मुक्त कर दिया गया और उन्हें उनके पदों पर पुनः बहाल कर दिया गया। मराठा राजशक्ति के पुनरुज्जीवन को आरम्भ में ही कुचल देने के लिए सम्राट् ने अपने योग्य सेनानायक एतिकादखाँ को (बाद में जिसका नाम जुल्फिकारखाँ नुसरतजंग पड़ा, और जो औरंगजेब के दीर्घकालीन मन्त्री असदखाँ

का पुत्र था) रायगढ़ पर चढ़ाई करके उस पर अधिकार करने तथा नये मराठा राजा को बन्दी बना लेने की आज्ञा देकर भेजा। २५ मार्च, १६८९ ई० को खान गढ़ के सामने पहुँच गया और तुरन्त उस पर घेरा डाल दिया। गढ़ के निवासी इन नवीन आक्रमण से अत्यन्त व्याकुल हो उठे। सम्भाजी की विधवा रानी येसूबाई के आदेश से वे परस्पर विचार-विमर्श करने लगे। येसूबाई बुद्धिमती और शान्तचित्त महिला थी तथा राष्ट्र के हित का उसे बड़ा ध्यान था। उसने ओजपूर्ण शब्दों के द्वारा गढ़-स्थित मराठा सैनिकों के जोश को उभाड़ा और सलाह दी कि "निस्सन्देह रायगढ़ सबल गढ़ है और देर तक शत्रु का सामना कर सकता है, परन्तु यह खतरनाक बात होगी कि हम सब एक छोटे से स्थान में बन्द रहें। मेरी सलाह है कि सम्राट् का ध्यान बटाने के लिये राजाराम अपनी पत्नियों और अनुचरों सहित घेरे के तंग होने के पहले ही यहाँ से साफ निकल जाये। मैं यहाँ पर अपने नन्हे पुत्र शाहू के साथ ठहरूँगी और राजधानी की रक्षा करूँगी तथा निर्भयता से परिणाम की प्रतीक्षा करूँगी। हमारे प्रमुख सेनापति प्रत्येक दिशा में मुगल सेनाओं को परेशान करने वाले अपने कृत्यों को जारी रखें और उन्हें विश्वास दिला दें कि राजा की मृत्यु से हमारे प्रतिरोध में कोई अन्तर नहीं पड़ा है।"

इस निःस्वार्थ और दूरदर्शितापूर्ण उपदेश का प्रत्येक मराठा हृदय पर प्रभाव पड़ा और इस पर तुरन्त अमल किया गया। नेताओं ने गम्भीर शपथ ली कि छत्रपति के रूप में शाहू के प्रति वे राजभक्त रहेंगे और उसके नाम से उस समय तक युद्ध करेंगे जब तक कि देश शत्रु के चंगुल से मुक्त न हो जाये। तदनुसार ५ अप्रेल को राजाराम चुपचाप गढ़ से निकलकर प्रतापगढ़ की ओर चल दिया। सुरक्षार्थ अपनी पत्नियों और अनुचार-वर्ग को उसने विशालगढ़ और रंगना के गढ़ों में भेज दिया। कुछ अन्य नेता रामचन्द्र पन्त अमात्य, प्रह्लाद नीराजी और शंकरजी मल्लार सचिव रायगढ़ से चल दिये। अन्य स्थानों से पारस्परिक परामर्श करके उन्होंने मुगल प्रदेश में

अग्नि, बर्बादी और लूट का अपूर्व अभियान प्रारम्भ कर दिया। शत्रु की हलचलों की सूचना प्राप्त करने के लिए उन्होंने गुप्तचरों का एक जाल फैला दिया।

जब जुल्फिकारखाँ रायगढ़ के निकट सैनिक प्रवृत्तियों में पूर्णतया व्यस्त था, सम्राट् ने कुछ अन्य प्रसिद्ध मराठा गढ़ों पर अधिकार कर लिया, जैसे साल्हेर, त्र्यम्बक, राजगढ़, रोहिड़ा, तोरना और माहुली। ये शिवाजी के प्रारम्भिक पराक्रम के स्थान थे। मातबरखाँ एक चतुर और दक्ष सेनापति था, उसमें संगठन की भारी सामर्थ्य थी। सम्राट् ने उसे उत्तर कोंकण के उस महत्वपूर्ण प्रदेश पर अधिकार रखने और प्रशासन करने के लिए नियुक्त किया, जो इस समय थाना जिला है। इसमें सैनिक महत्व के कई किले थे। लगभग १५ वर्ष तक मातबरखाँ ने वीरता और चतुरता से इस स्थान पर अपना अधिकार रखा और अपने आधार-स्थान कल्याण से मुगल सेनापतियों को महत्वपूर्ण साधन-सामग्री भेजता रहा। कल्याण में बहुत से भवनों के रूप में उसकी स्मृति सुरक्षित है।

राजाराम के कुछ युवा सहायक मित्रों ने, विशेषकर सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव ने, स्वीकृत योजना में आश्चर्यजनक उन्नति की। वे मुगल टुकड़ियों पर टूट पड़ते थे और कभी-कभी उनका इस तरह सफाया कर देते थे कि जुल्फिकारखाँ को रायगढ़ के विरुद्ध युद्ध में समय पर सहायता न मिल पाती थी। जब राजाराम प्रतापगढ़ के शिविर में था, सन्ताजी घोरपड़े और विठोजी चव्हन ने वीरता और चातुर्य का वह करतब दिखाया कि सम्राट् का हृदय भी दहल गया। कुछ चुने हुए अनुचरों के साथ वे एक अँधेरी रात में मूसलाधार वृष्टि के समय कोड़ेगाँव-स्थित सम्राट् के शिविर में घुस गये। वे सम्राट् के डेरे पर भी टूट पड़े, डेरे के रस्सों को काट दिया, जिससे विशालकाय तम्बू नीचे आ गिरा। इसके अन्दर के लोग मर गये। पहले तो ख्याल किया गया कि इनमें सम्राट् भी था। वे डेरे के बड़े-बड़े स्वर्णकलशों और अन्य मूल्यवान वस्तुओं को उठा ले गये। इन्हें ले जाकर उन्होंने प्रतापगढ़ में राजाराम को

भेंट कर दिया। बाद में ज्ञात हुआ कि संयोगवश उस रात्रि को औरंगजेब अपनी पुत्री के डेरे में था। इस प्रकार वह मृत्यु से बच गया। इस घटना से मराठों के दाँवपेचों का एक अच्छा उदाहरण मिलता है। सम्राट् को निश्चय ही भविष्य में होने वाली घटनाओं का अनुभव हो गया। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं—"सम्भाजी के रक्त से रंजित लाल बादल में जब मराठा राजसत्ता का सूर्य अस्त हो गया और जनता का युद्ध प्रारम्भ हुआ, उस समय मराठों के संघर्ष के दीर्घ-इतिहास में लगभग १० वर्ष तक दक्षिण के आकाश-मण्डल में दो देदीप्यमान तारे प्रकाश फैलाते रहे। वे थे सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव। उन्होंने विदेशी आक्रान्ताओं को पंगु बना दिया।"

शीघ्र ही एक मुगल सेना प्रतापगढ़ पहुँच गई और राजाराम को यहाँ से भागकर पन्हाला में शरण लेनी पड़ी। सम्भाजी को गिरफ्तार करने वाला शेख निजाम पन्हाला पर चढ़ आया, परन्तु वह पूर्णतया पराजित हुआ और गढ़ के नीचे से भगा दिया गया, और इस प्रकार अपने भाई की सी दशा से राजाराम बच गया। इस बीच में सन्ताजी जुल्फिकारखाँ की सेना पर टूट पड़ा तथा ५ हाथी और मूल्यवान माल लूट में ले आया। तीनों घोरपड़े भाइयों—सन्ताजी, बहिरजी और मालाजी—को क्रमशः ममुल्कत-मादार, हिन्दूराव और अमीरुलउमराव की उपाधियाँ देकर राजाराम ने पुरस्कृत किया। दक्षिण में उनके वंशज इन्हीं नामों से अभी तक विख्यात हैं।

२. रायगढ़ का पतन और रामचन्द्र पन्त का नेतृत्व—समस्त मराठा गढ़ों में प्रकृति ने रायगढ़ को शत्रु के लिए इतना अगम्य बनाया है कि यह वर्षों तक अजेय रह सकता है। यह एक विस्तृत पठार पर निर्मित है। अतः इसमें पशु पाले जा सकते हैं और विशाल रक्षक-सेना के लिए पर्याप्त अन्न तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। पूर्ण अन्वेषण के बाद शिवाजी और उनके पिता ने इस स्थान को चुना था और इसके प्राकृतिक रक्षा-साधनों के साथ-साथ ऐसी किलेबन्दी की थी जो साधारण मानव-बुद्धि की सूझ के परे है। परन्तु मानुषी विश्वासघात के सम्मुख शिवाजी की दूर-दृष्टि भी असहाय

थी। मराठा-चरित्र की इस दुर्बलता से जुल्फिकारखाँ ने ८ मास के घेरे के बाद ३ नवम्बर, १६८९ ई० को रायगढ़ को हस्तगत कर लिया। एक महत्वपूर्ण रक्षा-अधिकारी वाई के सूर्याजी पिसाल ने इस आश्वासन पर गढ़ के फाटकों को खान के लिए खोल दिया कि उसको वाई का देशमुखी वतन दे दिया जायेगा। इसकी लालसा उसे बहुत दिनों से थी। रायगढ़ के पतन पर येसूबाई, उसका अल्पवयस्क पुत्र शाहू और अन्य राजभक्त अनुचर पकड़ लिये गये। जुल्फिकार खाँ ने विजय-हर्ष से इनको सम्राट् के पास भेज दिया। परन्तु उसका हर्ष अल्पकालीन ही सिद्ध हुआ। एक स्वर से सभी छोटे-बड़े नेताओं ने वीर-प्रयास की प्रतिज्ञा की कि वे अपने छत्रपति की पशुवत हत्या और उसके पुत्र व रानी को बन्दी बनाकर ले जाने के राष्ट्रीय अपमान का बदला लेंगे। रानाडे लिखते हैं—"ठीक उसी समय जब देश का भाग्य-नक्षत्र पतनोन्मुख था और ऐसा लगता था कि प्रत्येक वस्तु नष्ट हो गई है, तब इसी दुरवस्था ने देश-प्रेमियों की एक टोली को जिसने अपना प्रशिक्षण शिवाजी से प्राप्त किया था, यह प्रतिज्ञा करने के लिये प्रोत्साहित किया कि यद्यपि साधनों और सम्पत्ति का अभाव है तथापि अपने राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की रक्षा करेंगे और औरंगजेब की सेनाओं को उत्तर हिन्दुस्तान में ढकेल देंगे।" इस टोली का नेता राजाराम था जिसका राष्ट्र ने उसके पिता की भाँति ही स्वागत किया, यद्यपि उसमें पिता के समान समस्याओं को सँभालने की योग्यता या चतुराई न थी। परन्तु उसकी प्रकृति नम्र और विनयशील थी और स्वभाव उदार था। उसके योग्य सलाहकार अपनी समझ-बूझ से जो परामर्श देते थे, उन्हें वह प्रसन्नता से मान लेता था।[1] उसका मुख्य परामर्शदाता शिवाजी के न्याय-मन्त्री नीराजी राव का पुत्र प्रह्लाद नीराजी था। यह अपने समय में मराठों में सबसे बुद्धिमान व्यक्ति समझा जाता था।

परन्तु सम्राट् की सत्ता के विरुद्ध छिन्न-भिन्न मराठा जाति को

---

१ बखर का लेखक उसको 'स्थिर-बुद्धि' कहता है।

संगठित करने का श्रेय मुख्यतया रामचन्द्र नीलकण्ठ को है, जो बावड़ा के वर्तमान अमात्य परिवार का पूर्वज था। यह शिवाजी के अधीन प्रशिक्षित हुआ था परन्तु सम्भाजी के विषम शासन में इसकी स्थिति गिर गई थी। पन्त में ऐसी विलक्षण बुद्धि थी कि वह लोगों की योग्यता को पहचान कर राष्ट्रीय हित-साधन में उसका उपयोग कर सकता था। रामचन्द्र पन्त की सेवाओं का वर्णन राजाराम इस प्रकार करता है--"यह मराठा राज्य ईश्वर की देन है। संकट-काल में मनुष्यों की योग्यता और समर्थता को सावधानी से आँक कर रामचन्द्र पन्त ने इसकी रक्षा की। उसने उनमें सेवाभाव और कार्यकुशलता भर दी और उपयुक्त क्षेत्रों में उनकी नियुक्ति कर दी। उसने असाधारण दूरदृष्टि से राष्ट्रीय साधनों का उपयोग राष्ट्र के उत्तम लाभ के लिए किया। उसने सफलतापूर्वक औरंगजेब के वीर प्रयासों को विफल कर दिया, जिसने अपने शक्तिशाली साधनों को लेकर मराठा भूमि पर आक्रमण किया था और जो इसे विजय करने के लिए कटिबद्ध था। ईश्वर ने रामचन्द्र के प्रयासों को सफल किया और सम्राट् की हार्दिक इच्छाओं को नष्ट कर दिया।" रामचन्द्र पन्त सैनिक नहीं था और वह शायद ही किसी सैनिक अभियान पर अपने स्थान से हट कर गया। उसमें यह दुर्लभ गुण था कि उसके अधीन अधिकारी सदैव सन्तुष्ट रहते थे और आज्ञा-पालन के लिए तत्पर रहते थे। विशालगढ़ के अपने आधार-स्थान से वह असंख्य मराठा नेताओं की हलचलों पर सतर्क दृष्टि रखता, जो दक्षिण में जिंजी से लेकर उत्तर में बुरहानपुर तक फैले विस्तृत युद्धक्षेत्र में नियुक्त थे।

अनेक अल्पवयस्क वीर सरदार थे, जिन्होंने रामचन्द्र पन्त के आदेशों और योजनाओं के अनुसार हृदय से कार्य किया। इनमें से केवल चार व्यक्तियों का ही हम वर्णन कर सकेंगे। इनमें दो ब्राह्मण थे और दो मराठा। औंध के वर्तमान राजा के पूर्वज परशुराम त्र्यम्बक प्रतिनिधि और शंकराजी नारायण सचिव (भोर के वर्तमान सचिव परिवार का पूर्वज) का मुख्य कार्य शिवाजी

की जन्मभूमि के प्रसिद्ध गढ़ों को पुनः हस्तगत करना, उन पर अपना अधिकार रखना और उनकी रक्षा करना था। सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव का कार्य शत्रु की मोर्चे की फौजों को विनष्ट करना और इस समय समस्त महाराष्ट्र और कर्नाटक पर छाये हुए मुगल सेनापतियों के आर्थिक साधनों को पंगु बना देना था।

३. मराठों का जिंजी को प्रयाण—पन्हाला में जब राजाराम की स्थिति अरक्षणीय प्रतीत हुई तो यह निश्चय किया गया कि कुछ अनुचरों के साथ वह जिंजी चला जाय और अपनी रक्षा करे। यह गढ़ मद्रास से दक्षिण-पश्चिम में ६० मील दूर और पाण्डुचेरी के समुद्र-तट से लगभग ४० मील अन्दर है। "जैसे कि आगामी घटनाओं का उसे पूर्व ज्ञान हो, शिवाजी ने कावेरी की घाटी में दक्षिण भारत में एक द्वितीय रक्षा-पंक्ति का निर्माण अपनी विजयों और सन्धियों के द्वारा कर लिया था, जहाँ आवश्यकता के समय उसे आश्रय प्राप्त हो सकता था।" सूपा, सम्पगाँव, कोपबल और बंगलौर से वेल्लोर, जिंजी और तंजौर तक मराठा अधिकृत प्रदेशों की एक अखण्ड शृङ्खला उस समय से सुरक्षित रखी गई थी। इस समय ऐसी आवश्यकता उत्पन्न हुई और राजाराम गुप्त रूप से पन्हाला से जिंजी को पलायन कर गया। मार्ग में उसको बहुत से कष्ट सहने पड़े। कई बार तो वह पीछा करने वाले मुगलों से बाल-बाल बचा। सितम्बर १६८९ ई० के अन्त में पन्हाला से चल कर एक मास में राजाराम वेल्लोर पहुँच गया। उसने अपना पीछा करने वालों को बड़ी होशियारी से धोखा दिया और १५ नवम्बर को जिंजी पहुँच गया। यहाँ पर अब उसने अपना निवास-स्थान बनाया। उसके अधिकांश मन्त्री और सेनानायक उचित समय पर जा पहुँचे और उसके साथ हो गये। सन्ताजी और धनाजी ने क्रमशः अग्र-भाग और पृष्ठ-भाग की रक्षा का प्रबन्ध किया। वास्तव में राजाराम के जीवन की रक्षा का श्रेय इन दो जागरूक सेनापतियों और उनके अधीन सेवा करने वाले सैनिकों को ही है। केशव पुरोहित राजाराम

का पुरोहित था और बहुत दिनों से पुराण पढ़ाने के लिए उसकी सेवा में था, यह पन्हाला से जिंजी तक इस जत्थे के साथ रहा। उसने अपने संस्कृत काव्य 'राजाराम-चरित' में मराठा राजा की यात्रा और उसकी कठिनाइयों का विशद वर्णन किया है।

जिंजी शीघ्र ही मराठा कार्य-क्षेत्र का केन्द्र हो गया, जहाँ पर उसका समस्त दरबार एकत्र हो गया था। अष्ट-प्रधान का पुनरुज्जीवन हुआ तथा उनमें एक नया मंत्री और बढ़ा दिया गया, जो प्रतिनिधि कहलाया। इस पद की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि प्रह्लाद नीराजी को उसकी असाधारण सेवाओं के हेतु कोई स्थान मिल जाये। उस क्षेत्र में तंजौर पहले ही से मराठा राजधानी था। इस समय उसका शासक एकोजी का ज्येष्ठ पुत्र और राजाराम का चचेरा भाई शाहजी था। केशव पुरोहित लिखता है—"कर्नाटक के सामन्तों ने राजाराम का असाधारण वीर की भाँति स्वागत किया और उसके हित को अपना हित समझा। वे भेंट में रुपया, खाद्य-सामग्री और अन्य वस्तुएँ लाये। मुसलमानों के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने मराठा राजा के प्रति सर्व प्रकार की सेवाएँ अर्पित कीं।"[२] कुछ मुसलमान सामन्त भी इस विश्वास से कि अकारण ही उन पर अन्याय हो रहा है, मराठों से मिल गये। वास्तव में इससे कर्नाटक प्रदेश में मराठा प्रभाव के प्रसार में सहायता मिली।

४. सम्राट् की गतिविधि—मराठों के दाँवपेचों ने सम्राट् की योजनाओं को शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, जिसका ध्यान पाठकों को अवश्य रखना चाहिए। मराठा दरबार को दूरस्थ जिंजी में स्थानान्तर करने से उसके लिए नवीन समस्याएँ उपस्थित हो गईं। जिंजी की गतिविधियों पर दृष्टि रखना और उन्नतशील मराठा शक्ति का दमन करने के लिए उपाय जुटाना उसके लिए अविलम्ब चिन्ता

---

२ कर्नाटविषयैर्भूपैरेकीभूय महीपतेः। उपायनानि दत्तानि धनानि विविधानिच। सेना बहुविधा : स्वीया दानमानप्रतोषिताः। प्रेषितास्तस्य सेवायै म्लेच्छ-संमर्दनक्षमाः॥ २. ३—४.

के विषय हो गये। १८ दिसम्बर, १६८९ ई० को समाट् ने कोड़ेगाँव-स्थित अपने शिविर से प्रस्थान किया और बीजापुर जा पहुँचा। वहाँ कुछ मास ठहरकर वह दक्षिण में और आगे बढ़ गया। बीजापुर से ३४ मील दक्षिण-पश्चिम में गलगले स्थान पर कृष्णा नदी के तट पर उसने अपना शिविर स्थापित किया। यहाँ उसने करीब ३ वर्ष बिताये। यदा-कदा वह बीजापुर भी जाता रहा। इस समय तक महाराष्ट्र में मराठा प्रभाव बढ़ गया था और १६९५ ई० में सम्राट् अपना शिविर वापस पंढरपुर के पास भीमा नदी के दक्षिणी तट पर ब्रह्मपुरी ले आया। इस स्थान का उसने नया नाम इस्लामीपुरी रखा और यहाँ पर मई १६९५ से अक्टूबर १६९९ ई० तक वह ४ वर्ष से भी अधिक समय तक रहा। इस समय के अन्त तक राजाराम महाराष्ट्र वापस आ गया था और जिंजी का पतन हो चुका था। अपने पश्चिमी गढ़ों के आश्रय में मराठे वास्तव में अजेय सिद्ध हुए। अतः सम्राट् ने यह खतरनाक निश्चय किया कि वह स्वयं उनके विरुद्ध प्रयाण करेगा और अपने शत्रु के इन अगम्य अड्डों को भूमिसात कर देगा।

सम्राट् के अफसर और सैनिक शिविर-जीवन से अब ऊब चुके थे। उन्हें अपने घर छोड़े हुए १७ वर्ष बीत चुके थे। उन्होंने सम्राट् से आग्रह किया कि मराठों से किसी प्रकार समझौता या शान्ति करके दिल्ली वापस चले। घटनाओं के इस मोड़ से सम्राट् सर्वथा हताश हो गया, और क्योंकि वह अब अपने अधिकारियों का विश्वास न कर सकता था इसलिए सतारा तथा अन्य पहाड़ी गढ़ों के विजयार्थ उसको स्वयं कष्टप्रद अभियान करने पड़े। १७०० ई० में सतारा को हस्तगत करने के बाद वर्षा ऋतु में मान नदी पर खवासपुर में उसने अपना शिविर स्थापित किया। यहाँ उस पर एक महान् विपत्ति टूट पड़ी, अनाशंकित जल-प्रवाह उसके समस्त शिविर को बहा ले गया। कोलाहल के कारण वह सोते से जाग गया और अँधेरे में जब वह बाहर की ओर भाग रहा था कि फिसल पड़ा। गिरने से वह लँगड़ा हो गया और आजीवन बना रहा। अगले तीन वर्ष तक वर्षा ऋतु में उसने अपना शिविर पूना

तथा अन्य समीपवर्ती स्थानों में रखा। १७०३ ई० में उसने सिंहगढ़ हस्तगत कर लिया और तब पूना में अपना शिविर ले आया। इसका नाम उसने मुहियाबाद रख दिया। परन्तु हस्तगत गढ़ों पर अधिक समय तक अधिकार न रखा जा सकता था। १७०५ ई० तक मराठों ने उन सब पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इस पूरे काल में सम्राट् और उसकी सेना को अधिकाधिक दुःख और क्लेश सहने पड़े। घुटनों तक के दलदल और भरी हुई नदियों में उनको पैदल चलना पड़ता था, साथ ही उन्हें अपनी भारी तोपों, सामान और गोला-बारूद को खींचकर हजारों फीट ऊँची पहाड़ियों तथा रक्षा-प्राचीरों पर पहुँचाना पड़ता था। इस प्रकार का युद्ध उन्हें एक-दो वर्ष नहीं बल्कि निरन्तर २५ वर्ष तक विदेश में लड़ना पड़ा। यह कार्य असाधारण वीरतापूर्ण सिद्ध होता, यदि इसके पीछे कोई बुद्धिगम्य कारण होता। इतिहास को इसमें केवल दुराग्रह का एक हास्यास्पद चित्र ही प्राप्त होता है, जिसका परिणाम औरंगजेब के साम्राज्य तथा भारतीय जनता के लिए दुखान्त सिद्ध हुआ। अन्त में सम्राट् का युद्ध-संगठन छिन्न-भिन्न हो गया। विद्रोह साधारण सी बात हो गये, जिनकी ओर उसे ध्यान देना जरूरी था। वाकिनखेड़ा तथा सुरपुर के बीदर सामन्त का मुकाबला करने के लिए एक बार पुनः उसे दक्षिण की ओर रायचूर के दोआब में प्रयाण करना पड़ा। उस प्रान्त में दो वर्ष तक व्यर्थ संघर्ष करने के बाद उसको ज्ञान हुआ कि उसका समस्त जीवन बिल्कुल व्यर्थ गया है। मराठों द्वारा की हुई फजीहत के कारण नितान्त थकान और निराशा में वह उत्तर में अहमदनगर वापस लौटा। यहाँ उसने २० फरवरी, १७०७ ई० को अपना पार्थिव शरीर त्यागा। सम्राट् की इन हलचलों की इस पृष्ठभूमि में ही मराठा संघर्ष का सही अध्ययन हो सकता है।

५. जिंजी का घेरा—अब हमें पुनः १६८९ ई० के वर्ष में आ जाना चाहिए, जो मुगल-मराठा-संघर्ष के इतिहास में तेजी से घटित होने वाली घटनाओं से ओत-प्रोत है। सम्भाजी की गिरफ्तारी

और उसकी मृत्यु, रायगढ़ का पतन और जिंजी को राजाराम का पलायन—ये सब घटनाएँ कुछ मासों में ही घटित हो गईं। जैसे ही जुल्फिकारखाँ शाहू और उसकी माता को बन्दी-रूप में लेकर कोड़ेगाँव पहुँचा, उसको पूर्वी कर्नाटक में राजाराम का पीछा करने की आज्ञा प्राप्त हुई। उसने ३० नवम्बर को सम्राट् का शिविर छोड़ा और जून में वह जिंजी के सामने पहुँच गया तथा तुरन्त गढ़ पर घेरा डाल दिया। यह घेरा ८ वर्ष तक चलता रहा और विभिन्न कारणों से मराठा इतिहास में स्मरणीय हो गया। यद्यपि उस स्थान पर दीर्घकालीन संघर्ष के बाद अधिकार कर लिया गया, किन्तु मराठा राजा पहले ही वापस महाराष्ट्र में भाग आया था। इस प्रकार सम्राट् की निराशा और विपत्ति में और भी अधिक वृद्धि हुई।

मराठों की दशा को पुनः सँभालने का श्रेय मुख्यतया असाधारण योग्यता के इन दो व्यक्तियों को है—निपुण योजना-निर्माता रामचन्द्र पन्त अमात्य और दक्ष आज्ञापालक सन्ताजी घोरपड़े सेनापति। कहा जाता है कि सन्ताजी को गुरिल्ला युद्ध-शैली पर पूर्ण अधिकार था। बाल्यावस्था में सन्ताजी ने शिवाजी की और सम्भवतया सम्भाजी की भी सेवा की थी, परन्तु इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है कि मन्दभाग्य राजा सम्भाजी के शासन-काल में वह क्या करता था। रायगढ़ के पतन से पैदा हुई विषम स्थिति में वह अन्धकार से प्रकाश में आया, जब छत्रपति और मराठा राज्य के रक्षण का भार उसको सौंपा गया। यदुनाथ सरकार ने लिखा है[3] कि ईश्वर ने उसको विशाल क्षेत्र में विस्तृत सैनिकों के समूहों का प्रबन्ध करने की विलक्षण बुद्धि दे रखी थी, शत्रु की योजनाओं और स्थिति में प्रत्येक परिवर्तन से पूरा लाभ उठाने के लिए अपनी चालों के बदलने की क्षमता और संयुक्त प्रगतियों को संगठित करने की उसमें जन्मजात दक्षता थी उसके दाँवपेचों की सफलता उसके सैनिकों की कार्यतत्परता और उसके अधीन अधिकारियों द्वारा उसके आदेशों का उपयुक्त समय पर तत्काल नियमित पालन पर निर्भर थी। अतः वह

---

३ औरंगजेब, जिल्द ५, पृष्ठ १२८।

अपने अधीन अधिकारियों से निर्विवाद आज्ञा-पालन पर जोर देता था और कड़े से कड़े दण्ड द्वारा अपनी सेना में कठोरतम अनुशासन लागू करता था। जैसा खफ़ीखाँ लिखता है—"सन्ता अपने अनुचरों को कठोर दण्ड देता था। तुच्छतम त्रुटि पर वह अपराधी को हाथी से कुचलवा कर मरवा देता।" "उसका सर्वश्रेष्ठ स्मारक वह घोर भय है जिसका संचार उसने मुगल सेना में कर दिया था। इसकी सच्ची झलक उन अभिशापों और गालियों में है जो फारसी इतिहास-ग्रन्थों में उसके नाम के स्थायी विशेषण हैं। जैसा कि बाद में ज्ञात होगा, सन्ताजी अपने प्रगल्भ और उद्धत आचरण से अपने स्वामी की निगाहों में घृणा का पात्र बन गया और उसकी कठोर आदतों के कारण उसके अधीनस्थ भी समान रूप से उससे असन्तुष्ट हो गये। यह उसके पतन का कारण सिद्ध हुआ।"

धनाजी जाधव भिन्न ढंग का व्यक्ति था। वह उसी परिवार का था, जिसकी शिवाजी की माता जीजाबाई थी। उसने सन्ताजी का समर्थन किया और जब भी इससे कहा गया उसने सहयोग किया। धनाजी उतना ही वीर और निर्भय था जितना सन्ताजी, परन्तु उसकी प्रकृति नम्र थी और जिह्वा अधिक मधुर। मुगल सैनिक धनाजी का इतना भय करते थे कि खफ़ीखाँ ने लिखा है—"जब उनके घोड़े पानी पीने से इन्कार करते तो मुगल सैनिक उनसे पूछते कि उन्होंने कहीं धनाजी का प्रतिबिम्ब तो पानी में नहीं देख लिया है। अपने जीवन के आरम्भ में धनाजी और सन्ताजी ने शर्ज़ा उर्फ रुस्तमखाँ को बुरी तरह हराया था, जब वह मई १६९० ई० में सतारा का गढ़ विजय करने आ रहा था।

६. **मराठों के उद्देश्य**—मुगलों के विरुद्ध अपने घोर संघर्ष को जारी रखने के उद्देश्यों का वर्णन बार-बार उन आज्ञाओं और पत्रों में स्पष्ट शब्दों में किया गया है जो उनके शासकों ने युद्ध-काल में निकाले। ४ जून, १६९१ ई०[४] को हनुमन्तराव घोरपड़े और उसके

---

४ बी० आई० एम० क्वार्टरली, १६.१ में शि० च० सा० ५,७६७।

रिश्तेदार कृष्णाजी से निश्चित रूप से कहा गया है कि "मुगल सेवा को त्यागने और महाराष्ट्र धर्म की रक्षार्थ राजा की सेवा में वापस आने की आपकी तत्परता को पूर्णतया समझकर आपके व्यक्तिगत और आपके सैनिकों के व्यय के लिए हम ६ लाख होन (२५ लाख रुपये) वार्षिक अनुदान कर रहे हैं। इसका अर्द्ध-भाग अर्थात् ३ लाख होन आपको उसी समय मिल जायेंगे जब आप अपना अधिकार निम्न स्थानों पर कर लेंगे—(१) रायगढ़ का जिला, (२) बीजापुर का जिला, (३) भागानगर (हैदराबाद का जिला), और (४) औरंगाबाद का जिला। प्रत्येक जिले के लिए ¾ लाख होन की दर से अनुदान मिलेगा। इस वार्षिक अनुदान का द्वितीय अर्द्ध-भाग उस समय दिया जायगा जब आप दिल्ली को हस्तगत कर लेंगे। आप हमारी आज्ञाओं का राजनिष्ठापूर्वक पालन करें और हमारा शासन आपके प्रति अपनी उदारता को जारी रखेगा।" अनेक उदाहरणों में से यह एक नमूने का उदाहरण है जिससे प्रकट है कि मराठा उद्देश्य के अनुसार यह धर्म-युद्ध था तथा असाधारण महत्व का था। महाराष्ट्र धर्म पर यह कठोर और प्रत्यक्ष आघात था कि उनके छत्रपति का निर्दयतापूर्वक वध किया गया और उसका साधारण दाह-संस्कार भी न होने दिया गया। इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि इन उद्देश्यों में दिल्ली की विजय भी सम्मिलित थी जिससे कि भारत का सम्पूर्ण उप-महाद्वीप हिन्दू-धर्म के लिए सुरक्षित हो जाये और भविष्य में मूर्तियों तथा मन्दिरों के विनाश को न देखना पड़े। औरंगजेब की सेनाओं में काफी अंश में हिन्दू थे अर्थात् उत्तर के राजपूत और दक्षिण के मराठे। निस्सन्देह उसका यह कर्तव्य था कि जो लोग उसकी सेवा में थे, वह उनकी भावनाओं का आदर करता। अनेक मराठा सरदार जो मुगल सेवा में थे, राजाराम के शासन के कारण मुगलों से विमुख हो गये। मराठा सरदारों को अपने राजा को छोड़कर उसकी सेवा में आ जाने का प्रलोभन देने के लिए औरंगजेब बहुत अधिक मात्रा में जागीरों, उपाधियों और पुरस्कारों का वितरण करता था। इसके प्रत्युत्तर में मराठा शासन ने

भी उन्हीं ढंगों को अपना लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन युद्ध का यह धार्मिक उद्देश्य बाद में पेशवाओं के नियन्त्रण में होने वाले मराठा प्रसरण के समय राष्ट्रीय माँग के रूप में प्रचलित रहा।

मराठा उद्देश्यों का यह वर्णन कुछ दुष्प्राप्य दस्तावेजों में ही सीमित नहीं है, बल्कि अधिकांश लेखों में उपस्थित है जिनमें उस समय के मराठा शासन के राजनीतिक कार्य-कलापों का विवरण है। २२ मार्च, १६९० ई० को निम्न शब्दों में जिंजी से राजाराम करी के देशमुख बाजी सरजाराव जेधे को अपने समर्थन का विश्वास दिलाता है और राष्ट्र के हित प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करता है—"कर्नाटक में अपने आगमन पर हमने ४० हजार सवार और १ लाख २५ हजार पैदल भरती कर लिये हैं। स्थानीय पालीगर और युद्धशील जनता मराठा झण्डे के नीचे शीघ्र एकत्र हो रही है। अब हमारे राज्य के पास जनता के लिए एक अद्भुत सन्देश है और उसमें से एक आप पहले से ही मुगलों के अन्यायों को भोग रहे हैं। धर्म के लिए आप वांछित बलिदान अवश्य करें। सन्ताजी और धनाजी के नेतृत्व में ४० हजार सैनिकों के संरक्षण में केशव त्रिमल पिंगले को एक लाख होन का कोष देकर हमने महाराष्ट्र में भेज दिया है। जैसे ही यह दल आपके प्रदेश में पहुँचे, अति वेग से अपने अनुगामियों को एकत्र कर आप इसमें सम्मिलित हो जायें ताकि हम अपने समान शत्रु को पराजित कर सकें। वास्तव में शत्रु स्वयं कुछ नहीं है—आप सदृश लोगों ने ही उसको इस महत्व को पहुँचा दिया है। यदि हमारे मराठे उसके साथ न होते तो वह कहीं का न रहता। आप में अकेले ही औरंगजेब को पराजित करने की शक्ति है। अपने धर्म में मिला लेने की धमकी देकर आपके साथ उसने अन्याय किया है। नेताजी, साबाजी घाटगे, जानोजी राजे तथा कुछ ब्राह्मणों को उसने पहले ही मुसलमान बना लिया है। हमारे राष्ट्र के विरुद्ध उसके घृणित उद्देश्य हैं जिनसे आप अवश्य सतर्क रहें। निम्बालकर और माने परिवार उसका पक्ष त्याग चुके हैं और उसके सहयोगी शीघ्रता से

घटते जा रहे हैं। ईश्वर हमारी सहायता कर रहा है। विजय निश्चय ही हमारी होगी।" अनेक पत्रों में से यह एक पत्र है जो राजाराम के चिटनिस खण्डो बल्लाल के हाथ का लिखा हुआ है। यह उस गाम्भीर्य को प्रकट करता है जिससे इस वीरतापूर्ण धर्म-युद्ध में मराठा राष्ट्र का हृदय आन्दोलित हो रहा था।

ऐसे प्रमाण-पत्रों के विस्तृत अध्ययन के बिना दक्षिण में औरंगजेब के कार्यों के इस अंग का हम सही निर्णय नहीं कर सकते। मराठा-भूमि की रक्षार्थ यह विरोध उत्कृष्ट प्रयास था। भविष्य की हिन्दू-पद-पादशाही आरम्भ से ही मराठों के लिए अपने धर्म को सुरक्षित रखने का पवित्र और प्रिय प्रश्न था जो राजनीतिक सत्ता के अभाव में असम्भव था। अपने प्रति अन्यायों का प्रतिशोध लेने की इच्छा से प्रेरित मराठे दल खानदेश से दक्षिणी समुद्र-तट तक गुजरात, बागलान, गोंडवाना और कर्नाटक में फैल गये। वे मुगल थानों को लूट लेते थे, उनकी सेनाओं का नाश कर देते थे, कर वसूल करते और मुगलों के खजानों, पशुओं और शिविर-सज्जा का हरण कर लेते थे। शीघ्र ही सम्राट् को पता चल गया कि इन तरीकों का सामना करने में वह असमर्थ है। खुले क्षेत्र में वह कितनी ही बड़ी सेना से युद्ध कर सकता था, परन्तु गुरिल्ला युद्ध-शैली की चालें—अगम्य स्थानों से चुपचाप गुप्त आक्रमण और वे भी अप्रतीक्षित कष्टदायक समय पर—उसके विशाल और भव्य साधनों के लिए भी दुर्लङ्घ्य सिद्ध हुईं। मराठों को सभी प्रकार के कष्टों को सहन करने का अभ्यास था। उनके लिए सादे से सादा भोजन पर्याप्त था, वे बुरे मौसम को सहन कर सकते थे, और इस प्रकार साधारण मुगल सैनिक के लिए वे वास्तव में भूत थे।

सम्राट् से मिल जाने वाले मराठा भगोड़ों के विरुद्ध रामचन्द्र पन्त ने प्रभावशाली तरीकों का प्रयोग किया। यदि पता चलता कि कोई सामन्त या व्यक्ति मुगलों के पक्ष में है तो उसके परिवार और सम्बन्धी तथा उसकी स्त्रियाँ और बालक पकड़ लिये जाते और उनके साथ कठोर बर्ताव किया जाता। इस प्रकार भगोड़ों, देशद्रोहियों तथा

धर्म-भ्रष्टों के लिए महाराष्ट्र में जीवन असह्य हो गया। वाई के पिसाल देशमुखों को, जिन्होंने रायगढ़ मुगल सेना को समर्पित कर दिया था, वर्षों तक असह्य यातनाएँ भुगतनी पड़ीं और दुखी जीवन की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिये गये थे, यद्यपि सम्राट् से उन्हें मुसलमान धर्म ग्रहण कर लेने के लिए बहुत सा पुरस्कार मिला था। जुन्नार के सम्मान-प्राप्त बेग परिवार को भी समान यातनाएँ भोगनी पड़ीं।[५]

येसूबाई मुगल-शिविर में अपने कारावास से मराठा नेताओं से सतत सम्पर्क बनाए रही और उनको उपयोगी समाचार भेजकर तथा व्यक्तिगत सन्देशवाहकों के द्वारा प्रायः संकेत देकर येसूबाई ने गुप्त रूप से मराठा नेताओं को सहायता पहुँचाई। ये सन्देशवाहक दोनों शिवरों के बीच में किसी न किसी बहाने से घूमा करते थे। येसूबाई की सलाह से राजाराम अपनी पत्नियों और उनके सेवक-सेविकाओं को जिंजी ले गया। पश्चिम तट पर स्थित वेंगुर्ला से वे एक जलपोत में रवाना हुए। खण्डो बल्लाल चिटनिस के विश्वस्त रिश्तेदार दो भाइयों—लिंगो शंकर और विसाजी शंकर—ने उनके अंग-रक्षक का कार्य किया। उनके अपने लद्दू जहाज थे जो पश्चिमी तट पर चलते थे और १६९४ ई० में[६] इन पोतों ने महिलाओं को सकुशल दक्षिण में पहुँचा दिया। इस टोली में राजाराम की तीन वधुएँ—ताराबाई, राजसबाई और अम्बिकाबाई—अपने सेवकों सहित थीं। वे होनावर पर उतर गईं और स्थल-मार्ग से बेदनूर के प्रदेश से यात्रा कर कुशलपूर्वक यथासमय जिंजी पहुँच गईं। पीछा करने वाला शत्रु उनको कोई कष्ट न पहुँचा सका। जिंजी में ९ जून, १६९६ ई० को ताराबाई के एक पुत्र हुआ और दो वर्ष पीछे (२३ मई, १६९८ ई०) राजसबाई के भी एक पुत्र हुआ। इन दो पुत्रों का मराठा राज्य के उत्तर-विकास में अच्छा योग रहा है, उनके नाम क्रमशः शिवाजी

---

५ देखो, पिसाल पत्र, राजवाड़े, जिल्द ३, संख्या ५६–६४।

६ विसाजी शंकर की सेवाओं के लिए दिनांक १९ अक्टूबर, १६९४ ई० के एक राजपत्र में पुरस्कार का वर्णन है। पृ० ३१–६०।

और सम्भाजी थे और वे छत्रपति के राजवंश की कोल्हापुर शाखा के मूल पुरुष हुए।

७. घेरा डालने वाले घेरे में—मराठा प्रशासकों और सेना-पतियों का मुख्य ध्येय इस समय जिजी से अपने छत्रपति को मुक्त करना, अपने भाई सदृश दुर्भाग्य से उसे बचाना और मुगल नियन्त्रण से मराठा भूमि को स्वतन्त्र करना था। ये बातें सम्राट् से छिपी न थीं और न इनकी तरफ से वह आँखें मूँदे था। केवल दुराग्रह के कारण उसने बैर-विरोध को समाप्त करने के लिए समझौते और सद्भाव की अपेक्षा युद्ध के कठोर उपाय को ही श्रेयस्कर समझा। यदि उसकी कार्य-प्रणाली तर्कसंगत होती और सम्मानपूर्वक उसने युद्ध समाप्त करने का प्रयत्न किया होता तो मराठा शासक अवश्यमेव उस प्रणाली का स्वागत करते और औरंगजेब के आधिपत्य को भी स्वीकार कर लेते। वे दक्षिण में एक छोटे से अधीन राज्य से सन्तुष्ट हो जाते। सम्राट् के कुछ शुभ-चिन्तकों ने इस कार्य-प्रणाली पर उसको राजी करने का प्रयास भी किया; परन्तु उसने दृढ़तापूर्वक इसका विरोध किया और कुपरिणामों को भोगा। प्रतिक्रिया-रूप में मराठों ने सेनाएँ एकत्र कर लीं और परेशान करने, विजय करने और प्रसरण की एक नवीन पद्धति का विकास कर लिया, जिसके द्वारा उन्होंने शिवाजी के समय के "स्वराज्य" को पुनः प्राप्त ही नहीं कर लिया वरन् महाराष्ट्र और कर्नाटक के देशों में चौथ और सरदेशमुखी लगाने का भी उनको अधिकार हो गया। इस प्रयास में अनेक प्रारम्भिक नेताओं का अन्त हो गया, परन्तु अगली पीढ़ी ने द्वि-गुणित उत्साह और सफलता से उनके अधूरे कार्य को जारी रखा।

युद्ध के वर्तमान दौर के प्रारम्भ के कुछ वर्षों में मराठों के दमनार्थ सम्राट् के प्रयासों का मुख्य उद्देश्य जिजी का गढ़ था। जुल्फिकारखाँ ने यथाशक्ति प्रयत्न किया परन्तु चारों ओर का विरोधी वातावरण सदैव उसके मार्ग में विघ्न उपस्थित कर देता था। वर्तमान अवस्था में मराठों के दमन का कार्य उसे निराशामय प्रतीत होने लगा और उनसे समझौता करने की नीति का भी कुछ समय तक उसने

उपयोग किया। सन्ताजी और धनाजी की सेनाएँ प्राय: बाहर से उस पर इतना भारी दबाव डालती थीं कि जिंजी पर घेरा डालने के स्थान पर उसे ऐसा भास होता था कि वह स्वयं और उसकी विशाल सेना घिर गई है और भूख से व्याकुल है। परिणाम यह हुआ कि इस विपत्ति में उसको घेरा उठाना पड़ा और १६९१ ई० की ग्रीष्म ऋतु में बाहरी जिलों में जाकर अपनी सेना की क्षतिपूर्ति का प्रयास करना पड़ा।

१६९२ ई० के अन्त में काँची में नियुक्त एक साहसी मुगल अधिकारी अलीमर्दानखाँ वीरतापूर्वक सामने आया और उसने सन्ताजी घोरपड़े का सामना किया जिससे कि उसको जुल्फिकारखाँ पर हमला करने से रोक दे। १३ दिसम्बर, १६९२ ई० को घोर युद्ध हुआ, जिसमें अलीमर्दानखाँ पराजित हुआ और बन्दी बनाकर जिंजी पहुँचाया गया। अपने को छुड़ाने के लिए उसे भारी मुक्ति-धन देना पड़ा। एक अन्य मुगल सेनापति इस्माइलखाँ मक के साथ भी ऐसा ही व्यवहार धनाजी ने किया (९ जनवरी, १६९३ ई०)। इस प्रकार जुल्फिकारखाँ संकटपूर्ण परिस्थितियों में फँस गया। उसके दो वीर सहायक दाऊदखाँ पन्नी और सरफराजखाँ भी उसके विरुद्ध हो गये और उसकी स्थिति अनिश्चित हो गई। उसके पास एक ही उपाय शेष था कि वह अतिरिक्त सहायता के लिए बार-बार सम्राट् को अपनी करुण प्रार्थनाएँ भेजा करता था।

सहायता और धन की इन जरूरी प्रार्थनाओं के प्रत्युत्तर में सम्राट् ने अपने पुत्र कामबख्श और जुल्फिकारखाँ के पिता व अपने मन्त्री असदखाँ के नेतृत्व में एक नवीन दल भेज दिया। परन्तु १६९१ ई० के अन्त में जिंजी के रणक्षेत्र में इन दो प्रसिद्ध व्यक्तियों के आगमन से स्थिति और भी जटिल हो गई और जुल्फिकारखाँ की चिन्ताएँ और कठिनाइयाँ पूर्ववत् बनी रहीं। कामबख्श ने अपने भाई अकबर के पूर्व-उदाहरण का अनुसरण किया। असदखाँ और जुल्फिकारखाँ ने शाहजादे पर यह आरोप लगाया कि वह मराठों से मिल गया है और दिसम्बर १६९२ ई० में उसे खुलेआम कैद कर

लिया। जब यह झूठी अफवाह फैल गई कि सम्राट् का देहान्त हो गया है, तब हालत बद से बदतर हो गई। दोनों खानों ने जिंजी के सामने से अपनी सेनाएँ हटा लीं और मराठों के भारी दबाव के कारण बड़ी बुरी हालत में वाराडीवाश की ओर पीछे हट गये। मार्टिन के संस्मरणों में इसका सविस्तार वर्णन है।

जुल्फिकारखाँ और असदखाँ ने मराठों का विरोध करने में तथा अपनी तथा सम्राट् के पुत्र कामबख्श की प्राण-रक्षा करने में जो जिंजी के समीप शिविर में उनके संरक्षण में था, सर्वथा निराश होकर राजाराम तथा उसके मन्त्री को बहुत-सा धन दिया और इस प्रकार बिना विशेष रोक-थाम के उनको वाराडीवाश हट जाने की अनुमति मिल गई। मराठा सेनापतियों और राजाराम में उनकी आश्चर्यजनक विजयों के इस पंगु परिणाम के कारण मतभेद उत्पन्न हो गया। मार्टिन लिखता है—"दिसम्बर १६६२ ई० में महाराष्ट्र से जो सेनापति जिंजी आये थे, उनको इस पर बहुत क्रोध आया कि राजाराम ने बिना उनकी अनुमति के केवल अपने मन्त्री के परामर्श से मुगलों के साथ सन्धि कर ली। राजाराम के मन्त्री से उनको विशेष ईर्ष्या थी। उन्होंने यह आरोप लगाया कि उस मन्त्री ने मुगलों का सकुशल पलायन की अनुमति देकर उनसे बहुत-सा धन ले लिया है, जब कि मराठे कामबख्श, वजीर असदखाँ, जुल्फिकारखाँ और सेना में उच्च स्थान प्राप्त अनेक व्यक्तियों को यथेच्छ अपने वश में रख सकते थे। मराठा सेनापतियों को विश्वास था कि मुक्ति-धन के रूप में वे उनसे बहुत-सा धन प्राप्त कर सकते थे और इसके अतिरिक्त सम्राट् को ऐसे महत्वशाली व्यक्तियों को वापस कर वे अपने हितानुकूल सन्धि कर सकते थे। राजाराम के इस आचरण से सन्ताजी घोरपड़े ऐसा भभक उठा कि अपनी सेनाओं को जिंजी के कई मील दूर हटा ले गया। विश्वास किया जाता था कि कृतज्ञता के कारण राजाराम ने ऐसा आचरण किया। वह अच्छी तरह जानता था कि जुल्फिकारखाँ आसानी से जिंजी पर अधिकार कर सकता था। राजाराम और जुल्फिकारखाँ में यह पारस्परिक व्यवस्था एक गुप्त

समझौते का परिणाम थी जो सम्राट् की सम्भावित मृत्यु और उसके पुत्रों में अनिवार्य उत्तराधिकार-युद्ध को दृष्टि में रखकर की गई थी। असदखाँ और जुल्फिकारखाँ की योजना थी कि दक्षिणी प्रायद्वीप में वे अपने को स्वतन्त्र शासक के रूप में स्थापित कर लें। उनके हिस्से में गोलकुण्डा का राज्य और राजाराम के हिस्से में बीजापुर का राज्य रहे।" राजाराम सन्ताजी से मिलने गया और उसे भेंट देकर शान्त कर दिया।[७] महाराष्ट्र और कर्नाटक के विस्तृत प्रदेश में मुगलों और मराठों के बीच जो उलझन भरा और अनियन्त्रित युद्ध हो रहा था, उस पर इन छुटपुट झगड़ों से हल्का प्रकाश पड़ता है। कुछ समय तक स्थिति पूर्णतया सन्ताजी के हाथों में रही और उसने इससे पूरा लाभ उठाया।

यह समझना सरल है कि जिजी का घेरा इस मन्द गति से इतने काल तक क्यों चलता रहा और जब सम्राट् को जिजी का वास्तविक वृत्तान्त प्राप्त हुआ तो उसे कितना क्रोध आया। परिस्थिति को सँभालने के लिए उसने दूसरे योग्य और विश्वस्त सेनापति क़ासिमखाँ को भेजा। उसने उसे जिजी के मार्ग के बीच में नियुक्त किया ताकि वह सन्ताजी और धनाजी के दलों को कुचल दे और जुल्फिकारखाँ को बिना बाहरी बाधा के घेरे को जारी रख सकने में सहायक हो। उसने जुल्फिकारखाँ को एक ही प्रहार में जिजी और राजाराम दोनों को हस्तगत कर लेने का आदेश दिया। यद्यपि खफीखाँ के लेखानुसार कासिमखाँ अफीम खाने का आदी था किन्तु अनुभवी और बुद्धिमान सेनापति था तथा उसके सुपुर्द जो भारी कार्य किया गया था, उसके सम्पादन में वह उत्साहशील था। परन्तु सन्ताजी की विलक्षण बुद्धि के सामने वह भी कैसे हल्का पड़ गया, यह भारतीय युद्ध के इतिहास में चकाचौंध करने वाली घटना है जिसका उल्लेख जिजी की कहानी पूरी करने के पहले आवश्यक है।

८. सन्ताजी के वीर-कर्म—अक्टूबर १६९५ ई० में दशहरे के

---

७ सरकार कृत 'हाउस ऑफ शिवाजी', अध्याय १३, पृ० २१६—मार्टिन के संस्मरण।

त्यौहार के अवसर पर रामचन्द्र पन्त ने विशालगढ़ में अधिकांश उत्तरदायी मराठा नेताओं को एक सम्मेलन तथा व्यक्तिगत विचार-विमर्श के लिए बुलाया। इसका उद्देश्य उस स्थिति का अवलोकन था जो बिखरे हुए मराठा दलों के कारण पैदा हो गई थी, जिनमें आपस में कोई सहयोग न था और जो एक दूसरे से स्वतन्त्र अपना-अपना कार्य कर रहे थे। भविष्यकालीन आक्रमण के संचालन के लिए एक प्रभावशाली उपाय ढूँढ़ निकालना था, जिससे उस विपत्ति का सामना किया जा सके जो सम्राट् द्वारा कासिमखाँ की नियुक्ति के कारण सम्भावित थी, और शीघ्रता से विजय प्राप्त की जा सके। उन्होंने भावी विशाल आक्रमणों की योजनाएँ तैयार कीं। दो मुख्य दलों का निर्माण किया गया—एक मुगल प्रदेश के उत्तरी भागों को लूटने के लिए और दूसरा तुङ्गभद्रा के प्रान्त में कार्यवाही के लिए, जिससे कि छत्रपति के विरुद्ध जिंजी पर होने वाले हमलों को रोका जाये और कासिमखाँ को परास्त किया जाये। योजना के द्वितीय भाग को कार्यान्वित करने के लिए सन्ताजी तैयार हो गया और धनाजी को आदेश हुआ कि बीजापुर के प्रान्त में रहे, सम्राट् की गतिविधि पर निगाह रखे और विपत्ति-काल में सन्ताजी की सहायता के लिए तैयार रहे। सम्राट् का शिविर उस समय ब्रह्मपुरी में था, जहाँ शीघ्र ही उसको रामचन्द्र पन्त की योजनाओं का समाचार ज्ञात हुआ। उसने तुरन्त एक अन्य अनुभवी सेनापति हिम्मतखाँ को भेजा जिससे कि सन्ताजी कोई शरारत न कर सके। दोनों मुगल सेनापतियों ने उस गति का आरम्भ किया जिसको सन्दंश गति कहते हैं जिससे सन्ताजी को दोनों ओर से—सामने से और पीछे से घेर लिया जाये। धनाजी को इस गति का पता चल गया, उसने कर्नाटक की ओर शीघ्र प्रयाण किया ताकि गम्भीर होने पर परिस्थिति को सँभाल ले। सन्ताजी और धनाजी की संयुक्त रण-कुशल चालों के सामने अपनी सेनाओं के लिये सम्राट् को घोर चिन्ता हो गई। कासिमखाँ ने भी सम्राट् को वृत्तान्त भेजा कि परिस्थिति किस प्रकार उसके प्रतिकूल विकसित हो रही है और अधिक सेनाएँ और रण-सामग्री भेजने का आग्रह किया। इस संकट-

काल में औरंगजेब ने दरबार के उदीयमान व्यक्ति पूज्य रुहुल्लाखाँ के पुत्र, विश्वासपात्र उत्साही नवयुवक खानाजादखाँ, को चुना और उसे तुरन्त दक्षिण को भेज दिया। उसके साथ स्वयं सम्राट् का उत्कृष्ट अंगरक्षक-दल था तथा सफशिकनखाँ और मुहम्मद मुरादखाँ सदृश अन्य अनुभवी अधिकारी थे।

इस विशाल व्यवस्था के कार्य-रूप में परिणत हो जाने पर सम्राट् को सब काम सुचारु रूप से होने का विश्वास था। इन सेनापतियों ने कर्नाटक के प्रदेश से होकर प्रयाण किया और नवम्बर १६९५ ई० के आरम्भ में कासिमखाँ से जा मिले। इस संकटग्रस्त परिस्थिति का सफलतापूर्वक सामना सन्ताजी ने जिस प्रकार किया वह युद्ध-कला का चमत्कारिक रहस्य है। उसके असंख्य गुप्तचर नियुक्त थे। जैसा कि बड़ी घटनाओं से प्रकट होगा, वह स्थिति से पूर्ण परिचित था और परिवर्तित परिस्थिति के अनुकूल अपनी गतिविधि को बदल लेता था। जो परिस्थिति भयानक परीक्षा प्रतीत होती, उसमें वह अद्भुत सफलता प्राप्त कर लेता था।

जब कासिमखाँ को यह वृत्तान्त मिला कि उच्च पदस्थ सामन्त खानाजादखाँ उसकी सहायतार्थ आ रहा है, तो उसने यह आवश्यक समझा कि उसका उचित स्वागत करे। उसने अडोनी से बहुमूल्य तम्बू, फर्नीचर और मूल्यवान खाने के बर्तन मँगवाये और अपने सम्मानित अतिथि के लिए सुसज्जित शिविर तैयार किया। उसको इन खुली तैयारियों में किसी भी विपत्ति का सन्देह न था। चित्र दुर्ग के नायक ने जिस पर कासिमखाँ ने अन्याय किया था, गुप्त रूप से मुगल शिविर की निर्बलताओं का समाचार सन्ताजी को भेज दिया और चतुर सन्ताजी ने तुरन्त उससे लाभ उठाया। उसने अपने सैनिकों को तीन दलों में बाँट दिया, प्रत्येक को भिन्न-भिन्न मुगल सामन्तों पर परस्पर मिलने के पहले ही अलग-अलग टूट पड़ने का कार्य सौंपा। खानाजादखाँ के स्वागतार्थ सुसज्जित शिविर पर कासिमखाँ के आगमन के ठीक पहले सन्ताजी सुबह होने के पूर्व ही अकस्मात् झपट पड़ा और सारे स्थान में आग लगा दी।

जैसे ही कासिमखाँ को इस घटना का समाचार प्राप्त हुआ, उसने जल्दो से सन्ताजी पर आक्रमण किया और शीघ्र ही कुछ समय बाद खानाजादखाँ भी उससे आकर मिल गया। सन्ताजी इस काण्ड के लिए पूरी तरह तैयार था। उसने एक अतिरिक्त दल पास ही में छिपा रखा था, जो इन आक्रान्ताओं पर टूट पड़ा और उन्हें दो दलों के बीच में जकड़ लिया। मराठों की विनाशक अग्नि का सामना करने में असमर्थ पाकर दोनों खान भयभीत होकर चित्र दुर्ग के करीब २५ मील पूर्व में दुदेरी नामक एक छोटे से गढ़ की ओर भाग गये। "युद्ध की समस्त योजनाओं को छोड़कर सम्राट् की सेना अस्त-व्यस्त होकर दुदेरी की सड़क पर भाग निकली, बहुत कठिनाई से उस स्थान पर पहुँची और घेरे में पड़ गई।"[८] सन्ताजी शीघ्र ही वहाँ पहुँच गया और उस स्थान को तुरन्त निकट से घेर लिया, जिसमें न पानी था, न अन्न और जो दीर्घकालीन घेरे के लिए तैयार नहीं किया गया था। तीन दिन तक भूखे-प्यासे मुगल सैनिक विकट संकट में पड़े रहे। मराठा तोपों की घातक मार से बचने का भी प्रबन्ध न था। कासिमखाँ को नित्य अफीम खाने की आदत पड़ी हुई थी। अब वह उसको न मिल सकी और कष्ट के कारण अत्यन्त तकलीफ में २० नवम्बर, १६९५ ई० को उसका देहान्त हो गया। कहा यह गया कि सम्राट् द्वारा पदच्युत कर दिये जाने के भय से उसने विष खाकर अपने प्राणों का अन्त कर दिया। बेचारे खानाजादखाँ ने सन्ताजी से दया की याचना की और आत्म-समर्पण कर दिया। पराजित शत्रु के प्रति सन्ताजी में उदारता का अभाव न था। उसने मुक्ति-धन के रूप में २० लाख रुपये स्वीकार कर लिए और इसके अतिरिक्त लगभग ३० लाख रुपये के मूल्य का शिविर का सारा सामान भी उसे मिला। सन्ताजी ने अपना स्वयं का अंगरक्षक-दल खान को सम्राट् के पास पहुँचा देने के लिए भेजा। उसने सम्राट् को एक व्यक्तिगत सन्देश भी भेजा कि अपने निकृष्ट शत्रु के रूप में वह इस मानव

---

८ सरकार कृत "औरंगजेब", खण्ड ५, पृष्ठ ११३।

कोष को स्वीकार करे। कासिमखाँ ने अपने पापों का फल पहले ही भोग लिया था।

६. **सन्ताजी का दुःखद अन्त**—चूँकि इन घटनाओं की सूचना सम्राट् को निरन्तर प्राप्त हो रही थी, उसने पहले ही प्रथम दो सेनाओं की सहायतार्थ पूर्ण युद्ध-सामग्री सहित एक अन्य वीर सेनापति हमीदुद्दीनखाँ को रवाना कर दिया था। एक दूसरा मुगल अधिकारी हिम्मतखाँ बहादुर जो दूर न था, शीघ्र मराठों पर झपटने को बढ़ा। बसवपट्टन के समीप घोर युद्ध में सन्ताजी ने हिम्मतखाँ और उसके पुत्र से मोर्चा लिया। पिता और पुत्र दोनों पराजित हुए और मौत के घाट उतार दिये गये (२० जनवरी, १६९६ ई०)। तब हमीदुद्दीनखाँ का आगमन हुआ। उसकी सेनाओं में नवीन जोश था, जबकि सन्ताजी के सैनिक थके हुए थे और दीर्घकालीन कठोर युद्ध से ऊब गये थे। उसने सन्ताजी को हरा कर भगा दिया (२६ फरवरी)। सन्ताजी के इन चमत्कारिक कृत्यों की कथा समस्त देश में गूँज उठी, जिसके कारण मराठों को बहुत हर्ष हुआ और मुगलों को बहुत निराशा। परन्तु सन्ताजी को अब आकस्मिक पतन का सामना करना था। ईश्वर ने उसको मधुर जिह्वा और रोचक स्वभाव नहीं दिया था। केवल एक व्यक्ति था जिसका सन्ताजी सम्मान करता था और उसकी आज्ञा का पालन करता था, वह था रामचन्द्र पन्त जो इस समय बहुत दूर महाराष्ट्र में था।

इन वर्षों में उन्होंने एक दूसरे को जो बहुत से पत्र लिखे, वे प्रकाशित हो चुके हैं और उनसे स्पष्ट है कि सन्ताजी को नियन्त्रण में रखने का कार्य रामचन्द्र पन्त को कितना कठिन प्रतीत हुआ। इनमें बार-बार सेनापति को चेतावनी दी गई है कि अपने सहकारियों और बड़ों, विशेषकर छत्रपति के प्रति उसको मधुरभाषी और नम्र रहना चाहिए। सन्ताजी की कटु जिह्वा और गर्वशील वृत्ति से अनेक बार राजाराम को घृणा हो गई थी। विभिन्न सेनापतियों पर इन अतुलित विजयों के बाद सन्ताजी सीधा जिंजी गया (अप्रेल १६९५ ई०) और अपनी सेवाओं का पर्याप्त पुरस्कार माँगा। परन्तु शनैः-शनैः

राजाराम और सन्ताजी एक दूसरे से इतने खिंच गये थे कि उनमें गम्भीर विवाद हो गया, जो कटूक्तियों तक पहुँच गया। दोनों रुष्ट हो गये। सन्ताजी ने राजाराम पर क्षुद्रता का स्पष्ट आरोप लगाया और इस प्रकार की बातें कहकर गुबार उतारा—"आपकी स्थिति केवल मेरे कारण है। मैं छत्रपति बना सकता हूँ और बिगाड़ सकता हूँ।" राजा नम्र प्रकृति का था, किन्तु उसके लिए भी यह बात असह्य थी। सन्ताजी को तुरन्त सेनापति के स्थान से पदच्युत कर धनाजी को उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया गया।[९]

सैकड़ों रणों का विजेता सन्ताजी जैसा वीर पुरुष इस अपमान को कैसे चुपचाप सह लेता और बिना प्रहार किये कैसे अपने उत्तराधिकारी को अपना आसन दे देता? सम्राट् ने पहले से ही सन्ताजी के सिर के लिए पुरस्कार घोषित कर रखा था। यह मान लेना आवश्यक नहीं है कि सन्ताजी और धनाजी में प्राणघातक वैमनस्य उपस्थित करने में मुगलों का कोई हाथ था। इस प्रश्न पर कि सेनापति का पद उनमें से किसके अधिकार में होना चाहिए वे गालियों से लड़ने पर उतर आये। जून १६९६ ई० में काँची के समीप मणिमुक्ता नदी पर ऐवरगुडी के पास उनमें लड़ाई हुई जिसमें धनाजी हार गया और उसका नवयुवक वीर समर्थक अमृतराव निम्बालकर बन्दी बना लिया गया, जिसको सन्ताजी ने हाथी के पैरों से कुचलवा कर निर्दयता से मरवा दिया। अमृतराव की बहिन राधाबाई सतारा के पास हसवाड़ के नागोजी माने को ब्याही थी। नागोजी स्वार्थवश महात्वाकांक्षा पूरी करने के लिए प्रवृत्त था और सन्ताजी के विनाश के लिए सम्राट् से षड़यन्त्र कर रहा था। अपने भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने की इच्छा से राधाबाई ने अपने पति को प्रोत्साहित किया। १६९६ ई० की वर्षा ऋतु एक ओर तो सन्ताजी के लिए और दूसरी ओर राजाराम और धनाजी के लिए

---

९ देखो, पी० डी० ३१.६८, दिनांक १७ अक्टूबर, १६९६ ई०; मावजी और परसनिस कृत सनद और पत्र, पृ० १७७।

संकट में बीती। चूँकि सन्ताजी को हराना आसान न था, अतएव उसके अनुचरों को प्रलोभन दिया गया और वे गुप्त रूप से मिला लिये गये। इस विनाशक खेल में नागोजी माने का मुख्य हाथ रहा। सन्ताजी के सैनिक धीरे-धीरे थोड़े से रह गये और उसका बल बहुत कम हो गया। वास्तव में बहुत से ऐसे उदाहरण लेखबद्ध हैं, जिनमें मराठा सरदारों ने इस लम्बे युद्ध में दोनों विरोधी दलों में बराबर अपना आवागमन रखा, इसमें समयानुवर्ती स्वार्थ और विभाजित स्वामिभक्ति ने अपना पूरा-पूरा खेल खेला।

राजाराम ने धनाजी को आज्ञा दी कि सन्ताजी को पकड़ ले और बन्दी बनाकर उसके सम्मुख प्रस्तुत करे। तब सन्ताजी भाग निकला और धनाजी ने कर्नाटक से निकलकर महाराष्ट्र में उसका पीछा किया। इस पलायन में बीजापुर के समीप उनमें लड़ाई हुई जिसमें मार्च १६९७ ई० में सन्ताजी की करारी हार हुई और अपनी प्राण-रक्षा के लिए वह सतारा के पूर्व में स्थित महादेव की पहाड़ियों में चला गया। उसके इस एकाकी भ्रमण में केवल थोड़े से व्यक्तिगत सेवक उसके पास रह गये थे। नागोजी माने उसके पीछे लगा हुआ था। जून १६९७ ई० में दोपहर की गर्मी में जब सन्ताजी एक झरने पर नहा रहा था, कुछ शस्त्रधारियों ने उस पर अचानक हमला कर दिया और उसका सिर काट कर नागोजी माने के पास ले आये। नागोजी माने सिर को लेकर तुरन्त ब्रह्मपुरी में सम्राट् के शिविर को गया और सिर उसे भेंट कर दिया। बदले में नागोजी को सम्राट् ने घोषित पुरस्कार और अच्छी जागीर दी। अपने प्राणघातक शत्रु के इस अन्त से सम्राट् बहुत प्रसन्न हुआ।[१०] इस समय सन्ताजी का

---

१० जिस परिस्थिति में सन्ताजी की दुःखद मृत्यु हुई, उसके कई भिन्न-भिन्न वर्णन हैं। निश्चित सत्य का कहीं भी उल्लेख नहीं है। लोग क्रोधातुर थे और इसका प्रभाव कहानियों पर पड़ा। फारसी, फ्रेंच और अन्य सूत्रों का अध्ययन कर सर यदुनाथ सरकार ने यथाशक्ति इस कहानी को अधिकतम विश्वसनीय रूप देने का प्रयत्न किया है।

देखिए उनका "हाउस आफ शिवाजी", पृष्ठ २१५-२३८; और उन्हीं का 'औरंगजेब', खण्ड ५।

स्मरण गुरिल्ला-युद्ध-शैली के उच्चतम विशेषज्ञों के रूप में किया जाता है। यही श्रेष्ठतम अस्त्र था जिसके कारण भारत में तोप युद्ध के विकास के पहले मराठे इतनी शीघ्र उन्नति कर सके। इस वीर की मृत्यु मराठों के भाग्य पर भारी आघात सिद्ध हुई।

१०. **गुरिल्ला-युद्ध-शैली का वर्णन**—युद्ध के इस अद्‌भुत रूप की व्याख्या आवश्यक है, जिसको मराठे 'गनीमी कव' कहते हैं। मराठों को गनीम या लुटेरा कहलाने में गर्व होता था। उन्होंने युद्ध की इस अद्‌भुत शैली का विकास किया, जिसका वर्णन इतिहास-लेखक चिटनिस ने इस प्रकार किया है—"मुगल सेनाएँ विशाल संख्या में हैं और वे केवल खुली भूमि पर अडिग रहती हैं। इसके विपरीत मराठे आज इस स्थान पर अचानक प्रकट हो जाते हैं और कल ५० मील दूर दूसरे स्थान पर। तब वे फिर वापस आ जाते हैं और अचानक धावा कर देते हैं। वे युद्ध का केवल दिखावा करते हैं, वे लूटते हैं और भाग जाते हैं। वे चारा जमा करने वाले दलों पर टूट पड़ते हैं, मुगल अधिकृत निर्बल स्थानों पर आक्रमण करते हैं, रणोपयोगी स्थानों पर अधिकार कर लेते हैं और इस प्रकार अपने अनुचरों में विश्वास उत्पन्न करते हैं। वे गोदावरी नदी से भागानगर तक मुगल प्रदेश को नष्ट कर देते हैं; लद्दू जानवर घोड़े और हाथी पकड़ ले जाते हैं, शत्रु में अस्तव्यस्तता उत्पन्न कर देते हैं और एक दूसरे से बहुत दूर गुप्त झाड़ियों में छिपे रहते हैं। जिंजी जाने वाली मुगल सेनाओं पर वे अचानक टूट पड़ते हैं। कभी-कभी वे उनसे खुलकर भी युद्ध करते हैं और प्रत्येक सम्भव उपाय से उन्हें इष्ट स्थान पर पहुँचने से रोक देते हैं। इन घातक जीवों को परास्त करने के सम्बन्ध में सम्राट् पूर्ण हताश है। वायु के समान वे सर्वव्यापक और धोखा जैसे प्रतीत होते हैं। जब आक्रमणकारी मुगल सेनाएँ पीछे हट गईं, बिखरे हुए मराठे, डाँड़ से अलग किये हुए पानी की भाँति, पुनः सिमिट आये और यथापूर्व अपने आक्रमण को पुनः आरम्भ कर दिया।" "यदि कोई मुगल अधिकारी मराठों का प्रतिरोध करता, पराजित होता और बन्दी

बना लिया जाता, तो स्वयं उसको अपने लिए मुक्ति-धन देना पड़ता था। सम्राट् प्रायः इन मन्दभागी पीड़ितों को कायरता के सन्देह में सेवा से निकाल देता था। अतः उनसे लड़ने की अपेक्षा उनको रिश्वत दे देना मुगल अधिकारी के लिए अधिक लाभकारी था। यह निश्चय ही सस्ता था। इनसे भी निकृष्ट सम्राट् के वे अनेक सेवक थे जो शत्रु से मिल जाते थे और सम्राट् की ही प्रजा और निरपराध व्यापारियों को लूटकर मालामाल बन जाते थे।[11]

"इस प्रकार मराठों की दृष्टि में अपने जीवन का कोई मूल्य न था और वे सर्व प्रकार अपने राज्य की रक्षा करते थे। उनको जागीरें और उपाधियाँ पुरस्कार में मिलती थीं। एक ओर अपनी सर्व-शक्तिमान् सम्राट् है जिसके पास असंख्य सैनिक हैं, असीम कोष है जो असंख्य गाड़ियों में लद कर चलता है और दूसरी ओर ये थोड़े से दरिद्र मराठे हैं जो सावधानी से अपने जीवन और साधनों का उपयोग कर रहे हैं, परन्तु मुगल दलों के विरुद्ध भेड़ियों की टोलियों की भाँति निरन्तर कार्य-प्रवृत्त रहते हैं और उनकी सम्पन्नता में भी साधनों का अभाव कर देते हैं।"[12]

सन्ताजी के पीछे उसका प्रेरणादायक नाम रह गया और रह गया भाई-भतीजों का एक बड़ा परिवार, जिनमें सौभाग्यवश उसकी अनुशासनहीनता और उग्र प्रकृति का अभाव था और उनमें धनाजी जाधव के प्रति घृणा के चिह्न भी न थे, जो पहले ही सेनापति के पद पर आसीन हो चुका था। पूर्ण हार्दिक सहयोग से युद्ध को जारी रखने के लिए वे सब उसके साथ हो गये और जब जिंजी के पतन के बाद राजाराम तथा उसका दरबार महाराष्ट्र को वापस आया तब समस्त घोरपड़े परिवार के संयुक्त प्रयास ने ही मराठा राज्य के लिए दूरस्थ कर्नाटक को जीता और सुरक्षित रखा। यह अमूल्य विरासत उन्हीं के वंशज गुट्टी के मुराररराव ने प्राप्त की।

---

११ चिटनिस द्वारा लिखित "राजाराम की जीवनी", पृष्ठ ४१-४३; सरकार लिखित "औरंगजेब", खण्ड ५, पृष्ठ १२।

१२ ग्राण्ट डफ, खण्ड १, पृष्ठ ३३८ में गुरिल्ला-युद्ध-शैली का वर्णन है।

उसका जीवन अर्द्ध-शताब्दी से भी अधिक समय तक कष्टों में बीता। उसका मराठा इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। घोरपड़े परिवार के विगत वैभव के स्मारक के रूप में गजेन्द्रगढ़, सन्दुर, कपसी और अन्य छोटे-छोटे राज्य अब भी वर्तमान हैं।

११. राजाराम का पलायन; जिंजी का पतन—सन्ताजी की मृत्यु के कारण शत्रु की कार्यवाही का क्षेत्र तुरन्त ही कर्नाटक से हट कर महाराष्ट्र हो गया। सम्राट् जुल्फिकारखाँ पर जिंजी के गढ़ को जीतकर घेरे को शीघ्र समाप्त करने के लिए दबाव डाल रहा था। उसकी विलम्बकारी पद्धति पर सम्राट् ने कठोर उपालम्भ भी भेजे। दिसम्बर १६९७ ई० में राजाराम घेरा डालने वाली सेना से बच निकलने में सफल हो गया, वह वेल्लोर पहुँचा और महाराष्ट्र वापस आ गया। इस समाचार से सम्राट् जुल्फिकारखाँ पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। यदि सम्राट् उस स्थान पर उपस्थित होता तो उसको अवश्य पदच्युत कर देता और दण्ड देता। राजाराम की महिलाओं को अपने देश के लिए गढ़ से बिना सताये निकल जाने की अनुमति देकर अन्त में खान ने सूचना भेजी कि ७ फरवरी, १६९८ ई० को गढ़ पर अधिकार हो गया है। वे यथासमय विशालगढ़ पहुँच गईं। प्रह्लाद नीराजी का पुत्र नारो प्रह्लाद पकड़ लिया गया और मार डाला गया ताकि सम्राट् को सन्तोष हो जाये कि कुछ व्यक्ति पकड़े गये और मार डाले गये। जुल्फिकारखाँ को पुरस्कार में नसरतजंग की उपाधि प्राप्त हुई। जिंजी के इस लम्बे घेरे की तुलना इतिहासकार प्राचीन ग्रीस के ट्रौय के घेरे से करते हैं। मुगलों को जिंजी पर अधिकार से कुछ अधिक लाभ न हुआ। वे अपनी राजधानी को जिंजी से हटाकर अर्काट ले गये।

जिंजी से भागकर राजाराम ने सम्राट् के प्रबल जत्थों से बचते हुए विशालगढ़ के लिए प्रस्थान किया (२२ फरवरी, १६९८ ई०)। मार्ग में इस बार उसने शान्ति के कुछ प्रस्ताव सीधे सम्राट् के पास भेजे, परन्तु उसने इनको ठुकरा दिया और युद्ध को निष्ठुरता से जारी रखा। जैसे ही छत्रपति मराठा भूमि में पहुँचा, यह आवश्यक हो गया

कि एक राजधानी बनाई जाये जहाँ से मराठा शासन-कार्य चल सके। रायगढ़ और जिंजी दोनों का पतन हो चुका था। प्रशासकीय कार्य में आवश्यक यातायात के लिए विशालगढ़ दुर्गम था। अतः प्रकृति द्वारा सुरक्षित सतारा के गढ़ को उपयुक्त केन्द्र के रूप में चुना गया और यहाँ पर दशहरा के समीप १६९८ ई० में राजाराम ने अपनी राजधानी स्थापित की। सतारा पर शीघ्र ही औरंगजेब ने अधिकार कर लिया, परन्तु मराठों ने १७०४ ई० में पुनः इसको हस्तगत कर लिया। मुगल शिविर से १७०८ ई० में शाहू की वापसी पर यह पुनः मराठा शासन का केन्द्र हो गया और इसका नाम शाहूनगर रखा गया।

१६९८ ई० और उसके अगले वर्ष में राजाराम ने अपने देश का विस्तृत दौरा किया, स्थानीय अधिकारियों और गढ़ों के संरक्षकों से सम्पर्क स्थापित किया और अपनी व्यक्तिगत उपस्थिति से अपने श्रान्त सैनिकों को प्रोत्साहित किया। अपने इस निरीक्षण-दौरे के दौरान में उसे मुगल सत्ता के पतन का स्पष्ट प्रमाण प्राप्त हुआ। अपने शासन के परस्पर विरोधी और विस्तृत तत्वों के नियन्त्रण के लिए सम्राट् अति वृद्ध हो गया था। प्रत्येक सैनिक इस युद्ध से तंग आ गया था। सम्राट् इसमें दुराग्रह मात्र से निरत था और इसके लिए किसी मुगल में उत्साह शेष न था। युद्ध के विवरणों की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत लाभ की ओर सम्राट् के पुत्रों और अधिकारियों का ध्यान अधिक था और वे केवल उन अवश्यम्भावी परिवर्तनों का विचार कर रहे थे, जो सम्राट् की मृत्यु के बाद अवश्यमेव होने वाले थे। देवगढ़ का राजा बुलन्दबख्त मराठा राजाओं की भाँति अपने प्रदेश पर मुगल आक्रमण का वीरतापूर्वक मुकाबला कर रहा था। उसने अपने प्रतिनिधि राजाराम के पास भेजे और सम्राट् के उत्तरी अधिकृत क्षेत्रों पर सम्मिलित आक्रमण का प्रस्ताव किया। इस पर राजाराम ने नेमाजी सिन्दे को अन्य सरदारों के साथ खानदेश और बरार को लूटने के लिए और उन जिलों से चौथ वसूल करने के लिए भेजा। १६९९ ई० के आरम्भ में नेमाजी का सामना तलनेर के

मुगल राज्यपाल हुसैनअली खाँ से हुआ। एक घोर युद्ध में उसने उसको बन्दी बना लिया और २ लाख रुपये का जुर्माना वसूल कर उसे छोड़ दिया। इस समाचार से सम्राट् को वर्णनातीत दुःख हुआ।

१६९९ ई० के दशहरे के दिनों में स्वयं राजाराम सतारा से रवाना हुआ। उसके साथ भविष्य में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले कुछ नवयुवक नेता खंडेराव दाभादे, परसोजी भोसले, हैबतराव निम्बालकर आदि भी थे। धनाजी उनका नेता था। उन्होंने प्रसिद्ध किया कि वे सूरत पर चढ़ाई करने और उसे लूटने जा रहे हैं। इस संकट को दूर करने के लिए सम्राट् ने अपनी सेना का एक प्रबल भाग उनके विरुद्ध भेजा। इन मुगल टोलियों और मराठा हमलावरों में कुछ छेड़-छाड़ हुई। नवम्बर में स्वयं राजाराम को उत्तर की ओर जाने से जुल्फिकारखाँ ने रोका और उसको वापस लौटने को विवश कर दिया। मुगल शिविर को लूटने के लिए वह सीधा ब्रह्मपुरी आया। सम्भव-रूप में वह शाहू को भी छीनना चाहता था। इस समय मराठों का साहस कितना बढ़ गया था यह राजाराम के पत्र से प्रमाणित है जो उसने २२ दिसम्बर, १६९९ ई० को बिठोजी बबर को लिखा था। वह लिखता है—"हम सिंहगढ़ पहुँच गये हैं और हमने सेनाओं का समस्त बल सम्राट् के विरुद्ध लगा दिया है। सेनापति धनाजी, नेमाजी सिन्दे, परसोजी भोसले और अन्य नेताओं ने ब्रह्मपुरी में सम्राट् के शिविर पर घोर आक्रमण कर दिया है और उन्होंने स्वयं सम्राट् की पुत्री और कुछ प्रतिष्ठित परिवारों को बन्दी बना लिया है। इसके बाद वे दस हजार लद्दू जानवरों के काफिले पर टूट पड़े जो सतारा पर प्रयाण करने वाली सम्राट् की सेनाओं के लिए सामग्री ले जा रहे थे। शत्रु हतोत्साह हो गया है और सतारा गढ़ के विरुद्ध कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। हम अब शक्तिशाली सम्राट् की कुछ चिन्ता नहीं करते, जिसको हम शीघ्र ही ईश्वर की इच्छा से भगा देंगे। इस सम्मिलित प्रयास में आप यथाशक्ति भाग लें। आपकी सेवाओं का पुरस्कार हम बड़ी मात्रा में दे रहे हैं।"[१३]

---

१३ "प्रतिनिधियों का इतिहास", जिल्द ३, पृ० ४५१।

१२. राजाराम की मृत्यु और उसका चरित्र—विजय और उदीयमान आशा के इस अवसर पर मराठा जाति को विकट हानि सहनी थी। राजाराम को शिविर जीवन का परिश्रम असह्य प्रतीत हुआ और उसका स्वास्थ्य अचानक जबाव दे गया। अपने प्रयाण में मार्ग में वह रुग्ण हो गया और उसको उस समय पालकी में ले जाना पड़ा जब सम्राट् सतारा का घेरा डाले हुए था। अतः राजाराम सिंहगढ़ गया जहाँ २ मार्च, १७०० ई० को अपने पहुँचने के तुरन्त वाद उसका देहान्त हो गया। उस समय उसने अपने जीवन के ठीक ३० वर्ष पूरे किये थे। सन्ताजी के दुःखद अन्त के वाद छत्रपति की अकाल मृत्यु मराठा जाति के उदीयमान भाग्य पर एक दूसरा कठोर आघात थी। उसकी एक पत्नी अम्बिकाबाई, उसकी मृत्यु का समाचार सुनते ही सती हो गई, परन्तु उसकी दो अन्य पत्नियाँ ताराबाई और राजसबाई उसके बाद बहुत दिनों तक जीवित रहीं और उन्होंने भविष्य की राजनीति में अपना योग दिया।

पिछले पृष्ठों में राजाराम के चरित्र और योग्यता का वर्णन हो चुका है। उसमें कोई उत्साह या समारम्भ का गुण न था और न उसने कभी कोई व्यक्तिगत वीरता का परिचय ही दिया। वह केवल १० वर्ष का था जब उसके पिता का देहान्त हो गया। रायगढ़ में अपने बड़े भाई की कैद के दौरान में भी उसे कोई शिक्षा नहीं मिली थी। सम्भाजी के संस्कृत और हिन्दी लेखों की भाँति राजाराम ने कोई लेख भी नहीं छोड़े हैं। उसकी माता का वध कर दिया गया था और राजाराम के बाल्यावस्था के कोई उपयुक्त साथी भी न थे। सम्भाजी की मृत्यु के कारण केवल भाग्य ने उसे अपने पिता की गद्दी पर बिठा दिया था। उसका सौभाग्य था कि उसे रामचन्द्र पन्त और प्रह्लाद नीराजी जैसे योग्य और बुद्धिमान सलाहकार प्राप्त हो गये। इन्हीं के समान योग्य योद्धा सन्ताजी और धनाजी उसे प्राप्त हुए। उसके जीवन में एक भी ऐसे अवसर का उल्लेख नहीं है, जिसमें राजाराम ने व्यक्तिगत साहस या प्रशासकीय योग्यता प्रकट की हो। जब उसके परामर्शदाता प्रह्लाद नीराजी की

मृत्यु १६९४ ई० में हो गई तो राजाराम की दशा गिरने लगी। वह सन्ताजी को सही तरीके से सँभाल न सका या कम से कम उसकी हत्या को न रोक सका, यह उसके नियन्त्रण की क्षमता पर आक्षेप है। उसका मन और शरीर दोनों निर्बल थे—सम्भवतया विषय-भोग और अफीम के प्रयोग के कारण, जिसका बताया जाता है कि उसे दुर्व्यसन था। उसका गुण निषेधात्मक था—हस्तक्षेप न करना। जिन गुणों का उसमें अभाव था, वे उसकी वीर रानी तारा में निहित थे जैसा कि आगे प्रकट हो जायेगा।[१४]

राजाराम की मृत्यु के ठीक पहले सम्राट् ने एक अद्भुत चाल के द्वारा रामचन्द्र पन्त और परशुराम पन्त को अपनी ओर तोड़ने का प्रयत्न किया। प्रलोभन देते हुए उसने उन दोनों को पत्र लिखे और ऐसी तरकीब की कि पहले का पत्र दूसरे के और दूसरे का पत्र पहले के हाथ में पड़ जाये। कुछ समय के लिए उन दोनों को एक दूसरे पर सन्देह हो गया, परन्तु शीघ्र ही उन्हें अपने समान शत्रु के सही उद्देश्य का पता चल गया।

छत्रपति राजाराम के शासन-काल में परिस्थितियों के कारण शिवाजी की निर्धारित नीति में एकाएक भारी अन्तर हो गया—अर्थात् सैनिक पदाधिकारियों को उनकी सेवा के पुरस्कार में जागीर देने की प्रथा प्रारम्भ हुई। शिवाजी ने इस बात का घोर निषेध कर दिया था कि राज्य की किसी प्रकार की सेवा के लिए किसी कारण से जागीर दी जाये, वे सदा नकद पुरस्कार देते थे। परन्तु दक्षिण में सम्राट्, उसके समस्त दरबार और उसकी विशाल सेनाओं की उपस्थिति और युद्ध से उत्पन्न अस्त-व्यस्त परिस्थिति के कारण शिवाजी के स्वस्थ उपदेश को त्याग देना पड़ा। मराठा सामन्त वर्ग के प्रलोभनार्थ सम्राट्

---

१४ राजाराम की मुद्रा पर संस्कृत में आदर्श वाक्य है, जिसका हिन्दी अनुवाद यह है—"प्राचीन काल के राजा राम की भाँति राजाराम की यह मुद्रा प्रकाशवन्त है। इसका उद्देश्य समस्त जनता को राष्ट्रीय कर्तव्य के प्रति जागृत करना है।

संस्कृत में—धर्मप्रद्योतिताशेषवर्णा दाशरथेरिव। राजारामस्य मुद्रेयं विश्ववंद्या विराजते।

स्वयं जागीरें देता था और जब तक मराठा शासन उन्हीं प्रलोभनों को प्रस्तुत न करता, वह युद्ध के संचालनार्थ आवश्यक सेनाएँ भरती न कर सकता था। मराठा नेताओं और सैनिकों से खुल्लमखुल्ला कहा जाता था कि वे मुगल प्रदेशों को लूट लें और जीत लें। उनको आश्वासन दिया जाता था कि जब मराठा राज्य पूर्णतया स्थापित हो जायेगा, तो ये प्रदेश उनकी पैतृक जागीरें हो जायेंगे। मराठा दल के इन नेताओं को धन उधार लेने के लिये इन भावी विजयों से प्राप्त होने वाले प्रदेशों को महाजनों के यहाँ गिरवीं रखना पड़ा। इस प्रकार जिन प्रदेशों पर उन्होंने हाथ डाला उनके प्रति उनमें व्यक्तिगत स्वार्थ भी उत्पन्न हो गया। प्रारम्भ में यह तरीका युद्ध के दबाव के कारण सम्राट् की क्रूर योजनाओं का दमन करने के लिए कार्यान्वित किया गया था किन्तु बाद में यह जागीर प्रथा भविष्य के मराठा शासन की आधार-शिला बन गई। आगे चलकर यह प्रथा मराठा साम्राज्य के तीव्र प्रसार और उसी के समान तीव्र विनाश का तात्कालिक साधन बन गई। प्रकाशित पत्रों की विशाल राशि से इस दृष्टिकोण का समर्थन होता है और इसके विपुल प्रमाण मिलते हैं।[१५]

———

१५ देखो राजवाड़े, जिल्द ८, पृ० ५२।

तिथिक्रम

अध्याय १५

१६९६	पूना का सर-सूबेदार बालाजी विश्वनाथ ।
२ मार्च, १७००	राजाराम की मृत्यु; ताराबाई द्वारा शिवाजी द्वितीय का अभिषेक ।
२१ अप्रेल, १७००	सतारा और पार्ली के गढ़ों पर औरंगजेब का अधिकार ।
१७ अगस्त, १७००	शाहू की रुग्णता का समाचार ।
२८ मई, १७०१	पन्हाला पर औरंगजेब का अधिकार ।
४ जून, १७०२	विशालगढ़ पर औरंगजेब का अधिकार ।
अन्तिम महीने, १७०२	बालाजी विश्वनाथ द्वारा सिंहगढ़ की रक्षा ।
८ अप्रेल, १७०३	सिंहगढ़ पर औरंगजेब का अधिकार ।
१७०३	पूना में औरङ्गजेब का शिविर; शाहू के धर्म-परिवर्तन का आदेश ।
नवम्बर १७०३	शाहू का विवाह तथा उसकी मुक्ति-वार्ता के लिए कामबख्श को सुपुर्दगी ।
१७०३	रायभानजी भोसले द्वारा औरङ्गजेब की सेवा स्वीकार करना ।
१७०४	सतारागढ़ पर मराठों का पुनः अधिकार ।
१७ अप्रेल, १७०५	बन्दीगृह के कष्टों के सम्बन्ध में येसुबाई का पत्र ।
१७०५	नर्मदा के आगे के मुगल प्रदेश पर मराठों के धावे ।
६ फरवरी, १७०६	शाहू की अस्थायी मुक्ति ।
२० फरवरी, १७०७	औरङ्गजेब की मृत्यु ।

अध्याय १५

प्रतिशोध

[१७००–१७०७]

१. ताराबाई द्वारा सम्राट् का विरोध। २. शाहू कैद में।
३. बालाजी विश्वनाथ से सम्पर्क। ४. रायभानजी कक।
५. येसुबाई की मार्मिक प्रार्थना। ६. औरङ्गजेब के जीवन की करुण कथा।
७. औरङ्गजेब की मृत्यु। ८. ताराबाई की विजय।

१. ताराबाई द्वारा सम्राट् का विरोध—राजाराम का २ मार्च, १७०० ई० को सिंहगढ़ में देहान्त हुआ। इसके बाद एक मास से कुछ ही अधिक समय में उसकी नव-संस्थापित राजधानी सतारा का भी वही हाल हुआ जो १० वर्ष पूर्व रायगढ़ का हुआ था। जिंजी से राजाराम की वापसी के बाद से वृद्ध सम्राट् ने मराठों को पराजित करने में असमर्थ पाकर और यह समझकर कि उसके सेनानायक अपने कार्य में पर्याप्त जीवट से नहीं जुटते हैं, पश्चिमी घाटों के दुर्जेय प्रदेश में अपनी सेनाओं के नेतृत्व का कार्य-भार स्वयं ग्रहण कर लिया था। उसके अधिकारी और सैनिक निरन्तर शिविर-जीवन और उसके असीम कष्टों से ऊब गये थे। तब भी सम्राट् अटल था। ६ वर्षों (१६९९–१७०४) के अटूट प्रयास में वह केवल चार मुख्य गढ़ों को हस्तगत कर सका था। कुछ छोटे-मोटे और भी गढ़ थे, किन्तु उनका कोई सैनिक महत्व नहीं था। ये थे—सतारा (२१ अप्रेल, १७०० ई०), पन्हाला (२८ मई, १७०१ ई०), विशालगढ़ (४ जून, १७०२ ई०) और सिंहगढ़ (८ अप्रेल, १७०३ ई०)। ये भी नाममात्र को मुख्यतया धन के बदले में हाथ आ गये थे और जैसे ही सम्राट् महाराष्ट्र से हटा और उसने दक्षिण में बेरद प्रदेश को प्रस्थान किया कि मराठों ने बड़ी जल्दी लगभग १ वर्ष बाद उन पर पुनः अधिकार

कर लिया। यह उल्लेखनीय है कि विशालगढ़ के घेरे के समय जयपुर के युवा शासक सवाई जयसिंह ने लड़ने में और बाद में आत्म-समर्पण सम्बन्धी बातचीत में मुख्य भाग लिया। इस प्रकार उसने कुछ मराठा सरदारों और अल्पवयस्क शाहू से प्रिय सम्बन्ध स्थापित कर लिये। शाहू उस समय सम्राट् के शिविर में बन्दी जीवन व्यतीत कर रहा था। मुगल मराठा सम्बन्धों के लिए जैसे कि बाद में दो प्रथम पेशवाओं के हाथों में वे विकसित हुए, यह आरम्भिक सम्पर्क विशेष कारण सिद्ध हुआ।[1]

सम्राट् ने विजित गढ़ों के इस्लामी ढंग पर नवीन नाम रख दिये, परन्तु उनका सार्वजनिक रूप से प्रयोग नहीं हुआ। सतारा का नाम आजमतारा, पर्ली का नूरे-सतारा, पन्हाला का नबीशाह दुर्ग रखा गया। १७०३ ई० में सिंहगढ़ की विजय से सम्राट् के हृदय को इतना गहरा सन्तोष प्राप्त हुआ कि उसने इसका सार्थक नाम रखा-- 'बखशिन्दा बख्श' अर्थात् ईश्वर-प्रदत्त पुरस्कार।

जैसे ही रामचन्द्र पन्त अमात्य को राजाराम की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ, वह सिंहगढ़ पहुँचा और उसने तुरन्त विभिन्न सरदारों को यह समाचार देते हुए पत्र भेजे। उसने उन सब को प्रोत्साहन दिया और प्रार्थना की कि वे यथापूर्व अपने कर्तव्य का पालन करते रहें। उसने आग्रह किया कि अब वे आज से और अधिक परिश्रम करें और इसका ध्यान रखें कि देश का भविष्य उन्हीं के हाथों में है। उसने कुछ प्रमुख व्यक्तियों को दिवंगत राजा के दाह-संस्कार में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किया। इस अवसर पर भविष्य की योजनाओं के सम्बन्ध में उनके साथ गूढ़ वार्तालाप हुआ। ताराबाई की इच्छा का सम्मान करते हुए उसके अल्पवयस्क बालक शिवाजी को कुछ मास बाद विशालगढ़ में राजगद्दी पर बैठा दिया गया[2], यद्यपि

---

१ औरंगजेब के अन्तिम प्रयास और संघर्ष के विवरण के लिए पाठक सर यदुनाथ सरकार कृत उनका पूर्ण वृत्तान्त पढ़ें।

२ वे अधिकतर पन्हाला में ही निवास करते थे, परन्तु सिंहासन कभी पन्हाला नहीं ले जाया गया।

शाहू के वैध उत्तराधिकार को भी समाप्त नहीं किया गया था। बालक शिवाजी इस समय पूरे ४ वर्ष का भी न था। वास्तव में जहाँ तक युद्ध का सम्बन्ध है ताराबाई ने अखिल मराठा जाति में अपने पति से अधिक बल और उत्साह का संचार कर दिया। दुर्भाग्य से उसकी आशाएँ मन्द हो गईं और स्थिति बहुत ही दुर्बल पड़ गई, जब यह ज्ञात हुआ कि उसके अल्पवयस्क पुत्र में मानसिक शक्तियों का अभाव था और वह राज्य का कार्य-भार सँभालने के योग्य न था। फिर भी उस समय ताराबाई ने आश्चर्यकारी संगठनात्मक क्षमता प्रदर्शित की और एक-एक व्यक्ति को राष्ट्रीय सेवा के प्रति उत्साह से भर दिया। पन्हाला और विशालगढ़ दोनों अगम्य गढ़ थे, उन्हें छत्रपति का आवास-स्थान निश्चित किया गया। इसी कारण से सम्राट् ने १७०२ और १७०३ ई० में अपने आगामी हमलों में इन्हें हस्तगत करने के लिए लक्ष्य बनाया।

२. **शाहू कैद में**—मुगल-मराठा संघर्ष के तत्वों को भली-भाँति समझने के लिए यह आवश्यक है कि सम्राट् के शिविर में शाहू के रहन-सहन के तरीकों का विशेष उल्लेख किया जाये, क्योंकि भविष्य में वही मराठों का छत्रपति होने वाला था। जब ३ नवम्बर, १६८९ ई० को जुल्फिकारखाँ ने रायगढ़ पर अधिकार कर लिया तो सम्भाजी की रानी येसुबाई जो उस समय ३० वर्ष की थी, उसका अल्पवयस्क पुत्र शाहू जो उस समय ७ वर्ष का था, सम्भाजी के दो अनौरस पुत्र मदनसिंह और माधवसिंह, महान् शिवाजी की एकमात्र जीवित विधवा रानी सकवारबाई २०० स्त्रियों और पुरुष सेवकों सहित बन्दी बना लिये गये और सम्राट् के शिविर पर पहुँचा दिये गये। यहाँ उनको १७ वर्ष कैद में व्यतीत करने पड़े जिसके कारण उनकी समस्त सांसारिक आशाएँ मन्द हो गईं। यद्यपि अन्त में इस घोर परीक्षा से शाहू सकुशल वापस आ गया, परन्तु इस काल में उसके सिर पर अज्ञात भाग्य की तलवार लटकती रही, क्योंकि वह यह अच्छी तरह जानता था कि सम्राट् अपने विरोधी से कैसा व्यवहार करता है। विरोधी को अन्धा कर देना, बलपूर्वक मुसल-

मान बना लेना, आजन्म कारागार में डाल देना उसके तरीके थे। जो लोग शाहू पर यह आरोप लगाते हैं कि राजमहल के ऐश-आराम के कारण वह कायर हो गया था, वे भूल जाते हैं कि शाहू कभी दिल्ली नहीं गया और न उसने राजधानी के महलों का जीवन ही देखा। उसे उन कष्टों और दुःखों को सतत सहन करना पड़ा जो सम्राट् के शिविर में सैनिकों को सहन करने पड़ते थे। इसके अति-रिक्त वह बन्दी था, जिस पर कड़ी निगाह रखी जाती थी। वह सम्राट् की शतरंज का प्यादा था जिसे आवश्यकतानुसार काम में लिया जा सकता था।

उन आठ महीनों में जो सम्भाजी की मृत्यु और रायगढ़ के पतन के दौरान में व्यतीत हुए थे, सम्राट् को मराठा जाति की प्रगल्भता और कठोरता का रसास्वादन अच्छी तरह हो गया था। इस कारण वह इन नवीन बन्दियों के साथ व्यवहार में संयत बुद्धि से काम लेना चाहता था। सम्भाजी के साथ उसने प्रतिहिंसा का व्यवहार किया था, पर अब वह अधिक सावधान और चतुर हो गया था। इन निरीह और मन्द-भाग्य बन्दियों का तुरन्त वध कर देने का विचार उसने त्याग दिया और आज्ञा दी कि शाहू और उसकी माता को बन्द स्थानों में उसकी पुत्री के स्थान के समीप रखा जाये जो उसके अपने निवास के तम्बू से सटा था। उसके नौकरों और अनु-चरों को एक पृथक स्थान दिया गया। निश्चय वे सब एक मुख्य घेरे में थे, परन्तु एक दूसरे से दूर रखे गये थे, ताकि दोनों में सुविधा से अधिक सम्पर्क न हो सके। नौकरों के इन स्थानों का नाम 'रानी का बाजार' पड़ गया। मराठों की भावनाओं की तुष्टि के लिए उन्हें पदानुसार इतना भत्ता दे दिया जाता था कि वे जीवित रह सकें। स्वयं शाहू के प्रति औरंगजेब ने वह रुख अपनाया जो उसके पिता के प्रति अपनाये गये रुख के सर्वथा विपरीत था। उसने शाहू को वैध मराठा राजा की मान्यता प्रदान की, उसको राजा की उपाधि दी और साथ में ७ हजार मनसब का नाममात्र का पद।

दक्षिण में सम्राट् के समस्त निवास-काल में उसके घरेलू

मामलों का प्रबन्ध उसकी पुत्री जीनत-उन्-निसा बेगम करती थी। वह मेधावी, परिश्रमी और दयालु महिला थी, अविवाहित थी, इस समय वह ४७ वर्ष की थी (जन्म ५ अक्टूबर, १६४३ ई०)। इस महिला की देख-रेख में सम्राट् ने बन्दी शाहू और उसकी माता येसुबाई को रखा।[3] बेगम का जन्म उसी माता से हुआ था जिससे सम्राट् के विद्रोही पुत्र अकबर का। यह अकबर की भाँति मराठों के प्रति कोमल भाव रखती थी। स्वभावतः जीवन के प्रति उसका धर्मप्रिय दार्शनिक दृष्टिकोण था। अतः उसको येसुबाई और उसके पुत्र के प्रति प्रेम हो गया और उन पर दया आ गई। इसके कारण उन दोनों को इससे मातृवत स्नेह हो गया जो औरंगजेब की मृत्यु के बाद भी वर्तमान रहा। अपने निजी धन से जीनत-उन्-निसा ने दिल्ली में एक मस्जिद बनवाई। उसका देहान्त १७२१ ई० में हुआ। अतः जब १७१८ ई० में बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली पर अभियान किया तो इसका सहज अनुमान किया जा सकता है कि जीनत-उन्-निसा ने येसुबाई की मुक्ति और वापस जाने में अवश्य ही सहायता की होगी। १७०७ ई० में नर्मदा नंदी से शाहू को दक्षिण वापस जाने देने में निस्सन्देह वही कारण थी।

कुछ भी हो, इस महिला की दयालुता से शाहू के बन्दी जीवन की यातनाएँ निस्सन्देह कम हो गईं और बहुत हद तक बन्दी का भाग्य सुधर गया। सम्राट् की जो भी इच्छा या आज्ञा होती उसका पालन सर्वप्रथम बेगम के हाथ से होता। सम्भाजी की विधवा से केवल एक यही महिला ही सहानुभूति रख सकती थी। शाहू के अनेक अनुचरों में ज्योत्याजी केसरकर, भक्ताजी हुजरा और बंकी गायकवाड़ का वर्णन है जिन्होंने शिविर के इन मराठा निवासियों और बाहर के मराठा सैनिकों से निकट-सम्पर्क रखा।

---

३ अनुमानतः यह वही महिला है जिसने किंवदंतियों के अनुसार शिवाजी की उस समय प्राण-रक्षा के लिए प्रार्थना की थी, जब वह १६६६ ई० में आगरे में थे और जिसके साथ सम्भाजी ने अपने वध के ठीक पहले विवाह की माँग की थी। मेहरुन्निसा, जैनतुन्निसा, जुब्दातुन्निसा औरंगजेब की अन्य वयस्क एवं अविवाहित पुत्रियाँ थीं।

सम्राट् से अपने व्यवहार में येसुबाई ने प्रारम्भ से ही यह प्रकट किया कि राजाराम और उसकी सरकार से उसका विरोध है। उसने घोषित किया कि राजाराम ने भागकर अपनी प्राण-रक्षा कर ली और जान-बूझकर रायगढ़ के पतन के समय उन्हें बन्दी हो जाने दिया और अब उन सब को अपनी सुरक्षा और सुविधा के लिए केवल सम्राट् की दया का ही भरोसा है। इस रुख को उसने बहुत समय तक और सफलतापूर्वक बनाये रखा, जिससे सम्राट् को उसके प्रति विश्वासघात का सन्देह उत्पन्न न हो जाये। शाहू का असली नाम शिवाजी था और शिविर में उसके आगमन पर उसके चतुर पितामह से भेद करने के लिए औरंगजेब उसको शिवाजी साव (ईमानदार) कहता था। कहा जाता है कि यह शब्द बिगड़कर शाहू (साधू—साहू) हो गया, जिस नाम से वह बाद में सदा पुकारा गया। जहाँ तक प्रतीत होता है औरंगजेब उसके साथ दयालुता का व्यवहार करता था, उसका उद्देश्य परिस्थिति की आवश्यकतानुसार मराठा प्रदेश को विजित करने की अपनी योजना में शाहू का उपयोग करना था। एक या दो बार राजाराम ने शिविर पर अचानक और गुप्त आक्रमण द्वारा शाहू को छुड़ाने का प्रयत्न किया, परन्तु ये प्रयास असफल रहे। उल्लेख है कि जब एक बार शाहू सम्राट् को सलाम करने गया, तब उसने उससे पूछा—"मैं तुमको तुम्हारे चाचा के पास भेजने को तैयार हूँ। क्या तुम्हारी जाने की इच्छा है?" शाहू ने उत्तर दिया—"नहीं! मेरा चाचा मेरा शत्रु है जैसा वह मेरे पिता का था। यदि मैं जाऊँगा तो वह मुझे कठोर कैद में डाल देगा। मैं तभी जाऊँगा जब हुजूर मराठों के वैध राजा के रूप में मुझे गद्दी पर दृढ़ता से बैठा देंगे।" शाहू का क्या किया जाय, यह सम्राट् की स्थायी चिन्ता का विषय बन गया। वह प्रायः विचार करता कि शाहू को मुसलमान बनाकर अधीन राजा नियुक्त कर दे, जो मराठा देश पर शासन करे। ताराबाई के पुत्र के मुकाबले शाहू के अधिकार की पुष्टि कर उसने मराठा जाति में फूट डालने का बराबर प्रयत्न किया। परन्तु उसके जीवन-काल में ये प्रयास सफल सिद्ध न हुए।

इस प्रकार शाहू को कोई जीवनोपयोगी शिक्षा प्राप्त न हुई। शिविर की सीमाओं के भीतर घोड़े पर सवारी करने, शिकार करने और तलवार चलाने का उसने कुछ अभ्यास किया। मोड़ी लिपि लिखना उसने सीख लिया। ऐसे पत्र प्राप्य हैं जिनमें उस लिपि में उसने अपने भावों को पूर्णतया और स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त किया है। वह संस्कृत नहीं जानता था और न उसको अवसर मिला कि वह अपने धर्म या परम्परागत देवी-देवताओं की कथाओं को जान सके। इसके विपरीत, अपनी परिस्थिति के कारण तथा मुगल दरबार के कट्टर जीवन से घनिष्ठ सम्पर्क द्वारा उसमें मुस्लिम धर्म के प्रति आदर की भावना उत्पन्न हो गई। यह बिल्कुल सत्य है कि अपने धर्म की अपेक्षा वह मुस्लिम धर्म की अधिक जानकारी रखता था। लेकिन उसका मस्तिष्क चौकन्ना, तीव्र और जागरूक हो गया। भयानक युद्ध के उपद्रवों में उसने काफी धक्के खाये। उसने पर्याप्त रोमांचकारी अनुभव प्राप्त किये और दृढ़ सूझ-बूझ प्राप्त कर ली। मनुष्य-चरित्र की निर्बलताओं तथा उसके गुणों को ठीक-ठीक आँकने के लिए विवेक-बुद्धि, अन्याय से डर और स्वस्थ उदार प्रकृति का उसमें सामंजस्य था। मुगल शिविर के जीवन में बड़ी विविधता थी, वह सर्वथा नीरस न था और शाहू उसमें स्वाधीनता से भाग लेता था।

वयस्कता की ओर अग्रसर होने के साथ-साथ शाहू के कष्ट अधिकाधिक बढ़ते गये, विशेषकर १६९९ ई० के बाद जब कि सम्राट् ने स्वयं दुर्जेय मराठा गढ़ों को हस्तगत करने के लिए प्रस्थान किया। जबकि राजाराम की अकाल मृत्यु के समाचार से सम्राट् का हृदय आनन्द-विभोर हो उठा, शाहू को इतना घोर दुख हुआ कि वह रुग्ण हो गया और कुछ समय के लिए अपने बिस्तर में पड़ा रहा। इस रोग का प्रभाव कुछ अंश में उसके मन और शरीर पर पड़ा। यह लेखबद्ध है कि २६ अगस्त, १७०० ई० को जब शाहू बीमारी की हालत में सम्राट् से मिला और प्रणाम किया, तब सम्राट् ने कहा—"राजे, तुम बहुत निर्बल और पीले दीखते हो।" हफीज अम्बर ने जो समीप ही खड़ा हुआ था, इसका कारण बताते हुए कहा—"राजा दाल और

चावल नहीं छूता है। वह केवल मिठाइयाँ खाता है। उसके धर्म की आज्ञा है कि बन्दी-अवस्था में हिन्दू को भर पेट भोजन न करना चाहिए, परन्तु केवल हल्के जलपान पर निर्वाह करना चाहिए।" इस पर सम्राट् ने आज्ञा दी—"उसको हमीदुद्दीनखाँ के पास ले जाओ। वह रोग की चिकित्सा कर देगा।" इस मन्दाग्नि से ज्वर और पीलिया हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे शाहू बहुत दिनों तक पीड़ित रहा। उल्लेख है कि आगामी ४ जून को उसने स्वास्थ्य-लाभ कर स्नान किया।

राजाराम की मृत्यु और मराठा राज्य में ताराबाई द्वारा सत्ता ग्रहण करने से दक्षिण में स्थिति बहुत कुछ बदल गई। इसके पहले विजित प्रदेशों के लिए—विशेषकर सतारा और औरंगाबाद के बीच के प्रदेश के लिए—प्रशासन स्थापित करने में सम्राट् सफल हो गया था। इस प्रदेश की अधिकांश जनता तथा बड़े-बड़े परिवारों, सामन्तों, सरदारों, महाजनों और गणकों ने सम्राट् की सेवा स्वीकार कर ली थी। इस प्रदेश के विभिन्न परिवारों—जैसे पुरन्दरे, वोकिल, अत्रे, जोशी, गिजरे, चिंचवाड़ के देव, चाकन के ब्रह्मे आदि के पत्र प्रकाशित हो गये हैं। प्रशासन के विभिन्न विभागों में इन परिवारों के सदस्यों को सम्राट् साधारणतया नियुक्त कर देता था; परन्तु साथ-साथ मराठा छत्रपति भी उनकी सेवाओं और निष्ठा का अधिकारी था, अतः कुछ वर्षों के लिए दुहरा शासन चलता रहा। मुगल विजय के अधिकार से और मराठे वास्तविक स्वामित्व के अधिकार से शासन करते थे। इस प्रकार गम्भीर संघर्ष और प्रतिद्वन्दिता चलती रही। साधारण निवासियों की और मध्यम वर्ग के कर्मचारियों की स्वामिभक्ति युद्ध-काल में और बाद में भी विभाजित होती रही, जब कि सम्राट् की मृत्यु से युद्ध का अन्त हो गया था। इस दुहरे शासन-काल में ही कुछ स्थानीय परिवारों, उनके प्रमुख व्यक्तियों से विशेषकर महाजनों से कम या अधिक शाहू का घनिष्ठ सम्पर्क हो गया था। महाजन उसकी द्रव्य सम्बन्धी तात्कालिक आवश्यकताओं को दूर करते थे और उसको कष्टों से बचाने के लिए अन्य सेवाएँ भी करते थे। उसके शासन-काल के

विभिन्न लेखों से यह स्पष्ट है, जिनमें इन कृपाओं को वह कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता है और उनको भूमि तथा द्रव्य देकर पुरस्कृत करता है। इस १७ वर्ष के बन्धन के कुसमय में अपने प्रति किये हुए प्रत्येक दयालु कार्य को स्मरण रखना और उसका पुरस्कार देना वह अपना पवित्र कर्तव्य मानता था।[४]

३. बालाजी विश्वनाथ से सम्पर्क—एक प्रमुख व्यक्ति जिससे बाह्य जगत अब तक सर्वथा अपरिचित था, अब मराठा राजनीति के मंच पर प्रकट होकर शाहू के हित में प्रवृत्त हुआ। वह है बालाजी विश्वनाथ भट्ट, जिसको बाद में शाहू ने अपना पेशवा नियुक्त किया और जो मराठा-शासन-प्रणाली को सर्वथा परिवर्तित करने का साधन बन गया। कब और कैसे शाहू का उससे परिचय हुआ, उसने उसको राज्य के प्रथम आसन पर आसीन करने का क्यों निश्चय किया, ये प्रश्न हैं जिनका अभी तक निश्चयात्मक उत्तर नहीं मिला है। जंजीरा के सिद्दियों के अधिकृत क्षेत्र में पश्चिम समुद्र-तट पर वह श्रीवर्धन का परम्परागत देशमुख था। ऐसा प्रतीत होता है, शायद शिवाजी के शासन-काल के अन्तिम दिनों में उसके दादा परशुराम और पिता विश्वनाथ श्रीवर्धन पूना के प्रदेश में आकर बस गये और उनसे कोल्हापुर में मिले थे। शिवाजी ने उनकी योग्यताएँ परखीं और उन्हें अपनी सेवा में रख लिया।* इसका निश्चित प्रमाण प्राप्य है कि वह १६९६ ई० से पूना मण्डल का सर-सूबेदार था और १७०४ ई० से मराठा शासन की आज्ञा से दौलताबाद के मण्डल का भी। रामचन्द्र नीलकंठ अमात्य और अन्य मन्त्रियों द्वारा बालाजी विश्वनाथ को लिखे गये पत्र हमारे पास हैं, जिनमें उससे कुछ बातों का स्पष्टीकरण माँगा

---

४ उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद (दक्षिण) में एक भोदी बखर है। इसमें १४३ पृष्ठ हैं, प्रथम १६ और अन्त के थोड़े से पृष्ठ खो गये हैं। बन्धन में शाहू के जीवन के कुछ रोचक विवरण इसमें वर्णित हैं। इस पुस्तक के कुछ बिखरे हुए पन्ने पूना में मिले और १९१५ ई० में वे भारतीय इतिहास संशोधक मण्डल द्वारा छाप दिये गये। देखिये, तृतीय सम्मेलन वृत्त, पृ० ८५-९०। यह पूरी सानपुरी बखर के नाम से अब छप गई है।

* पूना मडण्ल क्वार्टरली, वर्ष २९, सं० ३ और ४, पृ० ७२।

गया है, उसको कुछ आदेशों को कार्यान्वित करने को कहा गया है और कभी-कभी कर्तव्य की उपेक्षा पर उसकी भर्त्सना की गई है। १७०२ ई० में जब सम्राट् ने सिंहगढ़ पर घेरा डाला तो बालाजी विश्वनाथ ने सेनापति धनाजी जाधव की ओर से अपने सहयोगी अम्बाजी त्र्यम्बक पुरन्दरे से बारूद भेजने की साग्रह प्रार्थना की, क्योंकि औरंगजेब के तोपखाने के अध्यक्ष तरबियतखाँ के विरुद्ध उस गढ़ की रक्षा के लिए इसकी तुरन्त आवश्यकता थी। १६९६ ई० में सर-सूबेदार के पद पर पहुँचने के लिये बालाजी अथवा उसके पूर्वजों ने प्रारम्भ में अवश्य राजा की छोटे पदों पर बहुत दिनों तक सेवा की होगी। परन्तु इसका पूर्ववर्ती विवरण अज्ञात है। हमें ज्ञात है कि अप्रेल १७०३ ई० में सिंहगढ़ को हस्तगत करने के बाद सम्राट् उस वर्ष की वर्षा ऋतु में पूना में ठहरा। यह अनुमान किया जाता है कि शाहू के धर्म-परिवर्तन और उसकी मुक्ति का प्रश्न सम्राट् के मन में गम्भीर रूप से उथल-पुथल कर रहा था। उसने आज्ञा दी कि शाहू को एक विशेष दिन मुसलमान बना लिया जाये। इस आदेश से शाहू और उसकी माता को बहुत दुख हुआ। उन्होंने अन्न त्याग दिया, भूखे रहने लगे और बेगम साहबा से प्रार्थना की कि वह उनके पक्ष में हस्तक्षेप करे और सम्राट् से विनय करे कि धर्म-परिवर्तन की अपनी आज्ञा को वह रद्द कर दे।

अपने दुराग्रह पर सम्राट् अडिग रहा। उसको केवल इतनी दया आई कि उसने शाहू को इस शर्त पर छोड़ना मान लिया कि दो प्रमुख मराठा नवयुवक उसके स्थान में धर्म-परिवर्तन के लिए अपने को प्रस्तुत करें, क्योंकि एक बार जब आज्ञा दे दी गई तो वह अवश्य पूरी होनी चाहिए। अतः शाहू ने खण्डोजी और जगजीवन से प्रार्थना की। ये शिवाजी के सेनापति प्रतापराव गूजर के दो पुत्र थे, जो सम्राट् के शिविर में उसके बन्दी जीवन के साथी थे। उन्होंने अपने को बलि-दान के लिए प्रस्तुत कर दिया। वे मुसलमान बना लिये गये और उनके नाम अब्दुर्रहीम और अब्दुर्रहमान रख दिये गये। बाद में शाहू ने इनको इनाम में सालगाम का गाँव दिया जो पर्ली के समीप है और उनके वंशजों का अब तक उस पर अधिकार है। परिवार की

दोनों शाखाएँ—हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के निकट प्रेम से और निकट पड़ौस में निवास कर रही हैं।

नवम्बर १७०३ ई० में शाहू के लिए दो उपयुक्त वधुएँ चुनी गईं—एक कनेरखेड़ के सिन्दे परिवार से थी और दूसरी सिन्दखेड़ के मानाजी रुस्तमराव जाधव की पुत्री थी। सम्राट् के निर्देशानुसार उचित ढंग से इनका विवाह शाहू से कर दिया गया। एक तीसरी बुद्धिमती महिला विरुबाई शाहू के अन्तःपुर की देख-रेख करने के लिए चुनी गई और सदैव उसके साथ उसकी उप-पत्नी के रूप में रही।

हम मान सकते हैं कि पूना में मराठा शासन का प्रतिनिधि होने के कारण बालाजी विश्वनाथ का शाहू के इन मामलों में गुप-चुप हाथ अवश्य रहा होगा। सम्भव है कि उससे परामर्श भी लिया गया हो। खाद्य-पदार्थ और युद्ध-सामग्री का प्रबन्ध करने के लिए मुगल अधिकारियों ने उसकी सेवा अवश्य प्राप्त करली होगी। बालाजी पूना में अपने कर्तव्य का सुरक्षा के साथ पालन करता रहा, जब कि उसके चारों ओर मुगलों के झुण्ड देश पर अधिकार जमाये हुए थे। कुछ स्थानीय परिवारों और प्रभावशाली व्यक्तियों से उसने घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर लिया था। एक ओर युद्ध-काल में अपनी जाति के हितों की रक्षा करने में और दूसरी ओर कई उच्चपदासीन मुगल अधिकारियों से मित्रता कर लेने में उसका कूटनीतिक चातुर्य और दूरदर्शी आचरण उस समय प्रचलित दुहरे शासन की नाजुक परिस्थिति में बड़े उल्लेखनीय हैं। शाहू वहीं पर था, इसने इतने निकट से अवलोकन कर इनकी प्रशंसा की होगी। यह भी कहा जाता है कि बेगम जीनत-उन्-निसा से परामर्श करने के बालाजी के पास गुप्त साधन थे और अपने जीवन को संकट में डालकर उसने बेगम के द्वारा शाहू के हितों की रक्षा की। शाहू के द्वारा उसके सम्बन्ध में प्रयुक्त शब्द 'अतुल पराक्रमी सेवक'* वास्तव में एक प्रमाण है जिसमें व्यक्तिगत अनुभव छिपा है।

---

* यह पत्र लेखक की मराठा रियासत के पृष्ठ १२३ पर बालाजी विश्वनाथ पर लिखे खण्ड में पूरा का पूरा उद्धृत है।

४. रायभानजी कक—शिवाजी के पिता शाहजी के कई अवैध पुत्र थे। उनमें से एक रायभानजी १७०३ ई० के लगभग मुगल सेवा में हो गया और अपनी सामर्थ्यानुसार शाहू को सहायता दी। उस समय वह भानजी कक के नाम से सर्व-साधारण में प्रसिद्ध था। सम्राट् ने उसको ६ हजारी का मनसब दिया था और मराठा शासन से वार्तालाप और व्यवहार में माध्यम के रूप में उसका उपयोग होता था। १७०३ ई० के बाद सम्राट् यह गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा कि सम्मानित शर्तों पर युद्ध को बन्द कर दे और वापस दिल्ली लौट जाये। इस सम्बन्ध में रायभानजी बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ, क्योंकि गत कई वर्षों से दक्षिण के लोगों और वहाँ की समस्याओं से उसका व्यक्तिगत घनिष्ठ सम्पर्क था और इस कारण उसकी अद्वितीय स्थिति थी। सतारा में शाहू का विधिपूर्वक अभिषेक देखने के लिए वह जीवित रहा।

सम्राट् शाहू की कुशलक्षेम में बड़ी दिलचस्पी और चिन्ता का दिखावा करता था। उसने युद्ध बन्द करने का उत्तम साधन यही समझा कि शाहू को मुक्त कर उसकी चाची के पास भेज दिया जाय, जहाँ वह मराठा राजगद्दी पर अपने पैतृक अधिकार की माँग करे। सम्राट् को इस समय दो चिन्ताएँ थीं—अपनी मृत्यु के बाद अपनी गद्दी पर शान्तिमय उत्तराधिकार सुनिश्चित कर देना, और मराठों को सन्धि के लिए ऐसी शर्तें देना जिन्हें वे स्वीकार भी कर लें और जिनसे उसका भी मान भंग न हो। इन बातों पर उसने गम्भीरता से अपने उत्तम सलाहकारों के साथ विचार किया और दक्षिण के सब काम अपने प्रिय पुत्र कामबख्श के सुपुर्द कर दिये। उसका पथ-प्रदर्शक जुल्फिकारखाँ को नियुक्त किया। उसका विचार उत्तर भारत को अपने दो शेष पुत्रों में बाँटने का था। अपने तीन पुत्रों में साम्राज्य के इस प्रकार विभाजन पर वह बहुत दिनों से मनन कर रहा था। २७ नवम्बर, १७०३ ई०को सम्राट् ने शाहू को बुलाया और उसकी शारीरिक सुरक्षा कामबख्श के सुपुर्द कर दी और उसको आदेश दिया कि उसकी मुक्ति के सम्बन्ध में वह धनाजी जाधव से वार्तालाप

करे। इस पर धनाजी से परामर्श किया गया और वह इस शर्त पर युद्ध समाप्त करने को तैयार हो गया कि मराठा राजा को दक्षिण के सभी ६ सूबों पर चौथ और सरदेशमुखी कर लगाने का अधिकार हो, जिसके बदले में मराठे देश की रक्षा करेंगे। शाहू की जिम्मेदारी लेने और सम्राट् के प्रति निष्ठा की शपथ ग्रहण करने को भी धनाजी सहमत हो गया। उसने ये शर्तें प्रस्तुत कीं कि मराठा दलों के प्रमुख नेताओं का खुले दरबार में सम्राट् स्वागत करे और उनको वस्त्रों से सम्मानित करे ताकि सब को यह मालूम हो जाये कि शिवाजी के समय का मराठा राज्य सर्वोपरि मुगल सत्ता के सम्मानित अधीन शासक के रूप में शाहू को वापस दे दिया गया है। ये शर्तें स्वीकार कर ली गईं और मराठा सेना के सामन्तों को निमन्त्रण भेजे गये। शीघ्र ही ये नेता अपनी सेनाओं की निश्चित संख्या लेकर सम्राट् के शिविर के समीप धनाजी के शिविर में एकत्र हो गये। सम्राट् ने जब यह विशाल एकत्र मराठा दल देखा तो उसकी सन्देहशील प्रवृत्ति जाग्रत हो उठी और उसको भय हुआ कि यह मराठों की चाल एवं पूर्व-निश्चित छल है ताकि उसको बन्दी बना लिया जाये। उसने तुरन्त प्रस्तावित सन्धि-वार्ता को भंग कर दिया जिससे मराठों को बहुत हर्ष हुआ, क्योंकि वे युद्धकालीन समस्त बलिदानों के बाद मुगल आधिपत्य स्वीकार करने को तैयार न थे। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस समय कामबख्श और जुल्फिकारखाँ की उपस्थिति में धनाजी और शाहू में प्रत्यक्ष बातचीत हुई। सम्भवतः इस समय बालाजी विश्वनाथ धनाजी का विश्वस्त सलाहकार था। यही कारण है कि धनाजी शाहू का इतना सम्मान करता था और १७०७ ई० में खेड़ की लड़ाई के ठीक पहले उसने ताराबाई का पक्ष त्याग दिया।

१७०३ ई० के बाद एक या दो वर्ष ऐसे ही वाद-विवाद में व्यतीत हो गये। शाहू के भविष्य के सम्बन्ध में सम्राट् की ओर से कोई विशेष उपक्रम न हुआ। १७०६ ई० में सुरपुर से अहमदनगर को अपनी वापिस-यात्रा में सम्राट् ने एक और असफल प्रयास किया तथा

शाहू से कुछ मराठा नेताओं को व्यक्तिगत पत्र लिखवाए, जिनमें उनको आमन्त्रित किया गया कि वे उसका साथ दें। शाहू को विदाई की खिलअत दी गई, अपने निजी शिविर से उसे वास्तव में मुक्त कर दिया और आज्ञा दी गई कि वह कामबख्श की निगरानी में अपने राज्य पर शासन करे। शाहू के रहने के डेरे हटा दिये गये और ६ फरवरी, १७०६ ई० को जुल्फिकारखाँ के हिस्से में लगा दिये गये। परन्तु कोई मराठा सामन्त शाहू का साथ देने न आया। मराठा नेताओं को यह ज्ञात था कि मराठा दलों में फूट डालने और गृह-युद्ध आरम्भ करने की यह केवल एक चाल है। यद्यपि शाहू स्वतन्त्र था किन्तु वह भागना नहीं चाहता था और न इस संकट में पड़ना चाहता था कि या तो मराठा जाति में कलह उपस्थित कर दे अथवा फिर सम्राट् द्वारा बन्दी बना लिया जाये। जुल्फिकारखाँ को गुप्त आदेश था कि वह उसकी गतिविधि पर निगाह रखे।

५. येसुबाई की मार्मिक प्रार्थना—जैसा कि पाठक जानते हैं, औरंगजेब के जीवन के अन्तिम वर्ष दक्षिण या बाहर के विशाल साम्राज्य के भविष्य के सम्बन्ध में भयानक रूप में अन्धकाराच्छन्न रहे। मुगल शिविर में अत्यन्त दुख और अभाव का राज्य था, जहाँ पर एक भी प्रसन्नचित्त व्यक्ति दिखाई न पड़ता था। बहुत वर्षों से मुगल सैनिकों को वेतन नहीं मिला था और सर्वथा निराशा ने उन सब को घेर रखा था। अतः हम कल्पना कर सकते हैं कि सम्राट् के जीवन के इन दो अन्तिम वर्षों में शाहू और उसकी माता अपने अनुचरों सहित किस क्लेश को पहुँच गये थे। येसुबाई का एक मराठी पत्र जो कुछ ऋण माँगने के लिए उसने चिंचवाड़ के मोर्या देव के मन्दिर के अधिष्ठाता को लिखा था, इस परिस्थिति पर प्रकाश डालता है। उसे अक्षरशः यहाँ पर देना उचित होगा। इस पर अहमदनगर की १९ अप्रेल, १७०५ ई० की तारीख है। वह इस प्रकार है—"मेरा पुत्र दाजी सम्राट् के साथ गया है और हम लोग जनाना के साथ यहाँ पर लगभग ५ मास पूर्व भेजे गये हैं। हम लोग यहाँ पर भयानक

परिस्थिति में फँसे हुए हैं, जिसका कारण खाद्य-सामग्री और नकद रुपये का अभाव है। हमारे निश्चित भत्ते हमें नहीं मिले हैं और नकद रुपये को या तो मराठों ने लूट लिया है अथवा मुसलमान अधिकारियों ने छीन लिया है। बहुत दिनों से हम लोग ऋण पर जीवित हैं, परन्तु अब कोई महाजन हमें ऋण देने का साहस नहीं करता। मुझ पर ७ हजार का ऋण हो गया है और इसको वापस देने के कड़े तकाजे हो रहे हैं। वास्तव में यह ईश्वर का कोप है कि यह भारी दुःख महान् शिवाजी की पुत्र-वधू पर पड़े हैं। प्रत्येक क्षण हमारा कष्ट बढ़ता ही जाता है। इस विपत्ति में अपने अन्तिम आश्रय के रूप में हम आपकी शरण आये हैं और आपसे प्रार्थना करते हैं कि इस दुःख में हमको सहायता दें। यदि आप पत्रवाहक रायजी जाधव के हाथ हमको ७ हजार का ऋण भेजने की कृपा करें तो हम यहाँ के महाजनों का ऋण उतार देंगे और उनसे और ऋण ले लेंगे। हमारी परिस्थिति की पूर्ण व्याख्या पत्रवाहक कर देगा। जब मेरे अच्छे दिन आयेंगे मैं आपका यह ऋण उतार दूँगी। मैं छत्रपति के वंश की दीन निरीह निरक्षर महिला हूँ और इस कष्ट में पड़ गई हूँ। आप मेरी प्रार्थना को यह बात भुलाकर अस्वीकृत न कर दें कि मेरे योग्य श्वसुर आपके मठ के प्रति क्या कर सकते थे। इस विश्वास से कि आप मुझको निराश न करेंगे—आदि...... ।"

६. **औरंगजेब के जीवन की करुण कथा**—दक्षिण में सम्राट् के तीन अन्तिम वर्ष उसके लम्बे शासन-काल के घोरतम अन्धकार के वर्ष थे। मराठे सतत मुगल शिविर के चारों ओर घूमा करते और जो कुछ भी वे पा जाते उसको उठा ले जाते थे। जब उन्होंने अपने गढ़ सम्राट् को समर्पित किये तो उन्होंने उनमें कोई मूल्यवान वस्तु न छोड़ी थी। ये हस्तगत गढ़ केवल सूखी चट्टानें और पत्थर सिद्ध हुए। इनकी रक्षा करना और मरम्मत करना भी कष्टप्रद कार्य था। केवल वे ही लोग उन पर अधिकार रख सकते थे जिनको महाराष्ट्र के कठोर और कष्टमय जीवन का अभ्यास था। भारी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित मुगल सिपाहियों के बूते का यह कार्य न

था। सूक्ष्म-निरीक्षक मनुची की कलम ने औरंगजेब के जीवन के इन अन्तिम वर्षों का विशद वर्णन दिया है। जैसा कि सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है—"दक्षिण का युद्ध बड़ी प्रचण्डता से २० वर्ष से ऊपर चलता रहा, इसमें प्रत्येक वर्ष में एक लाख से अधिक सैनिक और अनुचर मारे गये और उससे तीन गुने जानवर—हाथी, घोड़े, ऊँट, और बैल। शाही शिविर में सदैव बीमारी फैली रहती और नित्य ही अनेक मृत्युएँ होतीं। इसका कारण था लाखों मनुष्यों के समूह का एक साथ रहना। कूड़े के ढेर पास ही में पड़े रहते, उनमें मक्खियों का वास था और उनसे असह्यनीय गंध आती। बाढ़ पर चढ़ी हुई नदियों, दलदली सड़कों और टूटे हुए पहाड़ी दर्रों में प्रयाण करने से उसके सैनिकों और शिविरानुचरों को अकथनीय कष्ट हुए। चौकीदार गायब हो गये, भारवाहक पशु भूख और अति परिश्रम के कारण मर गये, शिविर में अन्न तो कभी पर्याप्त मात्रा में रहता ही न था। उसके अधिकारी अति श्रान्त हो गये थे। उत्तर भारत को वापसी के सुझाव पर औरंगजेब उबल पड़ता और उस अभागे सलाहकार को ताना देता कि वह कायर है और विलासप्रिय है। उसके पूर्व-वर्षों के वृद्ध, योग्य और स्वतन्त्र अधिकारी एक-एक करके मर गये और अब उसके समीप उसी के बनाये हुए कायर, चाटुकार और नये सामन्त थे जो उसकी गलती पर भी उसका विरोध न करते थे और न उसको निःस्वार्थ परामर्श देते थे। उसके सेनापतियों की पारस्परिक ईर्ष्या से उसका सब काम बिगड़ गया। अब प्रत्येक युद्ध का संचालन स्वयं उसको करना पड़ा और तब भी कुछ न हो सका। अब मराठों को उनके धावे बहुत लाभप्रद मालूम होने लगे हैं। जैसे ही वे किसी जिले में पहुँचे कि उसके मुगल अधिकारी ने अपने प्रतिनिधि को मराठा नेताओं के पास भेजा। वह देय धन-राशि तय कर लेता है। यदि उनको नियत धन नहीं मिलता, तो इसके परिणाम लूट और गोलीबार होते हैं। मराठा राजा अब सर्व-शक्ति-सम्पन्न है। उसके पास १ लाख प्रशिक्षित सैनिक हैं। अतः उसको सम्राट् के विरुद्ध खुले युद्ध का भी भय नहीं है। अब मराठा राजा की

बारी है कि मुगलों में वही भय संचारित कर दे जो औरंगजेब अपने पूर्व-जीवन में मराठों में कर देता था।"[५]

उपर्युक्त वर्णन के अन्तिम शब्द निस्सन्देह ताराबाई और उसके पुत्र की ओर संकेत करते हैं। देवपुर से अहमदनगर को सम्राट् की वापस-यात्रा एक शोक-यात्रा की भाँति प्रतीत होती थी। गिद्धों की भाँति उसकी सेना के चारों ओर मराठे मँडराया करते और भारी विनाश करते रहते। इन अन्तिम वर्षों में मालवा और गुजरात में भी दूर-दूर तक मराठों ने अपने अभियान आरम्भ कर दिये। उन्होंने बुरहानपुर, सूरत, भड़ोंच और अन्य धनी नगरों को लूट लिया। हिन्दूराव घोरपड़े तथा उसके पुत्रों और सम्बन्धियों ने अपना प्रभाव-क्षेत्र दक्षिण की ओर कर्नाटक तक बढ़ा लिया।

उत्तर भारत की दशा भी उतनी ही बुरी थी। वहाँ ज़नता में विद्रोह भड़का हुआ था। छत्रसाल की अधीनता में बुन्देलों ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। विद्रोह में समस्त राजपूत संयुक्त हो गये। जाटों और सिक्खों ने विद्रोह कर दिया। साम्राज्य का छिन्न-भिन्न होना पहले ही आरम्भ हो गया था। ये सब दक्षिण में औरंगजेब के युद्ध के परिणाम थे। इस उथल-पुथल में मराठों का पुनरुज्जीवन हुआ और आगामी शताब्दी में वे लगभग समस्त भारत में फैल गये।

७. औरंगजेब की मृत्यु—औरंगजेब ने अपने जीवन के अन्तिम कुछ मासों में अपने साम्राज्य का पूर्ण क्षय देख लिया। उसके पास धन की कमी थी और बाहर से भी धन प्राप्त नहीं होता था। मराठे हमलावर हो गये। सम्राट् की अपनी पत्नियों और पुत्रियों को फाके की नौबत आ गई। सम्मिलित स्वर में उन्होंने आगरा वापस चलने के लिये मर्मभेदी प्रार्थना की। उन्होंने कहा, "हमको विदेश में भ्रमण करते-करते अब तीस वर्ष हो गये हैं। इस समस्त समय में हमने शिविर-जीवन के कष्टों को झेला है। हम उस समय नवयुवतियाँ थीं और युवा-

---

५ सरकार द्वारा लिखित 'औरंगजेब', जिल्द ५, पृ० १४ आदि।

वस्था के प्रमाद में थीं। अब हम वृद्धा और दुर्बल हो गई हैं। अब हमको वापस आगरा चलने दो और शान्तिपूर्वक हमको अपने घरों में प्राण छोड़ने दो, जहाँ पर हमको भय न होगा कि यह गिद्ध हमारी बोटी-बोटी नोंच खायेंगे। कम से कम हमको शान्तिपूर्वक मरने तो दो।" सम्राट् ने उत्तर दिया—"डरो मत! आपके भविष्य के लिए मैंने पूरा प्रबन्ध कर दिया है।" इस समय उसके एकमात्र साथी थे— उसकी पुत्री जीनत-उन्-निसा जो अब वृद्धा कुमारिका थी और उसकी अन्तिम पत्नी उदयपुरी बेगम, जो नीच पशु-तुल्य जीवन-सहचरी थी, जिसके पुत्र कामबख्श ने अपनी उन्मादपूर्ण मूर्खता और आवेश से अपने पिता के हृदय को चूर्ण-चूर्ण कर दिया था। पारिवारिक मृत्युओं से सम्राट् के ये अन्तिम वर्ष अन्धकारमय हो गये। उसकी सर्वोपरि प्रिय पुत्रवधू जहाँजेब बेगम का देहान्त गुजरात में मार्च १७०५ ई० में हो गया था। उसका विद्रोही पुत्र १७०४ ई० में ईरान में शरीर छोड़ चुका था, परन्तु उसकी मृत्यु का विश्वस्त समाचार १७०५ ई० में सम्राट् को प्राप्त हुआ था। उसकी गुण-सम्पन्न पुत्री जेबुन्निसा ने दिल्ली के कारागार में अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दी। उसका ज्येष्ठ योग्य पुत्र दस वर्ष से भी अधिक समय से कठोर कारागार में था और उसकी कनिष्ठ भगिनी गौहरआरा बेगम का देहान्त १७०६ ई० में हो गया था। उसी वर्ष के मई मास में उसकी पुत्री मेहरुन्निसा और उसका पति दोनों एक साथ दिल्ली में मर चुके थे और आगामी मास में अकबर के पुत्र बुलन्दअख्तर का देहान्त हो गया। सम्राट् के द्वितीय पुत्र आजमशाह ने कामबख्श की हत्या का प्रयत्न किया। अतः औरंगजेब ने इन दोनों पुत्रों को अपनी मृत्यु-शैय्या से दूर भेज दिया। अपने पास से आजमशाह को दूर करने के चार दिन बाद वृद्ध और श्रान्त औरंगजेब को, जो अब एकाकी रह गया था, भयंकर ज्वर चढ़ गया। तीन दिन तक वह दरबार में आने और भरी सभा में पाँचों दैनिक नमाजें पढ़ने पर जिद करता रहा। वृहस्पतिवार १९ फरवरी को ज्योतिषियों के परामर्श से हमीदुद्दीनखाँ ने एक आवेदन-पत्र प्रेषित किया कि ४ हजार रुपये के मूल्य का

एक हाथी क्रूर ग्रहों को शान्त करने के लिए दान में दे दिया जाये। इस आवेदन-पत्र पर मरणासन्न सम्राट् ने लिखा—"हाथी को दान में देना हिन्दुओं और नक्षत्र-पूजकों की रीति है। इसके स्थान पर ४ हजार रुपये मुख्य काजी को दे दो कि दरिद्रों में बाँट दे। इस मिट्टी के शरीर को निकटतम स्थान पर तुरन्त पहुँचा दो और धरती में गाड़ दो।" इन दो अन्तिम दिनों में अपने पुत्रों आजमशाह और कामबख्स को उसने दो करुणापूर्ण पत्र लिखवाये, जिनमें उनसे प्रार्थना की कि वे परस्पर प्रेमपूर्वक रहें। उसने एक वसीयत भी तैयार की और उसको अपने तकिये के नीचे रख दिया। इसमें उसने अपने तीन जीवित पुत्रों के बीच अपने साम्राज्य के शान्तिपूर्ण विभाजन का प्रस्ताव किया था। शुक्रवार २० फरवरी की सुबह औरंगजेब अपने शयनागार से बाहर आया और प्रातःकालीन नमाज पढ़ी। शनैः-शनैः वह संज्ञाहीन होता गया, उसकी माला की गुरियों पर उसकी उँगलियाँ चलती रहीं और आठ बजे तक वह कलमा का उच्चारण करता रहा, तब उसका प्राणान्त हो गया। संसार के इतिहास में अति शक्तिशाली और अति प्रसिद्ध पुरुषों में से इस प्रकार एक की मृत्यु हो गई। उसका पुत्र आजमशाह दो दिन बाद पहुँचा और अपने पिता के शव को खुल्दाबाद में दफन करवा दिया। उस स्थान का नाम अब रोजा है। यह मकबरा नीचा और सीधा-सादा है। इस का चबूतरा भी संगमरमर का नहीं है।[६]

८. ताराबाई की विजय—राजाराम की मृत्यु के बाद महाराष्ट्र में ताराबाई का प्रभाव सर्वोपरि हो गया, क्योंकि वह अपने पुत्र के नाम से कार्य-भार सँभाले हुए थी। दुर्भाग्यवश अनुभवी वृद्ध रामचन्द्र पन्त से उसका बहुत मतभेद था। वह धनाजी जाधव के साथ-साथ शाहू से अपना सम्पर्क रखता था और शाहू को छत्रपति के रूप में वापस लाने के लिए प्रयत्नशील था। चूँकि इस प्रयत्न का ताराबाई ने प्रबल विरोध किया, फलतः रामचन्द्र पन्त उदासीन हो गया और

---

६ सरकार कृत "औरंगजेब", भाग ५।

शासन में उसने वह सक्रिय भाग लेना छोड़ दिया, जो वह राजाराम के जीवन-काल में लेता था। इसके आगे प्रकाशित पत्रों में प्रायः रामचन्द्र पन्त का उल्लेख नहीं आता है। मुख्यतया परशुराम त्र्यम्बक, धनाजी और शंकरजी नारायण के समर्थन से ताराबाई ने युद्ध को अद्भुत उत्साह और सफलता से जारी रखा और मुगलों को परेशान कर दिया, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है। इसका समस्त श्रेय उसी को है कि भयानक युद्ध से मराठा जाति का सफल उदय हुआ और १८वीं शताब्दी में भारत के भाग्य के नियन्त्रण की क्षमता उसे प्राप्त हो गई। मुसलमान लेखक भी ताराबाई की अनुपम योग्यता की पुष्टि करते हैं। वह निरन्तर एक गढ़ से दूसरे गढ़ को जाती रहती थी, वह युद्ध-प्रयासों को गति देती और अपने अनुचरों को प्रेरणा। पन्हाला गढ़ का संरक्षक गिरोजी यादव उसका व्यक्तिगत विश्वास-पात्र प्रतिनिधि था, जिसके द्वारा उसकी आज्ञाएँ बाहर भेजी जाती थीं। यह गिरोजी करहाड़ के बड़े यादव परिवार का था। यद्यपि १७०४ ई० में सतारा पर मराठों ने पुनः अधिकार कर लिया था, पर ताराबाई ने पन्हाला को अपना केन्द्रीय स्थान बनाया, जहाँ से अपने अल्पवयस्क पुत्र के नाम से वह अपनी आज्ञाएँ भेजती रही।

एक समकालीन मराठा कवि ताराबाई के कृत्यों का गान इस प्रकार करता है—"हमारी देवी तुलजा हमको आशीर्वाद दे रही है, सम्राट् की सत्ता हमारे हाथ में आ गई है, अल्पवयस्क शिवाजी के गले में विजय अपनी माला पहना रही है। दिल्ली का मान-मर्दन हो गया है, दिल्लीपति आभाहीन हो गया है, राय की रानी ताराबाई को भयानक क्रोध हो आया है। हे लोगों, जान लो यह सब भगवान् शंकर की आज्ञा है। उसने दिल्लीपति की समस्त सेनाओं को यमराज के हाथों में अर्पित कर दिया है। दिल्लीपति की बदहाली पर इन्द्र का दरबार हँस रहा है, रणक्षेत्र में क्रोधान्वित राम की रानी नाच रही है। हे मुगलों! सँभल जाओ। अन्त समीप है। भोसलों का

मुकुट मरिण, शुभ भाग्यदाता राजा शिव अब सिंहासन पर विराज-मान है।"[७]

शाहू का उदय पेशवाओं के उदय के साथ ही हुआ और मराठा जाति के महान् पुनरुद्धारक रामचन्द्र पन्त अमात्य का ह्रास हो गया। यह वास्तव में राष्ट्रीय हानि थी कि प्राचीन और अर्वाचीन व्यवस्था की मध्यवर्ती शृंखला लुप्त हो गई। मराठा स्वातन्त्र्य संग्राम के महत्व को जिन शब्दों में रानाडे ने व्यक्त किया है, उनको यहाँ पर उद्धृत करके इस अध्याय को सही रूप में समाप्त किया जा सकता है।[८]

"यदि समस्त संकट पराङ्मुख कर दिये गये और जनता में एक नवीन जीवन का संचार हो गया, इसका श्रेय औरंगजेब की महत्वाकांक्षा को ही देना होगा। २० वर्षीय युद्ध का सुखद अन्त हुआ। महाराष्ट्र की जनता की आत्मा को औरंगजेब ने गतिमान कर दिया और इस युद्ध के कठोर अनुशासन द्वारा उनके नेताओं की राष्ट्रीय और देश-प्रेम सम्बन्धी भावनाएँ पुष्ट हो गईं, और इसी के द्वारा अगली तीन पीढ़ियों में भारत के दूरतम भाग में वे विजेताओं के रूप में पहुँच गये। बिना आय के, बिना सेनाओं के और बिना किसी प्रकार के साधनों के उन्होंने बड़ी-बड़ी सेनाएँ खड़ी कर दीं, गढ़ों को पुनः हस्तगत कर लिया और विजय की एक शैली का विकास किया, जिससे उन्होंने केवल स्वराज्य ही नहीं प्राप्त कर लिया अपितु समस्त दक्षिण और कर्नाटक में चौथ और सरदेशमुखी लगाने का अधिकार भी उन्हें प्राप्त हो गया। ऐसे युद्ध में केवल डाकुओं और लुटेरों को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती थी। यह उच्च स्तर का नैतिक बल था जिसके द्वारा राष्ट्र के उत्तम पुरुषों के समस्त गुण प्रकाश में लाये गये——साहसिक वीरता, उत्कृष्ट सहनशीलता, प्रशासकीय चातुर्य, प्रत्येक निराशा में आशा, दृढ़ विश्वास, उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठा,

---

७ सरदेसाई को० वौल्यूम, मराठी सेक्शन, पृ० १८१।

८ "राइज आफ द मराठाज", पृ० १९२-१९६।

भ्रातृ-भावना, ग्रात्म-बलिदान की भावना तथा ग्रपने पक्ष की ग्रन्तिम विजय में विश्वास। ऐसे ग्रनुशासन की पाठशाला के रूप में यह स्वातन्त्र्य-संग्राम मराठा इतिहास का सदा-सर्वदा के लिए ग्रति वैभव-शाली काल बना रहेगा।"

विषय-संकेत

[नोट—साधारण विषय तथा किलों के नाम प्रचुरता से दिये गये हैं।]